भोट-भारती ग्रन्थमाला- २९

आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकासूत्रम्

एवं

आचार्यकमलशीलविरचिता

आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकाटीका

༄༅། །སློབ་དཔོན་ཀམལཤཱིལས་མཛད་པའི་
འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་
ཞེས་བྱ་བའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་བཞུགས་སོ།།



भोट विद्या संस्थानम

सम्पादकः पुनरुद्धारकर्त्ता च

पेमा तेनजिन, आचार्यः

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्दः २५३८ सन् १९९४ ई०

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - XXIX

PRAJÑĀPĀRAMITĀVAJRACCHEDIKĀSŪTRAM

WITH

PRAJÑĀPĀRAMITĀVAJRACCHEDIKĀTĪKA

OF

ĀCĀRYA KAMALAŚĪLA



भोट विद्या संस्थानम्

Critically edited the Tibetan version and Restored into Sanskrit with Introduction and Indexes

by

Pema Tenzin, Acharya

Supervisor

Prof. Ram Shankar Tripathi

CENTRAL INSTITUTE OF HIGHER TIBETAN STUDIES
SARNATH, VARANASI

B.E. 2538 C.E. 1994

BIBLIOTHECA INDO-TIBETICA SERIES - XXIX

Chief Editor : *Prof. Samdhong Rinpoche*

First Edition : 550 copies, 1994

Price : Hardback: Rs. 160.00
Paperback: Rs. 110.00

Publisher :
Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi-221007, India.

Printed at Khandelwal Offset Printer, Mahmoorganj, Varanasi.

भोट-भारती ग्रन्थमाला- २९

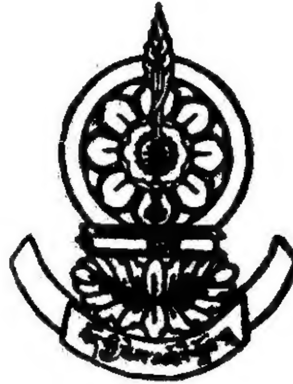
प्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकासूत्रम्

एवं

आचार्यकमलशीलविरचिता

आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकाटीका

༄༅། །སློབ་དཔོན་ཀ་མ་ལ་ཤཱི་ལས་མཛད་པའི་
འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་
ཞེས་བྱ་བའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་བཞུགས་སོ།།



भोट विद्या संस्थानम

सम्पादक एवं पुनरुद्धारकर्त्ता

पेमा तेनजिन, आचार्य

पर्यवेक्षक

प्रो. रामशंकर त्रिपाठी

केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा-संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्दः २५३८ सन् १९९४ ई०

प्रधान सम्पादक : प्रो. समदोङ् रिनपोछे

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ, १९९४

मूल्य :
अजिल्द : रू0 १६0.00
सजिल्द : रू0 ११0.00

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान,
सारनाथ वाराणसी - २२१00७

मुद्रक : खण्डेलवाल आफ्सेट प्रिन्टर्स, महमूरगंज, वाराणसी ।

དཔར་སྐྲུན་པའི་ཆེད་བརྗོད།

༄༅། །འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོའམ། གཞུང་ཚད་ཀྱི་དབང་གིས་ཤེར་ཕྱིན་སུམ་བརྒྱ་པར་གྲགས་པ་འདི་བོད་སྔ་རབས་པ་དག་ཤེར་མདོ་ལ་ཡུམ་སྲས་ཀྱི་དབྱེ་བས་སྲས་བཅུ་གཅིག་ཏུ་བགྲང་པའི་ནང་ཚན་ཞིག་ཡིན་པ་མ་ཟད། བོད་དུ་འགྱུར་སྔ་ཞིང་བོད་རིགས་སེར་སྐྱ་མང་པོས་རྒྱུན་པར་ཁ་བཏོན་དུ་བྱ་བ་དང་། གླེགས་བམ་དུ་བྲིས་པའི་མདོ་སྡེ་འགྲོ་དོན་དར་ཁྱབ་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བ་ཞིག་ཡིན་སྐབས། སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་ལླུལམཆི་ཇོ་ཤིས་ལེགས་སྦྱར་གྱི་མ་དཔེར་ཞུས་དག་དང་ཧིན་སྐད་དུ་བསྒྱུར་བ་བཅས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༧༨ ལོར་འདི་ག་མཐོ་སློབ་ནས་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་ཞིང་། དེའི་རྗེས་ལེགས་སྦྱར་དུ་མ་བཞུགས་པའི་གཞུང་ལུགས་བོད་འགྱུར་ནས་བསྐྱར་གསོ་བྱ་རྒྱུའི་ལས་གཞིའི་ཁོངས་ཞི་འཚོ་དཔོན་སློབ་ཀྱི་གསུང་རྣམས་གལ་ཆེར་བཟུང་སྟེ་བསྐྱར་གསོ་ཞུས་གྲས་སློབ་དཔོན་པདྨའི་ངང་ཚུལ་གྱིས་མཛད་པའི་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་འདི་ཉམས་ཞིབ་པ་པདྨ་བསྟན་འཛིན་གྱིས་ལེགས་སྦྱར་སྐད་དུ་གོང་གསལ་འདི་ནས་དཔར་བའི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་རྩ་བར་གཞི་བཅོལ་གྱིས་བསྐྱར་གསོ་དང་། བོད་སྐད་དཔེ་བསྡུར་དག་ཞུས་བཅས་གནང་བ་འདི་དུས་ཡུན་རིང་པོ་ཞིག་གི་བར་གུས་རྟག་གི་བརྩོན་པ་རྒྱུན་མི་ཆད་པའི་འབྲས་བུར་ཆ་ཚང་གྲུབ་སྟེ། ད་ལམ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་གཉེར་ཁང་གི་འཕགས་བོད་ཡོད་ཕྱིར་ཁོང་དཔར་བསྐྲུན་ཐུབ་པ་འདིར་དགའ་སྤྲོབས་ཆེན་པོ་བྱུང་ཞིང་། བསྒྱུར་བ་པོར་ལེགས་སོ་བསྔགས་བརྗོད་དང་། བློ་གསལ་དོན་གཉེར་ཅན་མང་པོར་ཕན་ཐོག་ཆེན་པོ་ཡོང་བའི་རེ་བ་ཡོད།

འདིའི་བསྒྱུར་རྩོམ་དག་ཞུས་ཀྱི་བྱ་བར་སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་སེམས་དཔའ་རྡོ་རྗེ་དང་། ཉེ་བའི་སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་ཛྙནཀཱིཔྲསྲད་དྭིབེདྡཱི། སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་རྣམཤཀྲར་ཏྲིཔཱཋཱི་རྣམས་ནས་མཐུན་འགྱུར་ཚད་མེད་གནང་བར་ཡི་རང་བསྔགས་བརྗོད་དང་བཅས་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་པས་ ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༨ ཟླ་ ༧ ཚེས་ ༡༣ ལ་བྲིས་པ་དགེ་བར་གྱུར་ཅིག། ༎

प्रकाशकीय

आर्य प्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिका नामक महायानसूत्र अथवा परिमाण के आधार पर प्रसिद्ध आर्य त्रिशतिकाप्रज्ञापारमितासूत्र तिब्बत में परिगणित जिनजननी प्रज्ञापारमिता सूत्रों के विभाजन में न केवल ग्यारह जिनसूत्रों के अन्तर्गत परिगणित है, अपितु वह भोट भाषा में भी अनूदित है । तिब्बत की बहुसंख्यक जनता इस सूत्र का निरन्तर स्वाध्याय, वाचन, धारण एवं प्रकाशन कर पुण्य अर्जन करती है । इस प्रकार इस सूत्र का प्रभाव व्यापक रूप में हुआ है । प्रो. लालमणि जोशी ने अनेक संस्करणों की सहायता से इस सूत्र के संस्कृत पाठ का न केवल सम्पादन किया, बल्कि हिन्दी अनुवाद के साथ इस ग्रन्थ का प्रकाशन भी १९७८ई. में इसी संस्थान से किया जा चुका है ।

संस्कृत मूल में अप्राप्त बौद्ध ग्रन्थों को पुनः तिब्बती से संस्कृत में पुनरुद्धार करने की योजना के अन्तर्गत आचार्य शान्तरक्षित एवं उनके शिष्य आचार्य कमलशील के ग्रन्थों को महत्त्वपूर्ण मानकर उनके द्वारा रचित ग्रन्थों के पुनरुद्धार को प्राथमिकता प्रदान की गई । इस क्रम में कमलशील विरचित आर्यप्रज्ञापारमिता-वज्रच्छेदिका की विस्तृत टीका का पुनरुद्धार कार्य शोधकर्ता पेमा तेनजिन को सौंपा गया । श्री पेमा तेनजिन ने प्रो. लालमणि जोशी द्वारा सम्पादित वज्रच्छेदिकासूत्र ग्रन्थ को आधार मानकर उसकी प्रस्तुत टीका का न केवल संस्कृत में पुनरुद्धार किया, बल्कि सूत्र ग्रन्थ को भी टीका के साथ संलग्न किया है ।

इस टीका के तिब्बती पाठ का भी अन्य तीन संस्करणों की सहायता से सम्पादन किया गया है । कई वर्षों के निरन्तर परिश्रम के फलस्वरूप आज इस ग्रन्थ को केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के "भोट-भारती ग्रन्थमाला" के अन्तर्गत प्रकाशित करते हुए, मैं अपार हर्ष एवं गौरव का अनुभव कर रहा हूँ । पुनरुद्धारकर्ता को उनके इस प्रशंसनीय कार्य के लिए साधुवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि जिज्ञासु पाठक एवं अनुसंधानकर्ता इससे लाभान्वित होंगे । प्रारम्भ में इस कार्य में सहायक प्रो. सेम्पा दोर्जे एवं डॉ. जानकीप्रसाद द्विवेदी, रीडर तथा अन्तिम रूप से कार्य निष्पादक प्रो. रामशङ्कर त्रिपाठी जी का, मैं उनके अपरिमित योगदान के लिए हृदय से प्रशंसा करता हूँ ।

१२ जुलाई, १९९४

निदेशक

प्रो. एस. रिनपोछे

पुरो वाक्

वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात् इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर पाठकों एवं विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष हो रहा है । प्रज्ञापारमिता साहित्य बौद्ध महायान जगत का हृदय है । तिब्बत में प्रज्ञापारमिता सूत्रों की संख्या सत्रह मानी जाती है । जिनमें छह जननी तथा ग्यारह जिन (पुत्र) प्रज्ञापारमिताएं हैं । कलियुग में शतसाहस्रिका, पञ्चविंशतिसाहस्रिका, अष्टसाहस्रिका जैसे विशाल सूत्रों का वाचन, धारण एवं प्रकाशन अत्यन्त दुष्कर होने के कारण भगवान् ने उन्हीं सूत्रों के सार को गृहीत कर विनेयजनों के अनुरूप वज्रच्छेदिका आदि लघु सूत्रों के रूप में देशना की । वज्रच्छेदिकासूत्र तिब्बत, चीन आदि महायानी देशों में बहुत अधिक प्रभावी रहा है । यह सूत्र अत्यन्त लघु होते हुए भी सम्पूर्ण प्रज्ञापारमिता सूत्रों के अभिधेय विषयों का प्रतिपादन करते हुए शून्यता का साक्षात् कराता है । स्वयं भगवान् ने इसी सूत्र में कहा है– "भगवान् बुद्ध भी इसी से प्रादुर्भूत हुए हैं । अनागत काल में इस धर्मपर्याय की एक गाथा के भी धारण, वाचन एवं प्रकाशन से बहुत अधिक पुण्य का संचय होगा ।" इस सूत्र के महत्त्वपूर्ण अर्थों को स्पष्ट रूप से जानने के लिए आचार्य असंग की पद्यबद्ध एवं जटिल टीका के अतिरिक्त अन्य कोई टीका संस्कृत में उपलब्ध नहीं होती । आचार्य कमलशील की यह सुबोध्य एवं विस्तृत टीका भोट भाषा में अनूदित है तथा तन–ग्युर संग्रह में प्राप्त होती है । "सघन संस्कृत प्रशिक्षण" के दौरान मैंने सूत्र का महत्त्व देखते हुए आचार्य कमलशील की टीका का संस्कृत में पुनरुद्धार करने का निर्णय लिया था ।

वज्रच्छेदिका सूत्र के अनेक संस्करण प्राप्त होते हैं, किन्तु प्रो. लालमणि जोशी जी का संस्करण सबसे बाद का है । उन्होंने सभी प्राप्त संस्करणों का तिब्बती पाठ के साथ मिलान करके संपादन किया है । इसलिए प्रो. जोशी के संस्करण को आदर्श मानकर मैंने इसे अपने पुनरुद्धार कार्य का आधार बनाया । टीका ग्रन्थ के भी चार संस्करण प्राप्त होते हैं । मैंने देगे संस्करण को आधार ग्रन्थ मानकर अन्य संस्करणों से पाठ–भेद किया है । नरथङ् एवं पेकिंग संस्करण के लिए मुझे हिमाचल प्रदेश स्थित धर्मशाला के तिब्बती ग्रन्थालय में एक महीने तक कार्य करना पड़ा । 'चोने' संस्करण माईक्रोफिल्म में है, जो हमारे संस्थान के शान्तरक्षित ग्रन्थालय

में उपलब्ध है । अनन्तर ग्रन्थ का अध्ययन कर भोट पाठ का सम्पादन किया । ग्रन्थ का कम्प्यूटरीकरण, प्रूफ, सम्पादन एवं प्रकाशन आदि समस्त कार्य स्वयं सम्पन्न किया ।

हमारे वरिष्ठ सम्पादक आचार्य ङवङ् समतेन, प्राध्यापक आचार्य छुलठिम फुनछोग एवं प्रो. सेम्पा दोर्जे जी का मैं आभारी हूँ, जिन्होंने ग्रन्थ को समझने तथा पाठ निर्णय करने में निरन्तर सहयोग दिया ।

संस्कृत रूपान्तर हो जाने के बाद भाषा शुद्धि एवं विषयगत त्रुटियों को दूर करने में काफी समय लग गया । प्रो. सेम्पा दोर्जे जी एवं संस्कृत रीडर, डा. जानकी प्रसाद द्विवेदी जी के निरन्तर सहयोग के लिए आप दोनों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ ।

प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, शोध प्रोफेसर, अम्बेडकर चेयर, का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ । आप के ही आशीर्वादों के फलस्वरूप आज यह ग्रन्थ इस रूप में प्रकाशित हो रहा है । मैंने एक बार पुनः प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संस्कृत रूपान्तर का सम्पादन एवं संशोधन कार्य आपके सानिध्य एवं निर्देशन में सम्पन्न किया ।

संस्थान के निदेशक प्रो. एस. रिम्पोछे जी का मैं अत्यन्त आभारी हूँ । वास्तव में आपकी प्रेरणा, उदात्त विचार, विद्वत्ता एवं सहनशीलता ही इस कार्य के फलित होने में प्रमुख कारण रहे हैं । आपने न केवल मेरा उत्साहवर्धन किया वरन, सभी आवश्यक सुविधाएं भी समय-समय पर उपलब्ध कराई । अन्त में इस कार्य में साधक ग्रन्थालय के कम्प्यूटर, रिप्रोग्राफी एवं तिब्बती हस्तलेख-कक्ष अनुभाग के कर्मचारियों, प्रकाशन अनुभाग तथा अपने सभी शुभचिन्तकों को भी धन्यवाद देता हूँ ।

भगवान् ने इस सूत्र में कहा है- इस धर्मपर्याय के धारण, वाचन एवं प्रकाशन से अपरिमित पुण्य का संचय होगा । तदनुसार मेरे द्वारा अर्जित इस पुण्य से संसार के सभी प्राणी सुखी हो, सबका मंगल हो, विश्व में शान्ति हो तथा सभी निर्वाण पद को प्राप्त करें, ऐसी परिणामना करता हूँ ।

पेमा तेनजिन, आचार्य
सहायक सम्पादक, अनुवाद अनुभाग
शोध विभाग, के.ति.शि.सं.

१२ जुलाई, १९९४

विषयानुक्रमणिका

परिशिष्टानि :

སྔོན་བརྗོད།

༄། །མཐའ་བཞི་སྤྲོས་པའི་མཚན་མ་བརྒྱད་བྲལ་སྒྲ་བསམ་བརྗོད་མེད་ཟབ་ཅིང་ཞི། །
སྒྲོ་འདོགས་སོ་གཉིས་མི་དམིགས་དབྱིངས་ཐིམ་འདུས་མ་བྱས་པའི་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས། །
ལྷ་གཞི་ཀུན་བསློག་མཚན་ཉིད་མེད་པའི་ཆོས་འཁོར་ཡུམ་སྲས་བཅུ་བདུན་ཞེས། །
སྲས་བཞིའི་འཕགས་པ་བསྐྱེད་པའི་གཞིར་གྱུར་བགྲོད་པ་གཅིག་པའི་ལམ་དེ་བསྔགས། །

འཕགས་པ་མྱང་འདས་ས་ལ་བགྲོད་པའི་ལམ། །
རྣམ་ཀུན་མཆོག་ལྡན་སྟོང་ཉིད་རྡོ་རྗེའི་མཚོན། །
སྲིད་རྩ་དྲུང་ནས་གཅོད་པའི་རྣོ་དབལ་ཅན། །
ཤེར་ཕྱིན་སྲས་ཀྱི་ཚུལ་དེ་བསྒྱུར་ལ་སྒྲོ། །

ཆོས་ཀུན་བདེན་མེད་རྡུལ་ཙམ་མ་གྲུབ་པ། །
དངོས་རྟོགས་རིགས་པའི་ལམ་ནས་ལེགས་བསྒྲུབས་དེ། །
སྟོང་དང་རྟེན་འབྱུང་ཟུང་དུ་འབྲེལ་བའི་ལམ། །
དངོས་བསྟན་སྟོང་ཉིད་རིམ་པའི་རིགས་པའི་ཚོགས། །

མཁྱེན་གསུམ་ཐོས་པའི་རྩ་བ་རབ་ཏུ་བརྟན། །
སྦྱོར་བཞིའི་ཉམས་ལེན་མངོན་རྟོགས་ཡལ་འདབ་ཡངས། །
འབྲས་བཟང་ཆོས་སྐུའི་དགའ་སྟོན་འཛོ་བའི་དཔྱིད། །
སྦས་དོན་མངོན་རྟོགས་རིམ་པའི་ལྡོན་པར་འདུས། །

ཅི་ཡང་ཡིད་ལ་མི་བྱེད་ལྟ་བའི་སྒྲོལ། །
ཅིག་ཅར་སྒོམ་པའི་ཧྭ་ཤང་ལྟ་བ་བཤིག །
དཔྱོད་འཇོག་ཤར་སྒོམ་རིམ་གྱིས་ལྟ་བ་ཡིས། །
ལམ་བཟང་གསལ་མཛད་པདྨའི་ངང་ཚུལ་མཆོག །

བདག་ཅག་གི་སྟོན་པ་ཐུགས་རྗེ་ཅན་མཉམ་མེད་སྟོབས་བཅུ་མངའ་བ་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་དང་པོར་བྱང་ཆུབ་མཆོག་ཏུ་སེམས་བསྐྱེད། བར་དུ་གྲངས་མེད་གསུམ་དུ་ཚོགས་བསགས། མཐར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་ནས་མཛད་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་སྒོ་ནས་འཛམ་གླིང་འདིར་འགྲོ་བ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་སྨིན་གྲོལ་གྱི་ལམ་ལ་བཀོད། མཛད་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ནང་ནས་གསུང་གི་མཛད་པ་ཉིད་རབ་དང་། མཆོག་ཏུ་བསྔགས་ཤིང་། དེ་ལ་ཡང་ཆོས་འཁོར་རིམ་པ་གསུམ་མམ། ཆོས་ཀྱི་ཕུང་པོ་བརྒྱད་ཁྲི་བཞི་སྟོང་ངམ། གྲངས་ལས་འདས་པ་ཞིག་ཡོད་པའི་དེ་དག་བསྡུ་ན་ཐེག་དམན་དང་ཐེག་ཆེན་དང་གསང་སྔགས་ཀྱི་རྒྱུད་སྡེ་བཅས་གསུམ་དུ་བསྡུས་ཤིང་། དང་པོ་ནི་བཀའ་བསྡུ་རིམ་པ་གསུམ་དང་བསྟན་པའི་གདན་རབས་བདུན་སོགས་ཀྱི་སྒོ་ནས་དར་རྒྱས་སུ་བྱུང་ཞིང་། གཉིས་པ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཀུན་ཏུ་བཟང་པོ་དང་། བྱམས་པ། འཇམ་དབྱངས་སོགས་བྱང་སེམས་རྣམས་ཀྱིས་བཀའ་བསྡུ་མཛད་ཅིང་། སློབ་དཔོན་ཀླུ་སྒྲུབ་དང་། ཐོགས་མེད་ཀྱིས་སྲོལ་གཏོད་དར་རྒྱས་སུ་གྱུར། གསུམ་པ་ནི་གསང་བའི་བདག་པོ་ཕྱག་ན་རྡོ་རྗེས་བཀའ་བསྡུ་མཛད་དེ། གྲུབ་ཐོབ་རིག་པ་འཛིན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྙན་བརྒྱུད་རིམ་གྱིས་དར། ཡང་ན་མདོ་ཕྱོགས་རྣམས་བདག་ཅག་གི་སྟོན་པ་ནས། བྱམས་པ་དང་འཇམ་དབྱངས་སོགས་རྒྱ་ཆེན་སྤྱོད་རྒྱུད་དང་། ཟབ་མོ་ལྟ་རྒྱུད་ཀྱི་བླ་མ་རྣམས་དང་། རྒྱུད་སྡེ་རྣམས་རྒྱལ་བ་རྡོ་རྗེ་འཆང་ནས་བཟུང་། ཉམས་ལེན་བྱིན་རླབས་བརྒྱུད་པའི་བླ་མ་རིམ་པར་བྱོན་པ་རྣམས་ལས་ད་ལྟའི་བར་དར་རྒྱས་ཉམས་མེད་དུ་བཞུགས།

བདག་ཅག་གི་སྟོན་པས་ཆོས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཇི་སྙེད་ཅིག་བཀའ་བསྩལ་བ་འདི་དག་གི་ནང་ནས་ཞེར་ཕྱིན་གྱི་མདོ་སྡེ་རིན་པོ་ཆེ་ནི་གཙོ་བོར་གྱུར། འདི་ཉིད་ཀྱི་དགོངས་པ་འགྲེལ་ཚུལ་གྱི་དབང་དུ་བྱས་ན་ཟབ་པའི་དོན་དངོས་བསྟན་སྟོང་ཉིད་ཀྱི་རིམ་པ་རིགས་པའི་རྣམ་གྲངས་མཐའ་ཡས་པའི་སྒོ་ནས་དངོས་སུ་གདན་ལ་འབེབས་པ་དང་སྦས་དོན་མངོན་རྟོགས་ཀྱི་རིམ་པ་རྣམས་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་གདན་ལ་འབེབས་པར་མཛད་པ་གཉིས་ཏེ། མདོར་ན་ཐོག་མར་སེམས་བསྐྱེད་པ་ནས་བཟུང་། འབྲས་བུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སའི་བར་རིམ་གྱིས་བགྲོད་པའི་ཚུལ་ཟབ་པ་དང་། རྒྱ་ཆེ་བའི་ལམ་གྱི་རིམ་པ་མཐའ་དག་ངོ་བོ་མ་ནོར་བར། གོ་རིམ་མ་འཁྲུག་པར། ཐོས་བསམ་གྱིས་འཇུག་པའི་དབང་དུ་མཛད་དོ།།

ཤེར་ཕྱིན་གྱི་མདོའི་བྱུང་བ།

བདག་ཅག་གི་སྟོན་པས་རྡོ་རྗེ་གདན་བྱང་ཆུབ་ཤིང་དྲུང་དུ་ས་ག་ཟླ་བའི་ཡར་ངོའི་ཚེས་བཅོ་ལྔར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་མཛད་པ་བསྟན་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་དང་བསམ་པ་དང་མོས་པའི་བདག་ཉིད་དུ་མཛད་ནས་ཆོས་ཚུལ་སྣ་ཚོགས་གསུངས་པ་ལས། བྱ་རྒོད་ཕུང་པོའི་རིར། དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དང་། ལྷ་དང་མིའི་འཁོར་དཔག་ཏུ་མེད་པ་རྣམས་ལ་ཤེར་ཕྱིན་གྱི་མདོ་སྡེ་རིན་པོ་ཆེ་གསུངས་པ་དེ་ནི་ཤེར་མདོ་གསུངས་པའི་ཐོག་མ་ཡིན་པ་དང་། དེ་ནས་རིམ་པ་བཞིན་གསུངས་པ་ནས་སྐབས་སུ་བབ་པའི་མདོ་སྡེ་རིན་པོ་ཆེ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོ་འདི་ནི་མཉན་ཡོད་གྲོང་ཁྱེར་དུ་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱི་བསྐྱེད་པའི་ཀུན་དགའ་ར་བར་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ།། གཞུང་འདིའི་དགོངས་དོན་གཙོ་བོ་ནི་ཤེར་ཕྱིན་གྱི་ངོ་བོ་ཡང་དག་པར་སྟོན་པར་བྱེད་པ་དེ་ཉིད་ཡིན་ཡང་། ཞར་བྱུང་དུ་མདོའི་ཉམས་ལེན་དང་ཐོས་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་སྐོར་ལེའུ་འགའ་ཞིག་ཏུ་ཡང་ནས་ཡང་དུ་གསུངས་སོ།།

དེ་ནས་སྟོན་པ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་འོག་ཏུ་ཐེག་པ་རིན་པོ་ཆེའི་བཀའི་བསྡུ་བ་མཛད་པ་ཡིན་ལ། དེ་ཡང་ཡུལ་མགདྷ་ན་གྲོང་ཁྱེར་རྒྱལ་པོའི་ཁབ་ཀྱི་ལྷོ་ཕྱོགས་བིམལ་སམྦྷཝ་ཞེས་བྱ་བའི་རི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་འབུམ་ཕྲག་བཅུ་འདུས་ཏེ། ཕྱག་ན་རྡོ་རྗེས་མདོ་སྡེ། བྱམས་པས་འདུལ་བ། འཇམ་དཔལ་གྱིས་མངོན་པ་རྣམས་བསྡུས་པར་བཤད་དོ།། སློབ་དཔོན་ལེགས་ལྡན་འབྱེད་ལྟར་ན། རྩ་བའི་བསྡུས་པ་པོ་ཀུན་ཏུ་བཟང་པོ་དང་། འཇམ་དཔལ་དང་། གསང་བའི་བདག་པོ་དང་། བྱམས་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་བསྡུས་ཤིང་། རྩ་བའི་སྡུད་པ་པོ་ཉན་ཐོས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

སློབ་དཔོན་སེངྒེ་བཟང་པོས་**རྒྱན་སྣང་ལས།** གཞན་དག་ནི་འདི་ཉིད་ཡོངས་སུ་གཏད་པའི་ལེའུ་ལས། "ཇི་ལྟར་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་འཛམ་གླིང་ན་སྤྱོད་པར་འགྱུར་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཡོངས་སུ་གཏད་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།།" ཡང་དག་པར་སྡུད་པར་བྱེད་པ་ནི་འཕགས་པ་ཀུན་དགའ་བོ་ཡིན་

ནོ་ཞེས་ཐེག་པ་ཐུན་མོང་བའི་མདོ་སྡེ་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་ཀུན་དགའ་བོ་བསྡུས་པར་འདོད་པའང་རུང་བར་བཞེད་ཅིང་། ཐོས་པ་འཛིན་པའི་མཆོག་ཀུན་དགའ་བོས་ཇི་ལྟར་ཡོངས་སུ་བཏུད་པ་བཞིན་ཡུམ་གྱི་མདོ་སྡེ་རིན་པོ་ཆེའང་ཅི་རིགས་པར་སྡུད་པར་མཛད་ཀྱང་། རིང་པོ་མ་ལོན་པར་ཉམས་པར་གྱུར་ཏོ་ཞེས་གསུངས་སོ།།

དེའི་རྗེས་སུ་ལོ་བརྒྱ་ཕྲག་འགའ་ཤས་རིང་ཐེག་ཆེན་གྱི་མདོ་སྡེ་རྣམས་ལྷ་ཀླུ་དྲི་ཟའི་གནས་རྣམས་སུ་བཞུགས་པར་གྲགས་ཅིང་། ཏཱ་རཱ་ནཱ་ཐ་ལྟར་ན།[1] "མི་ཡུལ་དུ་ཐེག་ཆེན་སྔར་བྱོན་པའི་ཐོག་མ་ནི། ཨོཊིཝིཤའི་རྒྱལ་པོ་ཟླ་བ་སྐྱོང་བའི་སར་འཛམ་དཔལ་གྱི་སྤྲུལ་པའི་དགེ་སློང་ཞིག་བྱོན་ཏེ། ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་ཅི་རིགས་པ་བསྟན་ནས་གླེགས་བམ་ཞིག་ཀྱང་བཞག་པ་ལ་མདོ་ལུགས་ཀྱིས་བརྒྱད་སྟོང་པ། སྔགས་ལུགས་ཀྱིས་དེ་ཁོ་ན་བསྡུས་པ་ཡིན་པར་བཤད།

དེ་ན་རྒྱལ་པོ་ལཀྵཤྭའི་སྐབས་སུ་དགྲ་བཅོམ་པ་ནནྡ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་འཛིན་པ་ཞིག་ཀྱང་བྱུང་ཞིང་། དུས་དེ་ཉིད་དུ་ཡུལ་ཐ་དད་པ་རྣམས་སུ་བཙུན་པ་ཆེན་པོ་ཨཝིཏརྐ་དང་ཝིཏརྐརྒ་དང་། རིག་པའི་འབྱུང་གནས་སྦས་པ་དང་། རཱཧུལམིཏྲ་དང་། ཛྙཱནཏལ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་འཕགས་པ་སྤྱན་རས་གཟིགས་དང་། གསང་བའི་བདག་པོ་འཇམ་དཔལ་དང་། བྱམས་པ་ལ་སོགས་པ་ལས་དངོས་སུ་ཆོས་གསན་ཏེ། ཆོས་རྒྱུན་གྱི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ཐོབ་པ་ལྔ་བརྒྱ་ཙམ་བྱུང་བ་རྣམས་རྒྱལ་པོས་སྤྱན་དྲངས་ཏེ། སློབ་མ་སྤྲུར། ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་སྡེ་སྣོད་གླེགས་བམ་དུ་བཀོད། དེ་དང་དུས་མཉམ་དུ་འཕགས་པ་དཀོན་རྩེགས་དང་། ལང་གཤེགས་དང་། རྒྱན་བསྟུག་པོ་བཀོད་པ་སོགས་མདོ་ཕལ་མོ་ཆེ་ལྷ་ཀླུ་དྲི་ཟའི་ཡུལ་ནས་ཕེབས་ཏེ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་གྲགས་པ་ཕྱོགས་ཀུན་དུ་ཁྱབ་བོ།།" ཡུམ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་པ་ནི་དཔལ་མགོན་འཕགས་པ་ཀླུ་སྒྲུབ་ཀྱིས་ཀླུ་ཡུལ་ནས་གདན་དྲངས་པར་སྔོན་གྱི་མཁས་པ་རྣམས་ལ་གྲགས་ཤིང་། ཉི་ཁྲི་ནི་དགེ་བསྙེན་ཞི་བའི་གོ་ཆས་པོཏལ་ནས་སྤྱན་དྲངས་པར་བཤད་དོ།།

---

[1] ཏཱ་རཱ་ནཱ་ཐའི་ཆོས་འབྱུང་། ཤོག ༥༡ ༡༩༨༦ ལྷཚ་ལིགས་བཤད་གཏེར་མཛོད་ཁང་།

ཤེས་རབ་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ།

སྤྱིར་ཤེས་རབ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡེ་ཤེས་དང་མཁྱེན་པ་དང་བློ་ན་མེད་པ་ལའང་འཇུག་པ་ཡིན། སྐབས་སུ་བབས་པའི་ཤེར་ཕྱིན་གྱི་ཤེས་རབ་ནི་ལེགས་སྦྱར་གྱི་སྐད་ཀྱི་དབང་དུ་བྱས་ན་དེའི་སྐད་དོད་པྲཛྙཱ་ཞེས་པ་དེ་ཡིན་ལ། དེ་ཡང་ཛྙཱ་ཞེས་པ་ནི་མཁྱེན་པའི་དོན་ལ་འཇུག་པས་འདིར་རབ་ཏུ་མཁྱེན་པའམ། རབ་ཏུ་ཤེས་པ་ཞེས་པའམ་ཡང་ན། ཤེས་རབ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ནང་ནས་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པ་ཞིག་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་ཤེས་རབ་བོ།། ཇི་སྐད་དུ། “ཤེས་རབ་ནི་མཁྱེན་པའོ། ཤེས་རབ་ལས་མི་རྟག་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་བ་དང་། བདག་མེད་རྟོགས་པར་བྱེད་དོ།། ཤེས་པར་བྱེད་པ་ནི་རྣམ་པར་ཤེས་པའི་དོན་ནོ།། ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་ཤེས་པ་ནི་ཤེས་རབ་བོ།། གང་ཞིག་གཅོད་པར་བྱེད་པ་པོ་ནི་ཤེས་རབ་ལས་གཞན་མེད་དོ།། གང་སུ་ཞིག་གིས་ཤེས་རབ་གཅོད་པར་མི་འགྱུར་རོ” ཞེས་གསུངས་ཤིང་། སངས་རྒྱས་དབྱངས་ཀྱིས་ཀྱང་ཇི་སྐད་དུ། “དགེ་བའི་སེམས་དང་ལྡན་པའི་ལྷག་མཐོང་གི་ཤེས་པ་ནི་ཤེས་རབ་བོ།། ཡང་དག་པར་ཤེས་པར་བྱེད་པའི་དོན་ནོ།། འདིའི་ཆོས་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་འགོག་པར་བྱེད་དོ།། ཡང་ན་ཤེས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རབ་ཡིན་པས་ན་ཤེས་རབ་སྟེ། དོན་དམ་པ་ལ་དམིགས་པའི་ཕྱིར་དང་། ཤེས་རབ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དམ་པ་ཡིན་པས་དེ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་སྟེ། མི་གནས་པའི་མྱང་འདས་སུ་ཕྱིན་པའམ་ཕྱིན་བྱེད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ” ཞེས་གསུངས་པས་སོ།། འདི་ལྟ་བུའི་ཤེས་རབ་དེ་ཡང་རྣམ་པ་གསུམ་སྟེ། ཐོས་པ་ལས་འབྱུང་བའི་ཤེས་རབ། བསམ་པ་ལས་འབྱུང་བའི་ཤེས་རབ་དང་། བསྒོམས་པ་ལས་འབྱུང་བའི་ཤེས་རབ་བོ།། དེ་ལས་སྒོམ་འབྱུང་གི་ཤེས་རབ་ནི་གཙོ་བོར་བསམ་གཏན་དང་ཏིང་ངེ་འཛིན་ལ་བརྟེན་པ་དང་། འདི་ལ་མ་བརྟེན་ནའང་ཤེས་རབ་གཞན་རྣམ་གཉིས་ནི་ཐོབ་པ་ཡོད་མོད་འོན་ཀྱང་ཤེས་རབ་དང་པོ་གཉིས་ཀྱིས་དོན་དམ་དང་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ཞི་བའི་བར་དུ་བགྲོད་པར་མི་བྱེད་པ་དང་། སྒོམ་འབྱུང་གི་ཤེས་རབ་ཁོ་ནས་བདེན་པ་མངོན་སུམ་དུ་བྱེད་པ་དང་ཞི་བ་འཐོབ་པའི་ཁྱད་པར་ཡོད་དོ།།

མདོར་ན་དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་སོ་སོར་ཡང་དག་པར་གསལ་བར་བྱེད་པ་ནི་

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཁྱད་ཆོས་ཡིན་པ་མ་ཟད། འདི་ཉིད་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་སྟོན་པ་པོ་དང་དེ་ཉིད་འཚོལ་བར་བྱེད་པ་སྟེ། དེ་ཡང་**སྤྱོད་འཇུག་ལས།** "ད་ནི་དེའི་རྗེས་ལ་ཐོབ་པའི་ལྷག་མཐོང་གི་མིང་ཅན་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཡན་ལག་འདི་དག་ཐམས་ཅད་"ཅེས་པ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ; ཤེས་རབ་ནི་ཇི་ལྟར་གནས་པའི་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་བར་འབྱུང་བའི་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཅན་ཡིན་ལ། ཞེས་དང་། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ཡང་འདི་ཉིད་ཀྱིས་འཐོབ་པར་འགྱུར་རོ།། འདིས་ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་བསྒྲིབས་པ་དང་མུན་པ་སེལ་བར་བྱེད་དོ།། སྟོང་པ་ཉིད་ནི་དེའི་གཉེན་པོར་བྱེད་དོ་ཞེས་གསུངས་པས་སོ།།

དེ་ལ་ཤེར་ཕྱིན་ཞེས་པ་ནི་ཆོས་ཐམས་ཅད་སྒྲིབ་བྲལ་མངོན་སུམ་དུ་མཁྱེན་པ་གང་མི་གནས་པའི་མྱང་འདས་སུ་ཕྱིནཔའམ་ཕྱིན་བྱེད་ཞིག་ལ་ཟེར། དེའི་མིང་གི་རྣམ་གྲངས་ནི་**སྤྱོད་འཇུག**་ལས།[1] "དེ་བས་ན་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ལུང་དུ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་གཅིག་མ་ཡིན་པར་དུ་མ་ཡོད་དེ། སྟོང་པ་ཉིད། དེ་བཞིན་ཉིད། ཆོས་ཉིད། ཆོས་དབྱིངས། ཡང་དག་མཐའ། རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་འབྱུང་། དབུ་མའི་ལམ། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་རང་བཞིན་ཉིད་དང་། ཡང་དག་པའི་བྱང་ཆུབ་སོགས་མིང་གི་རྣམ་གྲངས་སོ།།" ཞེས་གསུངས་སོ།།

དེ་ཡང་ཕ་རོལ་ཏེ་རབ་ཀྱི་མཐར་འགྲོ་བ་ཡིན་པས་ན་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའོ།། དེ་ཡང་ཤེས་རབ་ཅེས་བྱ་བ་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་སྟེ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་གཉིས་སུ་མེད་པའི་ཡེ་ཤེས་ལྟ་བུ་ནི་དངོས་ཡིན་ལ། དེ་འཐོབ་པ་དང་རྗེས་སུ་མཐུན་པ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་ཚིག་ངག་གི་ཚོགས་ཀྱི་གཞུང་དང་། མཐོང་བ་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཅན་གྱི་ལམ་ལ་ཡང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཏགས་པའོ།། ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་རང་བཞིན་ཤེར་ཕྱིན། གཞུང་ཤེར་ཕྱིན། ལམ་ཤེར་ཕྱིན། འབྲས་བུ་ཤེར་ཕྱིན་བཅས་ལས་དེ་དག་གི་སྐོར་མདོ་རྒྱ་ཆེར་རོལ་པ་དང་། ལྷའི་རྟོགས་བརྗོད་དང་། བརྒྱད་

---

[1] སྤྱོད་འཇུག ༩་༥༥

སྤོང་པ་དང་། མདོ་སྡེ་རྒྱན་དང་། བསླབ་པ་ཀུན་བཏུས་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་སྤྱོད་པ་ལ་འཇུག་པ་དང་། ཆོས་བསྡུས་པ་དང་། ས་བཅུའི་མདོ་སོགས་ལས་རྒྱ་ཆེར་བཤད་ལ།

ལང་ཀར་གཤེགས་པ་[༡]ལས། "དེ་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི། ནམ་རང་གི་སེམས་ཀྱི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་མེད་པ་དང་བློ་རབ་ཏུ་ཕྱེ་ན་མཐའ་གཉིས་སུ་མི་ལྷུང་ཞིང་གནས་གྱུར་པ་སྔོན་དུ་འགྲོ་བ་མི་འཇིག་པས་བདག་གི་འཕགས་པའི་སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པ་ཐོབ་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། རབ་ཏུ་སྦྱོར་བ་དེ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའོ།།" ཞེས་གསུངས་ཤིང་**སྤྱོད་འཇུག་**ལས།[༢]

ཡན་ལག་འདི་དག་ཐམས་ཅད་ནི། །
ཐུབ་པས་ཤེས་རབ་དོན་དུ་གསུངས། །
དེ་ཡི་ཕྱིར་ན་སྡུག་བསྔལ་དག །
ཞི་བར་འདོད་པས་ཤེས་རབ་བསྐྱེད། །

ཅེས་གསུངས་སོ།། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གཞན་རྣམས་ལས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ཡིན་ཏེ། ཇི་སྐད་དུ་**འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་པ་**ལས།[༣] "རབ་འབྱོར་འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན། ཉི་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་ཟླ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི་གླིང་བཞི་ར་ལས་བྱེད་ཅིང་། གླིང་བཞིའི་རྗེས་སུ་འགྲོའོ། གླིང་བཞིའི་རྗེས་སུ་འབྲང་ངོ་། རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་དུ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཡང་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔ་ར་ལས་བྱེད་ཅིང་། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔའི་རྗེས་སུ་འགྲོའོ།། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔའི་རྗེས་སུ་འབྲང་སྟེ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དང་བྲལ་ན་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་མིང་མི་འཐོབ་བོ།། རབ་འབྱོར་འདི་ལྟ་

---

༡ སྡེ་དཀའ། མདོ་སྡེ། ལང་ཀར་གཤེགས་པ་ "ཅ" ཤོག ༡༥༠

༢ སྡེ་བསྟན། ༣༨༤༣ ཤོག

༣ སྡེ་དཀའ། ༨ ཤེར་ཕྱིན། སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་པ། "ཀ" སྤྱོད་འཇུག་ནང་ལུང་དྲངས་པ། ༣༨༤༣ ཤོག ༡༨༦

སྙེ་དཔེར་ན་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའི་རྒྱལ་པོ་དང་བྲལ་ན། རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའི་མིང་མི་འཐོབ་བོ།། རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་དུ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔ་ཡང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དང་བྲལ་ན་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་མིང་མི་འཐོབ་བོ།། རབ་འབྱོར་འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན། ཆུ་ཀླུང་གང་ཅི་སྙེད་ཅིག་ཡོད་པ་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི་ཆུ་ཀླུང་ཆེན་པོ་གངྒཱ་གང་ན་དེར་འདོང་ངོ་།། དེ་དག་ཆུ་ཀླུང་གངྒཱ་དང་འགྲོགས་ཤིང་རྒྱ་མཚོ་ཆེན་པོའི་ནང་དུ་འདོང་ངོ་།། རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་དུ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལྔ་ཡང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པས་ཡོངས་སུ་ཟིན་ན་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ཉིད་གང་ན་བ་དེར་འདོང་ངོ་" ཞེས་རྒྱ་ཆེར་གསུངས་ཤིང་། ཇི་སྐད་དུ་**ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་བསྟོད་པ**་ལས།[༢]

དྲི་མེད་སྣང་བ་མེད་ཁྱོད་ལ། །
ཕ་རོལ་ཕྱིན་པ་ཐམས་ཅད་རྣམས། །
ཐམས་ཅད་དུ་ནི་རྗེས་འབྲང་སྟེ། །
ཟླ་བའི་རྗེས་སུ་རྒྱུ་སྐར་བཞིན། །

ཞེས་ཀྱང་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་བུའི་ཤེར་ཕྱིན་དེ་ཉིད་བརྗོད་བྱར་བྱེད་པའི་བཀའ་ལའང་ཤེར་ཕྱིན་ཞེས་མིང་གིས་འཇུག་པ་ནི་**དོན་བསྡུས་སྒྲོན་མེ**་ལས།[༣]

ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་གཉིས་མེད། །
ཡེ་ཤེས་དེ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས། །
བསྒྲུབ་བྱའི་དོན་དེ་དང་ལྡན་པས། །
གཞུང་ལམ་དག་ལ་དེ་སྒྲ་ཡིན། །

ཞེས་གསུངས་པ་ལྟར་ཡིན་ལ། དེ་ལའང་སྟོན་གྱི་མཁས་པ་རྣམས་ལ་ཡུམ་སྲས་བཅུ་གཅིག་ཅེས་ཡོངས་སུ་གྲགས་སོ།།

---

༢ སྟོད་འཇུག་ནང་དུ་ལུང་དྲངས་པ། ༣༤༧༣ ཤོག ༢༤༦

༣ དོན་བསྡུས་སྒྲོན་མེ། རྒྱན་སྣང་། "ཆ" ༢༤

བྱེ་བྲག་ཏུ་མདོ་སྡེ་འདི་ཉིད་ཀྱི་སྐོར།

རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོ་ནི་ཤེར་ཕྱིན་ཡུམ་སྙས་བཅུ་བདུན་གྱི་ནང་གསེས་ཞིག་ཡིན་པ་དང་མདོ་འདིའི་མཚན་ལ་ཤེར་ཕྱིན་སུམ་བརྒྱ་པའམ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ་ཞེས་བྱ་སྟེ། མདོ་འདི་ནི་ཚིག་བསྡུས་ཤིང་དོན་ཟབ་པའི་སྙིགས་དུས་ཀྱི་སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ཆེད་དུ། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། འབྲི་པ་ལ་སོགས་པ་སླ་བ་དང་། ཕན་ཡོན་དུ་མ་དང་ལྡན་པའི་རྒྱ་གར་ཙམ་དུ་མ་ཟད། རྒྱ་ནག་དང་བོད་དང་ཧོར་དང་དེ་མིན་ཐེག་ཆེན་གྱི་བསྟན་པ་དར་བའི་ཡུལ་གྲུ་ཀུན་ཏུ་ཏ་ཙང་དར་ཁྱབ་ཆེན་པོར་གྱུར་ཏེ། སེར་སྐྱ་ནན་གཞོན་ཁྱད་མེད་ཀྱིས་རྒྱུན་དུ་ཁ་ཏོན་དུ་བྱ་བ་དང་གླེགས་བམ་དུ་བྲིས་པའང་སྣང་ངོ་།། ཐིག་པ་བཞག་པའི་སྐད་དུ་མདོ་འདི་ཁ་ཏོན་དུ་བྱ་སྟེ། གཞིན་པོའི་དགེ་རྩའི་སྐད་དུ་རྗེས་འཇུག་རྣམས་ཀྱིས་འཁོར་འཁོས་དང་བསྟུན་ཏེ་གསེར་དངུལ་མཚལ་སྣག་སོགས་ཀྱིས་བྲིས་ཏེ་དགོན་སྡེ་དང་ལྷ་ཁང་སོགས་སུ་འབུལ་འཇོག་བྱེད་པའི་སྲོལ་ཡུལ་ལུང་ཕལ་མོ་ཆེར་ཡོངས་སུ་དར་བ་ཡིན་ནོ།།

དེར་མ་ཟད་འདིའི་ཕན་ཡོན་ཞིབ་པ་ནི། མདོ་ཉིད་ལས་ཀྱང་གསལ་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྩྲས་པ་ལྟར་ན། "རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་པ་བས། གང་གིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཐ་ན་ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་གཅིག་ཙམ་བཟུང་ནས་གཞན་དག་ལ་ཡང་འཆད་ཅིང་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་ན། དེ་བཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ། དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན། རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི། འདི་ལས་བྱུང་སྟེ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཀྱང་འདི་ལས་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་རོ།།"

"རབ་འབྱོར་ས་ཕྱོགས་གང་ན་མདོ་སྡེ་འདི་སྟོན་པའི་ས་ཕྱོགས་དེ། ལྷ་དང་མི་དང་ལྷ་མ་ཡིན་དང་བཅས་པའི་འཇིག་རྟེན་གྱིས་མཆོད་པར་འོས་པར་འགྱུར་རོ།། ས་

ཕྱོགས་དེ་ཕྱུག་བྲོ་བར་འོས་པ་དང་། བསྐོར་བ་བྱ་བར་འོས་པར་ཡང་འགྱུར་རོ།། ས་ཕྱོགས་དེ་ནི་མཆོད་རྟེན་ལྟ་བུར་འགྱུར་རོ།།" ཞེས་སོགས་འབྱུང་བས་སོ།།

གཞན་ཡང་སྡིག་པ་མ་ལུས་པར་བྱང་བ་དང་། སུམ་ཅུ་རྩ་གསུམ་པའི་ལྷ་གནས་སྒྲུབ་པ་དང་། ཚེ་དང་བསོད་ནམས་འཕེལ་བ་དང་། ཉེས་པ་ལས་ཐར་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་ལས་ཐར་པ་དང་། མཚོན་གྱིས་མི་འཚུགས་པ་སོགས་ཕན་ཡོན་ཏ་ཅང་མང་པོ་བཞུགས་སོ།།

གཞུང་འདིའི་རྒྱ་དཔེ་ས་ཕྱོགས་མང་པོ་ནས་དཔར་སྐྲུན་གནང་བའི་ནང་ནས། དབུས་ཨེ་ཤི་ཡ་ལ་དཔེ་དེ་ནི་རྙིང་ཤོས་ཞིག་ཡིན་ཅིང་། དེ་རྗེས་བརྒྱ་ཕྲག་དྲུག་པ་ནས་བཅུ་བདུན་པ་བར་བརྒྱ་ཕྲག་བཅུ་བདུན་པ་ཡིན་ཅིང་། བརྒྱ་ཕྲག་བརྒྱད་པའི་བར་རྒྱ་ནག་གི་མཁས་པ་དྲུག་ཙམ་གྱིས་རྒྱ་ནག་སྐད་དུ་ཕབ་བསྒྱུར་གནང་ཡོད་ཚུལ་རྒྱ་གར་གྱི་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཞལ་ལས་བྱུང་ངོ་།།

མདོ་འདིའི་འགྲེལ་པ་དང་འགྲེལ་བཤད་སྐོར།

མདོ་འདིའི་འགྲེལ་པ་འགའ་ཞིག་ཡོད་པའི་ནང་ནས་ད་ལྟ་ལག་ཏུ་འཐོབ་པ་ནི་སློབ་དཔོན་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའི་འགྲེལ་པ་ཞིག་ཡོད་པ་དེའི་རྒྱ་དཔེའི་མཚན་ལ་**ཤེར་ཕྱིན་སུམ་བརྒྱ་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་བདུན་བཅུ་པ**ཞེས་ཡོད་ཅིང་། བོད་འགྱུར་གྱི་མཚན་ལ་**ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་བཤད་པ་བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ**ཡོད་པས་མདོ་འདིའི་མཚན་མི་འདྲ་བ་ལྟ་བུར་སྣང་ཡང་། གཞུང་དངོས་ཀྱི་ཚིགས་བཅད་རྣམས་བོད་སྐད་དུ་བཞུགས་པའི་བཤད་སྦྱར་དང་ཁྱད་པར་མི་སྣང་ངོ་།། ཐོགས་མེད་ཀྱི་གཞུང་འདི་པེ་ཅིང་དཔར་མ་དང་གསེར་བྲིས་དཔར་མར་བཞུགས་ཡོད་ཅིང་སྡེ་དགེ་དང་སྣར་ཐང་དཔར་མའི་ནང་དུ་མེད། བོད་འགྱུར་དུ་མཛད་པ་པོ་ཐོགས་མེད་ཡིན་པ་མི་གསལ་ཡང་ལེགས་སྦྱར་དཔར་མའི་ནང་དུ་མཛད་བྱང་དུ་འདི་ནི་ཐོགས་མེད་ཀྱིས་མཛད་པའོ་ཞེས་གསལ་བར་བཞུགས་སོ།། དེ་བཞིན་སློབ་དཔོན་ཀ་མ་ལ་ཤཱི་ལའི་**རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ**ཞིག་བསྟན་འགྱུར་ནང་བཞུགས་ཡོད། འགྲེལ་པ་འདིའི་ཐོག་ལ་སློབ་དཔོན་དབྱིག་གཉེན་གྱིས་འགྲེལ་པ་མཛད་པ་**རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་**

དོན་བདུན་གྱི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་ཞེས་བྱ་བའི་འགྲེལ་པ་ཞིག་དང་། དེ་ལས་གཞན་བོད་ཀྱི་མཁས་པ་ཅོ་ནེ་གྲགས་པ་བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི་འགྲེལ་པ་ཞིག་ཀྱང་བོད་དུ་བཞུགས་ཡོད་པ་དེ་ནི་བོད་ཀྱི་བསྟན་བཅོས་ཁག་གི་མཚན་བྱང་དྲི་མེད་ཤེལ་དཀར་ཕྲེང་བར་གསལ། འོན་ཀྱང་ད་བར་ཅོ་ནེ་གྲགས་པ་བཤད་སྒྲུབ་ཀྱི་གསུང་འབུམ་རྒྱ་གར་དུ་བཞུགས་མེད་ཀྱང་། ཉེ་ཆར་ཁོང་གི་གསུང་འབུམ་རྒྱ་གར་ལྷོ་ཕྱོགས་སེར་སྨད་གྲྭ་ཚང་དུ་འགྱུར་གསལ་ལྟར་ན་གཞུང་འདི་ཡོད་''**ཨ**''ནང་བཞུགས།

སློབ་དཔོན་ཀ་མ་ལ་ཤཱི་ལའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་བའི་སྐོར།

སློབ་དཔོན་ཀ་མ་ལ་ཤཱི་ལ་ནི་སློབ་དཔོན་ཞི་བ་འཚོའི་སློབ་མ་ཡིན་པ་ཡོངས་གྲགས་སུ་མ་ཟད་སློབ་དཔོན་འདི་ཉིད་ཀྱིས་ནཱ་ལནྡཱའི་མཁན་པོའང་མཛད་ངེས་པ་དང་། དེ་ནས་རིམ་པར་བལ་ཡུལ་དུ་ཕེབས་པ་དང་ཕྱིས་བོད་དུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ་རྒྱ་ནག་ཧྭ་ཤང་མཧཱ་ཡཱ་ནའི་གནོད་པ་བྱུང་བའི་སྐབས་སྤྱན་དྲངས་པ་ལྟར་བྱོན་ནས་རྒྱ་ནག་ཧྭ་ཤང་གི་ལྟ་བ་ངན་པ་རྣམས་ཆར་བཅད་དེ། བོད་ལ་སླར་ཡང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་དབུ་ཚུགས་པར་མཛད། རྒྱལ་པོ་ཁྲི་སྲོང་ལྡེའུ་བཙན་གྱིས་གསོལ་བ་བཏབ་པ་བཞིན་སྒོམ་རིམ་ཐོག་མཐའ་བར་གསུམ་མཛད་དེ་བོད་འབངས་སེམས་ཅན་ཡོངས་ལ་ཕན་པ་རྒྱ་ཆེར་མཛད་དོ།། རྒྱ་གར་གྱི་བྱུང་བའི་ནང་སློབ་དཔོན་འདིའི་མཛད་པའི་ཕྱག་དཔེ་ཁག་གི་མཚན་ཙམ་ལས་འཕྲུངས་དུས་དང་འདས་དུས་སྐོར་ལ་གསལ་ཁ་མ་མཆིས། བོད་ཀྱི་ལོ་རྒྱུས་དང་རྒྱལ་རབས་ཁག་གི་ནང་སློབ་དཔོན་པདྨའི་ངང་ཚུལ་དང་རྒྱ་ནག་ཧྭ་ཤང་གི་རྩོད་པའི་སྐོར་དང་། ཕ་དམ་པ་རྒྱ་གར་གྱི་སློབ་དཔོན་འདི་ཡིན་མིན་སྐོར་ལ་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱི་བཞེད་ཚུལ་འདྲ་མིན་འཁོད་ཡོད་པ་རེད། རྒྱས་པར་གཟིགས་འདོད་འདི་གར་ལྷ་ཚ་མཐོ་སློབ་ནས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༨༥ ལོར་དཔར་སྐྲུན་གནང་བའི་སྐུ་ཞབས་རྒྱལ་མཚན་རྣམ་གྲོལ་ལགས་ཀྱིས་སྒོམ་རིམ་གྱི་སྒྲིང་བརྗོད་དུ་གསལ་ཡོད་འཁོད་ཡོད།

འདིར་སྐབས་སུ་བབས་པ་སློབ་དཔོན་ཀ་མ་ལ་ཤཱི་ལའི་འགྲེལ་པ་འདི་ཉིད་ཀྱིས་མདོའི་དངོས་བསྟན་དང་སྦས་དོན་གྱི་རིམ་པ་ཇི་ལྟར་འཀྲལ་བའི་སྐོར་མདོར་བསྡུས་ཏེ་བཤད་ན།

ཐོག་མར་མདོའི་མཚན་དོན་དང་བསྡུས་དོན་ལ། དེ་རྗེས་རྒྱས་བཤད་གནས་བཅོ་བརྒྱད་ཀྱི་སྒོ་ནས་བཀྲལ་བས་ཐོག་མར་མདོའི་མཚན་དོན་ལ། གཞུང་འདི་ཉིད་ལས། "ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་ཕྲ་བ་རྡོ་རྗེ་ལྟར་གཞིག་དཀའ་བ་དེ་གཅོད་པའི་ཕྱིར། ཡང་ན་རྡོ་རྗེའི་དབྱིབས་དང་འདྲ་བས་རྡོ་རྗེ་ལྟ་བུའོ།། རྡོ་རྗེ་ནི་རྩེ་མོ་གཉིས་སྦོམ་ལ་དབུས་ཕྲ་མོའོ།། དེ་བཞིན་དུ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ཡང་ཐོག་མ་དང་ཐ་མ་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་རྒྱ་ཆེ་བར་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། དབུས་ཕྲ་མོས་ནི་ལྷག་བསམ་དག་པའི་ས་བསྟན་ཏོ།།" ཞེས་གསུངས་ཤིང་།

དེ་དང་མཐུན་པར་སློབ་དཔོན་དབྱིག་གཉེན་གྱིས་ཀུང་དོན་བདུན་གྱི་འགྲེལ་བ་ལས། "རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བའི་མཚན་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་དོན་རྣམ་པ་གཉིས་དང་འབྲེལ་བར་རིག་པར་བྱ་སྟེ། གང་འདིའི་ཡང་དག་པའི་སྒྲུབ་པས་ལྟ་བ་དང་ཉོན་མོངས་པ་འཇོམས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་ཕྲ་མོ་དང་སྙིང་པོ་ཉིད་ཀྱིས་རྡོ་རྗེར་གྱུར་ལ། དེ་ཡང་ཤེས་དཀའ་བ་ཉིད་ཀྱིས་ན་ཕྲ་མོ་ཡིན་ཞིང་། གཞང་དཀའ་བ་ཉིད་ཀྱིས་ན་སྙིང་པོའོ།། དེ་ལ་འདི་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཐོས་པ་དང་བསམ་པ་དང་། བསྒོམ་པས་གཅོད་པར་བྱེད་དོ།། རྡོ་རྗེ་ཡང་འདི་ཡིན་ལ། གཅོད་པ་ཡང་འདི་ཡིན་ཞིང་། ཡོངས་སུ་གཅོད་པའི་དབྱིབས་ཏེ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའོ།། རྡོ་རྗེ་ནི་མཐའ་གཉིས་རྒྱ་ཆེ་ལ་དབུ་མ་བསྡུས་ཏེ་ཕྲི་བར་བྱ་སྟེ། དེ་ལྟ་བུའི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་དབུ་མར་བསྡུས་པའི་ཕྱིར་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་ས་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། ཐོག་མ་དང་ཐ་མ་རྒྱ་ཆེན་པོས་ནི་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་དང་། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དང་ལྡན་པའི་ས་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།" ཞེས་གསུངས་པས་དོན་རྣམ་གཉིས་ཀྱིས་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཡིན་པར་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ནས་བསྡུས་དོན་རྣམ་པ་ལྔའི་སྒོ་ནས་འཆད་པར་བྱེད་པ་ཡིན་པས་དེའི་ཚུལ་ནི་མདོའི་གླེང་གཞི་དང་། གླེང་བསླང་བ་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ་དང་། སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་དང་། དེའི་གནས་བཅས་ལས་དང་པོ་ནི་མདོ་ལས། "འདི་སྐད་བདག་གིས་ཐོས་པ་" ཞེས་བྱ་བ་ནས་ "དེ་ནས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་" ཞེས་བྱ་བའི་བར་ཡིན་ལ། དེའི་དོན་འགྲེལ་པ་ལས་གླེང་གཞི་ནི་མདོ་སྡེ་འབྱུང་བའི་རྒྱུ་ཡིན་པ་

བསྟན་པའི་སྒོ་ནས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་ལ་ཕན་བཏགས་པར་བསྟན་པ་ཡིན་པར་འཆད་དེ།

དེ་ཉིད་ལས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་རྣམས་ལ་ཕན་བཏགས་པ་ཇི་སྙེད་པས་ཕན་བཏགས་པ་ནི་ངོ་མཚར་ཏོ།། མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པའི་སྒོ་ནས་ཕན་བཏགས་པ་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བསྐོར་བའི་སྐབས་སུ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་རྣམས་སར་ཆུད་པར་མཛད་པ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆོས་ཉིད་ལ་རབ་ཏུ་གཞག་པའི་ཕྱིར་རོ།། དགེ་བའི་རྩ་བ་ཡོངས་སུ་མ་སྨིན་པ་ལས་དང་པོ་བ་དག་ལ་ཕན་འདོགས་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་རྣམས་ལ་གཏད་པ་དང་། དེ་དག་ཆོས་ཉིད་ལ་རབ་ཏུ་འཇོག་ཏུ་གཞུག་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་བསྟན་པ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱིས་ཡོན་ཏན་མ་ཐོབ་པ་ཐོབ་པར་གྱུར་པ་དང་། ཐོབ་པ་དག་ལས་ཡོངས་སུ་ཉམས་པར་མི་འགྱུར་བ་གྱིས་ཤིག་ཞེས་པའོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལ་དུས་དང་ཁྱད་པར་དང་རྒྱ་ཆེ་བ་དང་བརྟན་པ་དང་ཁྱབ་པ་བཅས་རྣམ་པ་ལྔས་སྒོ་ནས་ཕན་འདོགས་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས་གསུངས་སོ།།

གཉིས་པ་མདོའི་གླེང་བསླང་བ་ནི་མདོ་སྡེའི་དོན་བཤད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་སྐབས་དང་སྦྲེར་བ་སྟེ། སྐབས་སུ་མ་བབ་པར་སླས་ན་ཐམས་ཅད་འཆལ་བར་འགྱུར་བས་འཆལ་བ་བསལ་བའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་སྐབས་དང་སྦྲེར་བར་བྱའོ་ཞེས་གསུངས་སོ།། འདི་ནི་"དེ་ནས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་སྟན་ལས་ལངས་ཏེ་"ཞེས་བྱ་བ་ཡིན་ལ། གསུམ་པས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ་ཡང་གླེང་བསླང་བའི་མདོ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་བསྟན། བཞི་པ་སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་ནི་"བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བགྱི་"ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་བསྟན་ཏེ། ལྔ་པ་སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་དེའི་གནས་ནི་"ཡུལ་གང་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་"གང་ཡིན་པའོ།། དེ་ཡང་རབ་འབྱོར་འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་"འདི་སྐམ་དུ་བདག་གིས་"ཞེས་བྱ་ནས་"སྐར་མ་རབ་རིབ་"ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཐ་མའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པའི་བར་གྱིས་

བསྟན་པ་ཡིན་བཅས་གསུངས་སོ།། དེ་དག་ནི་འགྲེལ་པས་བསྡུས་དོན་རྣམ་པ་ལྔས་མདོའི་དོན་འཆད་ཚུལ་སྟིང་བསྡུས་ཞིག་འདིར་བཀོད་པ་ཡིན་ནོ།།

བསྡུས་དོན་གྱི་རྗེས་སུ་འགྲེལ་པས་མདོའི་དོན་གནས་རྣམ་པ་བཅོ་བརྒྱད་ཀྱིས་སྒོ་ནས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་ཡིན་ལ་དེ་ནི། ༡ སེམས་བསྐྱེད་པ་དང་། ༢ ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་འབྱོར་བ་དང་། ༣ གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་དང་། ༤ ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་དང་། ༥ བསྒོམ་པའི་ཁྱད་པར་འདུན་པ་ལ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་པ་དང་། ༦ སངས་རྒྱས་འབྱུང་བ་མཉེས་པར་བྱ་བ་དང་། ༧ ཞིང་རྣམ་པར་དག་པར་སྨོན་པ་དང་། ༨ སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བ་དང་། ༩ ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་བྲལ་བ་དང་། ༡༠ སེམས་ཅན་དང་སྣོད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་རིལ་པོར་འཛིན་པའི་གཞིག་པར་སྦྱོར་བ་དང་། ༡༡ དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་། རིམ་གྲོ་བྱ་བ་དང་། ༡༢ ལུས་དང་སེམས་དུབ་ནས་བརྩོན་འགྲུས་ལས་ལོག་པ་དང་། མི་རྟོམ་པ་དང་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་དག་དང་བྲལ་བ། ༡༣ སྡུག་བསྔལ་ཇི་མི་སྙམ་པ་དང་། ༡༤ བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་བྲལ་བ་དང་། ༡༥ མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་ན་བདག་གོ་སྙམ་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བྲལ་བ་དང་། ༡༦ གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་དང་། ༡༧ མངོན་པར་རྟོགས་པ་དང་། ༡༨ སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་བཅས་ཡིན་ཅིང་། དེ་དག་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ལ་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ལ། དེ་དག་གིས་ས་གསུམ་བསྡུས་པ་ཡིན་ཏེ། གནས་བཅུ་དྲུག་གིས་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་དང་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་གནས་གཅིག་པུས་ནི་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་ས་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བས་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་བསྡུས་པ་ཡིན་ནོ།།

དེ་ལ་དང་པོ་སེམས་བསྐྱེད་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ།། རབ་འབྱོར་འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་འདི་སྙམ་དུ་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ་”ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས།

མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དངོས་པོ་ལ་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ།། ཆོས་གང་ལ་ཡང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་ནོ།། གཟུགས་ལའང་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ" ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་པ་དང་། གསུམ་པ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའང" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་བཅས་བསྟན།

བཞི་པ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་དེ་ཡང་འགྲེལ་པས་བསྟན་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་དང་རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་གཉིས་དང་། རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་དང་། བསོད་ནམས་ཀྱི་རང་བཞིན་གཉིས་བཅས་ནང་གསེས་ཀྱི་དབྱེ་བ་མཛད་ནས་རིམ་པ་བཞིན་དེ་ལ་བསྟན་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་པ་དང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས། མ་འོངས་པའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ་ལ་དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པར་འགྱུར་བ་ན་སེམས་ཅན་གང་ལ་ལ་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག་བཤད་པ་འདི་ལ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་བ་ལྟ་མཆིས་སམ" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཤིང་། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "གཞན་ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏོ།། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བསོད་ནམས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་པ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་ལ་ལ་ཞིག་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་ན" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་བཅས་བསྟན་ཏོ།།

ལྔ་པ་བསྒོམ་པའི་ཁྱད་པར་འདུན་པ་ལ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་འདི་སྙམ་དུ། བདག་གིས་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་བུ་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་སེམས་སམ་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། དྲུག་པ་སངས་རྒྱས་འབྱུང་བ་མཉེས་པར་བྱ་བ་ཉིད་ཀྱི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བདུན་པ་ཞིང་རྣམ་པར་དག་པར་སྨོན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། བདག་གིས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་བསྒྲུབ་པར་བྱའོ་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བརྒྱད་པ་སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། སྐྱེས་བུ་ཞིག་ལུས་འདི་ལྟ་བུར་གྱུར་ཏེ། འདི་ལྟ་སྟེ། རིའི་རྒྱལ་པོ་རི་རབ་ཙམ་དུ་གྱུར་ན་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། དགུ་པ་ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་བྲལ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གངྒཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་གངྒཱའི་ཀླུང་ཡང་དེ་སྙེད་ཁོ་ནར་གྱུར་ན། དེ་དག་གི་བྱེ་མ་གང་ཡིན་པ་དེ་དག་མང་བ་ཡིན་ནམ་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཅུ་པ་སེམས་ཅན་དང་སྣོད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་རིལ་པོར་འཛིན་པའི་གཞིག་པར་སྦྱོར་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ན་སའི་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་དེ་མང་བ་ཡིན་ནམ་"ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཅུ་གཅིག་པ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་རིམ་གྲོ་བྱ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་

ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། སྐྱེས་བུ་ཆེན་པོའི་མཚན་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པོ་དེ་དག་གི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་སུ་ལྟའང་" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

བཅུ་གཉིས་པ་ལུས་དང་སེམས་དུབ་ནས་བརྩོན་འགྲུས་ལས་ལོག་པ་དང་། མི་རྟོམ་པ་དང་ཉེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་དག་དང་བྲལ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། ཡང་རབ་འབྱོར་སྐྱེས་པའམ་བུད་མེད་གང་གིས་ལུས་གངྒའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད་ཡོངས་སུ་བཏང་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཅིང་། དེ་ལ་དུབ་པ་ནི་ལུས་ཀྱི་དུབ་པ་ཡིན་པ་དང་། ཡོངས་སུ་གཏུང་བ་ནི་སེམས་ཀྱི་ཡིན་པ་ཡང་བཤད་དོ།། བཅུ་གསུམ་པ་དེ་དག་ལ་བརྩོན་པ་བཟློག་ནས་མ་བརྟམས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཇི་མི་སྙམ་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་དོ" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཅུ་བཞི་པ་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་བྲལ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དང་། གཞན་དག་ལ་ཡང་རྒྱ་ཆེར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་པ་དེ་དག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཅོ་ལྔ་པ་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་ན་བདག་གོ་སྙམ་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བྲལ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཚེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བགྱི" ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་།

བཅུ་དྲུག་པ་གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ" ཞེས་སོགས་གསུངས་པ་དང་། བཅུ་

བདུན་པ་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “རབ་འབྱོར། འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན། མི་ཞིག་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོར་གྱུར་པ་བཞིན་ནོ” ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

བཅོ་བརྒྱད་པ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་དེ་ཡང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བདུན་གྱིས་ཡོངས་སུ་བསྡུས་པ་ཡིན་པ་དང་། ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བདུན་ནི། ༡ ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༢ གཟིགས་པ་ རྣ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༣ མཁྱེན་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༤ བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་མངའ་བརྙེས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༥ སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༦ གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ༧ ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཡིན་པ་འགྲེལ་པ་འདིས་བསྟན་ལ། སློབ་དཔོན་དབྱིག་གཉེན་གྱིས་དོན་བདུན་གྱི་འགྲེལ་པའི་ནང་གཟིགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་དང་མཁྱེན་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་གཉིས་གཅིག་ཏུ་བཞག་སྟེ། ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དྲུག་བཞེད་དོ།།

དང་པོ་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “རབ་འབྱོར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་འདི་སྐད་དུ་བདག་གིས་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་བསྒྲུབ་བོ” ཞེས་སོགས་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་གཟིགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤའི་སྤྱན་མངའམ” ཞེས་སོགས་གསུངས་པ་དང་། གསུམ་པ་མཁྱེན་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གངྒཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་ཇི་སྙེད་པ་གངྒཱའི་ཀླུང་ཡང་དེ་སྙེད་དུ་གྱུར་ལ” ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཞི་པ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་མངའ་བརྙེས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། “རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་ཡོངས་སུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པ་བྱིན་ན” ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

ལྔ་པ་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ལ་གཉིས་སུ་ཕྱེ་ནས། དང་པོ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའང" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་མཚན་གྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའང" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་བཅས་བསྟན་ཅིང་། དྲུག་པ་གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འདི་སྙམ་དུ་ངས་ཆོས་བསྟན་ཏོ" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

བདུན་པ་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལ་ཡང་། ༡ དྲན་པ་ཉེ་བར་བཞག་པ་དང་། ༢ མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པ་དང་། ༣ ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ་དང་། ༤ གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ་དང་། ༥ ཆོས་སྐུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་། ༦ མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་དང་འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་པ་དང་། ༧ བཞུགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་བཅས་རྣམ་པ་བདུན་གྱི་དབྱེ་བ་མཛད་ནས།

དང་པོ་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བཀའ་སྩལ་བ། རབ་འབྱོར། དེ་དག་ནི། སེམས་ཅན་ཡང་མ་ཡིན། སེམས་ཅན་མེད་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གང་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་དམ" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གསུམ་པ་ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་ལ་ལ་ཞིག་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ན་རིའི་རྒྱལ་པོ་རི་རབ་གང་དག

ཇི་སྙེད་པ་ཡོད་པ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། བཞི་པ་གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འདི་སྙམ་དུ། ངས་སེམས་ཅན་རྣམས་དགྲོལ་ལོ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། ལྔ་པ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟའམ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། དྲུག་པ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ལ་མི་གནས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་འདི་སྙམ་དུ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་ལ་ལ་ཞིག་རྣམ་པར་བཤིག་གམ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་གངྒཱའི་བྱེ་མ་སྙེད་དག་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་སྦྱིན་པར་བྱེད་པ་བས་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ།།

བདུན་པ་བཞུགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་དེ་ལའང་། ༡ སྤྱོད་ལམ་གྱིས་བཞུགས་པ་དང་། ༢ སྣོད་དང་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་མངའ་བས་བཞུགས་པ་དང་། ༣ ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པ་བཅས་རྣམ་པ་གསུམ་དུ་ཕྱེ་ནས། དང་པོ་སྤྱོད་ལམ་གྱི་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "རབ་འབྱོར་གང་ལ་ལ་ཞིག་འདི་སྐད་དུ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བཞུད་དམ། བྱོན་ཏམ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་སྣོད་དང་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་མངའ་བས་བཞུགས་པ་ལས། སྣོད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་མངའ་བས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། རིགས་ཀྱི་བུའམ། རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ནས་སའི་རྡུལ་རྣམས་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་མངའ་བས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་

ནས། མདོ་ལས། "དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་"ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཅིང་།

གསུམ་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པ་དེ་ལའང་། ༡ འཆད་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པ་དང་། ༢ འཁོར་བའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པ་གཉིས་སུ་ཕྱེ་ནས།དང་པོ་འཆད་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "ཡང་རབ་འབྱོར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་གང་གིས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དཔག་ཏུ་མེད་ཅིང་གྲངས་མེད་པ་དག་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ"ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་དང་། གཉིས་པ་འཁོར་བའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། མདོ་ལས། "སྐར་མ་རབ་རིབ་མར་མེ་དང་།" ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པར་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་སློབ་དཔོན་ཀམལཤཱིལའི་འགྲེལ་པ་འདི་ཉིད་ཀྱིས་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་མདོའི་དོན་ཇི་ལྟར་བཀྲལ་བའི་ཚུལ་ས་བཅད་ཀྱི་རིམ་པ་དང་སྦྱར་ཏེ་གཟིགས་བདེའི་ཆེད་འདིར་རགས་པ་ཙམ་ཞིག་འགོད་ཁུལ་བྱས་པ་ལས་ཞིབ་ཅིང་ཕྲ་བ་ནི་བདག་ལྟ་བུའི་ འོས་མ་ཡིན་པས་དཔྱོད་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས་གཞུང་དེ་ཉིད་ལ་གཟིགས་ཐོགས་གནང་རྒྱུའི་རེ་བསྐུལ་བཅེ་གཅིག་ཏུ་ལགས་པ་བཅས་བོད་རྒྱལ་ལོ་ ༢༡༢༡ བོད་ཟླ་ ༦ ཚེས་ ༨ ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༨ ཟླ་ ༧ ཚེས་ ༡༢ ཉིན་ལྷ་ཞ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆོས་མཐོའི་སློབ་གཉེར་ཁང་ནས་གུས་པདྨ་བསྟན་འཛིན་གྱིས་སྦྱར་བ་དགེའོ།།

भूमिका

१९८० के दशक में **"सघन संस्कृत प्रशिक्षण"** के प्रारम्भ होते ही केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान के इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ गया । इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य प्राचीन भारतीय बौद्ध वाङ्मय के विलुप्त मूल संस्कृत ग्रन्थों का भोट भाषा में अनूदित ग्रन्थों से संस्कृत में पुनरुद्धार का कार्य था, जिसके लिए कुछ चुने हुए सीमित छात्रों को प्रशिक्षित करना था । बौद्ध दर्शन का छात्र होने के कारण मेरी इस कार्य में रुचि जागरित हुई । आचार्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के साथ ही १९८२ के सितम्बर माह में इस प्रशिक्षण में मेरा भी चयन हो गया । प्रशिक्षण के दौरान ही गौण कार्य के रूप में भोटाचार्य कृत एक लघु ग्रन्थ **"महाशास्त्र-अभिसमयालंकारस्य कायव्यवस्था-टीका"** का संस्कृत एवं हिन्दी में अनुवाद तथा मुख्य कार्य के रूप में आचार्य कमलशील की **"आर्यप्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिकाटीका"** का संस्कृत में पुनरुद्धार कार्य सौंपा गया । भोटाचार्य कृत प्रथम गौण ग्रन्थ संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद के साथ १९८८ ई० में प्रकाशित हो चुका है, जिसका विमोचन परम पावन श्री चौदहवें दलाई लामा के कर कमलों से विधिवत् सम्पन्न हुआ ।

पुनरुद्धार कार्य किसी अकेले व्यक्ति के लिए वास्तव में कठिन कार्य है । उस पर एक विशाल ग्रन्थ का पुनरुद्धार करना तो उससे भी कठिन है, खास कर जब आप उस ग्रन्थ से पूर्व परिचित न हों । यही समस्या मेरे सामने भी थी कि मैं मुख्य योजना के अन्तर्गत वज्रच्छेदिकाटीका नामक ग्रन्थ से अनभिज्ञ था । अतएव सर्वप्रथम मुझे ग्रन्थ के अध्ययन की आवश्यकता महसूस हुई । भोटदेश में वज्रच्छेदिका टीका की अध्यापन-परम्परा शायद नहीं रही । जिसका परिणाम यह हुआ कि मात्र एक भोटाचार्य को छोड़कर किसी ने भी वज्रच्छेदिका सूत्र पर टीका नहीं लिखा है, यह टीका भी सम्प्रति यावत् अप्राप्य है । इस कारण से भी मुझे

कोई परम्परागत आचार्य प्राप्त न हो सका । अनन्तर स्वयं ही ग्रन्थ का अध्ययन प्रारम्भ किया । प्रो0 सेम्पाजी, आचार्य ङ्वङ् समतेन एवं तिब्बती इतिहास के प्राध्यापक आचार्य छुलठिम फुनछोग के निरन्तर सहयोग से मैंने ग्रन्थ का अध्ययन पुनः पुनः किया । आप तीनों ने ही कठिन स्थलों पर न केवल मेरी सहायता की, बल्कि पूरे समय तक मेरा भरपूर मार्ग–प्रदर्शन किया । ग्रन्थ को हाथ से लिखकर उतारना, ग्रन्थ में आए उद्धरणों को खोजना, शब्द सूची बनाना, संस्कृत शब्दों का चयन करना आदि कार्यों को तीन वर्ष के प्रशिक्षण के दौरान ही पूर्ण कर लिया था ।

अनन्तर प्रो0 सेम्पा दोर्जे, संकायाध्यक्ष– हेतु एवं अध्यात्म–विद्या संकाय एवं डा0 जानकी प्रसाद द्विवेदी, रीडर, संस्कृत विभाग के साथ ग्रन्थ के पुनरुद्धार का कार्य प्रारम्भ किया, किन्तु आप दोनों के पास समय के अभाव की वजह से ग्रन्थ को विशेष गति न दे सका । फिर भी किसी प्रकार १९९0 तक इस ग्रन्थ का मोटे तौर पर पुनरुद्धार हो गया था, जो कुछ हद तक माननीय था, किन्तु सर्वथा प्रामाणिक नहीं था । स्वयं मैं अपने कार्य से सन्तुष्ट नहीं हो सका । मैं इसका और भी परिष्कार करना चाहता था । इसी बीच बौद्ध दर्शन के विभागाध्यक्ष प्रो. रामशंकर त्रिपाठी जी संस्कृत विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होकर इस संस्थान में डा. अम्बेडकर शोध–प्रोफेसर के पद पर नियुक्त हुए । आपने इस कार्य का निरीक्षण करना स्वीकार किया और आज प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन उन्हीं के आशीर्वादों का परिणाम है । इस दौरान मैंने दो लघु ग्रन्थों पर भी कार्य किया, जो प्रकाशित हो चुके हैं ।

वज्रच्छेदिकासूत्र का मूल संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त है, जो कई स्थलों से प्रकाशित है । जैसे– वैद्य संस्करण, मैक्समूलर संस्करण, टुची संस्करण, पार्टीजर संस्करण, गिलगिट हस्तलेख एवं प्रोफेसर लालमणि जोशी संस्करण । प्रोफेसर जोशी का संस्करण सबसे नवीनतम है तथा उन्होंने सभी संस्करणों का पाठ–भेद कर यथोचित सम्पादन किया है । इसलिए मैंने जोशी संस्करण को ही प्रामाणिक मानकर वज्रच्छेदिका टीका का पुनरुद्धार करते समय इसे ही आधार ग्रन्थ माना है । आचार्य कमलशील ने सूत्र की

टीका बड़े ही वैज्ञानिक तरीके से की है, जिसके लिए उन्होंने सूत्र के वचनों को ले-लेकर उसकी व्याख्या की है । पाठकों को सूत्र खोजने के लिए अथवा उस प्रसङ्ग को सूत्र में देखने के लिए अलग से **वज्रच्छेदिका-सूत्र** ग्रन्थ का अवलोकन करने में असुविधा न हो, इसलिए मैंने **वज्रच्छेदिका-सूत्र** के प्रत्येक अध्याय के वचनों को उसकी टीका के प्रारम्भ में ही काले अक्षरों में दे दिया है । साथ ही उद्धृत सूत्र वचनों को भी काले अक्षरों में दिया है ।

त्रिकालदर्शी महाकारुणिक शास्ता ने तीन प्रकार के दुःखों से पीड़ित लोगों के लिए गम्भीर एवं विस्तृत धर्मपर्यायों की जितनी देशनाएं की हैं, उनमें से सबसे श्रेष्ठ तो यही पारमितासूत्ररत्न है, क्योंकि इसमें भव का मूलतः उन्मूलन करने वाला वास्तविक उपाय अर्थात् वस्तु, मार्ग एवं फल प्रधान पारमिता की व्यवस्था वाले तीन यानों से अविपरीत अभिसमय (ज्ञान) को स्पष्ट रूप से दिखाया गया है ।

प्रायः सभी पारमितासूत्रों की देशना द्वितीय धर्मचक्र-प्रवर्तन काल में राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर की गई है, परन्तु वज्रच्छेदिकासूत्र की देशना भगवान् ने श्रावस्ती में की । इसमें आयुष्मान् सुभूति प्रश्नकर्त्ता हैं तथा भगवान् उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं । ग्रन्थ का केन्द्रीय विचार प्रज्ञापारमिता का सम्यक् स्वरूप प्रस्तुत करता है, जो सभी प्रज्ञापारमिता सूत्रों का सार भी है । सत्रह जिनजननी प्रज्ञापारमिता ग्रन्थों में यह ग्रन्थ परिगणित किया जाता है । कलयुग के विनेय जनों के लिए सम्पूर्ण प्रज्ञापारमिता सूत्रों का धारण, वाचन एवं प्रकाशन अत्यधिक दुष्कर कार्य है । यह **त्रिशतिकाप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिका** नाम का सूत्र संक्षिप्त एवं स्पष्ट अर्थो वाला है तथा धारण, वाचन एवं प्रकाशन आदि में सरलता होने के कारण अनेक आश्चर्यजनक लाभों से युक्त है । इस कारण न केवल आर्यावर्त में, अपितु चीन, तिब्बत, जापान, मंगोलिया आदि महायान प्रधान देशों में भी सदा से यह सूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध रहा है । जैसे **अष्टसाहस्रिका**

प्रज्ञापारमिता सूत्र में कहा गया है[1] कि– बुद्ध शासन की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी तथा यह धर्म हिमालय के दूसरी तरफ भी फैलेगा । इस भविष्यवाणी के फलस्वरूप बौद्धधर्म तिब्बत, चीन, मंगोलिया एवं जापान आदि देशों में व्यापक रूप से विकसित हुआ । यह प्रज्ञापारमितासूत्र इतना लोकप्रिय हो गया कि वृद्ध, युवा, भिक्षु, गृहस्थ एवं विद्वान सभी के द्वारा इसका वाचन, धारण तथा स्वाध्याय किया जाता है तथा हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में प्रकाशन किया जाता था । मृत व्यक्ति के कुशलमूल के लिए उसके अनुगामी लोग अपनी क्षमता के अनुसार सोने, चाँदी की स्याही से इस सूत्र को लिखा करते थे तथा उन्हें मठों एवं स्तूपों में रखा करते थे । इस प्रकार की परम्परा या रिवाज अधिकांश महायानी देशों में प्रचलित रहा, जिससे सूत्र के प्रति साधारण जनता की भी अत्यन्त श्रद्धा, अभिलाषा और प्रसन्नता व्यापक रूप में प्रचलित रही । फलस्वरूप, कुछ दशक पूर्व तक स्वतंत्र तिब्बत में इसके धारण, वाचन, स्वाध्याय एवं प्रकाशित करने की परम्परा अक्षुण्ण रूप में विद्यमान थी । वर्तमान में यह परम्परा बहुत हद तक क्षीण हो चुकी है । आज भी कुशलमूल की प्राप्ति के लिए इसका स्वाध्याय, वाचन एवं प्रकाशन कार्य तो यदा कदा होता ही रहता है, परन्तु परम्परागत रूप से इसका अध्ययन शायद ही होता हो । यही कारण रहा कि मुझ जैसे अल्पबुद्धि वाले व्यक्ति के लिए इसके टीका ग्रन्थ पर कार्य करना लोहे के चने चबाने की भाँति हो गया ।

इस ग्रन्थ में बत्तीस छोटे–छोटे अध्याय हैं । भारत में महायान सूत्र एवं पारमिता सूत्रों के उद्भव क्रम में प्राचीन एवं प्रसिद्ध ग्रन्थों में इसकी परिगणना होती है, किन्तु ग्रन्थ के लिपिबद्धीकरण की तिथि का निर्धारण करना कुछ कठिन है । इसमे हीनयान से महायान की तुलनात्मक श्रेष्ठताओं का अभाव है । श्रावकों एवं प्रत्येकबुद्धो की इसमें कही भी चर्चा नहीं की गई है । ऐसा प्रतीत होता है कि यह सूत्र दूसरी अथवा

---

1 इमे खलु पुनः शारिपुत्र षट्पारमिताप्रतिसंयुक्ताः सूत्रान्तास्तथागतस्यात्ययेन ...ते **वैस्तारिकीं करिष्यन्ति । –अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, पृ. ११२ ।**

तीसरी शताब्दी में लिपिबद्ध हुआ है । इसका प्रथम चीनी अनुवाद ४00 ई. का है, जो कुमारजीव ने किया था । ग्रन्थ की प्रतियां गिलगिट एवं मध्य एशिया से प्राप्त हुई हैं । आधुनिक विद्वान इन पाण्डुलिपियों को पाँचवीं शताब्दी का मानते हैं तथा पूर्वी तुर्किस्तान से प्राप्त वज्रच्छेदिका की संस्कृत पाण्डुलिपि को पांचवीं एवं छठीं शताब्दी का मानते हैं । **वज्रच्छेदिकासूत्र** के छह अनुवाद चीनी भाषा में उपलब्ध हैं ।[1]

१. कुमारजीव द्वारा ४00 ई0 में
२. बोधिरुचि द्वारा ५२0 ई0 में
३. परमार्थ द्वारा ५६२ ई0 में
४. धर्मगुप्त द्वारा ६00 ई0 में
५. श्वान चांग द्वारा ६६0 ई0 में
६. ईत्सिंग द्वारा ७0३ ई0 में ।

इतना ही नहीं, वरन् तिब्बत, मध्य एशिया एवं मंगोलिया में भी यह ग्रन्थ विशेष लेकप्रिय है । प्रोफेसर लालमणि जोशी के अनुसार इस ग्रन्थ के तीन तिब्बती अनुवाद प्राप्त होते हैं,[2] परन्तु मुझे ये विभिन्न अनुवाद प्राप्त नहीं हुए । इसके तीन–चार भोट संस्करण अवश्य ही उपलब्ध होते हैं । हो सकता है प्रो. जोशी को तिब्बती स्रोत प्रदान करने वाले से कोई भूल हो गई हो और प्रो. जोशी जी ने उसे अनुवाद समझने की भूल की हो । तिब्बती में मात्र एक अनुवाद प्राप्त है, जो भारतीय आचार्य शीलेन्द्र बोधि एवं भोट विद्वान् येसे दे द्वारा अनूदित है तथा क–ग्युर संग्रह में उपलब्ध है ।[3] ग्रन्थ का एक अनुवाद खोतानी भाषा में, चार मंगोलिया भाषा में और दो मान्चू भाषा में उपलब्ध होते हैं । आधुनिक काल में भी,

---

1 द्रष्टव्य– वज्रच्छेदिकासूत्र की भूमिका (प्रो. लालमणि जोशी) ।

2 देखिए– वज्रच्छेदिकासूत्र की भूमिका (हिन्दी अनुवाद सहित), प्रो. लालमणि जोशी सम्पादित, तिब्बती संस्थान से प्रकाशित, १९७१ ।

3 Toh: 15. Sde bka (Ser-phyin 'Ka' p. 104-120)

सात विभिन्न अंग्रेजी अनुवाद, दो फ्रेन्च में, दो जर्मन में, एक से अधिक जापानी में एवं एक हिन्दी अनुवाद भी स्वयं प्रो. जोशी ने किया है ।[1]

अंग्रेजी अनुवाद में डा. मैक्समूलर, ए. एफ. प्राइस तथा डा. कान्ज के अनुवाद सुलभ एवं उल्लेख्य हैं । आचार्य कमलशील की टीका में इस ग्रन्थ का नाम इस प्रकार है **"आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिका नाम महायानसूत्र"** ।[2] पूर्व भोटदेश में विख्यात सत्रह जिनजननी प्रज्ञापारमिता सूत्रों में इस सूत्र का नाम **"त्रिशतिका–प्रज्ञापारमिता"** भी प्राप्त होता है । असंग के उपनिबन्धन में इस सूत्र का नाम **"आर्य भगवती प्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिका"** दिया गया है ।

इस सूत्र की कई टीकाओं में से एक मात्र संस्कृत में उपलब्ध टीका आचार्य असंग की कृति है, जिसमें भी कई श्लोक अधूरे प्राप्त हैं । इस टीका का नाम **"त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिता–कारिकासप्ततिः"** है । मैंने इस ग्रन्थ के भोट संस्करण का विविध संस्करणों के साथ पाठ–भेद द्वारा सम्पादन किया है तथा प्रो. रामशंकर त्रिपाठी के सहयोग से भोट संस्करण के आधार पर संस्कृत मूल के अप्राप्त अंश का पुनरुद्धार किया और कुछ भ्रान्त अंशों को भोट संस्करण से शुद्ध किया है । शीघ्र ही प्रो. जोशी द्वारा सम्पादित वज्रच्छेदिका सूत्र के द्वितीय संस्करण में यह ग्रन्थ पूर्णरूपेण पाठकों को प्राप्त हो सकेगा । इसके अतिरिक्त अन्य सभी टीकाएं केवल चीनी अथवा तिब्बती अनुवादों में ही सुरक्षित हैं । भोट अनुवाद में आचार्य असंग, आचार्य वसुबन्धु एवं आचार्य कमलशील की टीकाएं उपलब्ध हैं, जो तन्–ग्युर संग्रह में देखी जा सकती है ।

तिब्बती में अनूदित **"वज्रच्छेदिकायाः प्रज्ञापारमितायाः व्याख्यानोपनिबन्धन–कारिका"**[3] के रचियता का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है, किन्तु इसे रोमन लिपि में अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रो. जी. टुची ने

---

1 देखिए– वज्रच्छेदिकासूत्र की भूमिका, (प्रो. लालमणि जोशी) ।

2 Toh: 3817 Sde bstan (Ser-phyin 'Ma')

3 Peking Ed. 5070 Bstan-hgyur (Sna-tshogs 'Nyo') ; Gser-bris Vol. 96, 'Nyo'

१९५६ ई. में रोम से प्रकाशित किया है । उन्होंने इस ग्रन्थ का नाम **"त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिताकारिकासप्ततिः"** उल्लेख किया है । डा. टुची ने ग्रन्थ की पाण्डुलिपि तिब्बत के ङोर विहार से प्राप्त की थी । उन्होने ही इसका रोमन लिपि में सम्पादन एवं अंग्रेजी भाषा में अनुवाद करके १९५६ ई. में रोम से प्रकाशित किया ।[1] उन्होंने तिब्बती में अनूदित **"व्याख्यानोपनिबन्धन-कारिका"** का उल्लेख नहीं किया है । डा. टुची को प्राप्त त्रुटित संस्कृत ग्रन्थ के अन्त में असङ्ग की कृति होने की बात स्पष्ट रूप में है । मूल ग्रन्थ के श्लोक तिब्बती में उपलब्ध उपनिबन्धन से भिन्न नहीं हैं । इस **"उपनिबन्धन-कारिका"** की एक टीका आचार्य वसुबन्धु द्वारा रचित तिब्बती में उपलब्ध है, उसमें सर्वप्रथम ग्रन्थ का नाम **"वज्रच्छेदिका सप्तार्थ-टीका"**[2] इस प्रकार प्राप्त होता है । शायद कुछ भारतीय सस्करणों मे सप्तति श्लोक की जगह "सप्तार्था" पाठ भी प्राप्त होता है । टीका में यह बात स्पष्ट नहीं है कि **"उपनिबन्धन-कारिका"** असंग की कृति है, किन्तु क्योंकि वसुबन्धु ने उस पर टीका की है, इसलिए यह सम्भावना की जा सकती है कि यह असंग की कृति रही हो ।

आचार्य कमलशील कृत वज्रच्छेदिका की टीका **"आर्यप्रज्ञापारमिता वज्रच्छेदिकाटीका"**[3] ग्रन्थ भोट भाषा में अनूदित है तथा तन्-ग्युर संग्रह मे विद्यमान है । इन तीन टीकाओं के अतिरिक्त किसी भारतीय आचार्य की वज्रच्छेदिका की टीका का अनुवाद तिब्बती भाषा में उपलब्ध नहीं है । वज्रच्छेदिका की एक मात्र भोट आचार्य कृत टीका **आचार्य चोने डाकपा शेडुब** की है, जो कुछ समय पूर्व तक सूचना मात्र थी तथा ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सका था । ऐसी सूचना मिली है कि उनकी समस्त रचनाएं भारत में स्थित सेरा मठ में पहुँच चुकी हैं तथा शीघ्र ही प्रकाशित

---

1 Minor Buddhist Texts, Vol. 1, Rome 1956
2 Toh: 3816 Sde bstan (Ser-phyin 'Ma')
3 Toh: 3817 Sde bstan (Ser-phyin 'Ma')

होने वाली है ।[1] वसुबन्धु रचित उपनिबन्धन टीका का चीनी भाषा में भी अनुवाद हुआ है । आचार्य वज्रश्री तथा आचार्य गुणाद कृत टीकाओं का अनुवाद चीनी भाषा में विद्यमान है, किन्तु संस्कृत एवं तिब्बती भाषाओं में प्राप्त नहीं होता है । चीनी विद्वानों की करीब नौ टीकाएं एवं टिप्पणियां इस ग्रन्थ के ऊपर प्राप्त होती हैं जो चीनी में उपलब्ध हैं ।[2] प्रो. टुची ने भी कुमारजीव, बोधिरुचि, धर्मगुप्त की टिप्पणियों का उल्लेख माइनर बुद्धिस्ट टेक्टस् में किया है ।[3]

वज्रच्छेदिका-सूत्र की लोकप्रियता और प्रामाणिकता इस बात से भी सिद्ध होती है कि अनेक प्रामाणिक आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में इसका उद्धरण प्रस्तुत किया है । आचार्य शान्तिदेव ने अपने **शिक्षासमुच्चय** ग्रन्थ में वज्रच्छेदिकासूत्र के वचनों का उद्धरण इस प्रकार किया है[4]- **यथा वज्रच्छेदिकायाम्- "ये ते सुभूते, कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्ग्रहीष्यन्ति यावत्पर्यवाप्स्यन्ति, ते परिभूता भविष्यन्ति सुपरिभूताः । तत्कस्य हेतोः ? यानि च तेषां सत्त्वानां पौर्वजन्मिकानि कर्माणि कृतान्यपायसंवर्तनीयानि, तानि तया परिभूता दृष्ट एव धर्मे क्षपयिष्यन्ति बुद्धबोधिं च प्राप्स्यन्तीति ।"**

अन्यत्र- **'भद्रचर्याविधि'** के १६वें परिच्छेद में भी वज्रच्छेदिकासूत्र का उद्धरण प्राप्त होता है । जैसे- **"यो बोधिसत्त्वोऽप्रतिष्ठितो दानं ददाति, तस्य पुण्यस्कन्धस्य न सुकरं प्रमाणमुद्ग्रहीतुमिति ।"** **हरिभद्र** ने भी अपने ग्रन्थ **अभिसमयालोकव्याख्या** में इस सूत्र के वचनों को उद्धृत किया है ।[5] **प्रसन्नपदा** में आचार्य चन्द्रकीर्ति ने भी

---

1 Collection of Acharya Dakpa Shedup, Vol. 'A' ("भोट-शास्त्रों की सूची", तिब्बती में)

2 The Prjnaparamita Literature, -Dr. Conze

3 Minor Buddhist Texts, Rome 1956.

4 देखिए- शिक्षासमुच्चय, वैद्य संस्करण, पृ. १५, १४६ ।

5 आलेकटीका, पृ. ३६६, वैद्य संस्करण, दरभंगा ॥

वज्रच्छेदिका की दो गाथाएं उद्धृत की हैं ।[1] **प्रज्ञाकरमति** ने भी **बोधिचर्यावतार** के नवें परिच्छेद में इस सूत्र के वचन को उद्धृत किया है ।[2]

सामान्यतः जिनों के सभी प्रवचनों तथा विशेषकर प्रज्ञापारमिता सूत्रों को लिखना, धारण करना, स्वाध्याय करना, दूसरों के लिए प्रकाशित करना आदि से अचिन्त्य पुण्य सिद्ध होता है– ऐसा सूत्रों एवं शास्त्रों में अनेकों बार कहा गया है । किन्तु कलियुग में इस वज्रच्छेदिका सूत्र के लेखन, धारण एवं प्रकाशन से अन्य सूत्रों से प्राप्त पुण्यों से भी अधिक पुण्य का अर्जन होता है– ऐसा स्वयं इसी ग्रन्थ से ज्ञात होता है । जैसे सूत्र में स्वयं कहा गया है– [3]

"एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– अस्ति भगवन्, केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति ? भगवान् आह– मा सुभूते, त्वमेवं वोचः । अस्ति केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति । अपि तु खलु पुनः सुभूते, भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने गुणवन्तः शीलवन्तः प्रज्ञावन्तश्च भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति ।

न खलु पुनस्ते सुभूते, बोधिसत्त्वा महासत्त्वा एकबुद्धपर्युपासिता भविष्यन्ति, नैकबुद्धावरोपितकुशलमूला

---

1 मूलमध्यमककारिकावृत्ति, (प्रसन्नपदाटीका) पृ. १९५ ।

2 बोधिचर्यावतारपञ्जिका, पृ. २०४–२१०, २०० ।

3 देखिए– वज्रच्छेदिकासूत्र, ६वाँ, १५वाँ एवं १६वाँ अध्याय ।

भविष्यन्ति । अपि तु खलु पुनः सुभूते, अनेकबुद्धशतसहस्र-पर्युपासिता अनेकबुद्धशतसहस्रावरोपितकुशलमूलास्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु एकचित्तप्रसादमपि प्रतिलप्स्यन्ते । ज्ञातास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते सुभूते, तथागतेन । सर्वे ते सुभूते, अप्रमेयमसंख्येयं पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति, प्रतिग्रहीष्यन्ति । (६)

भगवानाह- यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा दिने दिने गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, एवं परित्यजन् गङ्गानदीवालुकासमान् कल्पांस्तानात्मभावान् परित्यजेत्, यश्च इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् । (१५)

यच्च मया सुभूते, ते बुद्धा भगवन्त आरागिताः, आराग्या न विरागिताः, यच्च पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, अस्य खलु पुनः सुभूते, पुण्यस्कन्धस्यान्तिकादसौ पौर्वकः पुण्यस्कन्धः शततमीमपि कलां नोपैति, सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि कोटितमीमपि कोटिशत-तमीमपि कोटिशतसहस्रतमीमपि कोटिनियुतशतसहस्रतमीमपि । संख्यामपि कलामपि गणनामपि उपमामपि उपनिषदमपि यावदौपम्यमपि न क्षमते ।"(१६)

भोट देश में ऐसी मान्यता है कि वज्रच्छेदिका सूत्र का पाठ, अध्ययन, लेखन एवं प्रकाशन करने से पाप नष्ट होते हैं, मृत्यूपरान्त सुगति प्राप्त होती है और बृहत् पुण्य का संचय होता है । इसलिए तिब्बत में इसका प्रचलन सूत्र-पाठ, स्वर्णाक्षरों में लेखन एवं प्रकाशन आदि के रूप में आज भी विद्यमान है ।

वज्रच्छेदिका :

वज्र की तरह अभेद्य तथा सूक्ष्म क्लेश एवं ज्ञेय आवरणों का छेदन करने के कारण यह वज्रच्छेदिका है अथवा क्लेश एवं ज्ञेय आवरणों को काटने में वज्र की भाँति तीक्ष्ण है । यह शून्यतारूपी वज्र, प्रज्ञारूपी खड्ग अथवा शस्त्र है, जो क्लेश एवं अन्धकार का छेदन करता है । प्रज्ञापारमिता साहित्य का मुख्य विषय शून्यता का प्रतिपादन करना है । कुछ विद्वान् छेदन करने की सार्थकता का स्पष्टीकरण उन मूर्तियों से करते हैं, जिनमें प्रज्ञापारमिता तथा मंजुश्री को खड्ग सहित दिखाया गया है । ग्रन्थ का नाम उसकी विषय वस्तु के अनुकूल है, क्योंकि प्रज्ञापारमिता सूत्र का अर्थ है– ऐसा सूत्र अथवा बुद्ध वचन, जो क्लेशावरणों को वज्र के समान खड्ग से काट देता है । पारगामिनी, पारंगता, निर्वाण नगरी तक ले जाने वाली प्रज्ञा को प्रज्ञापारमिता कहते है । यह छह पारमिताओं में छठी पारमिता है । यह ज्ञान की पराकाष्ठा, बोधिदात्री, अत्यन्तनिगूढ़, सूक्ष्म एवं अतर्काविचर है । इसे शून्यता, धर्मता, धर्मधातु, तथता, भूतकोटि, धर्मकाय, परमार्थ आदि की साक्षात्कारिणी या प्रापिका के रूप में जाना जाता है ।[1]

प्रज्ञापारमिता की व्याख्या वज्र के समान दृढ आकार के रूप में की जाती है । जिस प्रकार वज्र के दोनों किनारे मोटे एवं मध्य भाग पतला होता है । उसी प्रकार प्रज्ञापारमिता के आदि एवं अन्त में क्रमशः अधिमुक्तिचर्याभूमि तथा ताथागती बुद्धभूमि का विस्तार और मध्यभाग में शुद्धाध्याशयिक भूमि का संक्षिप्त रूप है । ऐसा आचार्य वसुवन्धु तथा आचार्य कमलशील दोनों ही मानते हैं । इस प्रकार वज्र की उपमा का प्रहेय तथा पारमिता से योग कर दो प्रकार की व्याख्या दोनों ही भारतीय आचार्यों की रचनाओं में समान है । इसलिए आधुनिक विद्वानों द्वारा

1 परमः उत्तमः अर्थः परमार्थः, अकृत्रिमं वस्तुरूपम्, यदधिगमात् सर्वावृत्तिवासनानुसंधिक्लेशप्रहाणं भवति । सर्वधर्माणां निःस्वभावता, शून्यता, तथता, भूतकोटिः, धर्मधातुरित्यादिपर्यायाः । –बोधिचर्यावतारपञ्जिका, पृ. १७१ ; यः पुनः परमार्थः, सोऽनभिलाप्यः, अनाज्ञेयः, अपरिज्ञेयः, अविज्ञेयः, अदेशितः, अप्रकाशितः, यावदक्रियः, अकरणः, यावन्न लाभो नालाभो न सुखं न दुःखं न यशो नायशो न रूपं नारूपमित्यादि । –बोधिचर्यावतारपञ्जिका, पृ. १७७ ।

तरह-तरह की व्याख्याएं करना इस बात को स्पष्ट करती है कि उन्होंने तिब्बती अनुवाद में सुरक्षित इन दोनों टीका ग्रन्थों का अवलोकन नहीं किया है । इस ग्रन्थ का परिमाण तीन सौ श्लोक होने के कारण इससे **"त्रिंशतिका-प्रज्ञापारमिता"** भी कहा जाता है ।

प्रज्ञापारमिता :

प्रज्ञापारमिता साहित्य महायान बौद्ध साहित्य का महत्त्वपूर्ण भाग है, इसलिए इसके बारे में कुछ संकेत करना अनावश्यक प्रतीत नहीं होता है । प्रज्ञा का तिब्बती शब्द **"शेरब"** है । जिसका अर्थ ज्ञान है । पांच इन्द्रियों तथा पांच बलों में प्रज्ञा इन्द्रिय व प्रज्ञाबल भी एक हैं । यह छह पारमिता अथवा दस पारमिताओं में एक है ।

सभी ज्ञानों में प्रकृष्ट होने से प्रज्ञा है, परमार्थ पर आलम्बित होने और अन्य सभी प्रज्ञाओं में परम होने के कारण पारमिता कही गई है, क्योंकि यह अप्रतिष्ठित निर्वाण प्राप्त है अथवा प्राप्त कराने वाली है । प्रज्ञापारमिता ग्रन्थों में प्रज्ञापारमिता का लक्षण इस प्रकार किया गया है- "सभी धर्मों का निष्प्रपञ्च साक्षात् अधिगत ज्ञान जो अप्रतिष्ठित निर्वाण में पहुँच गया या उसमें पहुँचाने वाला हो, वह प्रज्ञापारमिता है ।" इसका लक्ष्य महायानीय तीन आर्य मार्गों द्वारा सभी धर्मों की निःस्वभावता का ज्ञान है ।

प्रज्ञा मुख्यतया तीन प्रकार की होती है । श्रुतमयी प्रज्ञा, चिन्तामयी प्रज्ञा और भावनामयी प्रज्ञा ।[1] अन्तिम भावनामयी प्रज्ञा ध्यान एवं समाधि पर आधारित है । इसके बिना भी प्रथम दो प्रज्ञाएं प्राप्त की जा सकती हैं । प्रथम प्रकार की प्रज्ञा से हम पण्डित अथवा ज्ञानी हो सकते हैं, दूसरी प्रज्ञा से तर्क बुद्धि एवं चिन्तन द्वारा ज्ञानवर्धन करते हैं, परन्तु ये दोनों प्रज्ञाएं परमार्थ सत्य के निकट अर्थात् परम तत्त्व तक नहीं ले जाती हैं ।

---

1 देखिए- विशुद्धिमग्ग, पृ. ५७ ; भावनाक्रम, १, पृ. १७६, तिब्बती संस्थान से प्रकाशित ; तथा
वृत्तस्थः श्रुतचिन्तायान्भावनायां प्रयुज्यते ।
नामोभयार्थविषया श्रुतमय्यादिका धियः ॥ - अभिधर्मकोश, ६/५

भावनामयी प्रज्ञा एक मात्र ऐसी प्रज्ञा है, जिसकी बदौलत हम सत्य का साक्षात्कार और शान्ति लाभ करने में सक्षम हो सकते हैं ।

भावनाक्रम में भी कहा गया है– "पहले श्रुतमयी प्रज्ञा उत्पन्न करनी चाहिए, तब उससे आगम के अर्थ का अवधारण होता है । तत्पश्चात् चिन्तामयी प्रज्ञा के द्वारा नीतार्थ तथा नेयार्थों का भेद किया जाता हैं । तदनन्तर उससे भूत अर्थ का निश्चय करके उसी की भावना करनी चाहिए, न कि अभूत अर्थ की । अन्यथा विपरीत अर्थ की भावना होने से तथा विचिकित्सा का निवारण न होने के कारण सम्यक् ज्ञान का उदय नहीं होगा अर्थात् भावना व्यर्थ हो जाएगी । जैसे कि तीर्थिकों की भावना ।" **समाधिराजसूत्र** में कहा गया है[1]– यदि धर्मो में नैरात्म्य का प्रत्यवेक्षण हो और उसका प्रत्यवेक्षण करके यदि भावना करे तो वही फल रूपी निर्वाण की प्राप्ति का हेतु है । जो अन्य हेतु हैं, वे तो शान्ति के लिए नहीं होते ।

नैरात्म्यधर्मान् यदि प्रत्यवेक्षते
तान् प्रत्यवेक्ष्य यदि भावयेत ।
स हेतुर्निर्वाणफलस्य प्राप्तये
योऽन्यहेतुर्न स भोति शान्तये ॥

चिन्तामयी प्रज्ञा द्वारा युक्ति तथा आगम से परीक्षण करके सम्यक् तत्त्व अथवा वास्तविक स्वरूप की भावना करनी चाहिए । वस्तुओं का स्वरूप परमार्थतः अनुत्पाद ही है । यह युक्ति और आगम से निश्चित किया गया है । चिन्तामयी प्रज्ञा के द्वारा भूतार्थ का परीक्षण करके, उसका साक्षात्कार करने के लिए भावनामयी प्रज्ञा को उत्पन्न करना चाहिए । बहुश्रुत मात्र होने से अर्थ–प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है । ऐसा **आर्यरत्नमेघ** आदि सूत्रों में कहा गया है ।[2] अति स्पष्ट ज्ञान आलोक के उदय के

---

1 समाधिराजसूत्र, ९वाँ परि., पृ. ४९ ।

2 तदेवं चिन्तामय्या प्रज्ञया निश्चित्य भूतमर्थं तस्य प्रत्यक्षीकरणाय भावनामयीं प्रज्ञाम् उत्पादयेत । बहुश्रुतादिमात्रकेण नार्थः प्रत्यक्षो भवतीति निवेदितम् । – (भावनाक्रम में उद्धृत, पृ.). Toh: Sde bka (Mdo-sde 'Wa' p. 27)

बिना सम्यक् अर्थ का अन्धकार रूपी आवरण दूर नहीं होता । अनेक बार भावना करने पर अभूत अर्थ में भी अतिस्पष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है । जैसे **समाधिराजसूत्र** में कहा गया है[1]– आप लोगों को अवबोधित करता हूँ, प्रतिवेदन करता हूँ कि जैसे–जैसे मनुष्य अनेक बार वितर्क(चिन्तन) करेगा, वैसे–वैसे उन विकल्पों पर चित्त आश्रित होता जायेगा ।

आरोचयामि प्रतिवेदयामि वो यथा यथा बहु च वितर्कयेन्नरः ।
तथा तथा भवति तन्निमित्तचित्तस्तेहि वितर्केहि तन्निश्रितेहि ॥

अन्यत्र किन्हीं सूत्रों में तीन अन्य प्रकार की प्रज्ञाए भी कही गई हैं– लौकिक, लोकोत्तर एवं लोकोत्तम । महायान ग्रन्थों में प्रज्ञा एवं प्रज्ञापारमिता का उल्लेख कमोवेश रूप में सर्वत्र प्राप्त होता है । इसलिए यहाँ अधिक कहना उपयुक्त नहीं है । संक्षेप में दान, शील आदि पाँच पारमिताएं प्रज्ञा की उपलब्धि के लिए ही हैं । जैसे **बोधिचर्यावतार** में कहा गया है[2] –

इमं परिकरं सर्वं प्रज्ञार्थं हि मुनिर्जगौ ।
तस्मादुत्पादयेत्प्रज्ञां दुःखनिवृत्तिकाङ्क्षया ॥

आचार्य दिङ्नाग ने भी प्रज्ञापारमिता के अद्वयज्ञान को तथागत कहा है, जिसका उल्लेख उन्होंने **प्रज्ञापारमिता–पिण्डार्थ** में किया है[3]–

प्रज्ञापारमिताज्ञानमद्वयं सा तथागतः ।
साध्या तादर्थ्ययोगेन ताच्छब्द्यं ग्रन्थमार्गयोः ॥

वज्रच्छेदिका सूत्र में भगवान् स्वयं प्रज्ञापारमिता का उपदेश करते हुए इसका विस्तृत प्रतिपादन परस्पर विरोधी शब्दों द्वारा करते हैं । संवृतितः एवं परमार्थतः धर्मों की व्यवस्था करते हुए वे प्रज्ञापारमिता अर्थात् शून्यता की व्याख्या करते हैं । जब भगवान् ने इस धर्मपर्याय (इस सूत्र) की एक चतुष्पदी गाथा के प्रकाशन से प्राप्त पुण्यों की चर्चा सुभूति से की तब, सुभूति ने भगवान् से पूछा– भगवान् यह धर्मपर्याय कौन सा है और इसे मैं

---

1 समाधिराजसूत्र, ४/१६ ।
2 बोधिचर्यावतार, ९/१ ।
3 प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थ, १ कारिका ।

किस प्रकार (मन में) धारण करूं ? भगवान् ने कहा– सुभूति, इस धर्मपर्याय को प्रज्ञापारमिता कहते हैं, इसे इसी रूप में मन में धारण करना चाहिए । क्योंकि तथागत ने जिसे प्रज्ञापारमिता कहा है, उसे ही तथागत ने अपारमिता भी कहा है । इसलिए इसे प्रज्ञापारमिता कहा जाता है । जैसे सूत्र में भी कहा गया है[1]–

"एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– को नाम अयं धर्मपर्यायः, कथं चैनं धारयामि ? एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– प्रज्ञापारमिता नामायं सुभूते, धर्मपर्यायः । एवं चैनं धारय । तत्कस्य हेतोः ? यैव सुभूते, प्रज्ञापारमिता तथागतेन भाषिता सैव अपारमिता तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते प्रज्ञापारमितेति ।"

वज्रच्छेदिकासूत्र में ही कहा गया है कि धर्मता के द्वारा ही बुद्ध को जाना जा सकता है । यह धर्मता विज्ञान का विषय नहीं है । जो बुद्ध के रूपकाय, निर्माणकाय को जानते हैं तथा उनके वचनों का श्रवण करते हैं, वे पुद्गल तथागत, धर्मकाय या प्रज्ञापारमिता को नहीं जानते हैं ।

ये मां रूपेण चाद्राक्षुर्ये मां घोषेण चान्वयुः ।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जनाः ।।
धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः ।
धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम् ।।[2]

और भी **अष्टसाहस्रिका–प्रज्ञापारमितासूत्र** में कहा गया है[3]– **"धर्मकाया बुद्धा भगवन्तः । मा खलु पुनरिमं भिक्षवः सत्कायं कायं मन्यध्वम् । धर्मकायपरिनिष्पत्तितो मां भिक्षवो द्रक्ष्यथ । एष च तथागतकायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता ।"** आलोक टीका में आचार्य हरिभद्र ने प्रज्ञापारमिता की व्याख्या इस प्रकार

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, १४वाँ अध्याय ।

2 वज्रच्छेदिकासूत्र, २६वाँ अध्याय ।

3 अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, ४ परिवर्त, पृ. ४८ ।

की है[1] – **"पारं प्रकर्षपर्यन्तम् एति इति विगृह्य, क्विपि सर्वापहारिलोपे अनित्यमागमशासनमित्यलुकि तत्पुरुषे, कृति बहुलमिति अलुकि च कर्मविभक्तेः कृते पारमिस्तद्भावः पारमिता । प्रज्ञाया धर्मप्रविचयलक्षणायाः पारमिता प्रज्ञापारमिता मुख्या । बुद्धो भगवान् मायोपमं ज्ञानमद्वयम् । तत्प्राप्त्यनुकूलत्वेन तु पदवाक्यसमूहो ग्रन्थो दर्शनादिलक्षणो मार्गश्च गौणी प्रज्ञापारमिता ।"**

तथागत ने सभी धर्मों एवं सभी संस्कृत पदार्थों को मायोपम तथा स्वप्नोपम कहा है । जैसे कहा भी गया है[2]– **"मायोपमास्ते देवपुत्राः सत्त्वाः, स्वप्नोपमास्ते देवपुत्राः सत्त्वाः ।– सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमाः स्वप्नोपमाः । स्रोतआपन्नोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः । स्रोतआपत्तिफलमपि मायोपमं स्वप्नोपमम् । एवं सकृदागाम्यपि, सकृदागामिफलमपि, अनागाम्यपि, अनागामिफलमपि, अर्हन्नपि मायोपमः स्वप्नोपमः । अर्हत्वफलमपि मायोपमं स्वप्नोपमम् । प्रत्येकबुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम् । सम्यक्सम्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपम इति । सम्यक्सम्बुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम् ।"**

सभी धर्मों में अप्रतिष्ठित रहकर बोधिसत्त्व शून्यता में विहार करता है । शून्यता दृष्टि के प्रहाण से ही अप्रतिष्ठित निर्वाण सम्भव है, अन्यथा शून्यता में प्रतिष्ठित होना भी संस्कृत में प्रतिष्ठित होने के बराबर है । जैसे **मध्यमकशास्त्र** में कहा गया है–[3]

शून्यतासर्वदृष्टीनां प्रोक्ता निःसरणं जिनैः ।
येषां तु शून्यता दृष्टिस्तानसाध्यान् बभाषिरे ॥

तथागत को यह विचार नहीं होता है कि **"मैंने सम्यक्सम्बोधि प्राप्त कर ली है"** अन्यथा वह तथागत नहीं कहलाता है । तथागत न

---

1 आलोकटीका, पृ. २८२

2 अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, २ परिवर्त, पृ. २० ।

3 मूलमध्यमककारिका, १३/८ ।

कहीं को जाता है और न कही से आता है । इसी प्रकार धर्मता भी है और वही तथता है, जो तथता है वही तथागत है, जो तथता है वही शून्यता है, वही भूतकोटि है, वही तथागत है । बालपृथग्जन इनके आने-जाने की कल्पना करते हैं ।[1]

कमलशील :

भारतीय बौद्ध साहित्य के इतिहास में आचार्य कमलशील का नाम इतना प्रसिद्ध नहीं है, जितना भोटदेश में है । आचार्य कमलशील महान आंचार्य शान्तरक्षित के शिष्य थे । यद्यपि आचार्य के जन्म के बारे में कोई निश्चित तिथि पर अभी तक विद्वान् एकं मत नहीं हैं फिर भी, उन्हें आठवीं शताब्दी के अन्तर्गत ही माना जाता है । आचार्य कमलशील तत्कालीन भोटनरेश ठ्रिसोङ् देउचन (७४२ई0-७९६ई0) के समकालीन थे । वे नालन्दा के अग्रणी विद्वानों में से थे । उनकी विद्वत्ता का प्रमाण उनकी गम्भीर एवं विशाल कृतियाँ हैं । भारतीय बौद्ध धर्म के इतिहास एवं साहित्य में उनके जीवन के बारे में कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता । भोट स्रोतो एवं वहाँ के इतिहासकारों ने कमलशील का खूब बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन किया है, लेकिन जन्म आदि का काल निर्धारण नहीं किया है । भोट देश में उनका प्रसंग तब आता है, जब समस्त भोट जनता चीनी भिक्षु हशङ् महायानी के कुदर्शन से प्रभावित होकर भारतीय बौद्धधर्म की परम्परा के अस्तित्व के मिट जाने का खतरा महसूस कर रही थी ।

हशङ् महायानी का कहना था कि- "काय, वाक् के पुण्य कर्मों से बुद्धत्व प्राप्त नहीं होगा । मन में कुछ भी विचार न करके भावना की जाए तो बुद्धत्व प्राप्त होगा । उनका कहना था कि कोई अच्छा या बुरा कर्म अवश्य ही व्यक्ति को भव में बाँधता है । कोई भी बँधा व्यक्ति चाहे वह लोहा अथवा सोने की जंजीर से बँधा हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि जब तक वह बन्धन में है, उसे बन्दी ही कहा जाएगा ।"

1 देखिए- अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, ३१ परिवर्त, पृ. २५३

इस प्रकार तत्क्षण निर्वाण प्राप्ति के अत्यन्त सरल उपायों से, हशङ् के धर्मोपदेश से समस्त भोट जनता धीरे-धीरे प्रभावित होने लगी। फलस्वरूप, बौद्धधर्म की भारतीय परम्परा एवं चीनी परम्परावादियों के बीच विवाद बढ़ने लगा और चीनी बौद्ध भिक्षु हशङ् भारतीय परम्परावादियों पर भारी पड़ने लगे। मात्र पलयङ्, ब-रत्न तथा कुछ अन्य श्रद्धालु ही आचार्य शान्तरक्षित की परम्परा में कायम रहे। चीनी बौद्ध भिक्षु हशङ् की परम्परा को तत्काल-निर्वाण प्राप्ति एवं आचार्य शान्तरक्षित की परम्परा को क्रमिक-निर्वाण प्राप्ति परम्परा कहा गया।

जिस समय इस चीनी बौद्ध भिक्षु का तिब्बत में आगमन हुआ, उस समय आचार्य शान्तरक्षित की मृत्यु हो चुकी थी तथा आचार्य पद्मसम्भव पश्चिम के यक्ष प्रदेश को प्रस्थान कर चुके थे। महाराज ठ्रिसोङ् देउचन ने भारतीय बौद्ध परम्परा का पक्ष लेते हुए अपनी जनता से हशङ् की परम्परा को न अपनाने के लिए कहा। इससे तत्क्षण परम्परा वाले हशङ् के अनुयायी असन्तुष्ट हो गए तथा उन्होंने क्रमिक परम्परावादियों को डराने धमकाने के लिए अपने पास तेज धारदार छोटे हथियार रखना आरम्भ कर दिया।

इस समाचार से महाराज काफी दुःखी हुए और उन्होंने येशे वङ्पो को बुलवाया। येशे वङ्पो आचार्य शान्तरक्षित के भोटशिष्यों में सबसे अग्रणी थे तथा आचार्य ने भोट बौद्ध शासन की बागडोर उन्हीं के हाथों में सौंपी थी। उस समय आचार्य येशे वङ्पो (ज्ञानेन्द्र) समाधि में थे। दो बार बुलाने पर भी जब येशे वङ्पो नहीं आये तब तीसरी बार महाराज ने आदेश भिजवाया कि यदि इस बार आचार्य नहीं आते हैं तो उनका सिर काट दिया जाएगा। इस पर आचार्य महाराज के दरबार में उपस्थित हुए और उन्होंने कहा आपने मुझे अनावश्यक ही बुलाकर मेरे ध्यान में बाधा डाली है। ऐसा कहते हुए आचार्य येशे वङ्पो ने महाराज को आचार्य शान्तरक्षित द्वारा की गई भविष्यवाणी की याद दिलाई, जो आचार्य ने मृत्यु के पूर्व की थी। वह इस प्रकार है-

"जहाँ–जहाँ बुद्धशासन का विस्तार होगा, वहाँ तैर्थिकों का प्रतिवाद भी होगा । फिर भी, भोट देश में बौद्ध धर्म का प्रसार शासन के पाँच सौ वर्षों के अन्तिम समय में होने के कारण विस्तृत रूप से होगा तथा तैर्थिकों का भय नहीं रहेगा । किन्तु तिब्बत में बौद्ध धर्म के अनुयायियों के आपसी सैद्धान्तिक मतभेदों के कारण आन्तरिक विवाद उत्पन्न होगा । उस समय नेपाल स्थित मेरे परम शिष्य कमलशील को आमन्त्रित करना और उसके साथ शास्त्रार्थ करवाना । राजा स्वयं निर्णय करें, शास्त्रार्थ धर्म के पक्ष में प्रतिफलित होगा ।"

इस प्रकार आचार्य कमलशील का भोटदेश में आगमन हुआ । उन्होंने चीनी भिक्षु हशङ् को शास्त्रार्थ में पराजित किया तथा भारतीय बौद्ध परम्परा वाले बौद्ध शासन की पुनः प्रतिष्ठा की । महाराज ठ्रिसोङ् देउच़न ने आचार्य कमलशील को आध्यात्मिक विभाग का प्रधान घोषित किया तथा चीनी हशङ् को देश निकाले का आदेश दिया । साथ ही समस्त भिक्षु संघ को यह आज्ञा भी दी कि अब से नागार्जुन के सिद्धान्त एवं सर्वास्तिवादी विनय की चर्या का पालन करे ।

अनन्तर आचार्य कमलशील ने भोटनरेश की प्रार्थना पर भोटवासियों के आशय के अनुरूप **भावनाक्रम** नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की, जिसमें उन्होंने इस बात का उल्लेख किया है कि शीघ्र बुद्धत्व प्राप्त की कामना करने वाले विनेयों को किस क्रम से भावना करनी चाहिए । सम्पूर्ण ग्रन्थ का मूल संस्कृत प्राप्त नहीं था, केवल प्रथम एवं तृतीय भाग ही संस्कृत में प्राप्त हुए, जो प्रो. जी. टुची ने **"माइनर बुद्धिस्ट टेक्स्ट"** में रोमन लिपि में प्रकाशित किया । पश्चात् तिब्बती संस्थान के शोधकर्त्ता आचार्य ग्यलछन नमडोल ने न केवल उसका संस्कृत में लिप्यन्तर एवं सम्पादन किया, वरन् द्वितीय अप्राप्त भाग का भी संस्कृत में पुनरुद्धार किया । यह ग्रन्थ संस्कृत पुनरुद्धार एवं भोट पाठ के साथ तिब्बती संस्थान से सन् १९८५ में प्रकाशित हो चुका है ।

यद्यपि आचार्य की मृत्यु तिब्बत में हुई, किन्तु भोट इतिहासकारों में भी आचार्य की मृत्यु के बारे में ऐकमत्य नही है । फिर भी अधिकांश इतिहासकारों का मानना है कि शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने के कारण बदले की भावना से शास्त्रार्थ के चार वर्षो बाद ही आचार्य को हशङ् के अनुयायियों ने मार डाला । जबकि कुछ इतिहासकार इससे भिन्न मत रखते हैं. । कुछ लोग उन्हें ही **"दमपा ग्यागर"** मानते हैं । भारतीय पण्डित एवं परम आदरणीय होने के कारण ही उन्हें इस विशेष उपाधि से विभूषित किया गया, जो उस समय तिब्बत में काफी प्रसिद्ध हुए । इतिहासकारों का मानना है कि आचार्य कमलशील को ही **"दमपा ग्यागर"** की उपाधि प्राप्त हुई । दमपा ग्यागर का अर्थ है= परम भारतीय ।

आचार्य शाक्य छोगदन रचित रोङ् तोन की गुह्यजीवनी में कहा गया है कि– **"परम भट्टारक भारतीय ने सात बार निरन्तर मनुष्य योनि में जन्म लिया । सातवें एवं अन्तिम जन्म में वे एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए । उनके तीन नाम थे, जो इस प्रकार हैं– वाक्सिंह, अजितनाथ एवं कर्मवज्र । पश्चात् उन्होंने नालन्दा के प्रसिद्ध आचार्य धर्मशील एवं कमलरक्षित से उपसंपदा ग्रहण की तथा उनका नाम कमलशील पड़ा । पाँचों विद्याओं में पारङ्गत होकर महापण्डित कहलाए तथा आर्यावर्त में शासन की सेवा की । भोट देश में वहाँ के नरेश के निमन्त्रण पर पहुँचे और चीनी विद्वान् हशङ् के दूषित दर्शन का निराकरण किया । पारमितायान के अनेक शास्त्रों की व्याख्या की एवं कुछ स्वतंत्र ग्रन्थ भी लिखे ।"**[1] किन्तु रोङ् तोन की सामान्य जीवनी में कुछ भिन्न मत ही प्राप्त होता है । वहाँ सात जन्मों वाली कथा का प्रसंग नहीं आता, बल्कि आचार्य कमलशील को ही दमपा ग्यागर कहकर एक ही व्यक्ति माना गया है । भोट इतिहासकारों की दृष्टि में आचार्य की जीवनी के बारे में कितने ही मतभेद क्यों न हों, लेकिन उनके द्वारा हशङ् का परास्त

---

1 पुट "म" पृ० ३६६, (दिल्ली प्रकाशन, पुस्तक)

किया जाना, तत्पश्चात् भोट देश में बौद्ध शासन की पुनः स्थापना करने के बारे में ऐक्यमत हैं ।

काल निर्धारण :

आचार्य के काल निर्धारण के बारे में हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि उनका जन्म आठवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ और अध्ययन–अध्यापन नालन्दा एवं विक्रमशील विश्वविद्यालयों में सम्पन्न हुआ । वे आचार्य शान्तरक्षित के परम शिष्यों में एक थे । उनका नेपाल में निवास इस बात का साक्षी है कि वे उस समय तक विद्वान् आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे और शासन की उत्तरोत्तर वृद्धि एवं प्रचार–प्रसार के उद्देश्य से ही नेपाल वास कर रहे थे । यह उनके जीवन का उत्तरार्ध था । पाश्चात्त्य अनुसंधानकर्त्ता प्रो0 डेमिविले ने आचार्य तथा हशङ् के बीच शास्त्रार्थ का समय ७९२ई0 के आस पास माना है, जो काफी ठीक प्रतीत होता है । इतिहासकारों के अनुसार आचार्य कमलशील की मृत्यु के कुछ ही समय बाद ७९६ई0 में तत्कालीन भोट नरेश ठ्रिसोङ् देउचन का भी देहान्त हो गया । जैसा कि भोट इतिहासकारों का मत है कि शास्त्रार्थ के चार वर्ष बाद हशङ् के अनुयायियों ने आचार्य की हत्या कर डाली । यह समय भी ७९६ई0 के आस–पास बैठता है । इन सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य का जन्म ७२५ई0 से ७३५ई0 के बीच माना जा सकता है । उन्होंने जितने भी ग्रन्थों की रचना की है, उससे भी उनकी आयु की परिपक्वता का अनुमान लगाया जा सकता है । सभी तिब्बती स्रोतो में उनके तथा चीनी बौद्ध भिक्षु हशङ् के बीच हुए शास्त्रार्थ का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है परन्तु उनकी सम्पूर्ण जीवनी के बारे में कोई खास सामग्री प्राप्त नहीं होती है ।

ग्रन्थ का काल :

आचार्य अपने जीवन के उत्तरार्ध में भोटदेश पहुँचे तथा वहाँ पहुंच कर उन्होंने चीनी बौद्ध भिक्षु हशङ् को शास्त्रार्थ में परास्त किया तथा वहाँ बौद्ध शासन परम्परा की नींव को सुदृढ़ किया । तत्पश्चात् भोट नरेश की

विशेष प्रार्थना पर भावना प्रधान ग्रन्थ **"भावनाक्रम"** की रचना की । यह बात सभी भोट इतिहासकार सर्वसम्मति से स्वीकार करते हैं । **वज्रच्छेदिकाटीका** ग्रन्थ की रचना उन्होंने भारत में ही की थी । **वज्रच्छेदिकासूत्र** के प्रति लोगो की बढ़ती हुई जिज्ञासा को ध्यान में रखकर ही नालन्दा में आचार्य पद पर कार्य करते हुए शायद इस टीका की रचना की । ग्रन्थ की प्रामाणिकता का प्रमाण इस बात से भी लग जाता है कि इस ग्रन्थ का तिब्बती अनुवाद भी ८वीं शती के ही महान अनुवादक भारतीय पण्डित लक्ष्मीकर एवं भोट आचार्य येशे दे ने मिलकर किया । आचार्य ने भावनाक्रम की रचना करते समय वज्रच्छेदिका के टीकाग्रन्थ से काफी सामग्री ली है तथा कही-कही पर तो उन उद्धरणों को भी लिया है, जो वज्रच्छेदिका-टीका में प्रस्तुत कर चुके थे ।

उस दिनों चीन में वज्रच्छेदिका सूत्र का प्रचलन विद्यमान था और वहाँ ध्यान प्रमुख बौद्ध शासन प्रतिष्ठित था । शायद यह भी एक कारण रहा हो कि सूत्र के अर्थों को स्पष्ट करने के उद्देश्य से इस टीका की रचना की गई हो, ताकि विनेय जनों को सूत्र का सही-सही अर्थ जानने में सुगमता हो । भोट देश में जाने से पूर्व आचार्य नेपाल में काफी समय तक रहे । इस कारण भी यह बात कुछ हद तक सत्य प्रतीत होती है कि उन्हें भोट, नेपाल एवं चीन आदि देशों में बौद्ध शासन की अच्छी जानकारी थी ।

ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय :

कायव्यवस्था निर्देश :

सामान्यरूप से वज्र का स्थूल अर्थ कठोर होता है, जो हीरे आदि बहुमूल्य वस्तुओं को काटता है । किन्तु बौद्ध जगत में यह एक रहस्यमय वज्र है । यह शून्यरूपी वज्र तथा प्रज्ञारूपी खड्ग है, जो क्लेशों एवं

अज्ञान का छेदन करता है । वज्र शून्यता का ही भौतिक प्रतीक है, क्योंकि दोनों ही एक समान है । जैसे कहा भी गया है[1]–

दृढं सारमसौशीर्यमच्छेद्याभेद्यलक्षणम् ।
अदाहि अविनाशी च शून्यता वज्रमुच्यते ॥

वज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमिता सूत्र का अर्थ है, ऐसा सूत्र अथवा बुद्ध का उपदेश, जो क्लेशावरणों को वज्रसदृश असि के द्वारा छेदन करता है । यह मोह जाल तथा तृष्णा लता का छेदन करने वाला प्रज्ञारूपी वज्रास्त्र है । वज्रच्छेदिका सूत्र में ३00 श्लोक हैं, अतः इसे त्रिशतिका (नाम वज्रच्छेदिका) प्रज्ञापारमिता भी कहा है । अधिकांश महायान प्रज्ञापारमिता सूत्रों का उपदेश स्थल राजगृह के निकट गृद्धकूट पर्वत है । परन्तु प्रस्तुत वज्रच्छेदिका सूत्र का उपदेश शास्ता ने श्रावस्ती के प्रसिद्ध श्रेष्ठी गृहपति अनाथपिण्डद द्वारा निर्मित जेतवन विहार में किया था । इस सूत्र में भगवान् के आनुभाव से आयुष्मन् सुभूति भगवान् से प्रश्न करते हैं तथा भगवान् उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए विविध शंकाओं का समाधान भी करते हैं । ग्रन्थ का केन्द्रीय विचार सात पदार्थ हैं, जो प्रज्ञापारमिता का सम्यक् स्वरूप प्रस्तुत करते हुए शून्यता का प्रतिपादन करते हैं । ग्रन्थ को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है–

१. ग्रन्थ के नाम की व्याख्या ।

२–३. बोधिसत्त्वो का चिन्तन एव निष्ठावस्था पर्यन्त भावना ।

आचार्य ने अपनी टीका में वज्रच्छेदिका की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है– "वज्र के समान अत्यन्त कठोर, दुर्भेद्य क्लेशावरण तथा ज्ञेय आवरणों का छेदन करता है । साथ ही दोनों आवरणों का प्रहाण भी करता है । अथवा वज्र के आकार की भाँति होने के कारण यह वज्रसदृश है । वज्र का दोनों शिखर स्थूल एवं मध्य भाग कृश होता है । इसी प्रकार यह प्रज्ञापारमिता भी आदि एवं अन्त में विस्तृत अधिमुक्तिचर्या भूमि तथा

---

1 बौद्ध धर्म एवं दर्शन, पृ. ३३५, १९७८ (वज्रशेखर, पृ. २३), पण्डित बलदेव उपाध्याय ।

बुद्धभूमि से और मध्य के कृश भाग के द्वारा शुद्धाध्याशय भूमि से युक्त है । अत एव यह वज्र के आकार सदृश है ।" अन्यत्र आचार्य वसुबन्धु ने अपनी टीका में इस प्रकार की व्याख्या की है । "दो तरह से इसका अर्थ समझना चाहिए । सम्यग्दृष्टि का प्रतिपादन तथा क्लेशों की हानि । वह सूक्ष्म एवं सार होने से वज्र है । वह भी दुर्विज्ञेय होने से सूक्ष्म है तथा दुर्निवार्य होने के कारण सार है । श्रवण, मनन एवं भावना के द्वारा यह प्रज्ञापारमिता क्लेशों का छेदन करती है । यह वज्र भी है और छेदिका भी है ।"

वस्तु–व्यवस्था :

संक्षेप में ग्रन्थ के पाँच भेद किए गए हैं ।

१. निदान वस्तु
२. उपोद्घात
३. बुद्ध वंश का उपच्छेद न होना
४. प्रतिपत्ति लक्षण
५. प्रतिपत्ति लक्षण का स्थान

एवं मया श्रुतम् इत्यादि जो सूत्र के प्रारम्भ में कहा जाता है और जो सभी सूत्रों में देखने को मिलता है, वह संगीतिकारों द्वारा सूत्र संगायन के समय निर्धारित किया गया है । ताकि वे अपने द्वारा संगीत सूत्रों के प्रति लोगों में विश्वास पैदा कर सकें कि यह सूत्र प्रामाणिक है तथा बुद्ध द्वारा उक्त है । 'एवं मया श्रुतम्' का तात्पर्य यह है कि भगवान् बुद्ध ने जब इस धर्म–पर्याय की देशना की थी तब मैंने उसका साक्षात् श्रवण किया था, परम्परा से नहीं । साक्षात् श्रवण का अर्थ मात्र श्रवण करना है, न कि उसका अवबोध । यहाँ सूत्र के साक्षात् श्रवण को बतलाने के लिए इस वचन को कहा गया है, अन्यथा भगवान् के अतिरिक्त धर्म पर्याय का सम्यग् ज्ञाता कोई दूसरा नहीं है । इस वचन के द्वारा सूत्र के प्रति अविश्वास का निराकरण भी किया गया है । जैसे अष्टसाहस्रिका

प्रज्ञापारमिता की आलोक टीका में कहा गया है[1] – **"तदुक्तं– यदा भगवान् राजगृहे महानगरे गृध्रकूटे पर्वते यथोक्तपर्षदा परिवृतो धर्मं देशयन् विजहार, तदा भगवतः सकाशात्तत्रैव स्थाने तया पर्षदा सार्धम् "एवं मया सूत्ररत्नं श्रुतम्" इति सर्वैरप्येतैः लोकव्यवहारानुवर्तनात् संकीर्तितदेशादिभिः संगीतिकारेण आत्मप्रामाण्यप्रतिपादनात् विनेयानां सादरश्रवणचिन्तनादिकमुक्तम् । तथा च आचार्यदिङ्नागेनाप्युक्तम्**[2] –

श्रद्धावतां प्रवृत्त्यङ्गं शास्ता पर्षच्च साक्षिणी ।
देशकालौ च निर्दिष्टौ स्वप्रामाण्यप्रसिद्धये ॥
संगीतिकर्त्रा लोके हि देशकालोपलक्षितम् ।
ससाक्षिकं वदन् वक्ता प्रामाण्यमधिगच्छति ॥"

सूत्र वचनों की प्रामाणिकता हेतु देश, काल, पर्षद्, साक्षी एवं प्रसंग का उल्लेख प्रत्येक सूत्र के प्रारम्भ में संगीतिकारों द्वारा निर्धारित किया गया है । प्रस्तुत सूत्र में भी **एकस्मिन् समये** इस वचन का यह तात्पर्य है कि एक समय में इस सूत्र वचन का श्रवण किया तथा अन्यत्र अन्य सूत्र का भी श्रवण किया गया । प्रथम धर्म संगीति के समय आनन्द ने सभी प्रज्ञापारमिता सूत्रों का संगायन किया था । इस आधार पर इस सूत्र का भी संगायन आनन्द के द्वारा ही मान्य है ।

श्रावस्ती के श्रेष्ठी गृहपति अनाथपिण्डद ने भगवान् के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करने हेतु वहाँ के राजकुमार जेत के उपवन से एक भू–भाग खरीदा । उसकी प्रमुख विशेषता यह है कि राजकुमार जेत ने शर्त रखा कि उपवन की जितनी भूमि पर सोने की अशर्फियां बिछा दोगे, उतनी भूमि तुम्हारी हो जाएगी । तदनुसार गृहपति अनाथपिण्डद ने आवश्यक भू–भाग पर सोना बिछाकर उसे खरीदकर उस भू–भाग पर विहार का निर्माण किया

---

1 आलोकटीका, पृ. २७७

2 प्रज्ञापारमिता पिण्डार्थ, ३–४ कारिका ।

तथा उसे संघ को समर्पित कर दिया । दूसरी विशेषता यह है कि भगवान् ने अपने अधिकांश वर्षावास यही श्रावस्ती में बिताएं ।

एक समय भगवान् श्रावस्ती के इसी विहार में १२५० भिक्षु संघ तथा बहुत् से बोधिसत्त्वों, महासत्त्वों के साथ विहार कर रहे थे । उस समय भिक्षु संघ की अपेक्षा बोधिसत्त्वों, महासत्त्वों की संख्या अधिक थी, क्योंकि उन्हीं विनेय जनों के लिए सूत्र की देशना की गई थी । बोधि के प्रति अत्यधिक आशय वाले होने के कारण उन्हें बोधिसत्त्व कहा गया है । श्रावकों मे भी बोधि के प्रति उत्साह होता है, इसलिए उसके निराकरण के लिए महासत्त्व कहा गया है । ऐसे बोधिसत्त्व जो सात लक्षणों से युक्त होते हैं, उन्हें महासत्त्व कहा जाता है ।[1]

उपोद्घात एवं बुद्ध-वंशानुपच्छेद :

सूत्र के अर्थों की व्याख्या हेतु प्रसङ्ग का योग किया जाता है । अप्रासङ्गिक व्याख्या करने पर असमञ्जसता की स्थिति होती है । इसलिए इस समस्या को दूर करने के लिए सभी सूत्रों में प्रसङ्ग का योग करना आवश्यक रूप से संगीतिकारों द्वारा माना गया है । प्रस्तुत सूत्र का प्रसङ्ग भी आर्य सुभूति द्वारा उठाया गया है- "आश्चर्य है भगवन्, परम आश्चर्य है, हे सुगत, जो बोधिसत्त्व महासत्त्व तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध के परम अनुग्रह से अनुगृहीत हुए हैं । आश्चर्य है भगवन् कि बोधिसत्त्व महासत्त्व, तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध के परम परीन्दन से परीन्दित हुए हैं । हे भगवन्, किस प्रकार बोधिसत्त्व यान मे संप्रस्थित कोई कुलपुत्र अथवा कोई कुलपुत्री स्थित रहते हैं ? किस प्रकार प्रतिपत्ति करते हैं ? किस प्रकार चित्त प्रगृहीत करते हैं ?"

तथागत के आनुभाव से सुभूति द्वारा विनेय जनों की वास्तविक शंकाओं के समाधान के लिए ही तथागत ने वज्रच्छेदिका सूत्र की देशना की । वैसे तो राजा आदि भी अपनी प्रजा पर अनुग्रह करते हैं लेकिन वे अपने लाभ एवं सत्कार आदि स्वार्थ की अभिलाषा से दूसरों पर अनुग्रह

---

1. सात लक्षणों के परिज्ञान के लिए द्रष्टव्य- प्रस्तुत वज्रच्छेदिकाटीका, पृ. ८ ।

करते हैं । भगवान् तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध होकर सभी संपदाओं से सम्पन्न हैं । इसीलिए वे सत्त्वों पर जो भेद–भावरहित अनुग्रह करते हैं, उसे ही यहाँ आश्चर्य कहा गया है, क्योंकि उनके अनुग्रह में महाकरुणा ही एकमात्र हेतु होती है । इसलिए उन्हें महाकारुणिक भी कहा जाता है ।

भगवान् ने धर्मचक्र प्रवर्तन काल में परिपक्व कुशलमूल बोधिसत्त्वों को भूमियों में अवतरित कराया तथा धर्मता में प्रतिष्ठापित किया । उन्होंने अपरिपक्व कुशलमूल आदिकर्मिकों पर अनुग्रह करने के लिए अपने समक्ष उपस्थित बोधिसत्त्वों को धर्म की देशना की तथा उन्हें धर्मता में प्रविष्ट किया । मानव शरीर तथा इससे सम्बन्धित अन्य वस्तुएं परम सम्पत्ति स्वरूप है, क्योंकि मानव देह में ही बुद्ध गुणों का विकास सम्भव है ।[1] अत एव, यह एक दुर्लभ उपलब्धि है, जो बोधिसत्त्वों को तथागत के परम अनुग्रह से प्राप्त हुई है । भगवान् कहते हैं– **"हे बोधिसत्त्वो ! मेरे महापरिनिर्वाण–देशना का यह अर्थ है कि तुमने जो प्राप्त नहीं किया, उसे प्राप्त करो तथा जो प्राप्त कर लिया उसकी हानि न होने दो ।"**

इस प्रकार अनुग्रह एवं परीन्दना दोनों के द्वारा बुद्ध वंश का उपच्छेद न होना कहा गया है । उचित अवसर पर प्रश्न किए जाने के कारण भगवान् ने सुभूति को साधुवाद दिया तथा कहा– **"जो मैं देशना करने जा रहा हूँ, उसका तुम भली भाँति श्रवण करो, मैं तुम्हें बताऊंगा कि किस प्रकार बोधिसत्त्व यान में संप्रस्थित कोई कुलपुत्र या कुलदुहिता स्थित रहता है ? किस प्रकार प्रतिपत्ति करता है ? किस प्रकार चित्त का योग करता है ?"**

भगवान् पुनः कहते हैं कि– "बोधिसत्त्वयान में संप्रस्थित किसी भी कुलपुत्र या कुलदुहिता को सत्त्वों के प्रति इस प्रकार का चित्त का उत्पाद करना चाहिए– "सत्त्व धातु में जितने भी सत्त्व हैं जैसे– अण्डज,

---

1 क्षणसंपदियं सुदुर्लभा प्रतिलब्धा पुरुषार्थसाधनी ।
यदि नात्र विचिन्त्यते हितं पुनरप्येष समागमः कुतः ।। –बो.च., १/४ ।

जरायुज, संस्वेदज, औपपादुक, रूपी, अरूपी, संज्ञी, असंज्ञी, न संज्ञा न असंज्ञा आदि जो कोई भी इस सत्त्वलोक में कल्पित है । इन सभी प्राणियों को मुझे निर्वाण तक ले जाना है । सभी को निरुपधिशेष निर्वाण प्राप्त कराना है ।" चूँकि परमार्थतः कोई भी सत्त्व विद्यमान नहीं होता है, इसलिए बोधिसत्त्व को विपर्यास अर्थात् सत्कायदृष्टि अर्थात् सत्त्वों की सत्ता है– इस प्रकार का विचार नहीं होना चाहिए । अन्यथा वह बोधिसत्त्व नहीं कहलाया जा सकेगा अर्थात् यदि किसी बोधिसत्त्व को सत्त्वसंज्ञा, आत्मसंज्ञा, जीवसंज्ञा अथवा पुद्गलसंज्ञा हो जाएं तो वह बोधिसत्त्व नहीं कहा जाएगा ।"

इसी प्रसङ्ग में आत्मसंज्ञा का निराकरण करते हुए आचार्य कमलशील ने अपनी प्रस्तुत टीका में आत्मवाद का खण्डन प्रस्तुत किया है । बौद्धों एवं तैर्थिकों में आत्मा के बारे में विद्वानों द्वारा सर्वत्र विवाद प्रचलित होने के कारण यहाँ उसका विस्तार आवश्यक नहीं समझता हूँ । जिज्ञासु पाठकों की अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए मैंने तत्तत् स्थलों पर टिप्पणी देकर अन्य ग्रन्थों का निर्देश किया है, जो स्पष्टीकरण के लिए पर्याप्त हैं ।

प्रतिपत्ति लक्षण :

आर्य सुभूति ने छह प्रयोजनों से भगवान् से पूछा यथा– १. संशय का समाधान, २. अधिमुक्ति उत्पाद, ३. गम्भीर अर्थ में अवतारण, ४. अविनिवर्त, ५. परम आनन्द का उत्पाद एवं ६. सद्धर्म का चिरस्थायित्व, प्रज्ञापारमिता द्वारा इन प्रयोजनों की पूर्ति कैसे होती है ?

यह प्रज्ञापारमिता किस प्रकार बुद्ध वंश की अनुपच्छेदिका है– ऐसी आशंका करने वालों के संशय का छेदन करती है । अपरिपक्व सन्तति वाले बोधिसत्त्वों को पुण्य बाहुल्य के आख्यान से प्रज्ञापारमिता में अधिमुक्ति का उत्पाद होता है । परिपक्व सन्तति वालों को गम्भीर अर्थ में अवतरित किया जाता है । असद्भूत भावना से पीड़ित होकर उपादान या ग्रहण में प्रयत्नरत बहुपुण्य की अभिलाषा से अविनिवर्त होते हैं । अनुगृहीत शुद्ध आशय वालों को मेरे द्वारा धर्म का अवबोध होते देख परम आनन्द का उत्पाद होता है । यह अनागत काल में महायान धर्म के चिरस्थायित्व के

सिद्ध होती है । अर्थात् बोधिसत्त्व किस प्रकार स्थित रहते हैं ? अग्रसर होते हैं ? तथा चित्त का योग करते हैं ? बोधिसत्त्व छन्द एवं प्रणिधान द्वारा स्थित रहते हैं । योग समापत्ति से प्रतिपत्ति करते हैं । तथा विक्षेप निग्रह कर चित्त का योग करते हैं । इस प्रकार प्रथम के द्वारा प्रयोग मार्ग, द्वितीय से मार्ग की प्रतिपत्ति होती है तथा तीसरे के द्वारा मार्गच्युति नहीं होती है । अभिलषित अर्थ में अभिसंस्कार लक्षण द्वारा जो चिन्तन अथवा विचार होता है, वह छन्द एवं प्रणिधान है । जो अविकल्प समाधि है, वही योग समापत्ति है । समाधि में चित्त विक्षेप को हटाकर उसी में अवतरित करना ही विक्षेप निग्रह है ।

मार्गव्यवस्था :

प्रतिपत्ति लक्षण का स्थान :

यहाँ से विस्तृत व्याख्यान प्रारम्भ होता है । प्रतिपत्ति लक्षण स्थान के अठारह भेद हैं–

१. चित्तोत्पाद
२. पारमिता प्रयोग
३. रूपकाय प्राप्ति की अभिलाषा (छन्द)
४. धर्मकाय प्राप्ति की कामना
५ भावना के वैशिष्ट्य की प्राप्ति में अभिमान न होना
६. बुद्धोत्पाद की आराधनता
७. क्षेत्र परिशुद्धि प्रणिधान
८. सत्त्व परिपाचना
९. बाह्य शास्त्रों के प्रति अनुराग न होना
१०. सत्त्वलोक एवं भाजनलोक को पिण्डरूपेण ग्रहण कर विनाश का योग
११. तथागत की पूजा एवं सत्कार
१२. काय एवं चित्त का परिश्रान्त होकर वीर्य से निवृत्त होना, प्रारब्ध (कर्म) का अप्रारम्भ तथा लाभ–सत्कार से निरपेक्ष होना

१३. दुःख-क्षान्ति सामर्थ्य

१४. ध्यान के रसास्वादन से विरत

१५. अभिसमय काल में "अहम्" इस विकल्प से अपगत होना

१६. अववाद (उपदेश) पर्येषण

१७. अभिसमय

१८. बुद्धभूमि पर्येषण

इन अठारह स्थानों में बोधिसत्त्व कैसे स्थित रहते हैं ? अग्रसर होते हैं ? तथा चित्त का योग करते हैं ? ये अठारह स्थान तीन भूमियों में संगृहीत होते हैं । प्रथम सोलह स्थानों के द्वारा अधिमुक्तिचर्या भूमि, अभिसमय स्थान द्वारा शुद्धाध्याशयिक भूमि और बुद्धभूमि-पर्येषण द्वारा बुद्धभूमि संगृहीत होती है । सत्त्वों के परिनिर्वाण लाभ के लिए चित्तोत्पाद से पारमिताओं में प्रयत्न करना एवं तथागत के रूपकाय एवं धर्मकाय की प्राप्ति का छन्दोत्पाद करना चाहिए । ततः अभिमान आदि से लेकर अन्तिम "अहम्" इस विकल्प पर्यन्त अभिसमय की बाधाओं से चित्त का वियोग करना है । तत्पश्चात् अभिसमय के लिए उपदेश (अववाद) की खोज होती है तथा तदनन्तर अभिसमय होता है । अभिसमय से ऊपर बुद्धभूमि की खोज होती है ।

अन्तिम बुद्धभूमि पर्येषण सात संपदाओं से संगृहीत है- १. क्षेत्र परिशुद्धि संपद्, २. अनुत्तर दृष्टि परिशुद्धि संपद्, ३. अनुत्तर ज्ञानपरिशुद्धि संपद्, ४. पुण्यस्कन्ध-वशिता संपद्, ५. काय संपद्, ६. वाक् संपद्, ७. चित्त संपद् ।

चित्त संपद के भी सात भेद हैं- १. स्मृत्युपस्थान, २. अभिसम्बोधि, ३. महाधर्मार्थ प्रज्ञप्ति, ४. अववाद महत्त्व प्रज्ञप्ति, ५. धर्मकाय परिग्रह, ६. निर्वाण एवं संसार में अप्रतिष्ठित होना, ७. परिशुद्ध प्रस्थिति ।

परिशुद्ध प्रस्थिति के भी तीन भेद हैं- १. ईर्यापथ प्रस्थिति, २. सत्त्व-भाजन लोक में विद्यमान प्रस्थिति, ३. असंक्लेश प्रस्थिति ।

असंक्लेश प्रस्थिति के भी दो भेद हैं- १. देशना असंक्लेश, २. संसार असंक्लेश ।

अन्तिम गाथा में संस्कृत के चार लक्षण कहे गए हैं– १. स्वभावलक्षण, २. विषयरसास्वादन लक्षण, ३. आदीनव–अन्वय लक्षण, ४. निर्याण–अन्वय लक्षण ।

१. चित्तोत्पाद :

बोधिसत्त्वों के द्वारा सभी सत्त्वों को निर्वाण प्राप्त कराने के आशय को तीन हेतुओं से जानना चाहिए ।

१. जो सत्त्व अक्षण में उत्पन्न होते हैं, उन सत्त्वों के लिए अन्यत्र उचित काल में वास करना, ताकि उन्हें यथा समय लाभान्वित कर सकें, क्योंकि अक्षण में स्थित होने पर सत्त्व का निर्वाण सम्भव नहीं है ।

२. अपरिपक्व सत्त्वों को परिपक्व कराता है तथा जो परिपक्व हैं, उन्हें मुक्त कराता है ।

३. इस प्रकार सभी सत्त्वों को निर्वाण प्राप्त कराता है । बोधिसत्त्वों के इन आशयों से उनके चित्त की विशालता का वर्णन किया जाता है । संवृतितः सभी सत्त्व निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं । परमार्थतः बोधिसत्त्व सत्त्वों को आलम्बन नहीं बनाते हैं, क्योंकि परमार्थतः सत्त्वों की सत्ता ही नहीं होती है । अन्यथा आत्मग्राह होने के कारण उन्हें बोधिसत्त्व ही नहीं कहा जा सकेगा ।

२. पारमितायोग :

बोधिसत्त्वयान में संप्रस्थित बोधिसत्त्व को वस्तु में प्रतिष्ठित होकर दान नहीं देना चाहिए । तीन प्रकार के दान बतलाए गए हैं, जिनके द्वारा छह पारमिताओं का अभिधान किया गया है । १. आमिष दान के द्वारा दान पारमिता, अभयदान के द्वारा शील पारमिता एवं क्षान्ति पारमिता तथा धर्मदान के द्वारा वीर्य पारमिता, ध्यान पारमिता एवं प्रज्ञापारमिता कही गई है । इस प्रसङ्ग में यह बताया गया है कि बोधिसत्त्व को किस प्रकार का दान देना चाहिए ? कैसे प्रतिपत्ति करनी चाहिए ? कैसे चित्त प्रगृहीत करना चाहिए ?

बोधिसत्त्व का आत्मभाव के प्रति अभिनिवेश नहीं होना चाहिए । किसी भी पुण्य के बदले में लाभ एवं सत्कार आदि की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए । अर्थात् आत्मभावाभिनिवेश के कारण दान नहीं देना चाहिए तथा सम्यग् ध्यान के अतिरिक्त अन्य उद्देश्यों से दान नहीं देना चाहिए । क्योकि देय, दाता और प्रतिग्राहक तीनों की पारमार्थिक सत्ता नहीं होती है । इसलिए तथागत ने वस्तु को "अवस्तु" कहा है । इस प्रकार जो वस्तु में पतित न होकर दान आदि क्रिया सम्पन्न करता है, वह अप्रमेय पुण्य स्कन्ध को प्राप्त करता है । अत एव, बोधिसत्त्व–यान में संप्रस्थित बोधिसत्त्व को निमित्त संज्ञा में भी प्रतिष्ठित न होकर दान आदि कर्म करना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दृष्टि से दिए जाने वाले दान आदि तो परिशुद्ध होने के कारण मनोज्ञ विशिष्ट फल की अभिनिष्पत्ति करते हैं । इसके विपरीत मिथ्या दृष्टि से तो नहीं ।

३. रूपकायाप्तिछन्द :

यदि परमार्थतः सत्त्व ही नहीं होते हैं और रूप आदि में प्रतिष्ठित न होकर दान दिया जाए तब तथागत के रूपकाय की प्राप्ति की कामना से बोधिसत्त्व दान आदि क्रिया में कैसे प्रवृत्त होंगे, ऐसी आशंका के समाधान में भगवान् ने यहाँ लक्षण सम्पदा से युक्त रूपकाय की जो देशना की है, वह परमार्थतः तथागत के रूपकाय में रूपाभिमान लक्षणों के विपक्ष का निराकरण है । तथागत के काय को बत्तीस महापुरुष के लक्षणों एवं अस्सी अनुव्यञ्जनों से युक्त जानना चाहिए ।[1] कोई प्रश्न कर सकता है कि यदि सभी लक्षण संपदाएं मृषा ही हैं तो भगवान् ने उन–उन सूत्रों में लक्षण सम्पदाओं को क्यों कहा ? भगवान् ने जिसे लक्षण सम्पद् कहा है, वही अलक्षण सम्पद् है । जो लक्षण सम्पद् कहा गया है, वह परमार्थतः नहीं कहा गया है । मायानिर्मित बुद्ध की भाँति उससे केवल मृषा स्वभाव को ही कहा गया है । क्योंकि लक्षणसम्पद् के प्रति जितने भी अभिनिवेश होते

---

1 (महायानसूत्रसंग्रह) धर्मसंग्रह, पृ. ३३४ ; आलोक, पृ. ५३७–३९ ; अ.वि.सू., पृ. ६३ जायसवाल संस्करण ; महा. व्यु., पृ. ७ (भोट संस्करण) ।

हैं, परमार्थतः उसे ही विपरीत अभिनिवेश कहा गया है । इसलिए अलक्षण सम्पद् को व्यावृत्त्या कहा गया है, ऐसा समझें । इस प्रकार दोनों अन्तों का परिहार कर इसमें चित्त को आरूढ़ करें तथा मायानिर्मित की भाँति लक्षणों से समन्वागत तथागत को देखना चाहिए । इसके द्वारा अपवादान्त का निराकरण किया जाता है, क्योंकि संवृति में तथागत के रूपकाय का अपवाद नहीं होता है ।

४. धर्मकायाप्तिकामताच्छन्द :

धर्मकाय दो प्रकार का होता है– प्रवचन धर्मकाय, अधिगम धर्मकाय । अधिगम धर्मकाय भी दो प्रकार का होता है– ज्ञानहेतुक अधिगम धर्मकाय, पुण्यहेतुक अधिगम धर्मकाय । अनागत काल में पाँच कषायों की अधिकता के कारण लोगों में इस प्रकार की आशंका उत्पन्न हो सकती है कि क्या इस प्रकार का धर्मपर्याय भी अत्यन्त गम्भीर एवं विस्तृत फल को उत्पन्न करेगा ? भगवान् स्वयं कहते हैं[1]– **"भविष्यत् काल में शासन के अन्तिम ५०० वर्षों में सद्धर्म के विप्रलोप काल में भी ऐसे सत्त्व होगें, जो गुणवान्, शीलवान् एवं प्रज्ञावान् होंगे । वे इन सूत्र पदों की देशना होने पर सत्यज्ञान प्राप्त करेंगे ।"** चूँकि पूर्व जन्मों में इन बोधिसत्त्वों ने उपासना आदि द्वारा बुद्धों की सेवा की है तथा बुद्धों के समक्ष कुशल धर्मों का बीजारोपण किया है । अत एव, वे शीलवान्, गुणवान् एवं प्रज्ञावान् कहे गए हैं । धर्मनैरात्म्य एवं पुद्गल नैरात्म्य का अवबोध हो गया है, इसलिए वे प्रज्ञावान् हैं । वे बोधिसत्त्व उस समय न केवल एक बुद्ध की उपासना करेंगे बल्कि अनेक शतसहस्र बुद्धों की उपासना कर कुशल मूल का अवरोपण करेंगे तथा उनके प्रति श्रद्धा एवं चित्त-प्रसाद प्राप्त करेंगे । उन्हें तथागत जानते हैं तथा अपने बुद्ध चक्षु से उन्होंने उन्हें देखा है । वे सभी बोधिसत्त्व अप्रमेय एवं असंख्येय पुण्य स्कन्धों को प्राप्त करेंगे, क्योंकि उन बोधिसत्त्वों में न आत्मसंज्ञा, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा और न ही पुद्गल संज्ञा होती है ।

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, ६वाँ अध्याय ।

शून्यता बोध के कारण वे इनकी सत्ता का प्रहाण करते हैं । उनमें न ही धर्मसंज्ञा होती है और न ही अधर्मसंज्ञा । यदि धर्मसंज्ञा होगी तो वे आत्मग्राह, जीवग्राह, सत्त्वग्राह एवं पुद्गलग्राह से युक्त हो जाएंगे ।

धर्म का ज्ञान हो जाने पर किसी भी व्यक्ति को उस पर आश्रित नहीं होना चाहिए, किन्तु उसके अनुरूप आचरण करते रहना चाहिए । अतएव, भगवान् ने धर्म को बेड़े के समान कहा है-- धर्म का भी उसी प्रकार ग्रहण और प्रहाण करना चाहिए जैसे नदी पार करने के लिए बेड़े का ग्रहण और नदी पार हो जाने पर बेड़े का प्रहाण किया जाता है । सभी धर्मों एवं अधर्मों के प्रति जो सत्य अभिनिवेश है, वह मिथ्या अभिनिवेश है । इसलिए संसार सागर से पार होने के लिए उक्त बेड़े के सदृश, युक्ति से उपपन्न आगम समूह जो धर्मपर्याय हैं, पार पहुँचने के अनन्तर आवश्यक न होने पर, जब उसका भी प्रहाण कर दिया जाता है, तो तैर्थिकों की भाँति अयुक्ति से युक्त उन अधर्मों के बारे में तो कहना ही क्या है । इसलिए **आर्य रत्नकरण्ड नामक महायान सूत्र** में भी कहा गया है[1] – **"भदन्त सुभूते ! कोलोपमं धर्मपर्यायमाजानद्भिर्धर्मा एव प्रहातव्या प्रागेवाधर्मा इति ।"**

प्रश्न यह उठता है कि यदि परमार्थतः सभी धर्म मिथ्या स्वभाव वाले हैं; तब अभिसम्बुद्ध होकर भगवान् द्वारा की गई धर्म देशना भी मिथ्या ही होगी । अतएव, बोधिसत्त्व द्वारा तथागत के ज्ञानहेतुक अधिगम धर्मकाय की प्राप्ति के लिए कामना क्यों की जाए ? संवृति स्वभाव में सम्बोधि, सम्बोध्य, देश्य एवं देशना आदि पर्याय होते हैं । भगवान् ने परमार्थ के अभिप्राय से सभी मिथ्या है– ऐसा कहा । क्योंकि ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसे तथागत ने अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि की तरह जाना है और न कोई ऐसा धर्म है, जिसे तथागत ने देशित किया हो । नैर्माणिक होने से निर्माणकाय को वास्तविक बुद्ध नहीं माना जा सकता और इस काय के द्वारा कोई देशना भी नहीं हुई है, क्योंकि जो देशना हुई है, उसमें कहा

---

1 Toh: 117 Sde bka (Mdo-sde 'Ja' p. 252)

गया है कि कोई भी धर्म, धर्म या अधर्म के रूप में ग्राह्य नहीं है । वह अनभिलाप्य है । वह शब्दातीत है, क्योंकि आर्यजन असंस्कृत से प्रभावित होने के कारण प्रपञ्च से रहित होते हैं । असंस्कृत तो धर्मों का परमार्थ स्वभाव है । इसीलिए **धर्मसंगीति सूत्र** में कहा गया है[1]– **"आनन्द ! जो धर्म अनुत्पन्न, अविनाशी, अप्रतिष्ठित, अविपरिणामी है, वह आर्यसत्य है । आनन्द, तथागत ने इस अभिप्राय से आर्यजनों को असंस्कृत से प्रभावित कहा है ।"** तथागतों का उत्पाद हो अथवा नहीं, वे सदैव निर्विकारी होते हैं,[2] इसलिए उन्हें असंस्कृत कहा गया है । उसका अधिगम करने के कारण आर्य पुद्गल उससे प्रभावित होते हैं, क्योंकि आर्य पुद्गल धर्म तत्त्व के अधिगम से प्रभावित होते हैं, अन्य नहीं ।

पुनः प्रश्न उठता है कि यदि कोई ऐसा धर्म नहीं है, जिसे भगवान् ने सम्यक्सम्बुद्ध के रूप में जाना और न कोई ऐसा धर्म है, जिसे भगवान् ने देशित किया हो, तो बोधिसत्त्व लोग पुण्यहेतुक अधिगम धर्मकाय प्राप्ति की कामना से सद्धर्म को ग्रहण करने में क्यों प्रवृत्त होंगे ? यद्यपि न धर्म ग्राह्य है और न ही अभिलाप्य, तथापि यह असत् नहीं है, वरन् सत् है । अतएव, धर्म को स्वयं अधिगत कर दूसरों के लिए देशना करना निष्फल नहीं होता है । इसके द्वारा महान पुण्य का सम्पादन होता है । स्वयं तथागत कहते हैं कि एक ओर कोई कुलपुत्र या कुलपुत्री असंख्य लोकधातुओं को सप्तरत्न से परिपूर्ण कर उसे तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्धों को दान में दें तो उससे महत् पुण्य का संचय होगा तथा इसके विपरीत, कोई व्यक्ति इस धर्मपर्याय (सूत्र) के चार पदों की एक गाथा को लोगों को सुनाएं और विस्तारपूर्वक प्रकाशित कर दें तो, वह इस कार्य के बल से पहले वाले कार्य से होने वाले पुण्य की अपेक्षा अप्रमेय असंख्येय पुण्यस्कन्ध को प्राप्त करेगा । क्योंकि इसी धर्मपर्याय (सूत्र) से तथागतों, अर्हतों तथा सम्यक्सम्बुद्धों की अनुत्तर सम्यक्सम्बोधि प्रस्फुटित हुई है ।

---

1 अनुत्पादः सत्यमसत्यम अन्ये धर्माः । —Toh: 238 Sde bka (Mdo-sde 'Sha' p. 6)

2 मध्यमकशास्त्रवृत्ति, पृ. १५, बौ.भा.प्रकाशन १९८३ ।

इसी से बुद्ध और भगवान् निकले हैं । जैसे कहा भी गया है[1]– **"अतो निर्जाता हि सुभूते तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामनुत्तरा सम्यक्संबोधिः, अतो निर्जाताश्च बुद्धा भगवन्तः ।"**

इस प्रकार तथागतो का वह पुण्यहेतुक अधिगम धर्मकाय प्रवचन धर्मकाय से उद्भूत है और उस प्रवचन धर्मकाय के चार पदों की एक गाथा की देशना होने पर जब इस प्रकार का बृहत् पुण्यस्कन्ध प्राप्त होता है तो तथागत के पुण्यहेतुक अधिगम धर्मकाय की देशना होने पर कहना ही क्या है । अतएव परमार्थतः अभिसम्बुद्ध नाम का कोई धर्म न होने पर भी संवृति में पुण्यकाय की देशना होने के कारण बोधिसत्त्वों को पुण्य प्राप्ति के लिए प्रवृत्त होना चाहिए, ऐसा अभिप्राय है ।

अनन्तर बारह स्थानों को बारह विपक्षों के प्रतिपक्ष के रूप में क्रमशः जानना चाहिए । वे बारह विपक्ष इस प्रकार हैं ।

१. अभिमान । २. अभिमान न होने पर भी अल्पश्रुत होना । ३. बहुश्रुत होने पर भी हीनालम्बन में मनसिकार करना । ४. हीनालम्बन में मनसिकार भावना का अभाव होने पर भी सत्त्व की उपेक्षा करना । ५. सत्त्व की उपेक्षा न होने पर भी बाह्य शास्त्रों में सानुराग प्रवृत्त होना । ६. उस प्रकार की प्रवृत्ति का अभाव होने पर भी भावनिमित्त के अभिभव के उपाय में कुशल न होना । ७. उपाय कुशल होने पर भी पुण्य सम्भार का संचय न होना । ८. पुण्य संभार का संचय होने पर भी लाभ–सत्कार एवं कौसीद्यवश पिण्ड का आस्वादन करना । ९. उस प्रकार के आस्वादन का अभाव होने पर भी दुःखक्षान्ति न होना । १०. दुःखाधिवासना क्षान्ति होने पर भी ज्ञान संभार का संचय न होना । ११. ज्ञान संभार का संचय होने पर भी आत्मपरिग्रह होना । १२. आत्मग्रह के अभाव में भी अववाद का योग न होना ।

---

1 अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, २९ परिवर्त, पृ. २२९ ; द्र.– वज्रच्छेदिकासूत्र ८वॉं अध्या.

५. भावना के वैशिष्ट्य की प्राप्ति में अभिमान न होना :

जो अनादि काल से दृढ़ आत्मनिवेश के बल पर ऐसा सोचता है कि जिसमें सत्त्वसंज्ञा होती है, वह बोधिसत्त्व नहीं कहा जाता है तो फिर भगवान् ने ऐसी देशना क्यों की– **"मैं तब उस समय वीरदत्त नाम का राजा था । मैं तुम लोगो के लिए धर्म देशना करुंगा "** इत्यादि । किन्तु सत्त्वसंज्ञा आदि न होने का ऐसा अभिप्राय नहीं है । जो ऐसा सोचते हैं, उनके विघ्नभूत अभिमान को दूर करने के लिए **"भावना के वैशिष्टय की प्राप्ति में अभिमान न होना"** स्थान कहा गया है ।

संवृतितः स्रोतआपन्न और सकृदागामी आदि अपनी चर्यानुसार फल प्राप्त करते हैं, किन्तु परमार्थतः सभी आर्य असंस्कृत से प्रभावित होते हैं । इसलिए परमार्थतः न धर्म ग्राह्य है, न ही अभिलाप्य है । स्रोतआपन्न से लेकर अर्हत् तक कोई भी व्यक्ति किसी फल को अपने योगाभ्यास आदि के फल के रूप में ग्रहण नहीं कर सकता, क्योंकि स्वभाव से सभी सत्त्व असंस्कृत प्रभावित हैं और जब वे ऐसा समझते हैं कि– मैंने स्रोतआपत्ति फल या अर्हत् फल प्राप्त कर लिया है, तब उन्हें आत्मग्राह, जीवग्राह, सत्त्वग्राह और पुद्गलग्राह हो जाता है । स्वयं सुभूति कहते हैं[1]– **"भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध ने मुझे अरणाविहारियों में अग्रणी निर्दिष्ट किया है । मैं अर्हत् वीतराग हूँ । फिर भी मुझमें यह भाव नहीं आता है कि मैं अर्हत् वीतराग हूँ, क्योंकि यदि मुझमें ऐसा अभिनिवेश हो जाता तो भगवान् मुझे कभी भी अरणाविहारियों में श्रेष्ठ निर्दिष्ट नहीं करते ।"** अरणा का अर्थ है क्लेश से रहित । यह एक समाधि विशेष भी है । क्लेश एवं ज्ञेयावरण से विमुक्त जिस

---

1. अहमस्मि भगवंस्तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अरणाविहारिणामग्र्यो निर्दिष्टः । अहमस्मि भगवन् अर्हत् वीतरागः । न च मे भगवन्नेवं भवति– अर्हन्नस्म्यहं वीतराग इति । सचेन्मम भगवन्नेवं भवेत् – मया अर्हत्वं प्राप्तमिति, न मां तथागतो व्याकरिष्यत– अरणाविहारिणामग्रयः । –वज्रच्छेदिकासत्र, ९वाँ अध्याय ।

अर्हत् को आलम्बन कर दूसरों में क्लेश का उत्पाद नहीं होता है, उसे अरणाविहारी कहते हैं ।[1]

सबसे निम्न कोटि के धर्मनैरात्म्य के अवबोध में अप्राप्त रसास्वाद वाले स्रोतआपन्न श्रावकों में भी **मैं** एवं **मेरा** अभिनिवेश नहीं होता है तो फिर, दोनों नैरात्म्यों का अधिगम करने वाले तथा सभी आवरणों का प्रहाण करने वालों के बारे में तो कहना ही क्या है । अर्थात् **"मैंने स्रोतआपत्ति फल प्राप्त कर लिया"** ऐसा वह नहीं सोचता है । उपलक्षण मात्र कहे जाने से यहाँ सभी अभिमानों के प्रहाण को बताया गया है । परमार्थतः संस्कृत एवं असंस्कृत दोनों प्रकार के फल को भी अप्राप्य कहा गया है । संस्कृत तो क्षणिक है तथा उत्पाद के अनन्तर ही विनष्ट हो जाता है । स्थिति के अभाव में किसी के द्वारा किसी भी प्रकार फल प्राप्त नहीं किया जाएगा । असंस्कृत तो अभावरूप होने के कारण केवल अनुत्पन्न है । वह शशविषाण की भाँति प्राप्य नहीं है, क्योंकि अप्राप्त अवस्था से भिन्न नहीं होता है ।

६. बुद्धोत्पाद की आराधनता :

परमार्थतः यदि प्राप्य एवं प्रापक कोई भी नहीं होता है तो, पूर्व में बोधिसत्त्व की अवस्था में भगवान् ने तथागत अर्हत् सम्यक्सम्बुद्ध दीपंकर से धर्म कैसे ग्रहण किया ? यदि धर्म का ग्रहण न किया हो तब, धर्मग्रहण के अभिलाषी हम लोगों द्वारा तथागत के उत्पाद की आराधना क्यों होगी ? जो ऐसी कल्पना करते हैं, उनकी विघ्नभूत अल्पश्रुति को स्पष्ट करने के लिए **"बुद्धोत्पाद की आराधनता"** नामक छठवें स्थान को कहा गया है।

परमार्थतः प्राप्य एवं प्रापक रूप से कोई भी धर्म ग्रहण नहीं होता है, क्योंकि सभी धर्म स्वभावतः शान्त हैं, ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है । अतएव, ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसे तथागत ने तथागत अर्हत्

---

1 अरणा इति यस्य समाधेः प्रभावात् परेषां संताने स्वपरव्यवधानार्थेन रणयन्तीति रणाः क्लेशा न जायन्ते, सः अरणासमाधिः, तद्विहारिणां मध्ये अग्रतायां निर्दिष्टः सन् निर्दिष्टस्य अचित्ततामिति विभक्तिपरिणामेन योज्यम् । –आलोकटीका, पृ. २९३ ।

सम्यक्सम्बुद्ध दीपंकर के समक्ष ग्रहण किया हो । तथागत शाक्यमुनि ने सम्बोधि प्राप्त करने के लिए दीपंकर बुद्ध से कोई उपदेश ग्रहण नहीं किया था । अतएव, सम्बोधि प्राप्ति में न तो कोई धर्म ग्रहण किया गया और न ही यह अभिलाप्य है । फिर भी तथागत के आनुभाव से नाना पद समूह जिसमें अवभासित होते हैं– ऐसी ज्ञानोत्पत्ति मात्र को ग्रहण किया गया है, ऐसा उपचारित किया जाता है । इसलिए श्रुतिपर्येषण फलयुक्त है । अर्थात् बोधिसत्त्वों को श्रुतिपर्येषण काल में बुद्धोत्पाद की आराधनता होनी चाहिए ।

७. क्षेत्र परिशुद्धि प्रणिधान :

प्रश्न यह उठता है कि यदि कर्म और क्रिया आदि परमार्थतः नहीं होते हैं तो बोधिसत्त्व लोग बुद्धक्षेत्र की परिनिष्पत्ति के लिए प्रणिधान क्यों करते है ? जो इस प्रकार की कल्पना करते हैं, उनके हीन आलम्बन में मनसिकार भावना को विघ्नों से रहित करने के लिए **"क्षेत्र परिशुद्धि प्रणिधान"** नामक सातवें स्थान का अभिधान किया गया है ।

भगवान् ने सूत्रों में बोधिसत्त्वों की क्षेत्रपरिशुद्धि सम्पद् की देशना की है और कहा कि वे बहुत से क्षेत्र व्यूह होंगे । किन्तु उनके विपरीत इसी सूत्र में भगवान् ने उन्हीं क्षेत्रव्यूहों को अव्यूह भी कहा, जो परमार्थिक देशना है तथा शून्यता का प्रतिपादन भी करता है । परमार्थतः अवयवी स्वभाव अथवा परमाणु संचय नाम का कोई भी व्यूह नहीं होता है । उनका अभाव ही होता है । फिर भी, स्वप्न में उपलब्ध क्षेत्रव्यूह की भाँति अविचाररमणीय मात्र संवृति में उनकी सत्ता होती है । इसलिए उन्हें क्षेत्रव्यूह कहा जाता है । अतएव, बोधिसत्त्वों को ऐसे चित्त का उत्पाद करना चाहिए जो किसी भी वस्तु में प्रतिष्ठित न हो ।

८. सत्त्व परिपाचना :

प्रश्न उठता है कि यदि सत्त्व स्कन्धों के अतिरिक्त नहीं हैं तो क्या वे अभिन्न नहीं हैं ? अन्यथा बोधिसत्त्व सत्त्व परिपाक हेतु क्यों प्रवृत्त

होगें ? ऐसा जो सोचते हैं, उनके सत्त्वोपेक्षा रूप विघ्नों को दूर करने के लिए **"सत्त्व परिपाचना"** नामक आठवें स्थान को बतलाया गया है ।

जो यह समझते हैं कि सुमेरु पर्वत के समान विशाल महाकाय वाले व्यक्ति का आत्मभाव भी सुमेरु की भाँति हो तो उसका यह आत्मभाव भी महान होगा, वे मिथ्या ज्ञान में अभिनिवेश करते हैं । इसी आत्मभाव को ही तथागत ने अनात्मभाव कहा है; क्योंकि परमार्थतः इस भाव का अभाव ही होता है । इसलिए संवृतितः यह आत्मभाव कहलाता है । बोधिसत्त्वों को आत्मभाव नहीं होता है, क्योंकि उनमें आत्मसंज्ञा नहीं होती है । जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपने आपको पर्वतराज नहीं समझता, उसी प्रकार सम्भोगकाय बुद्ध भी अपने को पूर्णता की अवस्था में नहीं समझते, क्योंकि यह अवस्था सभी विकल्पों से परे होती है । वास्तव में सम्भोगकाय में सभी प्रकार के आस्रवों एवं मलों का सर्वथा अभाव रहता है, क्योंकि यह किसी संक्लिष्ट हेतु–प्रत्ययों पर निर्भर नहीं है ।

९. बाह्य शास्त्रों के प्रति अनुराग न होना :

सम्प्रति इस धर्मपर्याय(सूत्र) के द्वारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अर्थों का अभिधान किए जाने से बाह्यशास्त्रों के प्रति अभिनिविष्ट जनों का उनमें अनुराग विक्षेप को दूर करने के लिए **"बाह्य शास्त्रों के प्रति अनुरागरहित होना"** नामक नवें स्थान का अभिधान किया गया है ।

यदि कोई स्त्री या पुरुष सप्त रत्नों से सभी लोकधातुओं को परिपूर्ण कर दें, जो लोकधातुए उतनी हैं, जितनी कि गंगा नदी में बालुकण हैं और उन्हें तथागतों, अर्हतों एवं सम्यक्संबुद्धों को दान में दे दें, तो वह उससे महान पुण्य राशि प्राप्त करेगा । किन्तु दूसरी ओर, यदि कोई स्त्री या पुरुष सद्धर्म के विप्रलोप काल में विनेय जनों के हित के लिए इस धर्मपर्याय (प्रज्ञापारमितासूत्र) की चार पदों वाली एक गाथा का प्रकाशन करें अथवा वाचन करें तो इस दूसरे कार्य का पुण्य पहले वाले कार्य के पुण्य की अपेक्षा अप्रमेय पुण्यराशि को अर्जित करेगा । जिस भू–भाग में इस सूत्र को प्रकाशित किया जाएगा, वह भू–भाग सभी देवों एवं मनुष्यों के लिए

एक चैत्य की भाँति पवित्र हो जाएगा । पुनः जो उस समय अर्थात् सद्धर्म के विप्रलोप काल में भी इस सम्पूर्ण सूत्र को मन में धारण करेंगे, वाचन करेंगे तथा दूसरों के लिए प्रकाशित करेंगे, उनके द्वारा अर्जित पुण्य-परिमाण के बारे में तो कहना ही क्या है । ऐसे लोग परम आश्चर्य से युक्त सुगति को प्राप्त होंगे । ऐसे पवित्र भू-भाग पर शास्ता स्वयं निवास करते हैं अथवा उनका प्रतिनिधि कोई विज्ञ गुरु निवास करता है ।

धर्मदान को सभी दानों में श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि यह उस पृथिवी प्रदेश को पवित्र बनाता है, जहाँ धर्मोपदेश होता है तथा उस व्यक्ति को भी पवित्र बनाता है, जो धर्म का प्रकाशन करता है । धर्मदान से जो पुण्य प्रकट होते हैं, वे अत्यन्त महान होते हैं, क्योंकि परमार्थ में कोई भी धर्म उपदिष्ट नहीं हुआ है । यह दान क्लेशों से रहित है अर्थात् यह दान किसी भी क्लेश का हेतु नहीं हो सकता है, बल्कि यह सभी क्लेशों का निराकरण करता है । इसलिए इसका पुण्य अन्य लघुतर पुण्यों से बढ़कर है । इसका उद्देश्य महापुरुष के लक्षणों को प्राप्त करना न होकर सम्यक्संबोधि प्राप्त करना है । साधारण गुणों के अभ्यास के फलस्वरूप व्यक्ति को दुःख ही मिलते हैं, क्योंकि साधारण दान के फल के रूप में व्यक्ति को ऐसे सुख प्राप्त होते हैं, जिन्हें शरीर द्वारा ही भोगा जा सकता है और आगामी जन्मों में शरीर धारण करना वस्तुतः दुःख ही है । परन्तु धर्मोपदेश करने के परिणाम स्वरूप होने वाले पुण्यों की सहायता से हम असंख्य देहो का परित्याग कर सकते हैं । इस धर्मपर्याय को प्रज्ञापारमिता कहते हैं । इसे इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि तथागत ने इसे सभी प्रज्ञाओं में श्रेष्ठ कहा है । प्रज्ञापारमिता का तात्पर्य परम ज्ञान, सम्यक् सम्बोधि, एवं निर्वाण से है । महायान सूत्रों एवं शास्त्रों में शून्यता, धर्मता, तथता, भूतकोटि, आदि शब्द प्रज्ञापारमिता के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं ।

१०. सत्त्व-भाजनलोक को पिण्डरूपेण ग्रहण कर विनाश-योग :

इस प्रकार धर्मनैरात्म्य की विस्तार से देशना किए जाने पर भी जो आदिकर्मिक जन ऐसा सोचते हैं कि कैसे धर्मनैरात्म्य की भावना की

जाए ? वे भावनिमित्त को परिभूत करने में उपाय कुशल नहीं होते हैं । उन्हें उपाय कुशल योग्य बनाने हेतु दशवें स्थान को कहा गया है ।

इसमें दो प्रकार के उपायों द्वारा एकानेक स्वभाव से रहित परमाणु का अवबोध कर धर्मनैरात्म्य की भावना कही गई है । वे दो उपाय इस प्रकार हैं- तनूकरण उपाय, निराभासकरण उपाय । **"यावत् पृथिवीरजो भवेत्"** इससे एकस्वभाव से रहित परमाणु का अवबोध होने के कारण इसे तनूकरण उपाय कहा गया है । जो पृथिवी रजकण हैं, वे परमार्थतः तथागत के द्वारा अरज कहे गए हैं । अविचाररमणीय मात्र में ही उनकी सत्ता होती है, इसलिए वे रजकण कहे जाते हैं । अनेक स्वभाव से रहित का अवबोध होने के कारण निराभास उपाय कहा गया है ।

एकानेक स्वभाव से रहित परमाणु के बारे में और अधिक जानकारी हेतु प्रस्तुत टीका का अवलोकन करें या फिर विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि, तत्त्वसंग्रह पञ्जिका, प्रमाण वार्तिक आदि प्रामाणिक ग्रन्थों का अवलोकन करें । इस प्रकार परमाणुओं का युक्तिपूर्वक पृथग् पृथग् विचार करने पर अवबोध होता है । इसलिए लोकधातुओं को अनेक स्वभाव से रहित निःस्वभाव रूप में जाना जाता है । भाजनलोक एवं सत्त्वलोक एकानेक स्वभाव से रहित निःस्वभाव ही है । इसलिए उन्हें तथागत ने परमार्थतः अधातु ही कहा है ।

११. तथागत का पूजा सत्कार :

सम्प्रति जो बोधिसत्त्व लोग पुण्य सम्भार की प्रतिपत्ति में अत्यन्त उपकारी होने के कारण भगवान् की पूजा करते हैं, किन्तु भगवान् का वह अविनाशी काय उनके पुण्य सम्भार को परिपूर्ण नहीं करता है, क्योंकि वे बोधिसत्त्व सही रूप से मनसिकार में प्रवृत्त नहीं होते हैं, जिसके कारण पुण्य का संचय नहीं हो पाता है । अतः पुण्य संचय हेतु ग्यारहवें स्थान को कहा गया है ।

तथागत की पूजा सत्कार करते समय तथागत को लक्षणसम्पद् से नहीं देखना चाहिए, क्योंकि परमार्थतः वे सभी लक्षण अलक्षण कहे गए

है । इसलिए उन्हें धर्मता में देखना चाहिए । इसके बारे पूर्व में **'रूपकायाप्तिकामता'** स्थान में कहा जा चुका है । फिर भी, इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं होता है, क्योंकि पूर्व रूपकायाप्तिकामता के प्रसङ्ग में उसके अभाव की देशना की गई है । सम्प्रति इस स्थान में तथागत के पूजा सत्कार के प्रसङ्ग को कहे जाने से दोनों में भिन्नता हैं ।

१२. काय एवं चित्त परिश्रान्त होकर वीर्य से निवृत्त होने से प्रारब्ध का अप्रारम्भ तथा लाभ-सत्कार से निरपेक्षता :

इस प्रकार सभी धर्मों के नैरात्म्य के अवबोध का अभिधान किए जाने पर भी काय एवं प्राण (जीवन) के प्रति आसक्त होकर जो लाभ-सत्कार में उद्यम करते हैं तथा जो कौसीद्य, लाभ-सत्कार एवं पिण्डपात में अनुरक्त होते हैं, उन्हें उस अनुरक्ति से हटाने के लिए बारहवें स्थान का अभिधान किया गया है ।

यदि कोई स्त्री या पुरुष प्रतिदिन आत्मभाव (काय) का उतनी ही बार त्याग करता है जितने गंगा नदी में बालुकण हैं और अपना काय उतने कल्पों के लिए त्याग देता है, जितने गंगा नदी में बालुकण हैं तथा दूसरी ओर, कोई व्यक्ति इस धर्मपर्याय के चार पदों की एक गाथा को दूसरों के समक्ष प्रकाशित करता है, तो पूर्व की अपेक्षा बाद वाले के द्वारा बहुतर, अप्रमेय पुण्यराशि प्राप्त करेगा । इसलिए काय एवं प्राण की अपेक्षा न कर सर्वात्मना चित्त द्वारा इस धर्मपर्याय में प्रयत्न करना उचित है । इसलिए सुभूति ने कहा[1]- "यह आश्चर्य है भगवन्, सुगत, जो यह धर्मपर्याय तथागत ने भली भाँति उन प्राणियों के हित के लिए उपदेशा है, जो महायान में अग्रसर हैं तथा जो श्रेष्ठयान अर्थात् बोधिसत्त्वयान में आरूढ़ हैं । इस उपदेश से मुझे ज्ञान उत्पन्न हो गया है । इस प्रकार का धर्मोपदेश मैंने पहले कभी नहीं सुना था । वे बोधिसत्त्वगण जो इस

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, १४वाँ अध्याय ।

धर्मोपदेश को सुनकर भूतसंज्ञा अर्थात् सम्यक् ज्ञान का लाभ करेंगे, वे सुगति को प्राप्त करेंगे ।"

यह धर्मपर्याय (सूत्र) सभी पारमिताओं में श्रेष्ठ है । इसके लक्ष्यों को प्राप्त करना कठिन है और इसकी शिक्षाएं असाधारण हैं, इसलिए इसके अर्थ एवं विषयों को जानना दुष्कर है । यह प्रगूढ़ और गम्भीर है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार के विपर्यास के लिए अवकाश नहीं है, ग्राहक-ग्राह्य अथवा अस्तित्व-नास्तित्व सम्बन्धी कोई भी मिथ्या दृष्टि इस सिद्धान्त में नहीं हो सकती, इसीलिए बोधिसत्त्व त्रिविध मानसिक भयों से मुक्त रहता है।

उपर्युक्त कारणों से प्रज्ञापारमिता के अभ्यास का पुण्य अन्य सभी प्रकार के पुण्यों से श्रेष्ठतर एवं विशिष्ट है । इसलिए तथागत ने संवृतितः भूतसंज्ञा का उपदेश किया है । भविष्य काल में जो बोधिसत्त्व इसे ग्रहण करेंगे, उनमें आत्मसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा आदि नहीं होंगी, क्योंकि संज्ञायुक्त होने पर सम्यग् ज्ञान उत्पन्न नहीं होता । अतएव भगवान् ने उसी को असंज्ञा कहा है, क्योंकि बुद्धगण सभी संज्ञाओं का परित्याग कर चुके होते हैं । भगवान् ने उस परम पारमिता अर्थात् असंज्ञाभाव (शून्यताभाव, प्रज्ञातत्त्व) का उपदेश किया, जो पारमिता के नाम से ज्ञात है । इसलिए आत्मसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा आदि से रहित वे बोधिसत्त्व इस सूत्र की देशना किए जाने पर भयभीत नहीं होंगे । तथागत की यह प्रज्ञापारमिता अपरिमाणा ही है, इसलिए यह परम पारमिता कही जाती है । इस प्रकार के श्रेष्ठ, पूर्णता, सम्यक् सम्पूर्णता, पारमितारूपी धर्मपर्याय के प्रति यत्न न कर लाभ और सत्कार में आसक्त होकर प्रमाद में स्थित हो तो, यह लज्जा की बात है ।

१३. दुःखाधिवासन-सामर्थ्य :

इस प्रकार लज्जा स्थान को कहे जाने पर भी जो दुःख को सहन नहीं कर पाते हैं और उसके कारण वीर्य प्रारम्भ में उत्साहित नहीं होते हैं, उन्हें असह्य दुःख से विरत करने के लिए इस स्थान का अभिधान किया गया है । इसके अन्तर्गत निम्नलिखित बातें कही गई हैं- वह क्षान्ति कैसी

होती है ? किस लक्षण से जानी जाती है ? उसका आकार क्या है ? आकार कैसा है ? तथा असह्य आधार का प्रतिपक्ष क्या है ?

सभी धर्मों का स्वभाव अनुपलब्ध है । परमार्थतः जो क्षान्ति है, उसे ही अक्षान्ति कहा गया है, क्योंकि उसकी कोई सत्ता नहीं होती है । इसलिए क्षान्ति का अभ्यास करने वाला कोई सत्त्व नहीं होता और कोई ऐसा आधार नहीं होता, जिस पर क्षान्ति की जाएं, क्योंकि परमार्थ में कोई भी सत्त्व नहीं होते हैं । परमार्थ में वह क्षान्ति, जो क्षान्ति का अभ्यास करता है, जिस पर क्षान्ति करता है, जो क्षम्य है तथा जो क्षान्ति है, ऐसे सभी धर्मो की अनुपलब्धता के कारण वे अपारमिता कहे जाते हैं । अतएव, तथागत ने उन्हें अपारमिता कहा है ।

यदि सभी धर्म अनुपलब्ध हैं तो बोधिसत्त्व किसलिए क्षान्ति का उत्पाद करें ? ऐसी आशंका होने पर तथागत ने कहा[1]– **"जब कलिंग राजा ने मेरे अंग प्रत्यंगों को काटा था, तब मुझमें किसी भी प्रकार की कोई संज्ञा नहीं थी । भूतकाल के पिछले जन्मों में जब मैं क्षान्तिवादी ऋषि था, तब भी मुझमें किसी प्रकार की कोई संज्ञाएं नहीं थी ।"** इसी से सभी धर्मो की अनुपलब्धता परिलक्षित होती है । वह क्षान्ति भी दो प्रकार की होती है । १. परकृत निरन्तर दुःखविषयक, २. परकृत असह्य दुःखविषयक । मैं (तथागत) अपने अनुत्तर, लोकोत्तर ज्ञान से भूतकाल के ५०० जन्मों को जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि जब कलिंग राज ने मेरे अंग प्रत्यंगों को काटा था तब मैं क्षान्तिवादी ऋषि था । उस समय भी मुझमें आत्मसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा, पुद्गलसंज्ञा आदि नहीं थीं । असह्यता का आधार तीन प्रकार का दुःख है तथा उनका प्रतिपक्ष इस प्रकार है ·

१. सांसारिक दुःख– तथागत जब क्षान्तिवादी ऋषि थे तब भी उनमें आत्मसंज्ञा, जीवसंज्ञा, सत्त्वसंज्ञा, पुद्गलसंज्ञा आदि नहीं थीं । अतएव,

---

[1] वज्रच्छेदिकासूत्र, १४ वाँ अध्याय ।

बोधिसत्त्वों महासत्त्वों को भी संज्ञाओं का परित्याग करके अनुत्तर सम्यक्संबोधि में चित्त का उत्पाद करना चाहिए । किसी भी रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य आदि विषयों में प्रतिष्ठित होकर दान नहीं देना चाहिए।

२. मिथ्या सत्त्वप्रवृत्तिदुःख– बोधिसत्त्वों को इस दृष्टि से सभी सत्त्वों के हित में दान का परित्याग करना चाहिए, क्योंकि सत्त्वों की पारमार्थिक सत्ता नहीं होती है । वे वास्तव में तथागत द्वारा असत्त्व कहे गए हैं । तथागत वास्तविकता के अनुरूप देशना करते हैं । तथागत सत्यवादी हैं, वस्तु की जैसी सत्ता है वैसी देशना करते हैं अन्यथा नहीं । तथागत मिथ्या भाषण भी नहीं करते हैं । जैसे सूत्र में स्वयं कहा गया है[1]– **"भूतवादी सुभूते तथागतः, सत्यवादी तथावादी अनन्यथावादी तथागतः, न वितथवादी तथागतः ।"**

३. भोगरहित दुःख– बोधिसत्त्व यदि वस्तु में पतित होकर दान का परित्याग करता है तो वह अंधकार में पड़े कुछ भी न देखने वाले पुरुष की भाँति है और यदि बोधिसत्त्व वस्तु में प्रतिष्ठित न होकर दान का परित्याग करता है तो वह चक्षुष्मान् पुरुष के समान सूर्य के प्रकाश में नाना रूपों को देखने वाले के समान है ।

१४. ध्यान रसास्वादन से विरति :

क्षान्ति में समर्थ होने पर भी जो विनेय जन समाधि का रसास्वाद करते हैं तथा उसी में आसक्त होते हैं एवं ज्ञान सम्भार की पूर्णता हेतु महायान धर्म में प्रयत्न नहीं करते हैं, उनके ज्ञानसम्भार की विरहितता को दूर करने के लिए इस स्थान को कहा गया है ।

इस स्थान के द्वारा ध्यान रसास्वादन से विरत होने तथा सद्धर्म के प्रति प्रयत्न करने के लिए पाँच प्रकार के विशिष्ट गुणों का अभिधान किया गया है । वह इस प्रकार है– १. तथागत का अभिप्राय एवं विशिष्ट पुण्य

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, १४ वाँ अध्याय ; देखिए– दीघनिकाय, जिल्द ३, पृ. १०४ ।

का संग्रह, २. धर्म, ३. उसकी प्रतिपत्ति हेतु स्तुति, ४. देव आदि द्वारा सत्कार, ५. पाप परिशोधन ।

जो कोई इस धर्मपर्याय को अर्थात् प्रज्ञापारमिता को ग्रहण करेगा तथा इसका धारण, वाचन एवं अध्ययन करेगा या फिर दूसरों के लिए प्रकाशित करेगा, उन्हें तथागत अपने बुद्ध ज्ञान द्वारा जानते हैं । वे सभी सत्त्व अपरिमित पुण्य राशि को प्राप्त करेंगे तथा अचिन्त्य, अतुल्य पुण्य राशि से लाभान्वित होंगे । इस प्रसंग में सूत्र में देशना की गई है कि किस प्रकार की प्रतिपत्ति से कौन से पुण्यों की प्राप्ति होती है । जिनकी दृष्टि में आत्म, जीव, सत्त्व और पुद्गल हैं, ऐसे हीनाधिमुक्ति वाले इस धर्मपर्याय का श्रवण नहीं कर सकेंगे एवं जिन्होंने सभी प्राणियों के हित में बोधि प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय नहीं किया है, उनके द्वारा भी इस प्रज्ञापारमिता का श्रवण, वाचन, प्रकाशन एवं स्वाध्याय सम्भव नहीं है ।

जिस भू–भाग पर इस धर्मपर्याय की देशना की जाती है, वह भू–भाग समस्त देवों, मनुष्यों एवं असुरों के लिए पूजनीय हो जाता है । वह स्थल वन्दनीय तथा प्रदक्षणीय हो जाता है । वह भू–भाग एक चैत्य (मन्दिर) की भाँति पवित्र हो जाता है । जैसे सूत्र में भी कहा गया है[1]– **"अपि तु खलु पुनः सुभूते, यत्र पृथिवीप्रदेशे इदं सूत्रं प्रकाशयिष्यते, पूजनीयः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति ।"** तथा **"इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य भाष्येत वा सम्प्रकाश्येत वा, स पृथिवीप्रदेशश्चैत्यभूत्यभूतो भवेत् ।"** इस पुण्य के अर्जन से वे प्राणी अपने पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों को प्रभावहीन कर देंगे और बुद्धत्व प्राप्त करेंगे । इतना ही नहीं, भगवान् ने कहा कि– सद्धर्म की उन्नति के समय किये गये इस प्रकार के कार्य तथा सद्धर्म के विप्रलोप काल में किये गये इस प्रकार के कार्यों से होने वाले पुण्यों की तुलना करने पर पहले वाले कार्य से प्राप्त होने वाला पुण्य इस दूसरे कार्य

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, १२वाँ तथा १५वाँ अध्याय ।

से होने वाले पुण्य की अपेक्षा नगण्य है । पहले वाले कार्य का पुण्य दूसरे वाले कार्य के पुण्य का सौवां, करोड़वां, शतसहस्र करोड़वां भाग भी नहीं हो सकता । उसकी कोई संख्या नहीं है । वह इतना लघु और अल्प है कि कोई अंश, गणना, उपमा, समानता अथवा तुलना हो ही नहीं सकती । जैसे अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता में कहा गया है[1]– **तस्मात्तर्हि कौशिक, यः कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमां प्रज्ञापारमिताम् .... संख्यामपि कलामपि गणनामपि उपमामपि औपम्यमपि उपनिसामपि उपनिषदमपि न क्षमते ।"**

प्रज्ञापारमिता का अभ्यास करने से सभी आवरणों का परिशोधन होता है । अभिज्ञा की उपलब्धि होती है । विभिन्न लोको में (आध्यात्मिक) सम्पत्ति की पूर्णता, मनोज्ञ एवं महान परिलाभ प्राप्त होता है । उपर्युक्त सभी कर्मफल इस धर्म की प्रतिपत्ति के कारण उद्भूत होते हैं । जैसे कहा गया है[2]–

सद्धर्मधारणं चैव पात्रापादनताश्रये ।
शोधनावरणानां च क्षिप्राभिज्ञात्वमेव च ॥ ४०
विचित्रलोकसम्पत्तिविपाकः सुमहान्नपि ।
कर्माणि एतानि धर्मे प्रतिपत्तेर्मतानि ॥ ४१

जिस प्रकार अत्यन्त सारयुक्त न्यग्रोध आदि वृक्ष का बीज अत्यन्त लघु होते हुए भी उसकी शाखाएं, पल्लव एवं फल उस बीज में उपलब्ध नहीं होने पर भी उसमें निहित होते हैं ।[3] उसी प्रकार यह धर्मपर्याय भी अत्यन्त लघु होते हुए भी गम्भीर एव अचिन्त्य धर्मस्कन्धों को कहने वाला

---

1 अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितासूत्र, ३ परिवर्त, पृ. ३६, मिथिला संस्करण ।

2 त्रिशतिका–प्रज्ञापारमिताकारिकासप्ततिः, ४०–४१ का., ति. सं. संस्करण ।

3 वटबीजं यथा सूक्ष्मं सहकारसमन्वितम् ।
शाखामूलफलोपेतं महावृक्षविधायकम् ॥ –चित्तविशुद्धिप्रकरणम् ४८ का.

है । अतएव, इससे उत्पन्न होने वाले फल भी अचिन्त्य एवं अपरिमित होते हैं, ऐसा समझना चाहिए । जैसे कहा भी गया है[1] :

एवं अचिन्तिया बुद्धा बुद्धधम्मा अचिन्तिया ।
अचिन्तिये पसन्नानं विपाको होति अचिन्तियो ॥

१५. अभिसमयकाल में 'अहम्' विकल्प का वियोग :

इस प्रकार ध्यान रसास्वाद का निराकरण कर अभिसमय (ज्ञान) के समीप होने पर जो बोधिसत्त्व आत्मविशेष का अवलोकन कर मैं सम्यक्संबोधि मार्ग मे सम्यक् आरूढ़ हूँ **"मैं सत्त्वों को निर्वाण प्राप्त कराऊंगा"** ऐसा सोचते हैं, उन्हें आत्मग्राह से विरत कर इस अभिसमयकाल में कैसे स्थित रहना चाहिए ? कैसे अग्रसर होना चाहिए ? तथा कैसे चित्त का योग करना चाहिए ? इसे बतलाने हेतु पन्द्रहवें स्थान **"अभिसमय काल में 'अहम्' विकल्प का वियोग"** को अभिहित किया गया है ।

जब कोई कुलपुत्र या कुलपुत्री प्रज्ञापारमिता का अभ्यास करता है तो वह समझता है कि **"मैं बोधिसत्त्व हूँ"**. अथवा **"मैं धर्म का सम्यक् आचरण करता हूँ ।"** तो इस प्रकार की धारणा को मन का विकार कहा जाता है, क्योंकि वास्तव में बोधिसत्त्व नाम की कोई सत्ता नहीं होती । अतएव चित्त को सर्वथा अप्रतिष्ठित होना चाहिए । यदि बोधिसत्त्व को सत्त्वसंज्ञा, आत्मसंज्ञा, पुद्गलसंज्ञा हो जाए तो उसे बोधिसत्त्व नहीं कहा जा सकता है । ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो बोधिसत्त्वयान में आरूढ़ हो । इसलिए बोधिसत्त्वयान के पथिक बोधिसत्त्व को सभी आत्मग्राहो से विरत होकर वस्तु में अभिनिविष्ट न होकर इस प्रकार का चित्तोत्पाद करना चाहिए कि **"मुझे सभी सत्त्वों को निरुपधिशेष निर्वाणधातु प्राप्त कराकर उन्हें मुक्त करना है ।"**

---

1 महावंश. १७.५६ तथा ३१.१२५ ; व.सू. (पादटिप्पणी) पृ. ६० ।

१६. अववाद पर्येषण :

जो पुद्गल इस प्रकार का विचार करते हैं कि यदि बोधिसत्त्वयान में स्थित होने वाला कोई धर्म ही नहीं है, तो शास्ता दीपङ्कर से उपदेश प्राप्त कर भगवान् शाक्यमुनि को अनुत्तर सम्यक्संबुद्ध का लाभ कैसे हुआ ? यदि अभिसम्बुद्ध की सत्ता ही नहीं होती है तो अभिसमय (ज्ञान) की कामना हेतु अववाद पर्येषण की आवश्यकता ही क्या है ? ऐसा उन विनेय जनों को अववाद वियोग से रहित अर्थात् अववाद में योग करने के लिए सोलहवें स्थान **"अववाद पर्येषण"** का अभिधान किया गया है ।

जब तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध दीपङ्कर ने मेरे (तथागत गौतम बुद्ध के) बारे में भविष्यवाणी की थी[1]– **"तुम माणव, भविष्य काल में शाक्यमुनि नाम के तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध होंगे ।"** उस समय मैंने इस परम चर्या (दुष्कर बोधिचर्या) का अभ्यास पूर्ण नहीं किया था, क्योंकि यदि मैं उस वक्त सम्बोधि प्राप्त कर लेता तो दीपङ्कर मेरे बारे में भविष्यवाणी नहीं करते ।

वास्तव में कोई भी ऐसा धर्म नहीं है, जिसके कारण तथागत शाक्यमुनि को तथागत अर्हत् सम्यक्संबुद्ध की उपस्थिति में अनुत्तर सम्यक्संबोधि का लाभ हुआ था । तथागत शब्द भूततथता का समानार्थक है । **दिङ्नाग** ने भी कहा है[2]–

"प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वयं सा तथागतः ।"

अर्थात् प्रज्ञापारमिता ज्ञान ही तथागत है, जो अद्वय है । **प्रज्ञाकरमति** ने भी कहा है[3]– **"परम उत्तमः अर्थः परमार्थः, अकृत्रिमं वस्तुरूपं,**

---

1 "भविष्यसि त्वं माणव अनागतेऽध्वनि शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति ।" –वज्रच्छेदिकासूत्र १७वाँ अध्याय ।

2 प्रज्ञापारमितापिण्डार्थ, १ कारिका

3 बोधिचर्यावतारपञ्जिका, पृ. १७१

यदधिगमात् सर्वावृतिवासनानुसंधिक्लेशप्रहाणं भवति । सर्वधर्माणां निःस्वभावता, शून्यता तथता भूतकोटिः धर्मधातुरित्यादिपर्यायाः ।"

परमार्थतः बोधि नाम का कोई धर्म ही नहीं है, जो अधिगत किया जा सकें । यदि बोधि प्राप्त की जा सकती है तो इस दशा में वह अवास्तविक ही होगी अर्थात् कोई कहे कि– तथागत ने सम्यक्संबोधि को पूर्णरूपेण जान लिया है, वह मिथ्या भाषण करता है, वह असत् को ग्रहण कर तथागत का त्रुटिपूर्ण प्रतिनिधित्व करता है । क्योंकि ऐसा कोई धर्म है ही नहीं, जिसके द्वारा तथागत को अनुत्तर बोधि की प्राप्ति हुई हो । परन्तु क्या यह बोधि लाभ की सम्भावना का निषेध नहीं है । ऐसा नहीं है, क्योंकि जो बुद्ध द्वारा अधिगत है, वह न सत्य है और न मृषा । सभी धर्म स्वलक्षणरहित हैं । उनमें स्वलक्षणों का अभाव है, अतएव सभी धर्म मृषा नही कहे गए हैं । सभी धर्म बुद्ध धर्म है अतएव उनका स्वभाव अभाव स्वरूप है । सूत्र में कहा गया है कि धर्म देशना नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि धर्मदेशना वस्तुतः धर्मकाय से अभिन्न है और इसका अपना स्वलक्षण नहीं । धर्मकाय होने के कारण बुद्ध को महापुरुष के समान कहा जाता है । उपर्युक्त सभी बातें पारमार्थिक स्वरूप के निदर्शन है । इसलिए भगवान् की देशना को दो सत्यों में विभाजित किया जाता है । संवृति सत्य और परमार्थ सत्य । जैसे कहा भी गया है[1] :

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोकसंवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थतः ॥

संवृति पदार्थो के असत् स्वरूप का आरोपण करती है । संवृति निःस्वभाव एवं सत्य आभासित पदार्थो को स्वभाव से एवं सत्यतः प्रतिभासित करती है । किन्तु यह अत्यन्त मिथ्या है । लोकदृष्टि से ही इसकी सत्यता है, अतः इसे लोकसंवृति सत्य भी कहते हैं । परमार्थ सत्य अनिर्वचनीय एवं ज्ञान का गोचर नहीं है । वह स्वसंवेद्य है, उसे स्वभाव

---

1 –मध्यमकशास्त्रकारिका, २४/८

लक्षणादि से व्यक्त नहीं किया जा सकता । परमार्थ सत्य की किसी प्रकार देशना नहीं हो सकती, क्योंकि जिसके द्वारा देशित होना है, जिसके लिए देशना करनी है और जिसकी देशना करनी है, ये सभी परमार्थतः अनुत्पन्न है । इसलिए अनुत्पन्न धर्मों से ही अनुत्पन्न धर्मों को बताया जा सकता है । फिर भी **आचार्य नागार्जुन** कहते हैं कि व्यवहार के अभ्युपगम के बिना परमार्थ की देशना अत्यन्त अशक्य है और परमार्थ के अधिगम के बिना निर्वाण का अधिगम अशक्य है ।

जैसे कहा गया है[1] :

व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते ।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते ॥

यहाँ तक अभिसमय ज्ञान के हेतुओं का वर्णन किया गया है । अनन्तर फल का निर्देश किया जाएगा ।

फलव्यवस्था :

१७. अभिसमय :

यदि तथागत ने उसी काय को अभावरूप कहा है, तब अभिसमय (ज्ञान) प्राप्त बोधिसत्त्व लोग कैसे विचार करेंगे कि– **"मैंने बोधिसत्त्व अभिसमय (ज्ञान) प्राप्त कर लिया है, सम्प्रति मैं सत्त्वों को मुक्त कराऊंगा ।"** ऐसे दूसरों के परम विकल्प का परीक्षण कर अभिमान रहित **"अभिसमय"** (सत्रहवें स्थान) की यहाँ देशना की गई है ।

भगवान् कहते हैं कि जो अभिमानी बोधिसत्त्व ऐसा कहता है कि– **"मैं सत्त्वों को निर्वाण तक ले जाऊंगा । मैं बोधिसत्त्व हूँ"** वह बोधिसत्त्व भी वास्तव में (परमार्थ में) बोधिसत्त्व नहीं है, क्योंकि ऐसा कोई धर्म नहीं है, जिसे बोधिसत्त्व की संज्ञा दी जा सकें । इसलिए तथागत ने दोनों नैरात्म्यों में अवतारण के लिए सभी धर्मों को निरात्मक, निःसत्त्व,

---

1 –म.शा. २४/१०

निर्जीव एवं पुद्गलरहित भाषित किया है । फलतः धर्मधातु को ठीक से समझने में अकुशल होना, सत्त्वों को निर्वाण तक ले जाने का विचार तथा बुद्धि द्वारा बुद्ध क्षेत्रों को प्राप्त करने का विचार आदि भ्रान्ति कल्पना मात्र है ।

१८. बुद्धभूमि–पर्येषण :

वह बुद्ध भूमि भी सात सम्पदाओं से संगृहीत है ।

१. क्षेत्र परिशुद्धि संपद्

२. अनुत्तरालोक परिशुद्धि संपद्

३. अनुत्तरज्ञान परिशुद्धि संपद्

४. पुण्यस्कन्ध में आधिपत्य संपद्

५. काय संपद्

६. वाक् संपद्

७. चित्त संपद्

१. यदि बोधिसत्त्व नाम का कोई धर्म नहीं है तो बुद्ध क्षेत्र के निष्पादन के लिए कौन प्रयत्न करेगा, ऐसी आशंका का निराकरण करने के लिए बुद्ध क्षेत्र परिशुद्धि संपद् कही गई है । यदि कोई बोधिसत्त्व कहे कि– **"मैं बुद्ध क्षेत्रों का सृजन करूंगा"** तो वह भी उपर्युक्त की भाँति बोधिसत्त्व कहलाने योग्य नहीं है, क्योंकि जिसमें इस प्रकार का अभिमान होता है, उसमें आत्मसंज्ञा होती है । परमार्थतः बुद्ध क्षेत्रों की कोई वास्तविक सत्ता नहीं होती, इसलिए तथागत ने **'अव्यूह'** कहा है । किन्तु इसके विपरीत जो बोधिसत्त्व यह मानता है कि **"धर्म निरात्मक है, धर्म निःसत्त्व है"** उसको तथागत अर्हत् सम्यक्संबोधि ने बोधिसत्त्व, महासत्त्व

कहा है ।[1] जो व्यक्ति सत्त्वों तथा बोधिसत्त्वों के क्षेत्रों का चिन्तन करते हुए उन्हें अनात्म जानता है, चाहे वह साधारण व्यक्ति हो या फिर आर्य, वह बोधिसत्त्व कहलाता है । यह एक प्रकार से बाह्य फल है ।

२. यदि बोधिसत्त्व नाम का कोई धर्म नहीं है तब तथागत भी बोधिसत्त्व से उत्पन्न होने के कारण आलोक-परिशुद्धि एवं ज्ञानपरिशुद्धि से युक्त नहीं होंगे ? क्योंकि यदि बोधिसत्त्व ही नहीं हैं तो वे कैसे होंगे ? अहेतु सदैव सत्ता आदि के दोष का कारण होता है । अतएव, जो परिषद् इस प्रकार की कल्पना करती हैं, उनके लिए दोनों अनुत्तर आलोक एवं ज्ञान परिशुद्धि संपद् को कहा गया है ।

परमार्थतः बोधिसत्त्व नाम का कोई धर्म नहीं है, फिर भी संवृतितः जो पुण्य एवं ज्ञान संभार को पूर्ण कर परिशुद्ध ज्ञान एवं आलोक से तथागत होता है, वह अविचाररमणीय स्कन्धमात्र स्वभाव वाला बोधिसत्त्व होता है, अन्यथा कोई तथागत नहीं होगा । तथागत में विशुद्ध आलोक की विशेषता हेतु प्रज्ञाचक्षु विद्यमान होता है । समासतः चार प्रकार के चक्षु होते हैं- रूपग्राहक, परमार्थ सत्यग्राहक, संवृति सत्यग्राहक, ज्ञेयसर्वाकार ग्राहक । रूपग्राहक भी दो प्रकार का है- कर्मफल स्वरूप एवं भावना-फल स्वरूप । ये पाँचो प्रकार के चक्षु क्रमशः इस प्रकार हैं- कर्म फल=मांसचक्षु, भावना फल=दिव्यचक्षु, परमार्थ सत्यग्राहक=प्रज्ञाचक्षु, संवृति सत्यग्राहक=धर्मचक्षु, ज्ञेयसर्वाकार ग्राहक=बुद्धचक्षु । स्थूल विषय होने के कारण सर्वप्रथम रूपग्राहक को कहा गया है । परमार्थ के बल से संवृति ज्ञान का परिष्कार होता है, इसलिए परमार्थ सत्यग्राहक को पहले कहा गया तथा संवृति सत्यग्राहक को पश्चात् कहा गया है । पुद्गल एवं धर्म नैरात्म्य को विषय बनाने वाला प्रज्ञाचक्षु कहा गया है । संवृति में धर्म मात्र प्रतीत

---

1 द्रष्टव्य- यः सुभूते बोधिसत्त्वो निरात्मानो धर्मा निरात्मानो धर्मा इत्यधिमुच्यते स तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वो महासत्त्व इत्याख्यातः । - वज्रच्छेदिकासूत्र, १७वाँ अध्याय ।

होता है, न कि पुद्गल, ऐसा पुद्गल शून्य है । धर्ममात्र को विषय बनाने वाला धर्मचक्षु कहा गया है । सभी ज्ञेयों का सर्वाकार ज्ञान बुद्धचक्षु है । यद्यपि धर्मों को देखा नहीं जा सकता, तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि बुद्ध के पास चक्षु ही नहीं है । बुद्ध के पास पाँच प्रकार के चक्षु हैं, जिनके द्वारा वह विभिन्न प्रकार की दोषपूर्ण अवस्थाओं को देखता है । इस प्रकार तथ्य संवृति में पाँच चक्षुओं की देशना से विशुद्ध आलोक को बताया गया है ।

३. त्रैकालिक चित्त एवं चैतसिक चित्तधारा है, इसलिए त्रिकाल विषय है । उस विषय को जानना ही ज्ञान कहा जाता है न कि आलोक । उसमें सरागचित्त एवं वीतरागचित्त इत्यादि संक्लेश एवं व्यवदान अनेक रूपों को जानना चाहिए । गंगा नदी के बालुकणों की संख्या के बराबर जितनी लोकधातुएं हैं तथा उन लोकधातुओं में जितने सत्त्व रहते हैं, तथागत अपने ज्ञान से उनके नाना आशयों तथा चित्तधाराओं को जानते हैं । नाना प्रकार की कल्पनाएं सम्यक्स्मृति में नहीं होती है । इनकी परिवर्तनशील व्यवस्था निराधार है, इसलिए इन्हें मिथ्या कहा गया है । परमार्थतः अतीत आदि चित्त अनुपलब्ध होते हैं ।

४. यदि त्रैकालिक चित्त नहीं होता है तब पुण्यस्कन्ध भी नहीं होगा, क्योंकि वह चित्त पर आधारित होता है । अतएव, तथागत के पुण्यस्कन्ध में आधिपत्य सम्पद् के सम्पादन के लिए बोधिसत्त्व को कैसे प्रयत्न करना चाहिए ? इस विषय पर विचार करके पुण्यस्कन्ध में आधिपत्य संपद् को कहा है ।

जब कोई कुलपुत्री अथवा कुलपुत्र त्रिसाहस्रमहासाहस्र लोकधातु समूह को सप्तरत्नों से परिपूर्ण कर उन्हें तथागतों अर्हतों सम्यक्संबुद्धों को दान में देता है और उससे जब उसको महान पुण्य प्राप्त होता है, तो ऐसी स्थिति में असंख्य एवं अपरिमित कल्पों तक अनेक शतसहस्र दुष्कर कृत्यों की भावना करने वाले तथागत का पुण्यस्कन्ध में आधिपत्य क्यों नहीं होगा । इसलिए परमार्थतः पुण्यस्कन्ध न होने पर भी संवृतितः पुण्यस्कन्ध होता है, इसलिए बोधिसत्त्वों को इसमें छन्द एवं प्रणिधान करना चाहिए । वह

पुण्यस्कन्ध जो सम्यक् ज्ञान का आधार है, उसे मिथ्या नहीं कहा जा सकता है । अतएव इस प्रकार के पुण्य के महत्त्व को बतलाने हेतु यह उदाहरण प्रस्तुत किया गया है ।

५. यदि पुण्यस्कन्ध नहीं होता है तब तथागत के जिन अनुव्यंजन–काय संपत्ति तथा लक्षणकाय संपत्ति दोनों को अनुत्तर पुण्य से उत्पन्न माना गया है, वे भी हेतु के अभाव में नहीं होंगे । अतएव तथागत के दोनों प्रकार की काय सम्पद् के निष्पादन के लिए तथागत के रूपकाय सम्पद् को कहा गया है ।

जिस प्रकार पुण्यस्कन्ध परमार्थतः नहीं होते हैं तथैव रूपकाय भी अनुत्पन्न ही हैं । इसलिए परमार्थतः तथागत को उनके रूपकाय की परिनिष्पत्ति के द्वारा नहीं देखा जाता है । किन्तु संवृतितः मायानिर्मित बुद्ध की भांति रूपकाय भी होते हैं । अतएव, पुण्यस्कन्ध से उसकी उत्पत्ति स्वीकार्य है । बोधिसत्त्वों को मायानिर्मित बुद्ध के उस प्रकार की रूपाधिमुक्ति से युक्त प्रतिपत्ति के लिए छन्द एवं प्रणिधान करना चाहिए । पूर्व अधिमुक्तिचर्या भूमि में रूपकायाप्तिकामता के प्रसंग में तथा तथागत के पूजा एवं सत्कार के प्रसंग में सभी अभिनिवेशों का प्रहाण बतलाया गया था, सम्प्रति शुद्धाध्याशय भूमि में तथागत के रूपकाय सम्पद् की परिनिष्पत्ति के लिए स्थित (अग्रसर) जिन बोधिसत्त्वों में अभिनिवेश होता है, उनके उस दुर्विकल्प के निराकरण के लिए इस स्थान का निर्देश किया गया है । अतः यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं होगा ।

धर्मकाय की निष्पत्ति नाना प्रकार के लक्षणों के प्रकट होने में अर्थात् रूपकाय में नहीं है, यह धर्मकाय महापुरुष की लक्षणसम्पद् अर्थात् महापुरुष के बत्तीस लक्षणों और अस्सी प्रकार के अनुव्यंजनों में भी नही है, क्योंकि धर्मकाय की निष्पत्ति सभी प्रकार के कायों की अभावता में है । ये दोनों प्रकार की पूर्णताएं अर्थात् रूपकाय परिनिष्पत्ति एवं लक्षण सम्पद्, धर्मकाय के विपरीत नहीं हैं । किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि ये दोनों प्रकार की पूर्णताएं तथागत से पृथग् हैं । सूत्र में **सम्पद्** शब्द

का पुनः प्रयोग इस बात का सूचक है कि उक्त दोनों पूर्णताओं के सहअस्तित्त्व द्वारा उनके परस्पर विरोध का अतिक्रमण हो चुका है ।

६. यदि रूपकाय की परिनिष्पत्ति से तथागत को न देखा जाए तो भगवान् द्वारा धर्म देशना भी होगी, क्योंकि वह रूपकाय से संगृहीत है । अतएव बोधिसत्त्वों को तथागत के वाक्सम्पत्ति के निष्पादन के लिए कैसे योग करना चाहिए ? इस हेतु वाक्संपद् को कहा गया है । परमार्थतः वाचक, वाच्य एवं वचन तीनों की सत्ता न होने के कारण तथागत को ऐसा विचार नहीं होता है कि–"**मैंने धर्म की देशना की ।**" अन्यथा विपरीत अभिनिवेश होने के कारण वे सर्वज्ञ नहीं कहे जाएंगे । बुद्ध की भाँति उनकी देशना भी अविद्यमान है । सूत्र में भी कहा गया है कि– "धर्मदेशना नाम की कोई वस्तु नहीं है, क्योंकि धर्मदेशना वस्तुतः धर्मकाय से अभिन्न है और इसका अपना स्वलक्षण नहीं है ।" संवृति में वाचक, वाच्य एव वचन तीनों की सत्ता होती ही है ।

७. चित्त सम्पत्ति के सात भेद हैं :

१. स्मृत्युपस्थान
२. अभिसम्बोधि
३. महाधर्मार्थ प्रज्ञप्ति
४. महाववादार्थप्रज्ञप्ति
५. धर्मकाय परिग्रहण
६. संसार एवं निर्वाण में स्थित न होना
७. प्रस्थिति परिशुद्ध

अनागत काल में इस प्रकार का गम्भीर धर्म कुदृष्टि जाल से आच्छादित हो जाने के कारण कैसे सफल होगा ? जो परिषद् इस प्रकार अविश्वास करती है, उसके अविश्वास को दूर करने के लिए चित्त सम्पत्ति के अन्तर्गत **स्मृत्युपस्थान चित्त सम्पत्ति** का अभिधान किया गया है ।

भगवान् ने **वज्रच्छेदिकासूत्र** में स्वयं कहा है कि[1]– **"अनागत काल में, अन्तिम समय में, अन्तिम युग में, अन्तिम पाँच सौ वर्षो में, सद्धर्म के प्रलोप काल में ऐसे गुणवान्, शीलवान् एवं प्रज्ञावान् सत्त्व होंगे, जो इस धर्मपर्याय की देशना किए जाने पर भूतसंज्ञा प्राप्त करेंगे ।"** भगवान् ने उनको न सत्त्व कहा और न असत्त्व, क्योंकि परमार्थतः वे असत्त्व कहे गए हैं । अविचाररमणीय मात्र में स्थित होने के कारण वे सत्त्व कहे जाते हैं । अन्यथा संवृति में भी यदि सत्त्वों की सत्ता न हो तो वे सत्त्व नहीं कहे जाएंगे ।

यदि भगवान् द्वारा देशित कोई भी धर्म नही है तब अभिसम्बुद्धत्व भी नहीं होगा तथा तथागत की अभिसम्बोधि की निष्पत्ति के लिए बोधिसत्त्वों का यत्न भी व्यर्थ हो जाएगा । जो ऐसा सोचते हैं कि जो लोग अभिसम्बोधि धर्म की अभिलाषा करेंगे, उनके लिए देशना भी होती है, उनके लिए अभिसम्बोधि का अभिधान किया गया है । जिस प्रकार परमार्थतः कोई धर्म–देशना नहीं होती है उसी प्रकार अभिसम्बुद्ध भी नहीं होता है । ऐसा पूर्व में कहा जा चुका है । किन्तु संवृति में भगवान् की धर्मदेशना, सम्बोधि तथा उसकी प्रतिपत्ति सभी विद्यमान होते हैं । इसलिए बोधिसत्त्वों को तथ्यसंवृति में अनुत्तर सम्यक्संबोधि की निष्पत्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।

पूर्व **अववाद–पर्येषण** काल में अभिसम्बोधि को परमार्थ मानने वाले बोधिसत्त्वों के विकल्पों का निराकरण किया गया था । सम्प्रति **बुद्धभूमि–पर्येषण** काल में दूसरों के इस प्रकार के विकल्पों का परिहार किया जाता है । अतएव, यहाँ पुनरुक्तिदोष नहीं होता है । इसके अतिरिक्त उस (अभिसम्बोधि) के द्वारा अधिगत सभी धर्म पुद्‌गलनैरात्म्य के तुल्य है । इसमें पूर्ण शुद्धि की साम्यवस्था है । यह स्वलक्षण है । यही अनुत्तर उपाय है, क्योंकि सभी शुभ धर्म इसमें आकर पूर्णत्व प्राप्त करते हैं ।

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, ६वाँ अध्याय ।

अभिसम्बोधि के अतिरिक्त अन्य कोई सम्पत्ति (पूर्णता) नहीं है । जब कोई ऐसा धर्म नहीं है, जो सास्रव (अकुशल) धर्म कहा जा सकें, तब कुशल धर्म भी नहीं होंगे । अतएव, यह बोधिधर्म सद्धर्म कहलाता है, क्योंकि यही कुशल धर्म है ।

भगवान् की वह सम्बोधि कैसे जानी जाएगी ? ऐसी परीक्षा करके **महाधर्मार्थ–प्रज्ञप्ति** की देशना हेतु इस सम्पत्ति का अभिधान किया गया है । भगवान् ने स्वयं कहा है[1]– "सुभूति यदि कोई स्त्री या पुरुष त्रिसाहस्र महासाहस्र लोकधातु में सप्तरत्नों का इतना ऊँचा ढ़ेर लगा दें, जितना कि पर्वतराज सुमेरु है और इसे तथागतों, अर्हतों सम्यक्संबुद्धों को दान में दे दें, तथा दूसरी ओर कोई स्त्री या पुरुष इस प्रज्ञापारमिता की चार पंक्तियों की एक गाथा को लेकर दूसरों के लिए प्रकाशित कर दें, तो इन दोनों प्रकार के कार्यों में दूसरे कार्य के परिणाम स्वरूप होने वाले पुण्य की तुलना में पहले कार्य से होने वाला पुण्य नगण्य है । दोनों कार्यों में कोई भी तुलना नहीं हो सकती है ।" इस पर विस्तार पूर्वक पूर्व में कहा जा चुका है ।

इस प्रकार महार्थधर्म प्रज्ञप्ति हेतु से भगवान् की चित्तसम्पत्ति को अनुत्तर सम्यक्संबोधि स्वभाव वाली कहा जाता है । यह बोधि प्राप्ति में सहायक है । अतएव, यह धर्मरत्न सभी रत्नो में श्रेष्ठ है, क्योंकि इस प्रकार की सम्यक्संबोधि के अभाव में इस प्रकार का अनुत्तर धर्म नहीं कहा जा सकता है । जहाँ तक संख्या, जाति और सम्बन्ध की बात है, विश्व में कोई भी ऐसी वस्तु नहीं है, जो परीक्षोपरान्त इससे तुलनीय हो । इस सम्बोधि को भी तथ्यसंवृति स्वभाव ही देखना चाहिए, न कि परमार्थतः ।

लोकोत्तर ज्ञान में स्थिति के समय अत्यन्त समाहित होने से भगवान् में सत्त्वसंज्ञा नहीं होती है । यह महा आश्चर्य नहीं है । सत्त्वों के लिए

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, ८वाँ अध्याय ।

विमुक्ति के उपदेश के समय असमाहित अवस्था में विशुद्ध लौकिकज्ञान की स्थिति में भी सत्त्व आदि संज्ञाएं नहीं होती है । ऐसी देशना कर, अववाद महार्थ प्रज्ञप्ति हेतु से तथागत के अनुत्तर चित्तसम्पत्ति ज्ञान को बतलाने के लिए **अववाद महार्थ प्रज्ञप्ति चित्तसम्पत्ति** का अभिधान किया गया है ।

तथागत को कभी भी यह विचार नहीं होता है कि मैंने सत्त्वों को मुक्त किया है, क्योंकि यदि कोई ऐसा सत्त्व होता जिसे तथागत मुक्त करते, तो तथागत को आत्मग्राह, सत्त्वग्राह, जीवग्राह और पुद्गलग्राह हो गया होता और वे तथागत न कहलाते । परमार्थतः ऐसे किसी भी सत्त्व की सत्ता होती ही नहीं है, जिसे निर्वाण तक ले जाया जाता हो । अगर ऐसे किसी सत्त्व की सत्ता मानी जाए, तो यह अग्राह्य वस्तु को धारण करने के तुल्य होगा और वह आत्मग्राह से युक्त माना जाएगा । इसीलिए तथागत ने सत्त्व को असत्त्व एवं आत्मग्राह को अग्राह कहा है । परन्तु मूर्खों ने इसे पकड़ रखा है, अतएव 'वे बालपृथग् जन कहे जाते हैं ।

यदि पृथग् जन की सत्ता भी नहीं होती है तो लक्षणों एवं अनुव्यञ्जनों से अलंकृत तथागत का कायसम्पद् कैसे मान्य होगा ? चूँकि पृथग् जन करुणामूलक बोधिचित्त का उत्पाद कर जब पारमिता में प्रयत्न करते हैं तो लक्षणों एवं अनुव्यञ्जनों से अलंकृत तथागत काय वाले हो जाते हैं । पुनः उन्हीं पृथग् जनो की सत्ता न मानने पर उनके अभाव में मूल का भी अभाव हो जाएगा, उस अवस्था में तथागत का उस प्रकार का कायसम्पद् कैसे मान्य होगा ? परिषद् में स्थित जो अनल्पज्ञान का संचय करने वाले रूपादि में भावाभिनिवेश के कारण ऐसा सोचते हैं, उन सत्त्वों के लिए **धर्मकाय परिग्रहण नामक चित्तसम्पत्ति** को कहा गया है ।

यदि मात्र लक्षण सम्पद् से तथागत का प्रभेद होता है तो अभिधान का हेतु समान होने के कारण चक्रवर्ती राजा भी तथागत के लक्षणों से समन्वित क्यों नहीं कहा जाएगा ? रूपकाय के द्वारा तथागत का दर्शन नहीं होता है, क्योंकि तथागत धर्मकाय हैं । लक्षण समान होते हुए भी तथागत को मात्र लक्षण सम्पद् के द्वारा नहीं जाना जा सकता है । जैसा कि

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता[1] में कहा गया है- "स्थानस्थोत्तप्तपूर्णत्व से निष्पन्न होने के कारण भगवान् की लक्षण सम्पद् विशिष्ट होती है" न कि चक्रवर्ती राजा की । इसलिए उसे तथागत नहीं कहा जाता है । महापुरुष के बत्तीस लक्षणों की प्राप्ति पुण्यों के विपाक से होती है, किन्तु धर्मकाय की निष्पत्ति का कारण पुण्यों का विपाक नहीं होता है, क्योंकि धर्मकाय का स्वरूप प्रज्ञा है । वह पुण्यों से सर्वथा पृथग् है ।[2]

तथागत तो समस्त भावों के स्वरूप को यथावत् रूप में जानते हैं । धर्मकाय स्वरूप तथागत को बाल पृथग्जन नहीं देख सकते हैं । वे केवल तथागत के रूपकाय को देखते हैं और शब्द का श्रवण करते हैं । तथागत को उस प्रकार से नहीं देखना चाहिए । चूँकि जो तथागत के रूप को देखता है और उनके द्वारा कथित शब्दो का अनुगमन करता है, वे सब मिथ्या प्रयास करते हैं । बुद्ध को धर्मता से देखना चाहिए तथा धर्मकाय का अनुगमन करना चाहिए । जैसे **वज्रच्छेदिकासूत्र** में कहा गया है[3]–

ये मां रूपेण चाद्राक्षुर्ये मां घोषेण चान्वयुः ।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जनाः ॥
धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः ।
धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम् ॥

यदि परमार्थतः कोई भी धर्म नहीं होता है और धर्मता को भी नहीं जाना जा सकता है तो तुम उच्छेदवादी हो जाओगे तथा इस कारण से तथागत के अभाव में अप्रतिष्ठित निर्वाण भी सिद्ध नहीं होगा । ऐसी आशंका करने वालों के समाधान के लिए **"संसार एवं निर्वाण में स्थित न होना"** नामक चित्तसम्पद् कही गई है । जो बोधिसत्त्व बोधिसत्त्वयान में

---

1 स्थानस्थोत्तप्तपूर्णत्वेन निष्पत्तेः द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणपरिशुद्धिः । –आलोक, पृ. २९९

2 देशस्थतराणि बुद्धानां लक्षणानि । उत्तप्ततराणि संपूर्णतराणि चेत्येष तेषां विशेषः । –अभि. को., ३/९६ ।

3 वज्रच्छेदिकासूत्र, २६वाँ अध्याय ।

आरूढ़ होता है, वह किसी धर्म का उच्छेद अथवा विनाश नहीं सोचता है, क्योंकि वह धर्मता की यथास्थिति का अवबोध करता है । अविचाररमणीयतया हेतु प्रत्ययों से सभी धर्मों की यथावत् उत्पत्ति का अभ्युपगम करता है । अतः महाकरुणा से तथ्यसंवृति स्वरूप निर्माण (काय) आदि में आधिपत्य प्राप्त करके भगवान् बुद्ध भी विनेयों को उनके अनुकूल उपाय की देशना करने के कारण निरवच्छन्न रूप से संसार में अवतरण के प्रवाह को प्रदर्शित करते हैं । इसलिए किसी भी पुण्य अथवा उसके फल का विनाश नहीं होता है । यही भगवान् का अप्रतिष्ठित निर्वाण है ।

यदि कोई ऐसा सोचे कि– 'इस प्रकार यदि संसार में भगवान् की प्रवृत्ति स्वीकार करेंगे तो वे भी सांसारिक हो जाएंगे ।' इसके उत्तर में **"संसार में प्रतिष्ठित न होना"** नामक सम्पत्ति का अभिधान किया गया है । बोधिसत्त्वों को अनुत्पत्तिक एवं निरात्मक धर्मों में क्षान्तिलाभ करना चाहिए, जिससे अपरिमित पुण्य का संचय होता है । बोधिसत्त्वों को पुण्य का अर्जन करना चाहिए, किन्तु पुण्य स्कन्धग्राही नहीं होना चाहिए । इसलिए भगवान् ने कहा कि– 'पुण्य का उद्ग्रहण करें, क्योंकि सत् एवं असत् रूप में उत्पन्न न होने के कारण सभी धर्म अनुत्पन्न हैं ।' जैसे **लंकावतारसूत्र** में कहा गया है[1]– **सदसतोरुत्पत्तिविरहितत्वान्महामते, सर्वधर्माः अनुत्पन्नाः ।** संवृतितः भावों की उत्पत्ति स्वीकार्य है, यथा[2]– **भावा जायन्ते संवृत्या परमार्थेऽस्वभावकाः ।** अल्प कुशल मूल वाले व्यक्ति भी यदि सांसारिक दुःख नहीं भोगते है तो फिर अनुत्पत्तिक धर्म में क्षान्तिलाभ करने वाला बोधिसत्त्व सांसारिक दुःख क्यों भोगेगा । जबकि, अनुत्पत्तिक धर्म में क्षान्तिलाभ करने वाले बोधिसत्त्व में पाप एवं

---

1 लंकावतारसूत्र, २७/१, १२७ श्लो0

2 आलोकटीका, (उद्धृत) पृ. ४०८ ।

मोहरूपी दुःख हेतु नहीं होते हैं । हेतु के अभाव में दुःख के भय का स्पर्श सम्भव नहीं है ।

प्रश्न यह उठता है कि मात्र बहुतर पुण्यस्कन्ध का उत्पाद कर लेने पर रूपधातु में विचरण करने वाले सत्त्वों की भाँति वे बोधिसत्त्व क्या संसार में होंगे ही नहीं ? अथवा कैसे बहुतर पुण्यस्कन्ध के उत्पाद मात्र से संसार में प्रतिष्ठित नहीं होंगे ? ऐसी आशंका होने पर कहा गया है कि जो बहुतर पुण्यस्कन्ध का उत्पाद तो कर लेते हैं, किन्तु विपरीत रूप से अभिनिवेश करते हैं, वे पुण्यस्कन्ध के ग्राहक सभी विपरीत संक्लेशो का मूलतः प्रहाण नहीं करते हैं । अतः उसे संसार में व्यवस्थित किया जाता है । अनुत्पत्तिक धर्म में क्षान्तिलाभ करने के कारण बोधिसत्त्व को पुण्यस्कन्ध के प्रति सत्यतः अभिनिवेश नहीं होता है । इसलिए यह सर्वसंक्लेशमूल संमोह का प्रहाण करने के कारण संसार में प्रतिष्ठित नहीं होता है । भगवान् ने अन्य सूत्रों में जो कहा है कि– **"बोधिसत्त्वों को पुण्यस्कन्ध का ग्रहण करना चाहिए"** और इस सूत्र में जो देशना की है कि **"पुण्यस्कन्धों का परिग्रहण नहीं करना चाहिए ।"** क्या इन दोनों देशनाओं में विरोधाभास नहीं है ? वास्तव में उसे इस प्रकार समझना चाहिए कि बोधिसत्त्वों को पुण्य का संचय करना चाहिए, क्योंकि पुण्यों का न तो विनाश होता है और न ही उच्छेद, परन्तु उस पुण्य के विपाक का ग्रहण नहीं करना चाहिए अर्थात् उसमें अभिनिवेश नहीं करना चाहिए ।

प्रस्थिति परिशुद्धि भी तीन प्रकार की होती है :

१. ईर्यापथ द्वारा प्रस्थिति

२. सत्त्व–भाजनलोक में अधिपतित्व प्राप्ति द्वारा प्रस्थिति

३. असंक्लेश प्रस्थिति

यदि तथागत को धर्मकाय के रूप में देखें, न कि रूपकाय के रूप में, तब भगवान् के चार ईर्यापथ, जन्म एवं अभिनिष्क्रमण आदि की आगम–प्रसिद्धि से विरोध कैसे नहीं होगा ? जो ऐसा सोचते हैं उनके शंका के निराकरण के लिए प्रस्थिति परिशुद्ध संपद् के अन्तर्गत **ईर्यापथ प्रस्थिति** को अधिकृत करके कहा गया है ।

यहाँ पर ईर्यापथ उपलक्षण मात्र कहा गया है इसलिए जन्म, अभिनिष्क्रमण आदि भी इसके द्वारा लक्षित है । भगवान् के जो ईर्यापथ आदि आगमों में कहे गये हैं, उनका शब्दशः अभिनिवेश करना ही विपरीत अभिनिवेश है । अतएव, उन्हें बालपृथग् जन कहा गया है, क्योंकि वे तथागत के उपदेशों के अर्थों को नहीं जानते हैं । तथागत रूपकाय से प्रभावित नहीं है, बल्कि ज्ञानपरिशुद्ध है अर्थात् ज्ञानकाय से प्रभावित हैं । ज्ञानकाय अमूर्त होता है, अतः संवृति में भी वहाँ गमन आदि सम्भव नहीं होता है । गमन आदि क्रियाएं रूप, स्कन्ध के अवस्था–विशेष से प्रभावित होती हैं । इसलिए उन्हें बुद्ध के निर्माणकाय में आश्रित कर कहा गया है, न कि ज्ञानकाय को आधार बनाकर, क्योंकि ज्ञानकाय में संवृतितः एवं परमार्थतः गमनादि सम्भव नहीं होते हैं ।

प्रश्न यह उठता है कि यदि तथागत में गमन आदि क्रियाए नहीं होती है तो तथागत किस प्रकार **"गतः"** से व्यपदिष्ट होते हैं । अर्थात् **"तथा गतः इति तथागतः"** । यहाँ भी शब्दशः अभिनिवेश होने से 'वे मेरे द्वारा कहे गए अर्थों को नहीं जानते', ऐसा समझना चाहिए । तथागत जो वचन है वह गमन आदि से प्रभावित नहीं है, बल्कि अधिगम से प्रभावित है । गतः शब्द का यहाँ अधिगम अर्थ हैं । जैसी वस्तुतत्त्व की स्थिति होती है, उसे उसी रूप में अधिगत करता है, इसलिए तथागत है । अथवा जिस प्रकार पूर्व के बुद्धों ने वस्तुतत्त्व को यथावद् अविपरीत रूप से अधिगत किया वैसे ही भगवान् बुद्ध ने जाना तथा अधिगत किया, इसलिए तथागत हैं । सम्यक् पूर्णरूप से अवबोध होने के कारण सम्यक्संबुद्ध कहा जाता है । इसके विपरीत जडस्वभाव होने के कारण रूपकाय को वैसा नहीं कहा जाता है ।

तथागत का जो निर्मित रूपकाय एवं चित्त स्वभावकाय है, वह भी एक और अनेक स्वभावों से रहित है । अतः मायानिर्मित बुद्ध की भाँति मृषा है, ऐसा बतलाने हेतु **भाजन एवं सत्त्वलोक की अभाव–प्रस्थिति** को अधिकृत करके कहा गया है । यहाँ भी द्विविध उपाय से एकानेक स्वभावरहितता के अवबोध से नैरात्म्य को कहा गया है । जैसे कहा भी

गया है[1]– **"यश्च खलु पुनः सुभूते, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यावन्ति त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजांसि, तावतां लोकधातूनामेवंरूपं मषिं कुर्यात् यावदेवमसंख्येयेन वीर्येण तद्यथापि नाम परमाणुसंचयः, तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु बहुः स परमाणुसंचयो भवेत् ?"** इससे एकस्वभावरहितता का अवबोध कर तनूकरण उपाय बताया गया है । यह व्याख्या पूर्व की भाँति है अर्थात् इसके बारे में पहले कहा जा चुका है ।

प्रश्न यह उठता है कि– यदि परमाणु दिग्भाग भेद से सिद्ध नहीं हैं तो वे कैसे संचित भी होंगे ? एकत्वग्राहक निवृत्ति के उपाय मात्र के लिए परमाणुओं के प्रभेद से भगवान् ने "संचय" कहा है, परमार्थतः प्रतिष्ठित होने से नहीं । अन्यथा सर्वत्र परमाणु संचय प्रत्यक्ष रूप में प्रसिद्ध होने के कारण भगवान् परमाणु संचय नहीं कहते । न कहने पर भी इस प्रकार प्रतीत होता है । प्रश्न यह उठता है कि– यदि परमाणु संचय नहीं हैं तो भगवान् सुभूति से ऐसा क्यों पूछते कि– क्या वह बहुत बड़ा परमाणु संचय होगा ? जिसे यहाँ परमाणु संचय कहा गया, उसे ही भगवान् ने असंचय कहा है । पूर्व, उत्तर आदि दिग्भाग भेद रूप में प्रस्थित वे परमाणु स्वभावतया असिद्ध हैं । अतः तत्त्वतः उनका संचय युक्त नहीं है । एकत्वग्रहण के निराकरण मात्र के लिए कहा गया है, इसलिए परमाणु संचय कहा जाता है । परमाणुओं के अनेक स्वभाव से रहितता के अवबोध से निराभासकरण उपाय को कहा गया है ।

सम्प्रति **सत्त्वलोक के अभाव–प्रस्थिति** को अधिकृत करके **"भाषितस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरिति सः"** इत्यादि कहा गया । भाजनलोक पूर्व में कहा जा चुका है इसलिए लोकधातु को यहाँ केवल सत्त्वलोक माना गया है । त्रिसाहस्रमहासाहस्र यहाँ अनन्त लोकधातु का उपलक्षण मात्र है । इसलिए तथागत ने लोकधातुओं को अधातु कहा है ।

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, ३0वाँ अध्याय ।

इस प्रकार (पञ्चस्कन्धात्मक)· सत्त्वलोक को भी पूर्ववत् एकानेक स्वभाव से रहित कहा गया है । पुनः बोधिसत्त्वयान में आरूढ किसी व्यक्ति को किस प्रकार इसमें चित्त लगाना चाहिए ? प्रसिद्ध सत्त्वलोक यदि परमार्थतः एक स्थूल स्वभाव वाला हो तो, भगवान् के द्वारा वस्तुतत्त्व का यथावद् ज्ञान होने के कारण वही पिण्डग्राह हो जाएगा । अतः आत्मग्राह हेतु तो मात्र स्कन्ध स्वभाव में पिण्डग्राह है, इसलिए वही तथागत का गाढतर पिण्डग्राह हो जाएगा । तब उसका प्रहाण अभिप्रेत नहीं होगा । किन्तु वैसा नहीं होता है, इसलिए अन्यत्र बालजनों के लिए भगवान् का जो पिण्डग्राह है, वह आत्मग्राह का हेतु कहा गया है । वह परमार्थतः अग्राह ही है, क्योंकि ग्राह्य पिण्ड में एकानेक किसी भी स्वभाव का अभाव होता है । जो बालजनों में प्रसिद्ध है, वह केवल संवृति में कहा गया है, इसलिए उसे पिण्डग्राह कहा जाता है ।

भगवान् ने उसकी प्रतिपत्ति के लिए **"पिण्डग्राहार्थ"** ऐसी देशना की है, क्योंकि व्यवहार प्रज्ञप्ति में जो पिण्डग्राह है, परमार्थतः उसका अभाव होता है । अतः वह धर्म अनभिलाप्य है । पृथग्जन तो भ्रान्तिवश असत् को भी सत् की भाँति ग्रहण करते हैं, इसलिए उनके आशयानुसार ही प्रज्ञप्त किया जाने से विरोध नहीं होता है ।

अणुओं का न संचय है और न ही पिण्ड । जब अणुओं को परमाणुओं में विभाजित कर दिया जाता है तब वे परमाणु न तो अणुओं की भाँति है और न उनके भिन्न ही है । इसी प्रकार बुद्धत्व न धर्मधातु सा है और न ही उससे भिन्न । परन्तु मूर्ख लोग केवल व्यावहारिक ज्ञान के कारण इन सभी बातों को अन्यथा समझते हैं । अतएव, आत्मा और धर्मों के प्रहाण मात्र से बोधि की प्राप्ति नहीं होती है, क्योंकि ये दोनों परमार्थतः असत् हैं । भगवान् ने पुद्गलनैरात्म्य की व्यवस्था से आत्मनिषेध के लिए आत्मदृष्टि कहा है । उस आत्मदृष्टि के अभाव से धर्मनैरात्म्य की स्थापना की गई है, इसलिए तथागत ने आत्मदृष्टि को अदृष्टि कहा । क्योंकि जो बोधिसत्त्वयान का पथिक है, उसे चाहिए कि वह सभी धर्मों को उसी प्रकार अवगत करे, देखें एवं अधिमुक्ति करे । यही क्रमशः श्रुतमयी

प्रज्ञा, चिन्तामयी प्रज्ञा एवं भावनामयी प्रज्ञा है । बोधिसत्त्व को ऐसी अधिमुक्ति करनी चाहिए, जिससे किसी भी धर्मसंज्ञा की स्थापना न होने पावे । इसलिए तथागत ने धर्मसंज्ञा को असंज्ञा कहा है । एकानेक स्वभाव से शून्य होने के कारण परमार्थतः वे असंज्ञा हैं, जो संवृतितः धर्मसंज्ञा कहे जाते हैं ।

असंक्लेश प्रस्थिति भी दो प्रकार की होती है :

१. देशना असंक्लेश

२. संसार–असंक्लेश

यदि धर्मसंज्ञा नहीं होती है तब तथागत में सत्त्वों के लिए धर्म देशनारूपी संज्ञा उत्पन्न होने से कैसे संक्लेश नहीं होगा ? करुणा की वज़ह से सत्त्वों के हित के लिए वे यावत् संसार पर्यन्त रहते हैं, तब धर्मसंज्ञा के कारण उत्पन्न संसार–क्लेश उनमें कैसे संक्लेशत्व नहीं होगा ? ऐसा जो सोचते हैं, उस पर तर्क करके इसी चित्तसंपद के द्वारा देशना–असंक्लेश एवं गाथा के द्वारा संसार–असंक्लेश को कहा गया है । पूर्व प्रसङ्गान्तर में लोकधातुओं की प्रशंसा करते हुए उनकी अनुशंसा की गई थी । सम्प्रति असंक्लेश के प्रसङ्ग में अनन्त लोकधातुओं की देशना से अनुशंसा का विधान नहीं किया गया है । इसलिए यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं होता है । परमार्थतः सभी धर्म अनुत्पन्न एवं अनभिलाप्य है, ऐसी देशना की जाने पर भी वे धर्म अनभिलाप्य स्वभावात्मक नहीं कहे गए हैं । जैसे कहा भी गया है– **"विनेयजन ! सभी धर्म आदि से अनुत्पन्न होने के कारण अनभिलाप्य हैं, इसलिए वे किसी के द्वारा भी देशित नहीं होंगे ।"** ऐसा सोचकर जो देशना की गई है, वह क्लेशयुक्त नहीं होती है, क्योंकि उसका अर्थ विपरीत नहीं होता है । अन्यथा विपरीत देशना से वह देशना क्लेशयुक्त हो जाएगी । इसलिए तथागत द्वारा धर्मदेशना काल में शुद्धलौकिक ज्ञान में स्थित होते हुए धर्मसंज्ञा का आभास होने पर भी तत्त्वतः अभिनिवेश का अभाव होने के कारण उनमें संक्लेश से युक्त होने का दोष नहीं होता है ।

अनन्तर अन्तिम गाथा के द्वारा **"संसार-असंक्लेश"** नामक असंक्लेश प्रस्थिति का विधान किया गया है ।

तारका तिमिरं दीपो मायावश्यायबुद्बुदम् ।
स्वप्नं च विद्युदभ्रं च एवं द्रष्टव्यसंस्कृतम् ॥[1]

प्रस्तुत गाथा के द्वारा चार प्रकार के संस्कृत लक्षणों का अभिधान किया गया है । १. स्वभाव लक्षण, २. विषयरसास्वादन लक्षण, ३. आदीनवान्वयलक्षण, ४. निर्याणान्वयलक्षण ।

पञ्चस्कन्धात्मक भावों की जैसी प्रतीति होती है, वे प्रतीत्यसमुत्पाद हेतु-प्रत्ययों से किये जाने के कारण संस्कृत कहे जाते हैं । इनका स्वभाव तारों की तरह समझना चाहिए । जिस प्रकार तारे केवल रात्रि में अवभासित होते हैं दिन में नहीं, उसी प्रकार संस्कृत धर्म भी अविद्या रूपी अज्ञानान्धकार होने पर अवभासित होते हैं तथा ज्ञानरूपी सूर्य के उदय होने पर अवभासित नहीं होते हैं । अतएव, उन्हें तारक स्वभाव की भाँति समझना चाहिए । पुद्गल एवं धर्मों में अभिनिवेश स्वभाव वाले संस्कृत धर्मों को तो, मिथ्या प्रतीति का हेतु होने के कारण तिमिर की भाँति जानना चाहिए । इस अभिनिवेश लक्षण को कर्मरूपी बत्ती तथा तृष्णा रूपी तेल के आश्रय से प्रज्वलित होने के कारण दीप की तरह जानना चाहिए । इस प्रकार इन दृष्टान्तों से **स्वभावलक्षण संस्कृत** को कहा गया है ।

मायावत् दृष्टान्त से **विषयरसास्वादन लक्षण** को कहा गया है, क्योंकि वितथ (मिथ्या) अवभास होता है । **आदीनवान्वय लक्षण संस्कृत** स्वभाव दो प्रकार का होता है ।

१. अनित्यान्वय लक्षण संस्कृत

२. दुःखान्वय लक्षण संस्कृत

ओस की बूँद रूपी दृष्टान्त से अनित्यान्वय का विधान किया गया है, क्योंकि ओस की बूँद अधिक देर तक स्थायी नहीं होती है । जल के

---

1 वज्रच्छेदिकासूत्र, ३२वाँ अध्याय ।

बुल–बुले की भाँति दृष्टान्त से दुःखान्वय लक्षण संस्कृत का विधान किया गया है । वेदना जल के बुल–बुले की भाँति है तथा जो कोई भी वेदना होती है, वह यहाँ दुःख है । तीन प्रकार के दुःखों से सभी वेदनाएं दुःखरूपी जानी जाती हैं ! १. दुःख–दुःखता, २. विपरिणामदुःखता, ३. संस्कारदुःखता ।[1] अतएव सभी सांसारिक पदार्थों की सम्यग् परीक्षा करने पर यह ज्ञात होता है कि वे क्षणिक एवं संस्कृत हैं और जो संस्कृत है, वह दुःखयुक्त होता हैं ।

निर्याणान्वय लक्षण संस्कृत तो पुद्गल एवं धर्म से शून्यता का अन्वय है । बोधिसत्त्वों को सभी संस्कृत स्वभावों के प्रति इस प्रकार के छन्द एवं प्रणिधान के द्वारा स्थित होना चाहिए, योग समापत्ति करनी चाहिए तथा चित्त को प्रगृहीत करना चाहिए ।

संस्कृत स्वभाव के प्रति अनेक बार विचार करने वाले तथा मनसिकार करने वाले अन्य पुद्गल जो संस्कार का अच्छी तरह से अवबोध करते हैं, उनमें भी जब विपरीत संक्लेश नहीं होता है । तब समस्त भावों की यथावद् भावना करने वाले, समस्तविपरीत जाल से विरहित, तथागत कैसे क्लेश से युक्त होगे । अतः तथागत को समस्त संस्कृत दोषों का ज्ञाता, कमल की भाँति संसार–दोष से दूषित जल से अनवलिप्त चित्त वाला, समस्त जगत के उद्धार की प्रतिज्ञा करने वाला, फलयुक्त कारित्र वाला, महाकरुणा से युक्त चित्त वाला, निर्बाधरूप से जगत के हित एवं सुख सम्पादन के अभिप्राय से संसार चक्र में यावत् संसार प्रतिष्ठित रहने वाला जाना जाता है । अतएव कहा गया है[2]– जिस व्यक्ति

---

1 कतमाभिस्तिसृभिर्यदुत– दुःखदुःखतया, संस्कारदुःखतया, विपरिणामदुःखतया च संसारे च हीनाधिमुक्तिकाः । –सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र, पृ. ८० ; और भी अभि. को. में–

दुःखास्त्रिदुःखतायोगाद्यथायोगमशेषतः ।

मनापा अमनापाश्च तदन्ये चैव सास्रवाः ।। ६/३

2 त्रिशतिका–प्रज्ञापारमिताकारिकासप्तति, ७७ कारिका ।

ने संस्कृत वस्तुओं को लक्षण, उपभोग एवं प्रवृत्ति– इन तीन दृष्टियों से भली भाँति सम्यग् ज्ञान द्वारा अवगत कर लिया है, वह संस्कारों के प्रभाव से अछूता रहकर उन पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त करता है और निर्मलता स्वरूप निर्वाण का अनुभव करता है ।

लक्षणस्योपभोगस्य प्रवृत्तेश्च परीक्षणात् ।
निर्मलां (तेषु) वशितां संस्कारेषु समाप्नुते ॥

१२ जुलाई, १९९४ **पेमा तेनजिन, आचार्य**

शब्दसंकेत–सूची

अ. क.= अमृतकणिका
अ. को.= अमरकोशः
अं. नि.= अंगुत्तर निकाय
अ. प्र.= अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता
अ. वि. सू.= अर्थविनिश्चयसूत्रम्
अ.वि.सू.नि.= अर्थविनिश्चयसूत्र–निबन्धनम्
अ. अ.= अभिसमयालंकारः
अभि. को.= अभिधर्मकोशः
आ. टी.= आलोकटीका
आ. रत्न. सू.= आर्यरत्नकरण्डसूत्रम्
का. द.= काव्यादर्शः
ग. व्यू. सू. = गण्डव्यूहसूत्रम्
चतु.= चतुस्तवः
त. सं.= तत्त्वसंग्रहः
त. सं. पं.= तत्त्वसंग्रहपञ्जिका
त्रि.श.का.=त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिताकारिकासप्ततिः
त्रिं.वि.मा.सि.= त्रिंशिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः
धर्मसंगीति= धर्मसंगीतिनाममहायानसूत्रम्
न्या. वि.= न्यायबिन्दुः
प्र. पि.= प्रज्ञापारमितापिण्डार्थः
प्र. वा.= प्रमाणवार्तिकम्
बो. च.= बोधिचर्यावतारः
बो. च. पं.= बोधिचर्यावतारपञ्जिका
भा. क्र.= भावनाक्रमः
म. अ.= मध्यमकालंकारः
म. नि.= मज्झिम निकाय
म. वि.= मध्यान्तविभङ्गः
म. वि. भा. = मध्यान्तविभङ्गभाष्यम्
म. शा. का. = मध्यमकशास्त्रकारिका
म. शा. वृ. = मध्यमकशास्त्रवृत्तिः
म. सू. सं. = महायानसूत्रसंग्रहः
रत्न. सू. = रत्नमेघसूत्रम्
रत्ना. = रत्नावली
लं. सू. = लंकावतारसूत्रम्
वज्र. टी. = वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिताटीका
वज्र. सू. = वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्रम्
वि. मग्ग = विशुद्धिमग्ग
वि. मा. सि. = विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः
व्या. यु. = व्याख्यायुक्तिः
शि. समु. = शिक्षासमुच्चयः
शालि. सू. = शालिस्तम्बसूत्रम्
सद्धर्म. पु. सू. = सद्धर्मपुण्डरीकसूत्रम्
समाधि. सू. = समाधिराजसूत्रम्
सू. अ. = सूत्रालंकारः
ह. का. सू. = हस्तिकक्ष्यसूत्रम्

आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकासूत्रम्

एवं

आचार्यकमलशीलविरचिता

आर्यप्रज्ञापारमिताया वज्रच्छेदिकाया विस्तृतटीका

आर्यप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिकासूत्रम्

आचार्यकमलशीलविरचितया

आर्यप्रज्ञापारमिताया वज्रच्छेदिकाया
विस्तृतटीकया सहितम्

नमो मञ्जुश्रिये कुमारभूताय

मङ्गलाचरणम्

कायः प्रसिद्धः परिदृश्यमानो
जनेषु सर्वेषु स्फुटं तथापि ।
स्वभावतो वस्तुतया न प्राप्तो
निदर्शितः सोऽपि च प्राप्तिहेतुः ।।

फलस्य श्रेष्ठस्य च नित्यभूत–
परमस्य चाग्र्यस्य जिनैः समस्तैः ।
अतश्च त्रैयध्विकसर्वबुद्ध–
प्रसूं नमस्याम्यनिशं हृदा ताम् ।। १ ।।

अल्पीयसाऽभ्यासबलेन यस्याः,
महान्ति पुण्यानि हि सञ्चिनोति ।
उत्खातमूलानि च पापकानि,
सर्वाणि चापादयति क्षणेन ।।

अतश्च तस्याश्चिरभावनार्थं,
मार्गं प्रवक्ष्ये स्वबलानुरूपम् ।
गुरूपदिष्टं सुपरीक्षितं च
मतिं स्वकीयामनुवर्तयित्वा ।। २ ।।

तत्रादौ सूत्रं व्याचिख्यासुः साध्यवसाय(विषय–)ग्रहणादौ श्रोतॄणामवतारणार्थं प्रयोजनमाह । न हि प्रयोजनमन्तरेण प्रेक्षावान् क्वचित् प्रवर्तते[1] । तदनन्तरं प्रयोजनोपायमुपदर्शयितुमभिधेयस्तावद् वक्ष्यते, (यतो हि) अभिधेयरहितं सूत्रं दशदाडिमानीत्यादिवाक्यवन्नेष्टप्रयोजनं साधयति । ततः सौकर्येण तदभिधेयग्रहणार्थं पिण्डार्थो वक्ष्यते ।

तदनन्तरं समासार्थप्रतिपत्तये पदार्थोऽभिधास्यते । ततः क्रमस्याविरोधं निदर्शयितुं पदानामनुसन्धिर्दर्शयिष्यते । तदनन्तरं पूर्वापरयुक्तिविरोधापनोदनाय चोदकं प्रति समाधानं वक्ष्यत इत्येव न्यायः ।[2] तत्र वज्रच्छेदिका इति सूत्रस्य नामधेयम् । अनेनैव तावद् अभिधेयः प्रयोजनं चाभिधीयेते ।

---

1 सप्रयोजनस्य हि शास्त्रस्य प्रत्यासः साधुर्भवति, न निष्प्रयोजनस्य । –अभि.को.(स्फुटार्था) पृ. १४, बौ.भा.प्र., १९८७ ।

2 प्रयोजनं सपिण्डार्थं पदार्थः सानुसंधिकः ।
सचोद्यपरिहारश्च वाच्यः सूत्रार्थवादिभिः ।।
द्रष्टव्यम्– व्या.यु., (उद्धृतम् आलोकः पृ. २७७); द्र०– Toh: 4061 Sde-bstan (Sems-tsam, phi. p. 30)

अत्र द्विधा वज्रच्छेदिका । सूक्ष्मक्लेशज्ञेयावरणानि वज्रवद्दुर्भेद्यानि, तेषां छेदनात् । एतेनास्य (ग्रन्थस्य) आवरणद्वयप्रहाणं तावत् प्रयोजनं निर्दिष्टम् । अथवा छेदनं हि वज्राकारसादृश्येन वज्रवदिति । वज्रस्य हि उभे शिखरे स्थूले मध्यं च सूक्ष्मम् । तथैवेयं प्रज्ञापारमिताऽप्यादावधिमुक्तिचर्याभूमिम्[1] अन्ते च बुद्धभूमिं विस्तरेण निर्दिशति । सूक्ष्मेण तावन्मध्यभागेन शुद्धाध्याशयभूमिं निर्दिशति । अत एवेयं वज्राकारवदिति ।[2] एतेन भूमित्रितयमस्याः (वज्रच्छेदिकायाः) अभिधेयो निर्दिष्टः ।

पिण्डार्थस्तु संक्षेपेण पञ्चधा, तद्यथा– निदानम्, उपोद्घातः, बुद्धवंशानुपच्छेदः, प्रतिपत्तिलक्षणम्, तत्स्थानञ्च ।

तत्र निदानं तु सूत्रारम्भनिमित्तम्, तच्चापि **एवं मया श्रुतम्**[3] इत्यारभ्य **तेन खलु आयुष्मान् सुभूतिः** इत्येतावत्पर्यन्तं देशितम् । तस्य[4] च सङ्गीतिकारैरात्मप्रामाण्यप्रतिपादनायोक्तत्वात् । एवं सूत्रान्तरेष्वपि वाच्यम् ।

उपोद्घातस्तावत् प्रकरणेन सूत्रार्थव्युत्पादनार्थं संयुज्यते । अप्रस्तुताभिधानेन सर्वम् असमञ्जसं स्यादिति तन्निराकर्तुं सर्वत्रापि प्रकरणेन योज्यम् । **अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिरुत्थायासनात्** इत्यादिना तन्निर्दिष्टम् । बुद्धवंशानुपच्छेदोऽपि च तेनैव दर्शितः । आर्यसुभूतिना इमां प्रज्ञापारमितां बुद्धवंशानुपच्छेदकत्वेन विदित्वा यथा बुद्धवंशानुपच्छेदो भवेत् तथैवादौ संस्थापिता ।

प्रतिपत्तिलक्षण तु **बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितेन कथं स्थातव्यम् ?** इत्यादिना प्रोक्तम् ।

---

1 एवं कृतधर्मप्रविचयः समाहितचित्तश्च सर्वधर्मनैरात्म्यं.......... स एव आनन्तर्यो नाम समाधिः । सर्वाश्चैता अवस्थाः दृढाधिमुक्तितोऽधिमुक्तिचर्याभूमिरुच्यते । (द्र०– आलोकः, पृ. ३०१–३०२.) मिथिला संस्करणम्, १९६० ।

2 द्र०– आर्यभगवतीप्रज्ञापारमितावज्रच्छेदिका–सप्तार्थटीका, आचार्य वसुबन्धुः, Toh: 3816 Sde-bstan (Sher phyin, 'Ma'. p.)

3 धर्मसंगीतिसूत्रे– "एवं मया श्रुतमिति कृत्वा भिक्षवो मम धर्मः संगातव्यः तथा सम्बन्धानुपूर्वी प्रतिपाद्या" इत्यादि । (उद्धृतम्– आलोकः पृ. २७०); द्र०– Toh: 238 Sde-bka (Mdo sde, Zha)

4 दे.गे. संस्करणे "तस्मात्" इति पाठः ।

एवं मया श्रुतम् । एकस्मिन् समये भगवान् श्रावस्त्यां विहरति स्म –

तस्य प्रतिपत्तिलक्षणस्य स्थानं तावत् कस्मिन् विषये बोधिसत्त्वेन **स्थातव्यम् ? प्रतिपत्तव्यम् ? चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ?** यदेतत् तत्तस्य स्थानमिति । तदपि **इह सुभूते ! बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितेन एवं मया** इत्यादिनारभ्य **तारका तिमिरम्** इत्यन्तिमगाथां यावदभिहितम् । प्रतिपत्तिलक्षणं तस्य स्थानं चेत्येताभ्यां द्वाभ्यां बोधिसत्त्वानामशेषकरणीयपरिपूर्णता सम्प्रकाशिता, इत्येष तावत् पिण्डार्थः ।

निदानम् :

पदार्थादयश्चेमे साम्प्रतमभिधीयन्ते– तत्र **एवम्**[1] इति शब्दोऽभ्युपगमादिनानार्थेषु दृश्यते । अत्र प्रकरणादिबलेन सन्निधापितार्थो ग्राह्यः । अयं हि वक्ष्यमाणसकलसूत्रार्थं व्यवस्थापयति । **मया**[2] इत्यन्यव्यवच्छेदेन अर्थस्य साक्षाच्छ्रवणं निर्दिश्यते । आत्मनैव श्रुतं न श्रवणपरम्परायातमित्यर्थः । **श्रुतम्**[3] इत्यधिगमो निषेध्यते । तथागताद् ऋते नान्ये स्वतस्तथाभूतधर्माधिगमवन्तो भवन्ति । एतेनानाप्तत्वं निराक्रियते । **एकस्मिन् समये** इति एकस्मिन् काले, सर्वकालमेवंविधधर्मरत्नश्रवणं दुर्लभमित्याख्यातम्।

---

1 तथागतगुह्यनिर्देशाधिकारेण सर्वथा भाद्रकल्पिकसर्वतथागतानां रूपकायसद्धर्मकायरक्षायां कृताधिकारत्वात् वज्रपाण्यभिषेकादौ प्रत्यर्पितशासनत्वाच्च अन्येषां विशेषवचनाभावात् अडकवतीनिवासी दशभूमीश्वरो महावज्रधरः सर्वलोकानुग्रहाय प्रज्ञापारमितासूत्ररत्नसंगीतिं प्रत्यधीष्टवन्तमार्यमैत्रेयादिमहाबोधिसत्त्वगणम् **एवम्** इत्याद्याह, इति पूर्वाचार्याः । अन्ये तु अत्रैव परीन्दनापरिवर्ते "यथेयं जम्बुद्वीपे प्रज्ञापारमिता प्रचरिष्यति" इत्यादिना प्रत्यर्पितप्रज्ञापारमितादार्यानन्दः संगीतिकार इति मन्यन्ते । तत्र एवम् इति निश्चयार्थाभिधायिना स्वानुरूपज्ञानावधारितनिखिलसूत्रार्थस्योपदर्शनपरेण एवमेतदिति अविपरीतत्वमाह । –द्र० आलोकः, पृ. २७०, मि. सं. १९६० ।

2 इति आत्मवचनेन भगवतः सकाशात्साक्षात् श्रवणम् । –आलोकः पृ. २७० ।

3 श्रोत्रविज्ञानेन अनुभववचसा च । तथागतादृतेऽन्यस्यैवंभूतसमस्तधर्माधिगमसामर्थ्य–वैकल्यादधिगमाभावः । एतञ्च पदत्रयं भगवद्वचनादेव सूत्रारम्भे निर्दिष्टम् । –आलोकः, पृ. २७०; धर्मसंगीतिसूत्रे– एवं मया श्रुतमिति कृत्वा भिक्षवो मम धर्मः संगातव्यः । –(उद्धृत) आलोकः, पृ. २७०; See– Toh: 238 Sde bka (Mdo sde, Zha).

यद्वा स्वगतं बाहुश्रुत्यमुपदर्शितम् । एकस्मिन् काले इदं श्रुतमन्यदा अन्यदपि श्रुतमिति दर्श्यते । अथ वा, एकस्मिन् समये भगवान् विहरति स्म इत्युत्तरेण सम्बध्यते[1] । अपरिमितविनेयानां तेषां हिताय अन्यदा अन्यत्र विहरति स्म इति प्रतिपाद्यते[2] । क्लेश–स्कन्ध–मृत्यु–देवपुत्ररूपाणां चतुर्णां माराणां भञ्जकत्वान्निरुक्त्या **भगवान्** इति स्मर्यते[3] । अथ वा ऐश्वर्यादिमत्त्वात् 'भगवान्' इत्युच्यते[4] । यथोक्तम्[5]–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानस्याथ प्रयत्नस्य षण्णां भग इति श्रुतिः ॥

---

1 देशान्तरविनेयार्थं तत्स्थानां तर्पणाय च ।
श्रावकानेकवासार्थमनासक्तिं च दर्शयन् ॥
देशानां चैत्यभावार्थं पुण्यार्थं चैव देहिनाम् ।
इत्यादिज्ञापनार्थं च बुद्धश्चरति चारिकाम् ॥ – आलोकः पृ. २७१–७२ ।

2 एकस्मिन् समये श्रावस्त्यां विहरति स्म । अन्यदा अन्यत्र विहरणात् । उक्तं चाष्टसाहस्रिकाटीकायाम् आलोकाभिधायाम्– एकस्मिन् समये गृध्रकूटे विहरति स्म इत्युत्तरपदेन संबध्यते, अन्यदा अन्यत्र विहरणात् । –पृ. २७४

3 क्लेशकर्म तथा जन्म क्लेशज्ञेयावृती तथा ।
येन वैपक्षिका भग्नास्तेनेह भगवान् स्मृतः ॥ –आलोकः, पृ. २७२;
See- Toh: 3997 Sde-bstan (Mdo-hgrel, chi.) page 236 ;
क्लेशादिकं भग्नवानिति भगवान् । द्र0– आलोकः, पृ. २७२

4 तुलनीयम्– यत्रैतद्गुणमाहात्म्यं स बुद्धो भगवान् इति रूपकथनम् । तत्र सकलपदार्थावबोधेन प्रकृष्टा बुद्धिरस्येति बुद्धः । अकारप्रत्ययोऽत्र अर्शआदेराकृतिगणत्वेन कार्यः । प्रकृष्टा च बुद्धिर्नवभिराकारैः – सर्वज्ञज्ञानेन, अयत्नज्ञानेन, अनुपदिष्टज्ञानेन, सवासनक्लेशावरणप्रहाणज्ञानेन, निखिलज्ञेयावरणप्रहाण–ज्ञानेन, सर्वाकारसर्वसत्त्वार्थकरणशक्त्या, करुणासंपत्त्या, अक्षयसंपत्त्या, अतुलतासंपत्त्या च । समग्रैश्वर्यादियोगेन भगवान् । –आलोकः, पृ. ३५२–२५३ ; अपि च तु0– नवभिरेव पदैर्यथोक्तैः सकलं विवक्षितं गुणमाहात्म्यमभिद्योतितम् । यत्रैतद् गुणमाहात्म्यं स बुद्धो भगवानिति प्रदर्शनार्थम् । पदानां पुनः पिण्डार्थः –
भङ्क्त्वा विबन्धं शास्तृत्वसंपदं यां हि येन सः ।
यथागतः शास्तृकर्म यच्च यैश्च परिग्रहः ॥
–अ.वि.सू.नि., पृ. २४७, के.पी.जायस. संस्करणम्, १९७१, पटना ।

5 बुद्धभूमिव्याख्यानम् (उद्धृत आलोकः, पृ. २७२, मि.सं. १९६०) Toh: 3997 Sde-bstan (Mdo-hgrel, chi. page 235-36 उपलब्धसंस्कृतश्लोकस्य प्रथमपादः भोटपाठात् भिन्नोऽस्ति । बहवोऽत्र पाठभेदाः संस्कृतग्रन्थेषूपलभ्यन्ते ।

जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे महता भिक्षुसंघेन सार्धम् अर्धत्रयोदशभिर्भिक्षुशतैः संबहुलैश्च बोधिसत्त्वैर्महासत्त्वैः ।

श्रावस्ती इति श्रवस्तेस्तन्नामकर्षेराश्रमत्वाच्छ्रावस्ती नगरी, तयोपलक्षितो देशविशेषोऽपि तत्सम्बन्धेन श्रावस्तीत्युच्यते । देशोक्त्या अयं देशोऽपि चैत्यभूतोऽभिधीयते, तद्यथा **चैत्यभूतः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति**[1] इत्यत्राप्युक्तम् । अथ च सङ्गीतिकारैरात्मवचनानामादेयताप्रतिपादनायैतत् सर्वमुक्तम्[2] । लोकप्रत्यायनार्थं तावत् (स) प्रदेशः साकारः समृद्धश्चेत्युक्तः, एवं सति परैः ग्राह्यं भवति वचनम्, नान्यथा तदादेयवचनमिति ।

श्रावस्तीप्रदेशस्य अत्यन्तं विस्तीर्णत्वात् कुत्र विहरतीति स्थाननिश्चयाभावाद् **जेतवने** इत्युक्तम् । 'जेतृ' इत्याख्यस्य राजकुमारस्य वनत्वाद् जेतवनमिति । तदपि तावत् कस्यचिदप्रसिद्धमिति सम्भावनायाम् **अनाथपिण्डदस्यारामे** इत्युक्तम् । गृहपति–अनाथपिण्डद इत्यनाथेभ्यो दयया पिण्डदानेन तथा प्रसिद्धः, स खलु भगवदर्थं निरन्तरतया रत्नानि विकीर्य जेतुः राजपुत्रादारामं क्रीतवान् । राजपुत्रजेतृणाऽपि तत्र काचिद् भूमिरावासादिभिः समलङ्कृता, अतस्तयोस्तद् वनमिति प्रसिद्धिं गतम् । कस्यचिदेकस्योपादानेन अभिप्रेतदेशविशेषस्यानवबोधात् पदत्रयमुक्तम्[3] । अथवा श्रावस्तीत्यनेन बहुनां मध्ये विहरणात् परार्थसम्पदभिहिता । जेतवनेऽनाथपिण्डदस्याराम इत्यनेन (च) विवेकविहरणात् स्वार्थसम्पत् ।

---

1 अनयैव हि कौशिक प्रज्ञापारमितया पृथिवीप्रदेशः सत्त्वानां चैत्यभूतः कृतो वन्दनीयो माननीयः पूजनीयोऽर्चनीयोऽपचायनीयः सत्करणीयो गुरुकरणीयः, त्राणं शरणं लयनं परायणं कृतो भविष्यति तत्रोपगतानां सत्त्वानाम् । –अ.प्र. पृ. २८; द्र०– वज्र.सू., अध्या. १५

2 प्रज्ञापारमितापिण्डार्थे च यथोक्तम्–
श्रद्धावतां प्रवृत्त्यङ्गं शास्ता पर्षच्च साक्षिणी ।
देशकालौ च निर्दिष्टौ स्वप्रामाण्यप्रसिद्धये ॥ ३
संगीतिकर्त्रा लोके हि देशकालोपलक्षितम् ।
ससाक्षिकं वदन् वक्ता प्रामाण्यमधिगच्छति ॥ ४
–प्र.पि., ३, ४ का. ।

3 जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । वज्र.सू., अध्या. १ ।

अत्र कः साक्षीति चिन्त्यमाने **महताभिक्षुसंघेन** इत्युक्तम् । भिन्नक्लेशा हि भिक्षवः[1] । मारादिभिः प्रत्यर्थीभिरभेद्यत्वात् तेषां समूहः **संघः**[2] इत्युच्यते। महान् भिक्षुसंघस्तावत् भूयस्त्वेन आनुभावेनेति द्वैविध्येन, आनुभावस्तावद् दर्शितः ।[3] कथं भूयस्त्वमिति चेद् ? **सार्धमर्धत्रयोदशभिः(भिक्षु)शतैः** इत्याद्युच्यते । तस्मिन् समये तावतामेव सत्त्वात् । भिक्षुसंघात् बोधिसत्त्वानां बाहुल्यं तु तेषामेवार्थाय सूत्राणां भाषितत्वात् । बोधौ सत्त्वमाशयो येषां ते 'बोधिसत्त्वाः'[4] । श्रावकेष्वपि बोधौ सत्त्वं विद्यते, अतस्तेषां व्यवच्छेदाय **महासत्त्वैः**[5] इत्याह । धर्म–चित्तोत्पाद–अधिमुक्ति–अध्याशय–सम्भार–काल–सम्प्रतिपत्तिलक्षणैः सप्तभिर्महत्त्वैरुपेतत्वाद् महासत्त्वाः ।

तत्र धर्ममहत्त्वं तु बोधिसत्त्वेभ्यः शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमितादिविपुलधर्माणां देशनात् । चित्तोत्पादमहत्त्वं तावदनुत्तरायां सम्यक्सम्बोधौ चित्तोत्पादात् । –

---

1 महानुभावेन भिक्षूणां त्रैवाचिकेन कर्मणा ज्ञप्तिचतुर्थेनाघातपञ्चमेन एहिभिक्षुत्वेन चोपसम्पन्नानां भिन्नक्लेशानां समूहेन । – आलोकः, पृ. २७२; तत्र त्रैवाचिकादिकर्मणोपसंपन्नो भिक्षुः । –आलोकः, पृ. ३८७ ;
धम्मपदे चोक्तम्, यथा–
योध पुञ्ञं च पापं च, बाहेत्वा ब्रह्मचरियवा ।
संखाय लोके चरति स वे भिक्खूति वुच्चति ।. –१९/१२;

2 बुद्धो धर्मस्तथा संघो मारकोटिशतैरपि ।
भेत्तुं न शक्यते यस्मात्तस्मात्संघोऽभिधीयते ॥ द्र0– आलोकः, पृ. २७२ ।

3 महता इति संख्यागुणमहत्त्वयोगात् । तु0– आलोकः, पृ २७२ ।

4 बोधौ सर्वधर्मासक्ततायां स्वार्थसंपदि सत्त्वमभिप्रायो येषां ते बोधिसत्त्वाः । –आलोकः, पृ. २८२ ; अपि च– यस्मात् सर्वधर्माणाम् एव आलम्बनस्थानीयानाम् अनुबोधार्थेन सम्यगुभयसत्यानतिक्रमालम्बनेन या असक्तता, तस्यां सत्यामालम्बनविशुद्धिगमनेन अनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिमभिसंबुध्यते नान्यथा । अतो बोध्यालम्बनप्रयोजनेन सर्वप्रकारस्वार्थसंपादनात् बोधिसत्त्व इत्युच्यते । –आलोकः, पृ. ३०७; द्र0– अ.प्र., पृ. ९-१०; अपि च बोधिचर्यावतारे–
नाशयत्यपि संमोहं साधुस्तेन समः कुतः ।
कुतो वा तादृशं मित्रं पुण्यं वा तादृशं कुतः ॥
कृते यः प्रतिकुर्वीत सोऽपि तावत्प्रशस्यते ।
अव्यापारितसाधुस्तु बोधिसत्त्वः किमुच्यताम् ॥ –बो.च., १/३०,३१

5 महत्यां परार्थसंपदि सत्त्वं येषां ते महासत्त्वाः । – आलोकः, पृ. २८२ ; महतः सत्त्वराशेर्महतः सत्त्वनिकायस्य अग्रतां कारयिष्यति, तेनार्थेन बोधिसत्त्वो महासत्त्व इत्युच्यते । – अ.प्र., पृ ९ ।

अथ खलु भगवान् पूर्वाह्णकालसमये निवास्य पात्रचीवरमादाय श्रावस्तीं महानगरीं पिण्डाय प्राविक्षत् । अथ खलु भगवान् श्रावस्तीं महानगरीं पिण्डाय चरित्वा कृतभक्तकृत्यः –

अधिमुक्तिमहत्त्वं तस्मिन्नेव गम्भीरोदार[1] धर्मेऽधिमुक्तत्वात् । आशयमहत्त्वं तु सर्वसत्त्वहितसुखोत्पादाशयात् । सम्भारमहत्त्वं तावदपरिमितपुण्यज्ञानंसम्भरणात् । कालमहत्त्वं खलु त्रिभिरसंख्येयकल्पैर्बोधिप्राप्तेः । सम्प्रतिपत्तिमहत्त्वं हि अनुत्तरसम्यक्सम्बोधेर्निष्पादनात् ।

विहरति इति चतुर्भिरीर्यापथैः,[2] अथवा अनुत्तरेण ब्रह्म–देव–आर्यविहारेण विहरति । **स्म** इति विहृतवानिति दर्शितम् । तत्र भिक्षुसंघस्तु कृताकृत्यत्वाद् मृदुकारुणिकत्वाच्च सर्वकालं तथागतस्य पादान्तिके निषद्यत इति विदित्वा स्थास्नुत्वसंदर्शनार्थं पूर्वमुक्तः । बोधिसत्त्वास्तु अपरिमेयसत्त्वार्थक्रियासाधन–परिनिष्पत्तौ अकृतकार्यत्वात्, अधिमात्रकरुणया जगदर्थकरणाय लोकधातुषु विहरणात् सर्वकालं भगवतः पादान्तिकेऽनिषीदनाच्च पश्चादुक्ताः । अत एव श्रावकसूत्रान्तेषु नोच्यन्ते बोधिसत्त्वाः, न च तानि (श्रावकसूत्राणि) तदर्थानि, अनियतानि चेति ।

अथ इति तदनन्तरम् । **समये** इति नियते । एतेन नियतस्तावत् पिण्डकाल इति । कालनियतत्वं तु अस्मिन्नेव काले पिण्डपातो ग्रहीतव्य इति, तदपि किमिति अपरिज्ञानात् तदर्थं **पूर्वाह्णः** इति वचनेनाभिधीयते । पूर्वाह्णञ्च कालसमयश्चेति समासः ।

उपवसतां प्रव्रजितानां च पिण्डकालोपलम्भेन पूर्वाह्णलक्षणं भगवता देशितमेकान्तेनेत्यवबोधनार्थं **कालसमये** इत्युक्तम् । अन्यथा पूर्वाह्ण इत्येतद्वचनेन तदेकान्तत्वनिर्देशो नावगम्यते । भगवता स्वेच्छया कृतमिति सम्भाव्यमानत्वाद् एतत् पदत्रयमुक्तमिति वा । **निवास्य** इति गृहप्रवेशानुरूपं वस्त्रधारणम् । तदपि शिक्षासु श्रोतॄणां गौरवसम्पादनार्थम्, अन्यथा स्वस्यैव विनेयत्वाभावे कथं परस्य विनेयता स्यात् । **चीवरमादाय** इत्यत्र चीवरादानं

---

1 प्रस्तुतः पाठः पे.सं. अनुरोधेन प्रस्तुतः, दे.गे. संस्करणे "महोदारधर्मे" इति पाठः ।
2 द्र0– वज्र.सू., अध्या. २८ ।

तावत् प्रावरणलक्षणं द्रष्टव्यम्, नास्त्यन्यस्यावकाश इति । **महानगरी** इति देशविशेषः, श्रावस्तीमात्रव्यवच्छेदार्थम् । किमर्थं भगवान् **पिण्डाय प्राविक्षत्** इति। श्रावकेष्वल्पेच्छताप्रवृत्तिः, दरिद्र–रोगि–गृहिणी–वृद्धादिष्वनुग्रहः, अन्धादिभ्यो नेत्रादिसम्प्राप्तिरिति, विविधविस्मयहेतूनामनवरतं प्रदर्शनेन भगवति च परेषां प्रसादोत्पादनार्थं इत्येतान्यपरिमितानि प्रयोजनान्यवगन्तव्यानि । **कृतभक्तकृत्यः** इति यः खलु भोजनादिभक्तकृत्यं सम्पादितवान्, स एवमुच्यते ।

अल्पकुशलमूलेभ्यो निर्जाता अपि ब्रह्मादयः कवलीकाराहारविरागान्नैव भक्तकृत्यं कुर्वन्ति,[1] तर्हि अचिन्त्यकुशलमूलनिर्जातो हि भगवान्(बुद्धः) कथं कुर्यादिति ? तथा **आर्यधर्मसंगीतौ**[2] अपि भाषितम्– **"तथागतस्तु क्षुत्पिपासावर्जितः मूत्रपुरीषविरहितोऽक्षीणकायश्च भवति"** इति । सत्यमेवैतत् तथापि यदि भगवतः स कायो न परमार्थभूतः, तदा स्यात् सर्वोपालम्भावसरोऽपि, यदा त्वयं भगवतो निर्माणकायः, एवंविधचरितप्रदर्शनेन विनेयसत्त्वाशयानुरूपं प्रवर्तते, तदा कथमुपालम्भावकाशः ।

मनुष्यभावे एव वीर्यारम्भेण एतादृशमनुत्तरपदं लभ्यत इति विनेयानामुत्साहनार्थं मनुष्यभावं दर्शयित्वा एवंरूपं पिण्डभक्तं दर्शितवान् । ये दायका दानपतयः, तेषु पिण्डपरिकर्मप्रकाशनेन प्रहर्षः समुपजायते । भाग्यवन्तोऽपि किञ्चित्कर्मावरणवशात् प्रेतादिषु समुपजाताः महौजस्का[3] यक्षादयः भगवतां करनखामृतेन संस्पृष्टं परमाक्षयदिव्यरसमादाय परिभुञ्जानाः परमसुखसंतृप्तचेतस उत्तमां समाधिं समवाप्नुवन्ति । अतः अपरिमेयं तावद् भगवतो भक्तकृत्यम् ।

---

1 कामावचराणि गन्धरसस्प्रष्टव्यायतनानि सर्वाण्येव कवडीकृत्याभ्यवहरणात्, मुखनासिकाग्रासव्यवच्छेदतः । –अभि.को., ३/३९, पृ. ४९२ ।

2 Toh: 238 Sde-bka (Mdo-sde. 'zha' p. 8) ; तु०– "तत्र प्रथमं तावद् योगी भावनाकाले सर्वम् इतिकरणीयं परिसमाप्य कृतमूत्रपुरीषः कण्टक–स्वरादिरहिते मनोऽनुकूले प्रदेशे स्थित्वा" See- Bhavanakrama 3 chapt.p. 224, Tib.Inst. Ed. 1985.

3 महोजस्का महानुभावाः । तदुक्तम्– यस्मादेवं प्रसिद्धा महोजस्का यत्र गृहादावागन्तव्यं मंस्यन्ते, तस्मात् तद्गृहादि तेषामनुभावेन सुरक्षितं भविष्यति इति । –आलोकः, पृ. ३७३ ।

पश्चाद्भक्तपिण्डपातप्रतिक्रान्तः पात्रचीवरं प्रतिशाम्य पादौ प्रक्षाल्य न्यषीदत्प्रज्ञप्त एवासने पर्यङ्कमाभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय प्रतिमुखीं स्मृतिमुपस्थाप्य । अथ खलु संबहुला भिक्षवो येन –

केन प्रकारेण भक्तकृत्यं कृतमिति चेत् ? तदर्थं **पश्चाद्** इत्याद्याह । सर्वमादाय तदनु यत् पिण्डपातं भक्तं तत् पश्चाद्भक्तपिण्डपातम् । पूर्वमेतत्समादानं तु श्रावकाणां धूतगुणेष्ववतारणार्थम् । भक्तमिति (भक्षणकृत्यं) सम्पादितमित्यर्थः । अथवा पश्चादिति यद् द्वितीयवारमादानं तत् पश्चाद्भक्तम् । तदेव पश्चाद्भक्तमपि पिण्डश्चापीति पदयोजना । अथवा अपराह्णभक्तत्वेन यः परिभुज्यते पिण्डः स एवमुच्यते ।

अतश्च धूतगुणवत्त्वात्[1] विकालभोजनपरिहृतत्वाच्च तद्विरहितमेतद् भक्तं स्यादित्यर्थः । **प्रतिशाम्य** इति प्रतिष्ठाप्येत्यर्थः । तच्च शक्रादयस्तु भगवदाज्ञामादातुं समुद्यतास्तदन्तिके सदैवोपतिष्ठन्ते, किन्तु प्रव्रजितास्तु स्वयमेवानुतिष्ठन्त इति निदर्शयितुं भगवता स्वयं पात्रचीवरप्रतिष्ठापनं कृतम्, अलभ्यमानभृत्यानां मन्दभाग्यानां दौर्मनस्यपरिहाणार्थमपीति ।

अशुच्याभासं सततसमितमपाकर्तुं कमलेषु पादनिक्षेपणम्, क्रियातन्त्राद्यधिमुक्तसत्त्वाशयानुवर्तनं वा सरजस्कपादाभ्यां शयनासनानामनवमर्दनम् इति शिक्षायामादरं दर्शयितुं पादप्रक्षालनं द्रष्टव्यम् ।

प्रज्ञप्त एवासने इति देवादिभिः प्रज्ञप्ते । **ऋजुकायं प्रणिधाय** इति नातिनम्रं नातिस्तब्धमित्यर्थः[2] । कथं धर्मदेशनाकाले भगवान् समाहितेन ईर्यापथेन

---

1 द्वादशधूतगुणाः – धर्मसंग्रहः, (म.सू.सं. १, पृ. ३३३; मि.सं., १९६१) ; आलोकः, पृ. ४७६ ; Toh: 4346 Sde-bstan (Sna-tshogs, Cho) p. 24.

2 तु0– मया सर्वसत्त्वा बोधिमण्डे निष्पादयितव्या इति विनिश्चयन्, सकलजगदभ्युद्धरणाशयो महाकरुणाम् आमुखीकृत्य, दशदिगवस्थितान् सर्वबुद्धबोधिसत्त्वान् पञ्चाङ्गेन प्रणिपत्याग्रतो बुद्धबोधिसत्त्वान् पीठादौ स्थापयित्वा अन्यत्र वा यथावत् तेभ्यश्च यथारुचि पूजास्तवनं कृत्वा स्वपापं प्रदेश्य, सकलस्य जगतः पुण्यम् अनुमोद्य, मृदुतरसुखासने वैरोचनभट्टारकबद्धपर्यङ्केण अर्धपर्यङ्केण वा निषद्य नात्युन्मीलिते नातिनिमीलिते नासिकाग्रविन्यस्ते चक्षुषी कृत्वा, नातिनम्रं नातिस्तब्धम् ऋजुकायं प्रणिधायान्तर्मुखावर्जितस्मृतिरुपविशेत् । –Bhavanakrama 3 chapt.p- 225, Tib.Inst. Ed., 1985 ; See- आलोकः, पृ. २७५।

भगवांस्तेनोपसंक्रामन् । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरोभिरभिवन्द्य भगवन्तं त्रिष्प्रदक्षिणीकृत्य एकान्ते न्यषीदन् ।

तेन खलु पुनः समयेनायुष्मान् सुभूतिस्तस्यामेव पर्षदि संनिपतितोऽभूत्संनिषण्णः ।

न्यषीददिति चेत् ? समाहितैरेव धर्मोऽयं देशयितुं ज्ञातुं श्रोतुं वा शक्यते नान्यैरिति समाधौ यत्नोत्पादाय लोकानां प्रवर्तनात् ।

प्रतिमुखीं स्मृतिमुपस्थाप्य इति पूर्वं बोधिसत्त्वावस्थायां तावद् अनुत्तरपदं प्राप्य यथा बुद्धवंशानुपच्छेदः स्यात्तथाहं करिष्ये इति यत् प्रणिधानं कृतं तत् प्रणिधानं स्मरणाभिमुखीकृतमित्यर्थः । भगवांस्तु बुद्धः सदा समाहितः सन्नपि सर्वथा स्मृतौ विहरति । असमयस्मरेण न किञ्चित् स्यात् । समये प्रणिधानस्मरणं हि सफलं भवति । समये स्मरेणनापि भगवतः सदा समाहितत्वं न विरुध्यते ।

अथ खलु संबहुला भिक्षवः इत्यनेन किमुक्तम् ? यत्परिमाणेन भिक्षुसंघेन सह भगवान् श्रावस्त्यां विहरति स्म, स सर्वः धर्मदेशनाकाले तत्र नैव सन्निपतितः । त्रिभ्योऽधिकास्तत्र सन्निपतिता इत्युक्तम् । तच्च सङ्गीतिकारैः परसम्प्रत्ययोत्पानादनार्थं निर्दिष्टम् । **सन्निपतितः** इति सन्निहित एव । **सन्निषण्णः** इत्यासने उपविष्टः । लोके प्रायः समान्यपूर्वकं विशेषः स्थाप्यत इति लोकप्रसिद्ध्यनुरूपमुभयमाह । अन्यथा **निषण्णः** इत्येतावत्मात्रेण अप्युभयमुक्तं स्यादिति । उक्ता निदानपदार्थाः ।

उपोद्घातो बुद्धवंशानुपच्छेदश्च :

सम्प्रति उपोद्घातो बुद्धवंशानुपच्छेदश्च कथयिष्येते । परमाश्चर्यमादर्शयितुं द्विरभिधानम् । **सुगत**[1] इति सम्बोधनम् । नैरात्म्यद्वयमार्गेण

---

1 लोकोत्तर मार्गेण शोभनं ज्ञानप्रहाणसम्पदं गतः सुगतः सुरूपवत् । अपुनरावृत्त्या वा सुष्ठु गतः सुगतः सुनष्टज्वरवत् । निशेषं वा गतः सुगतः सुपरिपूर्णघटवत् । –आलोकः, पृ. ३५२ ; सुगतत्वं व्याचिख्यासुराह– हेतोः समुदयस्य प्रहाणं निरोधः सुगतत्वम्, तच्च त्रिगुणं गुणत्रयमुक्तम् । सु शब्दस्य त्रिविधोऽर्थः – १. प्रशस्तता सुरूपवत्, २. अपुनरावृत्तिः सुनष्टज्वरवत्, ३. निःशेषता च सुपूर्णघटवत् । –प्र.वा., १/१४१ ; सुगत इत्यनेन यथागन्तव्यं गतस्तं दर्शयति । सुष्ठु गतः

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिरुत्थायासनादेकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा दक्षिणं जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाय येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमेतदवोचत्– आश्चर्यं भगवन्, परमाश्चर्यं सुगत, यावदेव तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वा –

सम्यग् गत इति सुष्ठुरूपेण गतः सुगतः, सुरूपवदिति । अथवा निखिलसवासनाशेषक्लेशज्ञेयावरणानि प्रहाय गतः सुगतः, सुपूर्णघटवत् । अथवा अपुनरावृत्त्या गतः सुगतः, सुनष्टज्वरवत् । यावतैवानुग्रहीताः, तावतैवानुपरिगृहीता इत्यर्थः ।

राजादयोऽपि आश्रितान् प्रजादीन् यथाशक्ति अनुपरिगृह्णन्ति किन्त्वत्र भगवति आश्चर्यमित्याशङ्काकायां किमाश्चर्यमिति **तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन** इत्युक्तम् । यथावद्वस्तुतत्त्वदेशनात् तथागतः। अथवा यथा पूर्वका नैरात्म्यमार्गेण गताः, क्लेशज्ञेयावरणप्रहाणमधिगताः, अत्रापि तथा गतत्वात् तथागतः[1] । सर्वलोकाभ्यर्हणीयत्वात्, अरीणां क्लेशानां वा हन्तृत्वाद् अर्हन्[2] । समस्तज्ञेयानां सम्यगवबोधात् सम्यक्संबुद्धः[3] । एभिः पदैर्भगवतः प्रहाणज्ञानरूपा स्व–परार्थसम्पदुपदर्शिता भवन्ति ।

सुगतोऽपुनरावृत्त्यर्थेन सुनष्टज्वरवत् । निशेषं वा गतः सुगतः निःशेषज्ञेयगमनार्थेन सुपूर्णघटवत् । –अ.वि.सू., पृ.२४४, का. जायस. संस्करणम्, १९७१ ।

1 सर्वाकाराविपरीतधर्मदैशिकत्वेन परार्थसंपदा तथागतः । –आलोकः पृ. ३००; प्रज्ञापारमिता ज्ञानमद्वयं सा तथागतः । –प्र. पि., १ का. ; अचलिता हि तथता । .... या च तथता, स तथागतः, ... या च भूतकोटिः स तथागतः, ...या च शून्यता, स तथागतः। ......या च यथावत्ता, स तथागतः । यश्च निरोधः स तथागतः । –अ.प्र. ३१ परि., पृ. २५३ ; भूतवादी सुभूतेः तथागतः, सत्यवादी तथावादी अनन्यथावादी तथागतः, न वितथवादी तथागतः । –वज्र.सू. पृ. ३६, ति.सं.सं., १९७८ ; वस्तुतत्त्वं यथास्थितिः तथैवाधिगम्यते अधिगतत्वाद् तथागतः । –प्रस्तुता टीका, पृ. २१७; वक्तृत्वमविपरीतधर्मदेशकत्वं येन भगवान् तथागत इत्युच्यते । –अ.वि.सू.नि., पृ., २४२, जायस. सं., १९७१ ।

2 पूजादक्षिणागुणप्रकर्षाद्यर्हतया अर्हन्तः । –आलोकः, पृ. २७३ ; सम्यक् समाधिवशात् सकलविकल्पक्लेशानरीन् हतवान् (इत्यर्हन्) । –अ.क. पृ. २४०; सवासनक्लेशज्ञेयावरणप्रहाणयोगात् स्वार्थसंपदा अर्हन्तः । –आलोकः, पृ. ३०० ; ध्यानध्येयसमाधिविमोक्षबलाभिज्ञानक्लेशदुःखविकल्पाभावादर्हन्नित्युच्यते । लं.सू., पृ. ४९, वैद्यसंस्करणम्, १९६३ ; हतारित्वात् अर्हन्तः । –आलोकः, पृ. २७३ ; अरीन् हतवानर्हन् । –आलोकः, पृ. ३५१;

अनुपरिगृहीताः परमेणानुग्रहेण । आश्चर्यं भगवन् यावदेव तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः परीन्दिता परमया परीन्दनया ।

एतेनैवमभिधीयते– राजादीनां प्रजादिष्वनुग्रहे तावन्नैवाश्चर्यम्, यतो हि ते लाभसत्कारादिस्वार्थार्थितया परानुगृह्णन्ति, भगवतस्तावत् तथागतत्वेनार्हत्त्वेन सम्यगभिसम्बुद्धय अधिगताशेषसम्पत्तितया योऽनुग्रहः स खल्वत्र आश्चर्यमित्यादर्शितम् । ऋते करुणां भगवतोऽनुग्रहेऽस्मिन् नास्ति किञ्चिदनुग्रहकारणान्तरमित्यनेनाभिहित एव भवति भगवान् महाकारुणिकः ।

अनुपरिगृहीताः इति अभिसम्बुद्धेन भगवता धर्मचक्रप्रवर्तनाकाले परिपक्वकुशलमूला बोधिसत्त्वा भूमिष्ववतारिताः, धर्मतायां बोधिसत्त्वानां प्रतिष्ठापनेन । **परीन्दिताः** इति अपरिपक्वकुशलमूलानाम् आदिकर्मिकाणाम–नुग्रहाय त एव परीन्दिताः, धर्मतायां बोधिसत्त्वान् प्रतिष्ठापयितुम् । मम परिनिर्वाणप्रदर्शनं तु युष्मास्वप्राप्तगुणानामधिगमाय, प्राप्तानां च सम्यगपरिहाणायेति। एवमनुग्रहपरीन्दनेत्युभाभ्यां बुद्धवंशानुपच्छेदः सम्प्रकाशितः ।

बोधिसत्त्वेष्वनुग्रहस्तु पञ्चधा सम्यग् वेदितव्यः— काल–विशेषता–उदारता–स्थिरता–व्यापकताभिः । तत्र कालः– जन्मजन्मान्तरत्वात् । विशेषता– तैर्थिक–श्रावक–प्रत्येकबुद्धेभ्योऽनुग्रहेण विशिष्टत्वात् । उदारता– अनुत्तरत्वात् तदनुग्रहस्य । स्थिरता– आत्यन्तिकत्वात् । व्यापकता– तदनुग्रहेण तु स्व–परसन्तत्योर्हितसम्पादनात् ।

यस्मा रागादिसङ्खाता सब्बेपि अरयो हता ।
पञ्ञासत्थेन नाथेन तस्मापि अरहं मतो ति ॥ –वि.मग्ग., ७/६; द्र.– म.नि., भाग १, पृ. २८०; प्रहाणसम्पदा भगवानर्हन्नित्युच्यते, अरीन् हतवानिति कृत्वा नैरुक्तेन विधिना । अरयो हि क्लेशाः, सर्वकुशलधर्मोपघातार्थेन । –अ.वि.सू., पृ. २४२, जायस. सं., १९७१.

3 सम्यक्संपद्द्वयावाहकमार्गाधिगमात् सम्यक्सम्बुद्धाः । –आलोकः, पृ. ३०१ ; ज्ञानसम्पदा सम्यक्सम्बुद्ध इत्युच्यते, सम्यगविपरीतं समन्ताद् धर्मान् बुद्धवानिति कृत्वा। –अ.वि.सू.नि., पृ. २४२, जायस. सं., १९७१; सम्यक् अविपरीतं समन्ताद्धर्मावबोधात् सम्यक्सम्बुद्ध इत्यनेन ज्ञानसंपदुक्ता अविपरीतसर्वज्ञज्ञानाधिगम–योगात् । –आलोकः, पृ. ३५१ ।

तत्कथं भगवन् बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन कुलपुत्रेण वा कुलदुहित्रा वा स्थातव्यं कथं प्रतिपत्तव्यं कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ?

परीन्दनाऽपि त्रिधा सम्यग् द्रष्टव्या, आश्रय–धर्मताप्रापण– ज्ञप्तिवचनैः । कीदृशस्तावदाश्रयः ? कल्याणमित्रेषु[1] परीन्दनात् सा भवत्यविप्रणष्टा । किं तावद् धर्मताप्रापणम् ? अनुपरिगृहीता बोधिसत्त्वा धर्मतया पराननुग्राहयन्ति । किं तर्हि ज्ञप्तिवचनम् ? त्वया अन्ये बोधिसत्त्वा अनुग्रहीतव्या इत्याज्ञापितम्, न त्वनादरभावः । उपोद्घात–बुद्धवंशानुपच्छेदपदार्था उक्ताः ।

प्रतिपत्तिलक्षणम् :

प्रतिपत्तिलक्षणं तावदुच्यते– तदधिकारेण **कथम्** इत्युक्तम् । आर्यसुभूतिः खलु षड्विधप्रयोजनार्थं पृष्टवान् । १. संशयोपच्छेदाय, २. अधिमुक्ति–समुत्पादाय, ३. गम्भीरेष्वर्थेष्ववतारणाय, ४. अविनिवर्तनाय, ५. परमप्रमोद–सञ्जननाय, ६. सद्धर्मस्य चिरस्थित्यै च ।

तत्र प्रज्ञापारमितेयं कथं बुद्धवंशस्य अनुपच्छेदं करोतीति सन्देहकारिणां संशयोपच्छेदनार्थम् । अपरिपक्वसन्ततीनां बोधिसत्त्वानां पुण्यबाहुल्यख्यापनेन प्रज्ञापारमितासु अधिमुक्तिसमुत्पादनार्थम् । परिपक्वसन्ततीनां तावद् गम्भीरेष्वर्थेष्ववतारणार्थम् । अभूतप्रतिपत्तिपरिभूतानां तदुद्ग्रहणधारणयोर्व्यायच्छतां पुण्यबाहुल्याभिकाङ्क्षया अविनिवर्तनार्थम् । अनुगृहीतेषु विशुद्धाध्याशयेषु स्वाधिगततद्धर्मदर्शनेन परमप्रमोदसञ्जननार्थम् । अनागते काले महायानसद्धर्मस्य चिरमवस्थानार्थम् ।

समासतस्तु सन्दिग्धानां सम्यक् सम्प्रकाशनाय, पुण्याभिकाङ्क्षिणाम् अपरिपक्वबोधिसत्त्वानां सम्यगवतारणाय, विप्रतिपत्तिविहतानां सम्प्रहर्षणाय, शुद्धाध्याशयानां प्रमोदाय च । तत्र **स्थातव्यम्** छन्दप्रणिधानाभ्याम् । **प्रतिपत्तव्यम्** योगसमापत्त्या । **चित्तं प्रग्रहीतव्यम्** विक्षेपनिग्रहेण । तत्र

---

1 चित्तानवलीनत्वानुत्रासादिना उपायकौशल्येन यथाशयं "क्षितीशेष्टराज्ञीमरणनिवेदनन्यायेन" मात्सर्यादिधर्मवियुक्तः समस्तवस्तुनैरात्म्यादिदेशकः सुगतिफलादिप्रापकत्वेन कल्याणमित्रम् । –आलोकः, पृ. ३०५ ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– साधु साधु सुभूते, एवमेतत्सुभूते, एवमेतद्यथा वदसि । अनुपरिगृहीतास्तथागतेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः परमेणानुग्रहेण । परीन्दितास्तथागतेन बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः परमया परीन्दनया । तेन हि सुभूते श्रृणु, साधु च सुष्ठु च मनसि कुरु, भाषिष्येऽहं ते–

छन्दस्तावदभिलाषः। प्रणिधानं तु अभिलषितार्थेऽभिसंस्कारलक्षणेन यच्चिन्तनम्[1]। योगसमापत्तिः खल्ववितर्कसमाधिः । विक्षेपनिग्रहस्तावत् समाधितो विक्षिप्तं चित्तं विक्षेपेभ्यो निवार्य तत्रैव विनियोजनम् । प्रथमेन प्रयोगमार्गः, द्वितीयेन परिनिष्पत्तिमार्गः, तृतीयेन त्वविप्रणाशमार्गः परिदेशितः ।

स्थाने पृच्छतो भगवान् आर्यसुभूतये साधुकारमदात् । **श्रृणु** इत्यवहितश्रोत्राभ्यां श्रोतुं प्रवर्तस्व । **साधु** इत्यविपरीतप्रतिपत्त्या उद्ग्रहीतुम् । **सुष्ठु च मनसि कुरु** सम्यक्तया उद्ग्रहीतुमुद्युक्तो भव इत्यर्थः । तदपि अवाङ्मुख–अशुचि–सच्छिद्रभाण्डानामिव श्रोतृजनानां यथाक्रमं त्रिविधदोष–परिहारार्थमिदमुदीरितमिति[2] । **भाषिष्ये** इति तेभ्य एव सम्प्रकाशयिष्यामि, नान्येभ्य इति । अन्यथा अवाङ्मुख–अशुचि–सच्छिद्रभाण्डेषु अम्बुवृष्टिरिव

---

1 सम्यक्संबोधिकामता च तत्प्रार्थना कुशलो धर्मच्छन्दश्चैतसिकः, इति कथं स चित्तोत्पादो भवेत् ? सत्यमेतत् । किं तु दुःखार्णवनिमग्नं जगदत्राणमभिसमीक्ष्य तदुद्धरणाभिप्रायः कुशलधर्मच्छन्दलक्षणायां प्रार्थनायां सत्यां बुद्धत्वाय चित्तमुत्पादयति, इति कारणेनात्र कार्यं निर्दिष्टम् । एवं छन्दप्रार्थनस्य बोधिसत्त्वस्य सर्वे कुशला धर्मा वृद्धिं यान्ति । –आलोकः, पृ. २८३

2 यथा देवे वर्षत्यपि अवाङ्मुखे घटे न किञ्चिदप्युदकं प्रविशति, तद्वत्त्वमवाङ्मुखो भूत्वा अप्रतिपत्त्या मा शृण्वित्याह । साधु च इति । यथा उत्ताने अशुचिघटे यदुदकं प्रविशति तत् सर्वम् अशुचि भवत्यकार्योपगतम्, तद्वत् त्वं विपरीतप्रतिपत्त्या श्रुतमशुचीकुर्वन् मा श्रृणु इत्याह– सुष्ठु च इति । यथोत्तानशुचिछिद्रघटं प्रविशत्युदकं न तु तिष्ठति, तद्वत् त्वमस्थिरप्रतिपत्त्या मा श्रृणु । किं तु श्रृणु यथा पटुतरानुभवद्वारेण चेतसि स्थिरीभवतीत्याह– मनसि कुरु इति । –आलोकः, पृ. ३३३; श्रृणु इत्यादि व्याख्यातम् । अथवा, यस्मादादित एव भक्तिहेतुतया तावत्कल्याणं तस्मात् साधु श्रृणु । यतश्च मध्ये पुष्टिहेतुत्वात् कल्याणं ततः सुष्ठु श्रृणु । येन च पर्यवसाने मुक्तिहेतुतया कल्याणं तेन योनिशो मनसिकुरु । अथवा, मृदुमध्याधिमात्राणां दोषाणां प्रतिपक्षत्वात् यथाक्रमं साध्वादिवचनम् । द्र0– आलोकः, पृ. ३३५ ।

यथा बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन स्थातव्यं यथा प्रतिपत्तव्यं यथा चित्तं प्रग्रहीतव्यम् । एवं भगवन् इत्यायुष्मान् सुभूतिर्भगवतः प्रत्यश्रौषीत् ।

धर्मवृष्टिरपीयं निरर्थकैव स्यादित्यर्थः । अथवा अहं तु केवलं देशयिष्यामि त्वमेव तावद् यत्नतः प्रतिपद्यस्वेत्यर्थः ।

बोधिसत्त्वयानेति बोधिसत्त्वानां यानम्, येन बोधिसत्त्वा निर्यान्ति । तच्च दशभिः पारमिताभिः दशभिश्च भूमिभिः परिगृह्यते । तत्र सम्प्रस्थानं तावत् प्रणिधिप्रस्थानचित्ताभ्यां[1] सम्प्रवर्तनम् । एतद्विशेषणं तु श्रावकादिबोधिप्रतिषेधार्थम्, बोधिसंप्रस्थितेन इत्येतावदुच्यमाने बोधीनां त्रित्वादन्यस्या अपि बोधेरवगमः स्यादिति । **प्रत्यश्रौषीत्** इत्यभ्युपगमादित्यर्थः । उक्ताः प्रतिपत्तिलक्षणपदार्थादयः ।

प्रतिपत्तिस्थानम् :

साम्प्रतं तत्स्थानान्यभिधीयन्ते । तत्स्थानानि तावत् समासतोऽष्टादशप्रकाराणि; तद्यथा–

१. चित्तोत्पादः
२. पारमितायोगः
३. रूपकायाप्तिकामता
४. धर्मकायाप्तिकामता
५. भावनाविशेषलाभेऽनभिमानः
६. बुद्धोत्पादारागता
७. क्षेत्रविशुद्धिप्रणिधानम्
८. सत्त्वपरिपाकः

---

1 तद्बोधिचित्तं द्विविधं विज्ञातव्यं समासतः ।
बोधिप्रणिधिचित्तं च बोधिप्रस्थानमेव च ॥ – बो.च., १/१५ ; अपि च द्रष्टव्यम्– यथा आर्यगण्डव्यूहे वर्णितम्– बोधिचित्तं कुलपुत्र ! बीजभूतं सर्वबुद्धधर्माणाम् "दुर्लभास्ते, कुलपुत्र, सत्त्वाः सत्त्वलोके येऽनुत्तरायां सम्यक्सम्बोधौ प्रणिदधति इति । ततोऽपि दुर्लभास्ते सत्त्वा येऽनुत्तरायां सम्यक्सम्बोधिम् अभिसम्प्रस्थिताः ।" –ग.व्यू.सू., पृ. ३९५, दरभंगासंस्करणम् ।

भगवानस्यैतदवोचत्- इह सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेनैवं चित्तमुत्पादयितव्यम्- यावन्तः सुभूते सत्त्वाः सत्त्वधातौ -

---

९. बाह्यशास्त्रेषु व्यपगतरागता

१०. सत्त्वभाजनलोकयोः पिण्डग्राहविशीर्णतायोगः

११. तथागतपूजासत्कारः

१२. कायचित्तपरिश्रान्तौ वीर्यवैमुख्यानारम्भलाभसत्कारविरहितता । कायचित्तपरिश्रान्तौ वीर्यारम्भतोऽविनिवृत्तिः, न आरम्भ इत्यनारम्भः । अहो, आरब्धवीर्योऽयमिति परेण ज्ञायमाने सति श्रद्धामागम्य लाभसत्काराध्यवसितत्वम्। तस्माद् बोधिसत्त्व एतेभ्यः सर्वेभ्यो विमुच्य प्रजह्यात् ।

१३. दुःखाधिवासनम्

१४. ध्यानास्वादविरतिः

१५. अभिसमयकालेऽहमितिविकल्पवियोगः

१६. अववादपर्येषणम्

१७. अभिसमयः

१८. बुद्धभूमिपर्येषणं च ।

एतानि तावदष्टादशविधानि स्थानानि, यत्र बोधिसत्त्वेन स्थातव्यं प्रतिपत्तव्यं चित्तं च प्रग्रहीतव्यमिति । एतैः स्थानैर्भूमित्रयं संगृह्यते, तद्यथा- षोडशभिः स्थानैरधिमुक्तिचर्याभूमिः, अभिसमयस्थानेनैकेन शुद्धाध्याशयभूमिः, बुद्धभूमिपर्येषणेन च बुद्धभूमिः संगृह्यते । सर्वसत्त्वपरिनिर्वापणचित्तमुत्पाद्य पारमितायोगी तावत् तथागतस्य रूपकाय-धर्मकायप्राप्तौ छन्दमुत्पादयति । ततः आ अभिमानम् अन्तिमम् अहं-विकल्पं यावदभिसमयस्यान्तरायेभ्यश्चित्तं विप्रकर्षति । ततश्चाभिसमयार्थमववादं पर्येषते, तदनन्तरमभिजानाति, तदूर्ध्वं बुद्धभूमिं पर्येषते । अयमेव तेषां क्रमः ।

१.चित्तोत्पाद-स्थानम् :

तत्र बोधिचित्तमधिकृत्य **यावन्तः सत्त्वाः** इत्याह । **यावत्** इति परिमाणम् । किं तत्र परिमाणम् ? **सत्त्वसंग्रहेण** इत्युक्तम् । सत्त्वधातुस्तु

सत्त्वसंग्रहेण संगृहीता अण्डजा वा जरायुजा वा संस्वेदजा वा औपपादुका वा रूपिणो वा अरूपिणो वा संज्ञिनो वा असंज्ञिनो वा नैव संज्ञिनो नासंज्ञिनो वा, यावान् कश्चित्सत्त्वधातुः प्रज्ञप्यमानः प्रज्ञप्यते, ते च मया सर्वेऽनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्याः । –

अपरिमितः, अथापि सत्त्वः सत्त्व इति यस्तत्स्वभावः तदितरव्यावृत्त-शब्दाध्यारोपितार्थसभागरूपेण ख्यातः स एव सत्त्वेन संगृह्यते । तेन दृश्यविकल्प्ययोरेकत्वेनाभिसंक्षिप्य तद्रूपेणाध्यवसितत्वाद् रूपादिस्कन्ध-विशेषैरुपादीयन्ते । अतस्ते आयुष्मानिव प्रतीयन्ते ।

एवं सामान्यतो निरूप्य विशेषतो दर्शयितुमाह– **अण्डजाः** इत्यादि । विशेषलक्षणं तावत् त्रिभिः प्रभेदैरभिहितम् । योनिभेदेनाण्डजादयश्चत्त्वारः । स्थानभेदेन तु रूपिणामरूपिणां च पृथक्स्थानत्वात् । कामावचरा रूपावचरास्तावद् **रूपिणः**, अरूपावचरास्तु **अरूपिणः** । निमित्तोद्ग्रहणभेदेन **संज्ञिनः** इत्यादयः । बृहत्फलस्यैकदेशं भवाग्रजांश्च सत्त्वान् विहाय सर्वे सत्त्वाः संज्ञिनः । बृहत्फलस्यैकदेशस्तावद् **असंज्ञिनः** । अयमपि निमित्तोद्ग्रहणभेदात्मक एव, तदभावभेदेनोपलक्षितत्वात् । भवाग्रजास्तावद् **नैव संज्ञिनो नासंज्ञिनो वा** । प्रभेदोऽयं मन्दमेधसामनुग्रहायैव कृतः, अन्यावध्यानपरिहारार्थं तावन्नैव प्रपञ्चितः । 'सर्वे धर्माः निःसत्त्वाः' इत्यनेन सह वचनस्यास्याविरोधः प्रदर्शितः । अत्र सत्त्वधातुरिति सांवृते सत्त्ये सत्त्वधातुस्तं दर्शयितुं **यावान्** इत्याद्याह । **प्रज्ञप्यमानः** इति पञ्चस्कन्ध-विशेषात्मकत्वेन प्रज्ञायत इति, न तु तैर्थिकाः प्रज्ञप्त्या प्रज्ञपयन्तीत्यर्थः । अनेनापवादान्तस्तावत् परिहृतः, प्रज्ञप्तावपवादाभावात् । यस्मिन् अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातौ सास्रवोपधिर्नावशिष्यते, स तथोच्यते । श्रावकाणां परिनिर्वाणं तावद् नात्र निर्वाणधातुः, तस्य हीनत्वात् । प्रणीतफले संविद्यमाने कृपालूनां हीनफलार्थिता न खलु युक्तिमती । संविद्यमानेऽपि प्रणीतफले प्राप्तुमशक्यत्वादेवं प्रार्थ्यत इति चेत् ? त्वन्मतानुसारं तावद् त्रिविधगोत्रत्वादगोत्रत्वाच्च सर्वैः हीनफलमपि प्राप्तुं नैव शक्यते ।

एवमपरिमाणानपि सत्त्वान् परिनिर्वाप्य न कश्चित्सत्त्वः परिनिर्वापितो भवति । तत्कस्य हेतोः? सचेत्सुभूते बोधिसत्त्वस्य

अथ बोधिसत्त्वगोत्रं तावत्तथाविधं यद्वशतया महाकरुणावेगाभिभूतेन (मया) कथमिदं शक्यमिति, संविद्यमानेष्वपरेषु परार्थकारिषु बुद्धबोधिसत्त्वेषु निरर्थकेन मयाऽत्र प्रणिधानेन किमिति विचारान् सन्त्यज्य परप्रत्ययतां च दूरीकृत्य महाकरुणार्द्रः जाज्वल्यमानेन दुःखाग्निना पीड्यमानं जगद् विलोक्य अहमेव तारयिष्यामीति चिन्तयमानः प्रणिदधाति । यथोक्तम्–

दुष्करादुष्करां वेति कल्पनां परिहाय च ।
अभ्युपेतं जगच्चार्तीमित्यास्येन स्वयं त्वया ॥

इति । यद्यप्येवम्, तथापि प्रियपुत्रस्य नृपत्वाय प्रणिधानमिव सत्यप्यप्राप्ये प्रणीतफले कथन्न प्रणिधानमिति । किमर्थं हीनमेव प्रार्थ्यते । अत एवाप्रतिष्ठितनिर्वाणम् एवात्र अनुपधिशेषनिर्वाणधातुर्युज्यते[1] । तत्र सास्रवोपधेः शेषत्वाभावात् ।

निर्वापयितव्याः इत्येतावन्मात्रं कस्मान्नोक्तम् ? प्रथमादिध्यानानां व्यावृत्त्यर्थमिति । तानि तावदधोभूमिक्लेशाभावाद् निर्वाणपर्यायेणोक्तानि भगवता । सोपधिशेषे निर्वाणधातौ इति कस्मान्नोक्तमिति चेत् ? दुःखोपधिशेषस्याप्रहीणत्वात्तत्र । सर्वसत्त्वनिर्वापणाशयस्तु बोधिसत्त्वानां त्रिभिर्हेतुभिर्द्रष्टव्यः, तद्यथा–

१. अक्षणोत्पन्नेभ्यः कालान्तरावस्थानम्, अक्षणावस्था तावदुपलक्षणमिति । नैतावन्मात्रम् । तस्यामवस्थितौ परिनिर्वाणं नैव सम्भाव्यते ।

२. अपरिपक्वानां परिपाचनम् ।

३. परिपक्वानां विमोक्षणं च ।

तस्मान्नाशक्ताऽर्थिता (तेषाम्) । निखिलसत्त्वानां परिनिर्वापणाशयेन अनेन औदार्यं तावद् बोधिचित्तस्यादर्शितम् । छन्दप्रणिधानाभ्यां कथं स्थातव्यं –

---

1 न विद्यन्ते उपधयः स्कन्धाः सर्वरागादिप्रहाणशेषीभूतत्वेन शेषा यस्मिन्निर्वाणे तत्तथोक्तम्। –आलोकः, पृ. ३३५

सत्त्वसंज्ञा प्रवर्तेत, न स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः । तत्कस्य हेतोः ? न स सुभूते बोधिसत्त्वो वक्तव्यो यस्य आत्मसंज्ञा[1] **प्रवर्तेत सत्त्वसंज्ञा वा जीवसंज्ञा वा पुद्गलसंज्ञा वा प्रवर्तेत ।**

तदप्यत्रावेदितम् । कथं योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यमिति तद्देशयितुमाह **एवम्** इत्यादि । संवृतौ सर्वसत्त्वानां परिनिर्वापणेऽपि यथा परमार्थतो न कोऽपि सत्त्वः बोधिसत्त्वेनोपलभ्यते, तस्याभावादित्येवं योगसमापत्त्या प्रत्यवेक्षणीयम् । व्युत्थितो भूत्वा न परमार्थतः कोऽपि सत्त्वो मया परिनिर्वापितः इति यश्चित्तोत्पादस्तेन गम्भीरत्वं परमार्थबोधिचित्तत्वञ्च दर्शितं भवति, पूर्वेण तु संवृतिरिति । तेन विक्षेपनिग्रहेण कथमत्र चित्तं प्रग्रहीतव्यमित्यादर्शयितुमाह– **तत्कस्य हेतोः ? सचेत्** इति यदीत्यर्थः ।

अथ यः पुद्गलादिसंज्ञया प्रवर्तते किं स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः ? सत्त्व इत्युक्तौ पुनः कस्य हेतोः इति प्रश्नेनेतराभिरपि (संज्ञाभिः) न वक्तव्यः इत्याह । अस्यायमभिप्रायः– कुमतिभिस्तावत् पञ्चस्कन्धातिरिक्तः अन्तर्व्यापारवांश्चतुर्णां भोगानां भोक्ता एकः पुरुष इति परिकल्प्यते सत्त्वः, जीव इत्यादिशब्दैश्च व्यवह्रियते । ये चानिर्वचनीयत्वेन पुद्गलमिच्छन्ति[2] तैरपि तस्य स्कन्धस्वभावविलक्षणत्वेनाभ्युगतत्वात् तद्बलेनार्थान्तर एवाभ्युपेयते । न कदापि पदार्थोऽनिर्वचनीयः सम्भवति, सर्वस्याप्यनिर्वचनीयत्वप्रसङ्गात् । तत्साधकप्रमाणाभावाद् बाधकसद्भावाच्च तद्द्रष्टा बोधिसत्त्वो विपरीताभिनिवेशेन विपर्यस्त एव भवति । यः खलु विपर्यस्तः स कथं परमार्थबोधिसत्त्वः ?

अन्ये पुनराहुः– अस्ति तावदात्मसाधकं प्रमाणमिति । तथा हि– बन्ध–मोक्ष–मार्ग–हेतुफलसम्बन्धस्मृतिप्रत्यभिज्ञादीनामेकाधिकरणकत्वे तावत् प्रसिद्धे नैरात्म्यवादिनां युष्माकं मते तु यस्तदाधार एकः प्रसिद्धः स नास्ति कश्चिदिति कस्तावदाधारः ? विज्ञानक्षणानां प्रतिक्षणं पृथक्त्वात् । बद्धो

---

1 भोटपाठे "आत्मसंज्ञा" इति पाठो नोपलभ्यते ।

2 यथोक्तम्– भारं वो भिक्षवो देशयिष्यामि भारादानं भारनिक्षेपं भारहारं च । तत्र भारः– पञ्चोपादानस्कन्धाः, भारादानम्–तृष्णा, भारनिक्षेपः=मोक्षः, भारहारः=पुद्गलाः। –त.सं.प., भाग १, (उद्धृतम्) पृ. १६५, (सं. नि., स्क. सं. २२सू.)

देवदत्तः मुक्तश्चान्यो यज्ञदत्त इति नैव व्यवस्था, न चान्यः प्रत्यनुभविष्यति अन्येन कृतस्य कर्मणः फलमित्यतिप्रसङ्गः । कृतविप्रणाशोऽकृताभ्यागमश्च प्रसज्येते[1] । तथा हि– कर्तृत्वेन प्रज्ञप्तो यो हि विज्ञानक्षणः, तस्य फलेनानभिसम्बन्धात् कृतविप्रणाशाख्यो दोषः । अकर्तुश्चैव तस्य फलेन योगादकृताभ्यागमो दोषः स्यात् ।

स्मृत्यादिकं च भिन्नाधिकरणकमिति न लोके प्रतीतम् । अथ कथमिति चेत् ? एकाधिकरणकमेव । देवदत्तस्य चित्तानुभवः यज्ञदत्तचित्तेन न स्मर्यते वा प्रत्यभिज्ञायते वा । येनानुभूयते तेनैव स्मर्यते प्रत्यभिज्ञायते वेति प्रसिद्धम् । फलतश्चैक एव पुरुषः सर्वावस्थास्वनुगन्ता भवति । प्रयोगः– यौ बन्धमोक्षौ तावेकाधिकरणकौ, यथा– देवदत्तस्यैव श्रृङ्खलाबन्धनं मोक्षश्च । विवादास्पदीभूतौ बन्धमोक्षावपि बन्धमोक्षावेवेति स्वभावहेतुः[2] । तथैव कर्त्रादेरप्येकाधिकरणत्वसाधने प्रयोगाः कल्पयितव्या इति ।

तत्र यदि स्वतन्त्रस्यैकस्य परमार्थसतो नित्यस्य पुरुषस्याधिकरणत्वं साध्यते, तदा तथाविधेन पुरुषेण सह क्वापि हेतोः सम्बन्धासिद्धेरनैकान्तिकत्वम्, सर्वेषां संस्काराणां क्षणिकत्वात्, देवदत्तादेः नित्यत्वैकत्वस्वभावासिद्धेः दृष्टान्तस्यापि साध्यविकलत्वम् । अत एव विरुद्धो हेतुः तद्विपर्ययव्याप्तत्वात् ।

अथ एकाधिकरणत्वमात्रं साध्यते, तदा सिद्धसाधनम् । एकसन्तानप्रवृत्तत्वेन तेन बन्धनादीनामेकाधिकरणत्वमिष्यत एव ।

---

1 येनैव कृतं कर्म शुभादिकं तेनैव तत्फलमुपभुज्यते– इति लोके प्रतीतम् । न हि देवदत्तेन कृते कर्मणि शुभादिकं यज्ञदत्तस्तत्फलमिष्टमनिष्टं चोपभुङ्क्त इति प्रसिद्धम् । नापि शास्त्रे, यथोक्तम्–
"अनेनैव कृतं कर्म कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति ।"
इति । तच्चैतत् क्षणिकपक्ष विरुध्यते; कर्मफलपरिग्राहकस्यैकस्य कर्तुरभावेन कृतनाशाकृताभ्यागमदोषप्रसङ्गात् । –त.सं.पं., भाग १. पृ. २०८, बौ.भा.प्र., १९८१ ।

2 एकाधिकरणावेतौ बन्धमोक्षौ तथा स्थितेः ।
लौकिकाविवं तौ तेन सर्वं चारुतरं स्थितम् ॥ ४९९
प्रयोगः – यौ बन्धमोक्षौ तावेकाधिकरणौ, यथा–लौकिकौ बन्धमोक्षौ । बन्धमोक्षौ च विवादास्पदीभूतावेतावनुशयतद्विसंयोगलक्षणौ बन्धमोक्षाविति स्वभावहेतुः । –त.सं.पं., भाग १, पृ. २१४, बौ.भा.प्र., १९८१ ।

अपि च, यदा यत्र सन्तानेऽविद्यादिकं कार्यकारणभावेनाविच्छिन्नं निरन्तरं प्रवर्तते, तदा स बद्धः इत्युचर्यते, स एव पुनः श्रुतमयादिक्रमेणार्यमार्गोत्पादाद् अविद्यादिनिरोधेनाश्रयपरावृत्तौ मुक्तः इत्युपचर्यते[1] । उभावपि तौ बन्धमोक्षौ नित्यैकपरमार्थवस्तुविषयकौ नतरां सिद्धौ । लौकिकबन्धमोक्षयोरपि तथात्वात् ।

यस्मिन् सन्ताने शुभो वा अशुभो वा चित्तानुभवः समुत्पद्यते, तस्मिन्नेव कालान्तरे सन्ततिपरिपाकमागम्य मस्तुलुङ्गलाक्षादिरसावसिक्तसन्ततिपरिपाक इव सुख–दुःख–स्मृत्यादिफलोदयो दृष्टाः, तस्माच्छुभादीनामेकाधिकरणत्वं तावत् प्रसिद्धम् । नैव खलु कश्चिदेकः कर्ता भोक्ता स्मर्ता वा । सर्वेषामेतेषां व्यवहारस्य प्रज्ञप्तेर्वा कार्यकारणभावमात्रेण प्रभावितत्वात् । न चातिप्रसङ्गः, नियतसामर्थ्यवतो बीजादेरिव कारणशक्तेः प्रतिनियतत्वात् ।[2] ततश्च येषु कार्यकारणभावः प्रतिनियतः तेषु नैव कश्चिद् एकोऽनुगतः भिन्नावस्थश्च परिदृश्यते । इह सत्त्वहेतोस्तथात्वे सति किमनेनात्मना परिकल्पितेन । आत्मोपचारस्य या खलु कर्त्राद्यवस्था, सा तावद् हेतुः, या खलु भोक्त्राद्यवस्था, सा फलमित्येवंविधो हि कार्यकारणभावोऽवश्यमभ्युपेतव्य इति । अन्यथा तयोरुभयोरप्यवस्थयोरनुपपन्नत्वे परस्परोपकारकत्वाभावे वा आकाशमिव कथं तावत् सिध्येत् भोक्त्रादिः[3] । शक्तिप्रतिनियमोऽप्यभ्युपगन्तव्य एव । इत्थं प्रतिनियतात्मना सम्बन्धेन सुखादीनां सम्भवः, न तु सर्वत्र । अतः

---

1 कार्यकारणभूताश्च तत्रविद्यादयो मताः ।
बन्धस्तद्विगमादिष्टा मुक्तिर्निर्मलता धियः ॥ ५४३
केवलमविद्यादयः संस्कारा जरामरणपर्यन्ता दुःखोत्पादहेतुतया 'बन्धः' इति व्यवह्रियन्ते । तथा चोक्तम्– "एवमस्य केवलस्य हेतोर्दुःखस्कन्धस्य समुदयो भवति" इति । तेषां चाविद्यादीनां तत्त्वज्ञानाद् विगतौ सत्यां या निर्मलता धियः सा निर्मुक्तिरित्युच्यते । यथोक्तम्–
चित्तमेव हि संसारो रागादिक्लेशवासितम् ।
तदेव तैर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते ॥ इति ।
–त.सं.पं., भाग १, पृ. २३०, बौ.भा.प्र., १९८१ ।

2 ननु बीजांकुरादीनां कार्यकारणतेक्ष्यते ।
नियता तत्र सूक्ष्मोऽपि नांशोऽस्त्यनुगमात्मकः ॥ –त.सं., ५०६ का., १९८१;
यथा हि नियता शक्तिर्बीजादेरंकुरादिषु । –त.सं., ५०२, बौ.भा.प्र., १९८१ ।

3 योऽपरित्यक्ताकर्त्रभोक्त्रवस्थः, स न करोति न चापि भुङ्क्ते, यथा– आकाशम् । –त.सं.प., भाग १, पृ. १३७ ।

कार्यकारणभावेन दृश्यमानानि कुशलादीन्येव कर्ता, भोक्ता च स्यात्, किमनेनादृष्टस्वभावेन आत्मना परिकल्पितेन ।

अथ नानुमानेन आत्मा सिद्धः स्यात्, तथापि प्रत्यक्षविषयत्वाद् अहंबुद्धेः प्रत्यक्षत एवात्मा सिध्यतीति चेत् ? तदपि तावन्न युज्यते, भ्रान्तत्वात् सविकल्पत्वाद् असिद्धत्वाच्च प्रत्यक्षेण तत्राहंबुद्धेरिति । अहंबुद्धौ प्रतीयमानत्वे यथा खलु प्रत्यक्ष एको नित्यो विभुश्चात्मा स्वसिद्धान्तैरुपकल्प्यते तथा नैवोपलभ्यत इत्यवश्यमेव द्रष्टव्यम् । अन्यथा अहंबुद्धेर्यदि प्रत्यक्षत्वं स्यात् तदा विवदमानेषु तावन्नैव प्रवर्तेत आत्मविषये कश्चन विवादः, सविकल्पाया अहंबुद्धेर्निश्चयात्मकत्वात्, निश्चयेन च विषयीकृते अध्यारोपाभावाच्च ।

एवमेवान्योऽन्येष्वप्येवञ्जातीयेषु सम्भवाद् विप्रलम्भः । अनादिकालाभ्यासवशात् प्रतिनियतेषु रूपादिस्कन्धेषु एकत्वमध्यारोप्य परं व्यावर्त्तयितुमहमिति प्रतीतिः, तस्यां प्रतीतौ तेषामेव रूपादीनां प्रतिभासमानत्वात् ।

काये चायमात्मग्रहः, कथं तर्हि मम देह इति भेदमात्रग्रहणमिति चेत् ? तच्चात्मालम्बनेऽपि तुल्यम् । यदि चात्मनि अयमात्मग्रहः, कथं तर्हि मम आत्मा इति चिन्त्यते । अथ वस्तुतोऽभिन्नेऽपि भेदान्तरपरिहारेण तन्मात्रजिज्ञासायां शिलापुत्रकस्य शरीरवद् भेदोपचारेण ग्रहणान्नास्ति विरोध इति चेत् ? देहालम्बनेऽपि चैतत् समानम् ।

आत्मा खलु विषयः पुनः क्रमोत्पत्त्या विरुध्यत इति पश्चात् वक्ष्यते । न केवलमात्मग्रह आत्मा अपितु तद्विषयो रूपादिरात्माऽस्तीत्यपि वक्तुं न शक्यते, तदविलक्षणत्वात्तस्य । क्रमेणोपलभ्यमानत्वान्न ते एकस्वभावाः, न च स्वतन्त्राः । अत एवोक्तम्[1] –

न चात्मदृष्टिः स्वयमात्मलक्षणा
न चापि दुःसंस्थितता विलक्षणा ।

नामव्यवहारस्य तु अभीष्टत्वान्नात्र कश्चिदपि विवादः । अत एव नास्ति किञ्चिदात्मप्रसाधकं प्रमाणम् । नास्ति प्रत्यक्षमनुमानं च व्यतिरिच्य प्रमाणमित्यन्यत्र विचारितम् ।

---

1 म.सू. ६/८, दरभंगा संस्करणम् ।

बाधकप्रमाणं तावन्निराक्रियते– यद्येवमात्मा स्कन्धेभ्योऽभिन्नस्तदा स्कन्धवत् क्षणिकः स्याद् अथवा स्कन्धाः खल्वात्मवन्नित्याः स्युः, तदभिन्नत्वात्, स्कन्धवदनेकत्वप्रसङ्गोऽपि दुर्निवारः स्यात् । अतः स्कन्धेष्वेव आत्मेति प्रज्ञप्यते, न तावन्नाम्नि विवादः ।

अथ स्कन्धेभ्यो भिन्न आत्मा इष्यते तदा सुखादिनाऽसम्बद्धत्वे न सिध्येत् तस्य भोक्तृत्वादिकम् । तत्र प्रयोगः– यो नास्ति सुखदुःखादिभिः सम्बद्धः स नास्ति कर्ता वा भोक्ता वा, मुक्तः संसारी वापि न युज्यते, यथा वन्ध्यापुत्रः । आत्माऽपि तथाऽर्थक्रियादिभिर्न कथञ्चनापि सम्बद्ध इति व्यापकानुपलब्धिः । न चायमसिद्धो हेतुः, तथा हि– सुखादिना हि सम्बन्धे सति आधाराधेयलक्षणो वा संयोगलक्षणो वा कार्यकारणलक्षणो वेति पक्षत्रयम् ।

न तावत् प्रथमः पक्षः, अकिञ्चित्करत्वात् । तथा हि– अधःप्रसर्पणधर्मिणां जलादीनामधोगमनप्रतिबन्धकत्वेन व्यवस्थाप्यते तावदाधारः । सुखादीनाममूर्तत्वान्न सम्भवति (तेषाम्) अधोगमनमिति कथमिव आत्मन आधारत्वमिति[1] । स्थित्याऽपि नाधारः, स्थितेः स्थातुरभिन्नत्वात्, तस्यैव कारकत्वमिति ? तदपि तावन्निषिध्यते । स्थितेः पृथकत्वे सति सा नैव तावत्स्थातुरुपकारिका अर्थान्तरभूतत्वात्तस्याः[2] । नास्त्येव तस्यां स्थातुरुत्पादसामर्थ्यम्, असामर्थ्यस्य सर्वत्रैवाभिव्यक्तत्वात् । स्वयं भङ्गात्मनः तावन्नास्ति कश्चन स्थापकः, अनवस्थितत्वात्तस्य, अन्यथा तेन भङ्ग एव तस्य स्यान्न तावदवस्थानम् । अविपरिणामात्मनि तावत् स्थापकेन किं क्रियते, स्थिरात्मना स्वभावेन स्वयमवस्थितत्वात् ।[3]

---

1 स्यादाधारो जलादीनां गमनप्रतिबन्धतः ।
अगतीनां किमाधारैर्गुणसामान्यकर्मणाम् ॥ –प्र.वा. १/७०•;
अपि च तुलनीयम्–
स्यादाधारो जलादीनां गमनप्रतिबन्धकः ।
अगतीनां किमाधारैः सामान्यानां प्रकल्पितैः ॥ –त.सं. ८०१ का. ।

2 स्थितिमान् नाश्रयः सर्वः सर्वोत्पत्तौ च साश्रयः ।
तस्मात् सर्वस्य भावस्य न विनाशः कदाचन ॥ –प्र.वा. १/७३

3 स्वयं विनश्वरात्मा चेत् तस्य कः स्थापकः परः ।
स्वयं न नश्वरात्मा चेत् तस्य कः स्थापकः परः ॥ –प्र.वा. १/७४

अत एवाकिञ्चित्करत्वेन संयोगसम्बन्धोऽपि तावन्नैव युज्यते, अतिप्रसङ्गात् । एवं हि सति सर्वस्य सर्वसंयोगहेतुत्वम् । एवं च नैवोपपद्यते तावद् भिन्नार्थेन भिन्नार्थस्य संयोगः, सर्वस्य स्वयमवस्थितत्वात् लौहशलाकावत्। अपि च, संयोगबलेन यदि आत्मा सुखी वा दुःखी वा भवेत्, तदा संयोगैकत्वमेव स्यात्, अविशिष्टत्वेन प्रतिनियतात्मभिः सुखादिभिर्नैव स्यात् सम्बन्धः । तत एवात्मना सहैकत्वे सुखादिना नैव स्यात् कश्चित् सुखी वा दुःखी वा । अदर्शनेऽपि बलेनाभ्युपगते निश्चये तेनैव निश्चितः स्यात्तदा किं तावत् संयोगपरिकल्पनया, सर्वसामर्थ्यविरहितत्वात्तस्य । सम्बन्धिभेदेन भिन्नायामपि प्रज्ञप्तौ परमार्थतः भावानामभिन्नस्वभावे सति कथं स्वभावभेदाश्रितः पृथगर्थक्रियाभेदः स्यादिति कुमतिपरिकल्पित एवायं खलु सम्बन्धः ।

न चापि कार्यकारणसम्बन्धः । क्रमेण वेद्यमानत्वात् सुखादीनाम् । अविकले हेतौ सति न युज्यते तावत् कादाचित्ककार्यसम्भवः, अविशिष्टत्वात्। परैरनाधेयातिशयोऽप्रतिबद्धसामर्थ्यो वा खल्वात्मा कथं सहकारिकारणमपेक्ष्य क्रमेणोत्पादयेत्, न हि सहकारिणि तदपेक्षा । दुःखोत्पादहेतुत्वाद् यदि बद्धस्तदा सर्वथा बद्धत्वान्नैव मुक्तः स्यात्, तत्स्वभावापरित्यागात्, परित्यागे वा कथं नित्यः स्यात् । अदुःखावस्थोत्पादहेतुत्वाद् यदि मुक्तस्तदा विमुक्त एव भवेन्न कदाचिदपि बद्धः स्यात्तदा कथं तावत् कल्प्येत आधेयनिबन्धनं बन्धमोक्षत्वमिति ।[1]

यदि चैतन्यादिलक्षणत्वेनोत्पादसामर्थ्येन वा कर्ता स्यात्तदा कर्ता एव सदा भवेत् कथं तावद् भोक्ता ?[2] अथ सुखाद्युत्पादहेतुत्वेन यदि भोक्ता स्यात्तदा भोक्तैव भवेत् कथं तावत् कर्ता ? किञ्च कापिलपरिकल्पितस्य[3] (आत्मनः)

---

1 दुःखस्योत्पादहेतुत्वं बन्धः, नित्यस्य तत् कुतः ॥
अदुःखोत्पादहेतुत्वं मोक्षः नित्यस्य तत् कुतः । – प्र.वा., १/२०४–५ ।

2 एकरूपे च चैतन्ये सर्वकालमवस्थिते ।
नानाविधार्थभोक्तृत्वं कथं नामोपपद्यते ॥ –त.सं.प., भाग १/२८८, बौ.भा.प्र. ।

3 चैतन्यव्यतिरिक्तं हि न दिदृक्षादि विद्यते ।
तस्योदयव्ययावेशे दुर्वारः पुरुषेऽप्यसौ ॥
शुभाशुभं च कर्मास्ति नैव चेदात्मना कृतम् ।

सुखादिभिराकाशवन्निर्विकारत्वेन नैव खलु युज्यते भोक्तृत्वम्, अतिप्रसङ्गात् । सति वा विकारे नित्यताहानिः । न खलु हेतुमात्रतया कर्ता वा भोक्ता वा, अतिप्रसङ्गात् । तथैव स्मृत्यादिष्वपि नाश्रयित्वमुपयुज्यत इति योज्यम् ।

तस्मान्नैरात्म्यवादिन्येव पक्षे बन्धमोक्षादिव्यवस्था युक्तिमती । कार्यकारणवैशिष्ट्यमात्रेण तस्या व्यवस्थाया प्रभावितत्वात् । स च कार्यकारणभावस्तावदनित्येष्वेव सम्भवति, न खलु नित्येषु । तेषु नास्ति कस्यचिदपि कार्यस्य क्रमेणोत्पादसामर्थ्यम्, यथोक्तं प्राक् । न चापि युगपद्, तथाविधफलोत्पादसमर्थस्वभावानुगमे फलोत्पादाभावस्तावन्न युज्यते प्राग्वत् ।[1] अननुगमे च प्राक्स्वभावताहानिः । क्रमयौगपद्याभ्यां व्यतिरिक्तो नास्त्येव कश्चिदाकारान्तरः, यः स्यादर्थक्रियायां प्रभविष्णुः, परस्परपरिहारस्थित-लक्षणत्वात्तयोः । अत एव यावन्तः परपरिकल्पिता आकाशादयोऽक्षणिका भावास्ते सर्वे अर्थक्रियासामर्थ्यरहितत्वाद् अभावव्यवहारविषया उच्यन्ते परमविचक्षणैर्बौद्धैरिति । शशविषाणादावपि अभावव्यवहारप्रज्ञप्तिः अर्थक्रियायां सामर्थ्याभावमात्रनिबन्धनैव, एतद्बलेनार्थक्रियासामर्थ्यविषयिका खलु भावव्यवहारप्रज्ञप्तिः, परस्परपरिहारस्थितलक्षणत्वाद् भावाभावयोः ।

एवंविधे सर्वसामर्थ्यशून्ये शशविषाणाद्यविशेषेऽपि 'भावः' इति नाम व्यवहारे सति नास्ति नाम्नि विवादः । तथापि अर्थक्रियार्थिनो हि प्रेक्षावन्तः

तदेष भोगभेदोऽस्य कुतः समुपजायते ॥
यस्य यद्भावव्यवस्थानिबन्धनं नास्ति, नासौ प्रेक्षवता तद्भावेन व्यवस्थाप्यः यथा– आकाशं मूर्त्तत्वेन । नास्ति च भोक्तृव्यवस्थानिबन्धनं पुरुषस्य दिदृक्षादीति कारणानुपलब्धेः । न चायमसिद्धो हेतुरिति प्रतिपादितम् । –त.सं.प., भाग १, २९०–२९१ का., पृ. १४३ ।

[1] अत्रोच्यते–द्वितीये हि क्षणे कार्यं प्रजायते ।
प्रथमे कारणे जातमविनष्टं तदा च तत्॥
क्षणिकत्वात्तु तत्कार्यक्षणकाले न वर्त्तते ।
वृत्तौ वा विफलं कार्यं निर्वृत्तं तद्यतस्तदा ॥
अविनष्टादेव कारणात् कार्यं भवतीति नः पक्षः, न चैवं यौगपद्यप्रसङ्गः । तथा हि– प्रथमक्षणभाविकारणमासादितात्मलाभमविनष्टमेव प्रतीत्य द्वितीये क्षणे कार्यं प्रजायते । तच्च तथा जायमानमविनष्टादेव जायते; प्रथमे क्षणे तस्याविनष्टत्वात् । कार्यसत्ताकालं च न कारणमनुवर्त्तते; क्षणिकतयाऽनवस्थानात् । सत्यामपि चानुवृत्तौ न तदानीं तस्य कारणत्वम्; निष्पन्ने कार्ये तस्याकिञ्चित्करत्वात् । –त.सं.प., भाग १, ५०९–५१० का., पृ. २१७ ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते न बोधिसत्त्वेन वस्तुप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम्, न क्वचित्प्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम् ।

तथाविधानुपलम्भस्वभावे वन्ध्यापुत्राद्यविशेषे च भावव्यवहारो न युज्यत इत्याहुः । अत एव नासिद्धो हेतुः । न चानैकान्तिकः, आकाशादिष्वपि कर्तृत्वप्रसङ्गात् । सपक्षे सत्त्वान्न च विरुद्धः । तस्मादात्मनो लक्षणान्तराभावाद् वन्ध्यापुत्रसदृश एव । विनश्वरत्वे सति स्कन्धान्तर्गता एव पुद्गलाः प्रसज्येरन्, सर्वसंस्कृतानां स्कन्धसंगृहीतत्वात् । अथाविनश्वरत्वे तावत् स्कन्धान्तर्गतधर्मीविसदृशत्वादर्थान्तरा एव ते भवेयुरिति दोषोऽयमुक्तपूर्व एव । अतो नास्ति कश्चिदनिर्वचनीयो भाव इति । अतः 'सर्वे धर्मा निरात्मानः' इति भगवतः सिंहनादः समस्ततैर्थिककुञ्जरवृन्दानां भीकरः, अनवमर्दनीयत्वात् । अलमतिविस्तरेण ।

२.पारमितायोग–स्थानम् :

पारमितायोगमधिकृत्याह– **अपि तु खलु पुनः** इत्यादि । एतच्च पदद्वयं सामान्यविशेषस्वभावात्मकं द्रष्टव्यम् । दानं दातव्यं न तु– वस्तुप्रतिष्ठितेन बोधिसत्त्वेनेत्यर्थः । **दानम्** इत्यनेन त्रिविधदानमधिकृत्य षट् पारमिता दर्शिताः, न तु दानमात्रम् । तत्रामिषदानेन दानपारमिता निर्दिष्टा, अभयदानेन तावद् शील–क्षान्तिपारमिते, धर्मदानेन तु वीर्य–ध्यान–प्रज्ञापारमिताः।[1] वीर्याभावे धर्मादान–प्रवचनयोः परिखिन्नत्वान्न धर्मं देशयेत् । ध्यानाभावे श्रद्धातिरेककर्माभिलाषतया संक्लिष्टा भवेद् देशना । प्रज्ञायाश्चाभावे स तद् विपरीततया धर्मं देशयेत् । तस्मात् त्रयाभावे न सिध्यति धर्मदानम् । वीर्यं सर्वत्रगमित्यपरे ।

दानं दातव्यम् इत्यनेन षट्सु पारमितासु छन्द–प्रणिधानाभ्यां कथं स्थातव्यमिति निर्दिष्टम् । **न वस्तुप्रतिष्ठितेन** इत्यादिनाऽत्र योगसमापत्त्या

---

1 ये सद पारमितासु चरन्ती ते प्रतिपन्न इहो महायाने ।
–शि.सम., प ६, मि.प्र., १९६० ।

कथं प्रतिपत्तव्यमित्यावेदितम् । **एवं हि बोधिसत्त्वेन दानं दातव्यम्**[1] इत्यादिना विक्षेपं निगृह्य कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यमित्येतन्निर्दिष्टम् । तत्र न वस्तुप्रतिष्ठितेनेति प्रज्ञापारमितायां योगस्य याथावत्त्वं तावन्निर्दिष्टम् ।

तत्र देय–दायक–प्रतिग्राहकादिवस्तुषु यत्तत्त्वतोऽभिनिवेशनं तत् प्रतिष्ठानम् । यदि बोधिसत्त्वः वस्तुन्यभिनिविश्य पारमितायां युञ्जीत, मिथ्यायोगो भवेत्, परमार्थतः कस्यचिदप्यभिनिवेश्यवस्तुनः सर्वथाऽभावेन विपरीताभिनिवेशात्, तत्साधकबाधकप्रमाणाभावभावतश्च ।

तथा हि– परैः परमार्थत इष्टा विज्ञानव्यतिरिक्ता अर्थास्तावन्न प्रत्यक्षसिद्धाः, अर्थान्तरेण ज्ञानेन ग्रहणायोगात् । अर्थे सति साकारेण निराकारेण अन्याकारेण वा ज्ञानेन ग्रहणमिति त्रयः पक्षाः[2] । तत्र तावन्न साकारेण चित्रवर्णादिदर्शनकाले एकज्ञानाभिन्नत्वादाकाराणामप्येकत्वं प्रसज्येत, अथवा आकाराभिन्नत्वादाकारवज्ज्ञानस्याप्यनेकात्मकत्वं प्रसज्येत ।

अनेकत्वं तावन्न युज्यत एव, एकैकपरमाणुग्राह्यज्ञानानुभवाभावान्न सिध्यति तावज्ज्ञानस्यैकत्वम्, तदसिद्धावनेकत्वमपि खल्वसिद्धम्, एकैकसंहतिस्वरूपत्वाद् अनेकस्य । चित्राकारव्यवस्थापनायै अनेकज्ञानोत्पादपरिकल्पनयाऽपि ज्ञानस्य विषयं व्याप्य स्थितत्वाद् ग्राहकज्ञानानामुत्पादोऽपि न सम्भवति, अमूर्त्तत्वाज्ज्ञानानाम् ।

अन्यच्च, सारूप्यं तावदेकदेशेन भवेत् सर्वात्मना वा । तत्र न तावत् सर्वात्मना– अर्थवज्ज्ञानस्यापि जडस्वभावप्रसङ्गात् । न चैकदेशेन– एकस्य तावन्निरवयवत्वाद् । व्यावृत्तिभेदेनांशोपचारेऽपि वस्त्वादिसारूप्यधर्माणां सर्वत्र

---

1 दानं हि बोधिसत्त्वस्य बोधिरिति । –रत्न.सू. (उद्धृतम्– शि.समु., १ परि., पृ. २२), TOh: 231 Sde bka (Mdo Sde, wa p. 12)

2 अनिर्भासं सनिर्भासमन्यनिर्भासमेव च ।
विजानाति न च ज्ञानं बाह्यार्थं कथञ्चन ॥
न निराकारेण नापि साकारेण नापि विषयाकारादन्याकारेण बाह्यस्य ग्रहणं युक्तम्, अन्यश्च प्रकारो नास्ति । –त.सं.प., भाग २, १९९८ का., पृ. ६८२, बौ.भा.प्र., १९८२ ; पुनः– तदाकारेण निराकारेण अन्याकारेण च ज्ञानेन ग्रहीतुमशक्यत्वाद्यथाक्रमं वाच्यम । –आलोकः प ३९२ दरभंगा संस्करणम १९६०।

विद्यमानत्वात् सर्वेण सर्वमवगम्येत । अथ तदुत्पन्नं तत्सारूप्यं चेत्येतद्द्वयेन वेदयतीति अर्थसारूप्यस्य समनन्तरप्रत्ययस्यापि ग्राहकत्वप्रसङ्गः ।

सत्यपि सारूप्ये परमार्थतः बाह्यार्थो न प्रत्यक्षसिद्धः, नीलाकारात्मनो ज्ञानस्य स्वसंविदितत्वात् । यतो हि प्रत्यक्षैव नीलादिविज्ञप्तिर्नापरा । यत्तद् विज्ञानं तदेवार्थग्राहकमिति चेत् ? भवतु नाम प्रज्ञप्तितः, न तु परमार्थतस्तद् वेदनम्, आत्माकारस्य स्वसंविदितत्वात्, अत्यन्तपरोक्षत्वादर्थानां कथं तदाकारं ज्ञानं भवेदिति । स्वाकाराधानेन तावदुत्पादको हेतुर्नैव नियमेन सिध्यति, व्यभिचारात् ।

परमाणवः खलु नैव स्थूलप्रतीतिविषयः, सूक्ष्मत्वात्तेषाम् । न च संहिताः, तेभ्योऽनर्थान्तरत्वात् विकल्पविषयाणाम् असत्त्वाच्च । संहतार्थान्तरत्वे पृथक् प्रतिभासः स्यात् । आवृतानावृतयोश्च विरोधान्नैव तावद् युज्यत एकत्वम् । अनेकत्वे संघातस्य परमाणुरेव स स्यान्न त्वर्थान्तरः ।

न च तावन्निराकारपक्षः– नीलादिष्वकिञ्चित्करत्वात्तस्य । भावमात्रेण वेदने सति सर्वैः सर्ववेदनप्रसङ्गः, अविशिष्टत्वात् सर्वस्य । अतो नीलसंवेदनमिदम्, न पीतमिति व्यवस्था न स्यात्, व्यवस्थायाः कस्यापि हेतुविशेषस्याभावात् । विशेषस्य कस्यचिदभ्युपगमे स एव तावत् साकारत्वाभ्युपगमः । प्रतीतिस्वभावमात्रे तावद् विशेषाभावाज्ज्ञानात्मनि नाकारातिरिक्तं भेदकमन्यत् स्यात् ।

नैवान्याकारपक्षः, अतिप्रसङ्गात् । एवं हि सति रूपविषयकमाकारविज्ञानं तावत् परीक्षामर्हति, तथा हि– न तावत् प्रत्यक्षतोऽर्थः सिध्यति, नानुमानादपि । अप्रत्यक्षस्यार्थस्य ज्ञानस्य च केनापि हेतुना सम्बन्धासिद्धेः । फलज्ञानाद् भिन्नस्य कारणमात्रत्वानुमाने नेष्टसिद्धिः, इतरस्य समनन्तरप्रत्ययस्य विद्यमानत्वात् । इतरत् प्रमाणं नास्ति, अतो तावन्नैव सिध्यति बाह्योऽर्थः ।

न तावत् परमार्थतः ज्ञानस्वभावता प्रत्यक्षेण सिध्यति, अद्वैतस्वभावताया असंविदितत्वात्, अन्यथा न कोऽपि तत्त्वद्रष्टा स्यात् । नानुमानेनापि एवंविधेनाकारेण कस्यापि हेतोः सम्बन्धस्यासिद्धेः ।

नन्वेवं कथं संक्लेशव्यवदाने स्यातामिति चेत् ? न, त्वन्मते ताभ्यां सह तस्य कस्यचिदपि सम्बन्धस्यासिद्धत्वात् । तयोः परमार्थतः क्वचिदपि वस्तुनि

सम्बन्धासिद्धेः । न तावत् तदुत्पत्तिलक्षणसम्बन्धः, सर्वथा परोक्षत्वात्तस्य । परोक्षेण सह सम्बन्धस्तु न केनाप्यर्वाग्दर्शिना ग्रहीतुं शक्यते । अविद्यादीनामविचाररमणीयत्वेऽपि संक्लेशमूलत्वे नास्ति विरोधः, अविद्यादौ विचारेण तृष्णानिवृत्तौ व्यवदानम्, ततो विपक्षभूतलक्षणम् अविचारैक-रमणीयमुपपद्यते, तदा परमार्थतो वस्त्वभावेन कथं तयोरप्यभावप्रसङ्गः । ये एतयोरेकान्तेन निर्हेतुकत्वमभ्युपगच्छन्ति, तेष्वेवायं प्रसङ्गः, न तु संवृतितः प्रतीत्यसमुत्पादवादिषु ।

अत एव परमार्थतः भावस्वभावसाधकं किञ्चिदपि प्रमाणं नास्ति, अस्त्येव च बाधकम् । इत्येवं तावत्- यदेकानेकस्वभावविगतं तत् परमार्थतो निःस्वभावम्, गगनारविन्दवत्[1] । परैरिष्टाः सर्वे ज्ञानज्ञेयात्मकाः भावाकाराः, एकानेकस्वभावशून्या इत्यतो व्यापकानुपलब्धिः, एकानेकाभ्यां व्याप्तत्वात् स्वभावस्य । द्वयमेतत् तत्र नास्ति । एवं तावद् रूपाद्यायतनानां बाह्यवस्तूनां नैकत्वम्, आवृत्यनावृत्योर्विरुद्धधर्मयोस्तत्रोपलब्धेः । अपि च, विरुद्धधर्म-संसर्गेऽप्येकत्वे विश्वमप्येकद्रव्यं स्यात् । ततो युगपदुत्पत्तिविनाशौ स्याताम् ।

नानेकत्वमपि, तथा हि- अनेकस्मिन् विभज्यमाने सति विभक्ताः परमाणव एव स्युः, ततश्च पौर्वापर्यावस्थानं न स्यान्निरवयवत्वात् परमाणूनाम्, चित्तचैतसिकवत् । ततो दिशं व्याप्य अवस्थिता न प्रतिभासेरन् । अत एव दिग्भागभेदोऽभ्युपगन्तव्य एव । सति चाभ्युपगमे कथं नाम भवेदेकत्वम् ।[2] अतः सिद्ध एव तावदेकानेकस्वभावविरहत्वं बाह्यार्थानाम् ।

---

1 निःस्वभावा अमी भावास्तत्त्वतः स्वपरोदिताः ।
एकानेकस्वभावेन वियोगात्प्रतिविम्बवत् ॥ - म.अ., १का. (उद्धृतम्- बो.च., ९/२), Toh: Sde bstan (Dbuma, Sa p. 53)

2 षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशत्वात् पिण्डः स्यादणुमात्रकः ॥ -विंशिका, १२ का. ; अपि च तुलनीयम्- अणूनां पूर्वापरस्थितानां पूर्वादिदिग्भागत्वेन विभिद्यमानानाम् असिद्धावप्यणुसंचयात्मकत्वे नानेकस्वभावो युक्तः, न चैकानेकस्वभावव्यतिरेकेणापरः कश्चिद् भावस्वभावोऽस्तीति निःस्वभावा एवामी परमार्थतः स्वप्नाद्युपलब्धरूपादिवद् रूपिणो भावाः । एतच्च भगवतैव चोक्तम् आर्यलंकावतारे (२परि. पृ. २४) "गो विषाणं पुनर्महामते, अणुशोऽपि विभिद्यमानं नावतिष्ठते । पुनरप्यणवोऽपि भिद्यमाना अणुत्वलक्षणेन नावतिष्ठन्ते" इति । -भा.क्र., प. १७९ (ति.सं.संस्करणम्)

नीलादिप्रतिभासिनो ज्ञानस्यापि नैकस्वभावत्वम्, चित्राकार-ग्राहितयाऽवभास्यमानत्वात्, भिन्नसन्तानवर्त्यनेकविज्ञानक्षणवत् ।[1] यथासंख्यम् अनेकविज्ञानानि युगपत् प्रवर्तन्त इत्यपि वक्तुं न युज्यते निरवयवानाममूर्तानां खलु पौर्वापर्यावस्थितेरयुक्तत्वात् । तथावस्थानाभावे न तथावभासः ।

अथ स्यात्- विज्ञानं त्वेकमेव, मिथ्याकाराणां तत्रावभास्यमानत्वान्न नानात्वदोष इति चेत् ? सति चैवं कथं ते तत्र भासेरन् मृषाः । अवभास इति प्रकाशात्मक उच्यते । तस्य ज्ञानगतधर्मत्वे सति मिथ्याकाराणां शशविषाणादिवदत्यन्ताभावः स्यादिति कथमवभासेरन्निति ।

ततः प्रकाशात्मकाकारेभ्यः मृषात्वेनाभ्युपेतेभ्यः कस्तावदन्यः ज्ञानस्वभावः सद्भूतस्तेऽवशिष्यते, प्रकाशात्मलक्षणत्वाद् विज्ञानस्य । नीलादयोऽपि प्रकाशात्मकाः स्वभावेनावभास्यमानत्वात् । नीलादीनां स्वस्वभावाद् भिन्नं यदन्यत् प्रकाशरूपमिति सद्भूतं किमपि नास्ति, अन्यव्यवच्छेदापेक्षया विशेषे प्रायशो व्यवहारात् ।

विशेषाणां मिथ्यात्वे सर्वेषां मिथ्यात्वमतिविस्पष्टं स्यात् । निराकारस्य (मिथ्याकारस्य) सत्याकारात्मनि (साकारात्मनि) ज्ञाने कथं नियमेनावभासः स्यात्, तयोस्तावत् तादात्म्यलक्षणो वा तदुत्पत्तिलक्षणो वा सम्बन्ध एव नास्ति । सम्बन्धाभावे न खलु युज्यतेऽवभासनम्, अतिप्रसङ्गात् । अत एव नास्ति तावदसिद्धो हेतुः । भावानामन्याकाराभावान्नाप्यनैकान्तिकः । न चापि विरुद्धः, सपक्षे सत्त्वात् । अत एवं **यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथा** ।[2] तथा चोक्तम्-

---

1 चित्रावभासेष्वर्थेषु यद्येकत्वं न युज्यते ।
सैव तावत्कथं बुद्धिरेका चित्रावभासिनी ।। - प्र.वा., २/२०८ का., बौ.भा.प्र. ; अपि च तुलनायम्- ये चारूपिणस्तेऽपि तथैव विचार्यमाणा निःस्वभावा एव । तथाहि, बाह्यस्य नीलादेरर्थस्याभावात् सामर्थ्यत एव विज्ञानादयोऽरूपिणः स्कन्धा नीलादिरूपेण प्रतिभासन्त इत्यभ्युपेयम् । उक्तं च भगवता- "बहिर्धा नास्ति वैरूपं स्वचित्तं दृश्यते बहिः" । इति । (ल.सू., १०/४८९) ततश्च नीलादिचित्राकारनिर्भासतया ग्राह्यग्राहकाकारनिर्भासतया नैकस्वभावा अमी युक्ताः । न चैकस्यानेकरूपता युक्तिमती, एकानेकविरोधात् । एकस्य कस्यचित् स्वभावस्यासिद्धावनेकरूपताऽप्ययुक्तिमती, एकसमूहरूपत्वाद् अनेकस्य । -भा.क्र., पृ. १७९-१८० (ति.सं.संस्करणम्) ।

2 यथा यथार्थाश्चिन्त्यन्ते विशीर्यन्ते तथा तथा । - प्र.वा., २/२०९ का. ।

वस्तुस्वभावचिन्तायां यथा न सत्स्वभावता ।
एकानेकस्वभावोऽपि न तेषां विद्यते तथा ॥

अपि चार्यलङ्कावतारे भगवतोक्तम् :[1]

यथा हि दर्पणे रूपमेकत्वान्यत्ववर्जितम् ।
दृश्यते न च तन्नास्ति तथा चोत्पादलक्षणम् ॥
बुद्ध्या विवेच्यमानानां स्वभावो नावधार्यते ।
तस्मादनभिलाप्यास्ते निःस्वभावाश्च देशिताः ॥

तथा चार्यसमाधिराजसूत्रेऽपि :[2]

यथैव आर्द्र कदलीयस्कन्धं सारार्थिकः पुरुषु विपाटयेत् ।
बहिर्वा अध्यात्म न सारमस्ति तथोपमान् जानथ सर्वधर्मान् ॥

तस्मात् सर्वभावानां मायावदविचाररमणीयत्वादनभिनिवेशेन दानं दातव्यम्, न तु वस्तुप्रतिष्ठितेन इत्ययमर्थोऽत्र युक्तिसङ्गतः । एवं दानादिषु यथा योगस्तथा आदर्शितः, नान्यत्र ।[3]

यदि परमार्थतः कस्यचिदपि वस्तुनो भावाभावाद् वस्तुप्रतिष्ठितेन दानं न दातव्यम्, तदा अवस्त्वभिनिवेशेन तु दानस्य कथैव का, अत एव **न**

---

1 लंकावतारसूत्रम्, १०/७०९, २/१७३ ।

2 समाधि. सूत्रम्, ९/२२ ।

3 दानं संबुद्धबोधिप्राप्तये प्रथमं कारणम्, पुण्यसंभारान्तर्भूतत्वात् । तच्च शीलालंकृतमेव सुगतिपरम्परां सुखभोगोपकरणसम्पन्नामावहदनुत्तरज्ञानप्रतिलम्भहेतुः । क्षान्तिरपि तद्विपक्षभूतप्रतिघप्रतिपक्षतया दानशीलसुकृतमयं संभारमनुपालयन्ती सुगतत्वाधिगतये संप्रवर्तते । एतच्च शुभं दानादित्रितयसंभूतं पुण्यसंभाराख्यं वीर्यमन्तरेण न भवतीति तदपि उभयसंभारकारणतया सर्वावरणप्रहाणाय समुपजायते । समाहितचित्तस्य च यथाभूतपरिज्ञानमुत्पद्यत इति ध्यानपारमितापि अनुत्तरज्ञानहेतुरुपपद्यते । एवमेते दानादयः सत्कृत्य संभृता अपि प्रज्ञामन्तरेण सौगतपदाधिगमहेतवो न भवन्तीति नापि पारमिताव्यपदेशं लभन्ते । प्रज्ञाकृतपरिशुद्धिभाजः पुनः अव्याहतोदारप्रवृत्तितया तदनुकूलमनुवर्तमानाः तद्धेतुभावमधिगच्छन्ति, पारमितानामधेयं च लभन्ते । तथा दातृदेयप्रतिग्राहकादित्रितयानुपलम्भयोगेन प्रज्ञापरिशोधिताः सादरनिरन्तरदीर्घकालम् अभ्यस्यमानाः प्रकर्षपर्यन्तमुपगच्छन्तः अविद्याप्रवर्तितसकलविकल्पजालमलरहितं क्लेशज्ञेयावरणविनिर्मुक्तमुभयनैरात्म्याधिगमस्वभावं सर्वस्वपरहितसंपदाधारभूतं परमार्थ-तत्त्वात्मकं तथागतधर्मकायमभिनिर्वर्तयन्तीति प्रज्ञाप्रधाना दानादयो गुणा उच्यन्ते । –बो.च.पं., ९/१ पृ. १६८, मि.सं. १९६० ।

न रूपप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम् । न शब्दगन्धरस-स्प्रष्टव्यधर्मेषु प्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम् । एवं हि सुभूते बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन दानं दातव्यं यथा न निमित्तसंज्ञायामपि प्रतितिष्ठेत् ।

क्वचित्प्रतिष्ठितेन इत्युक्तम् । बोधिसत्त्वेनाभावविकल्पोऽपि प्रहातव्यः, भावग्राहाभावे सति तस्याप्यभावात् ।[1] संवृतौ तावद् देयदायकादयो भवन्त्येव। ततो वस्तुनोऽभावेऽपि तावदभिनिवेशो न युज्यत एवेत्यभिप्रायः । **न रूप-प्रतिष्ठितेन** इत्यादिना बोधिसत्त्वेन न क्वचित्प्रतिष्ठितेन दानं दातव्यमित्येव विस्तरेणाभिहितम् ।

धर्मः इत्यनेन शब्देन धर्मायतनं परिगृह्यते, आयतनेन प्रपञ्चः अभिव्यज्यते, अतश्चक्षुरादीनि आध्यात्मिकायतनानि नोच्यन्ते । अनुत्पादादयो विकल्पा अपि न करणीया इति निदर्शनार्थं **सुभूते,**[2] **यथा** इत्याद्युक्तम् । निमित्तं तु वस्तुस्वलक्षणं लिङ्गं वाऽनुत्पादादि, तस्योद्ग्रहणं संज्ञा[3] । तत्र निर्विकल्पन्तु अप्रतिष्ठितम् । अत एव न क्वचित् प्रतिष्ठितेन इति निर्दिष्टम् । अथवा समग्रेणैतेन गाम्भीर्यमस्य व्यपदिष्टम्, अध्यारोपावादान्तौ प्रतिषिद्धौ चेति।

अस्मिन् दर्शने उपलम्भकानां ज्ञानपुण्यसम्भारपारिपूरियोग्यत्वं प्रतिषिध्यते, एवं पूजानुग्रहकाम्यया यद् दीयते, तेनातितरां सम्प्रसादो जन्यते,[4] न तु देय-दायक-प्रतिग्राहकानुपलम्भे प्रतिष्ठितत्वेन, एवं ह्यभावः, देयाद्यनुपलब्धत्वाद् विषयस्याभावाच्च । प्रथमपक्षे केनापि कस्यचिदपि देयस्याभावात् पुण्याभावः प्रसज्यते, (द्वितीयपक्षे तावत्) बोधिसत्त्वैः यो हि सत्त्वार्थं श्रम आस्थितः, सोऽपि व्यर्थः स्यात् सत्त्वाभावात् । अत एव नाभावमात्रम् ।

---

1 कात्यायनाववादे चास्तीति नास्तीति चोभयम् । प्रतिषिद्धं भगवता भावाभावविभाविना।। -अस्तीति, काश्यप, अयमेकोऽन्तः । नास्तीति, काश्यप, अयमेकोऽन्तः । .... -म.शा.वृ., पृ. ११७, बौ.भा.प्र., १९८३ ।

2 शोभना अरणाविहारिणां मध्ये अग्रा भूतिः चेतस संपत्तिर्यस्य स सुभूतिः । -आलोकः, पृ. २८१ ।

3 निमित्तोद्ग्रहणात्मिका संज्ञा । -अभि.को., १

4 दीयते दानं पूजानुग्रहकाम्यया .... द्र0- अभि.को. ४/११३ पृ. ७४० ; पुनश्च- येन पूजानुग्रहकाम्ययाऽर्थिनेऽनर्थिने वा दीयते तद् दानम् । -वि.मा.सि., पृ. २१९ ।

तत्कस्य हेतोः ? यः सुभूते, बोधिसत्त्वो अप्रतिष्ठितो दानं ददाति, तस्य सुभूते, पुण्यस्कन्धस्य न सुकरं प्रमाणमुद्ग्रहीतुम् । तत्किं मन्यसे सुभूते, सुकरं पूर्वस्यां दिशि आकाशस्य प्रमाणमुद्ग्रहीतुम् ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । भगवानाह– एवं दक्षिणपश्चिमोत्तरासु अधऊर्ध्वंदिग्विदिक्षु समन्ताद्दशसु दिक्षु सुकरमाकाशस्य प्रमाणमुद्ग्रहीतुम् ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । भगवानाह– एवमेव सुभूते, यो बोधिसत्त्वोऽप्रतिष्ठितो दानं ददाति, तस्य सुभूते पुण्यस्कन्धस्य न सुकरं प्रमाणमुद्ग्रहीतुम् । एवं हि सुभूते, बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन दानं दातव्यं यथा न निमित्तसंज्ञायामपि प्रतितिष्ठेत् ।

भगवता देयादिवस्तूनां दृष्टत्वात्, न च विषयस्याप्यभावः । अन्यथा कथं भगवताऽर्थिजनेभ्यः पुत्रादयः प्रदत्ता इति सर्वाण्येतानि चोद्यानि मनसि निधाय **तत्कस्य हेतोः** ? इति पृच्छायां **यः सुभूते, बोधिसत्त्वः** इत्यादिना विसर्जितम् ।

अयमभिप्रायः– सम्यग्दृष्टिविहितानि दानादीनि सुविशुद्धतया विशिष्टेष्टफलानि अभिनिर्वर्तयन्ति, न विपरीततया समुद्भूतानि, मिथ्यादृष्टि–प्रवर्तितशीलाङ्गादिवत् । देयादिवस्तूनि यथोक्तन्यायेन कथञ्चिदप्यसत्त्वात् मिथ्योपलब्धान्येव, मरीचिकासु उदकोपलम्भवत् । तस्मात् तदुद्भूतः सर्वपारमिताविधिस्तावद् आत्मात्मीयविपर्यासोद्गतदानादिवदविशुद्धहेतोः सम्भूतत्वात् क्षीणबलः, देयाद्युपलक्षणप्राप्तानुपलम्भस्तु भूतार्थगोचरत्वादविपर्यस्तः, मरीचिकायामुदकानुपलब्धिवत् । तस्मादुपचितहेतुसम्भूतदानादीनि बृहत्फलानि, पुष्टबीजाभिनिर्वृत्ताङ्कुरादिवत् । अत एव अनुपलम्भप्रतिष्ठितानि दानादीनि सम्यग्दृष्टिसम्भूतानीति विपश्चित्सु प्रसादातिशयं जनयन्ति, नान्येषु ।

ततश्च दानादिष्वप्रवृत्ततया पुण्याभावो देयादीनां चैकान्ताभावो नेष्यते, सद्विनिसत्त्वाभ्युपगमात् । असमाहितावस्थायां मायावदुपलम्भान्न सर्वत्रानुपलम्भः । तदा चाधिमुक्तितः प्रादुर्भावादेवानुपलम्भो व्यवस्थाप्यते । समाहितावस्थायाम् उपलम्भस्यात्यन्ताभावमात्रम्, तदा दानादिषु प्रवृत्तिर्नाभ्युपेयते प्रयोगावस्थायां

तत्किं मन्यसे सुभूते लक्षणसम्पदा तथागतो द्रष्टव्यः ? सुभूतिराह- नो हीदं भगवन्, न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः?[1] तत्कस्य हेतोः ? या सा भगवन् लक्षणसंपत्तथागतेन भाषिता सैवालक्षणसंपत् । एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्- यावत्सुभूते लक्षणसंपत् तावन्मृषा, यावदलक्षणसंपत् तावन्न मृषेति हि लक्षणालक्षणस्तथागतो द्रष्टव्यः ।

व्युत्थितावस्थायां वा क्रिययोपालम्भो न युज्यते । अतो महाफलत्वाय पारमितायोगस्यौदार्यमभिधीयते । संवृतौ कार्यकारणभावस्योपदर्शनाद् अपवादान्तोऽपि निषिध्यते ।

३.रूपकायाप्तिकामता-स्थानम् :

त्रिधा पुण्यमाकाशसमं भवति- सर्वत्रगोदाराक्षयत्वैः । लौकिकलोकोत्तर-पुण्यप्रसवनात् सर्वत्रगत्वम्, लौकिकं तावत् पुण्यमसमाहितावस्थायां प्रसूयते, लोकोत्तरं तु समाहितावस्थायामेव । विशिष्ट-विशिष्टतरगमनादुदारत्वम् । यावत्संसारमपर्यादानादक्षयत्वम् । तदभावान्न रूपप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यमिति बोधिसत्त्वः तथागतरूपकायाप्तिकामनया दानादिषु कथं प्रवर्तेतेति चेदिति चोद्यमाशङ्क्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्यादिना रूपकायाप्तिकामता स्थानं निर्दिष्टम् । अर्थतोऽत्र रूपकाये तथागतत्वाभिमानलक्षणो विपक्षोऽपाक्रियते । **लक्षणसम्पदा**[2] इति निमित्तमात्राभिधानेन तथागतस्य निखिलो रूपकायः लक्षणानुव्यञ्जनैरलङ्कृतः परिदीपितः ।

तत्र लक्षणानि तावत् चक्राङ्कहस्तपादतादीनि द्वात्रिंशत् पदबाहुल्यभिया नोल्लिख्यन्ते, सूत्रेषु यथोक्तानि तथैवावधेयानि[3]। स्थानस्थोत्तप्तपूर्णत्वेन निष्पत्तिः।[4]

---

1 जोशी संस्करणे इदं वाक्यं नोपलभ्यते, वैद्यसंस्करणे भोटसंस्करणे चोपलभ्येते । प्रस्तुता टीकायामपि अयं पाठ उपलभ्यते । अत एव मयाऽपि टीकानुसारमुपादत्तः ।

2 अत्र वज्रच्छेदिकाया प्रसङ्गे महापुरुषाणां द्वत्रिंशल्लक्षणान्येव लक्षणसम्पदा ।

3 द्र0- ध.संग्र, (म.सू.सं.) पृ. ३३४ ; अभि.समय. पृ. ८५, ति.सं.सं., १९७७ ; अ.वि.सू., पृ. ५३, आलोकः, पृ. ५३७; महा.व्यु., Toh: Sde bstan (Sna Tsogs, Ca p. 7)

4 तु0- स्थानस्थोत्तप्तपूर्णत्वेन निष्पत्तेः । -आलोकः, पृ. २९९

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्- अस्ति भगवन्, केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये

अशीतिरनुव्यञ्जनानि ताम्रवर्णनखादीनि, यथासूत्रं ज्ञातव्यानि ।[1] तानि लक्षणादीन्यपि मायानिर्मितबुद्धलक्षणवन्मिथ्यैव । अत एव तथाविधे रूपकाये छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति निर्देशः ।

अथेमानि लक्षणानि परमाणुसञ्चयस्वभावानि वा तदारब्धावयविरूपाणि वा भवेयुरिति ? न तावत् प्रथमः पक्षः, परमाणूनां पूर्वमेव निरस्तत्वात् । नापि द्वितीय, असति चारम्भके तदारब्धावयविनोऽप्यभावात्, पूर्वोक्तावरणादि-विरुद्धधर्मोपलम्भाच्च । तदुद्दिष्टेनाभिहितोऽभिप्रायः । एतद् विचिन्त्य **सुभूतिराह नो हीदम्** इति व्यक्तीकृतम् ।

यदि लक्षणानि मृषा भवेयुस्तर्हि कथं भगवता तत्तत्सूत्रेषु लक्षणानि समुपदिष्टानीति चिन्तयन् **तत्कस्य हेतोः** इति पृष्ट्वैवं **सैवालक्षणसम्पद्** इत्याह । सा लक्षणसम्पत् तावन्नोक्ता परमार्थतः । मायानिर्मितबुद्धवदित्यनेन मृषास्वभावत्वमात्रमुक्तमित्यर्थः ।

आर्यसुभूतिनोक्तमेवार्थं परिपूरयितुं भगवता **यावत्** इत्याद्याह । यावल्लक्षणसम्पद् इति परमार्थतो यावल्लक्षणसम्पत्स्वभिनिवेशः, तावन्मिथ्याभिनिवेश एवेत्यर्थः, यथोक्तमेव पूर्वम् । **यावल्लक्षणसम्पद्** इति तद्विपरीततया अभिहितेत्यवगन्तव्यम् । एतेन योगसमापत्त्या कथं प्रतिपत्तव्यमिति तद्देशितम् । कथमन्तद्वयं परिवर्ज्य चित्तं प्रग्रहीतव्यमिति तन्निर्दिष्टम् । **एवम्** इति मायानिर्मितबुद्धवल्लक्षणतस्तथागतो द्रष्टव्यः । अनेनापवादान्तो निराक्रियते, संवृतौ भगवतो रूपकायस्याप्रत्याख्यानात् । अलक्षणं तावत् परमार्थे द्रष्टव्यम्, कस्यापि लक्षणस्यासिद्धत्वात् । अनेन तावत् समारोपान्तो निराक्रियते । तथागतस्य रूपकायावाप्तये प्रणिधानैस्त्वौदार्यमुक्तम् । तदनुपलम्भतया च गाम्भीर्यम् । रूपकायाप्तिकामतास्थानं तावदुक्तम् ।

---

1 ध.संग्र., (म.सू.सं.) पृ. ३३६ ; अभि.समय., पृ. ८७; आलोकः, पृ. ५३९ ; अ.विसू. पृ. ६३, ३०८ ; Toh: Sde bstan (Sna Tsogs, Ca p. 9).

पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति ? भगवान् आह– मा सुभूते त्वमेवं वोचः । अस्ति केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति । अपि तु खलु पुनः सुभूते, भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि बोधिसत्त्वा महासत्त्वाः पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने गुणवन्तः शीलवन्तः प्रज्ञावन्तश्च भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति ।

४.धर्मकायाप्तिकामतास्थानम् : (अ) प्रवचनधर्मकायः

द्विविधः खलु धर्मकायः– प्रवचनधर्मकायः, अधिगमधर्मकायश्च[1] । अधिगमधर्मकायोऽपि द्विविधः– ज्ञानहेतुकः पुण्यहेतुकश्च । तत्रानागते पुरुषेषु पञ्चकषायाणामाधिक्यादेवंविधधर्मरत्नस्य अत्यन्तगम्भीरोदारफलत्वात् प्रवचन–धर्मकायेऽनाप्तत्वाशङ्कया **अस्ति** इति पृष्टवान् । अस्ति इति पदं तु **केचित् सत्त्वाः ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति** इत्यर्थपदेन योज्यम् । **पश्चिमायां पञ्चशत्याम्** इत्यत्र शतानां पञ्चकं पञ्चशती, भगवतां शासनं पञ्चशतवर्षाणि स्थास्यतीति प्रसिद्धेः । अत एव पश्चिमेति विशेषणं विहितम् । तस्मिन् काले पञ्चकषायाणामधिमात्रता भवति ।

सद्धर्मविप्रलोपस्तावद् अधिमुक्ति–वाचन–स्वाध्याय–उपदेश–आख्यान–श्रवण–चिन्तादीनां हानिः । **एवं** इति गम्भीरोदारार्थः । **सूत्रान्तपदेषु** इति सूत्रान्तदेशनावाचः, ताभिरर्थस्य प्रतिपाद्यमानत्वात् ज्ञाप्यमानत्वाच्च । अनेन निमित्तमात्राभिधानेन समस्तप्रवचनधर्मकायस्तावत् परिदीप्यते । अथवा सूत्रान्तपदेषु इत्यभिधीयमानार्थकेषु । अस्मिन् कथने 'एवम्' इत्यनेन तावद् गम्भीरौदार्ये योजनीये। **भाष्यमाणेषु** इति प्रथमतया अभिधीयमानेषु । द्वितीयतया

---

1 शासनं द्विविधं शास्तुरागमाधिगमात्मकः । –अभि.को., ८/३९

न खलु पुनस्ते सुभूते, बोधिसत्त्वा महासत्त्वा एकबुद्धपर्युपासिता भविष्यन्ति, नैकबुद्धावरोपितकुशलमूला भविष्यन्ति । अपि तु खलु पुनः सुभूते, अनेकबुद्धशतसहस्रपर्युपासिता अनेकबुद्धशत-सहस्रावरोपितकुशलमूलास्ते बोधिसत्त्वा महासत्त्वा भविष्यन्ति, ये इमेष्वेवंरूपेषु सूत्रान्तपदेषु भाष्यमाणेषु एकचित्तप्रसादमपि प्रतिलप्स्यन्ते ।

अर्थप्रतिपादकेष्वित्यर्थः । अर्थतोऽविपर्ययस्तसंज्ञैवात्र भूतसंज्ञेत्यभिधीयते न तु शब्दाभिनिवेशमात्रम् 'अयं भूतः'[1] इति संज्ञा । अनेन तावदर्थसिद्धौ अभूतसंज्ञा निराक्रियते ।

सर्वत्राप्रतिहतज्ञानेन तान् भाविनः (सत्त्वान्) प्रत्यक्षवद् दृष्ट्वा भगवान् सुभूतिसंशयं परिहर्तुं **भविष्यन्ति** इत्याह । **महासत्त्वाः** इति तेषां बोधिसत्त्वगुणानां सम्प्रदर्शनार्थमुक्तम् । तेऽपि यथा प्रतिपन्नाः, यादृशेन च हेतुना सम्प्रतिपन्नाः, यादृशेन कल्याणमित्रेण परिगृहीताः, यथा वा भूतसंज्ञया संज्ञितास्तान् भगवान् परिदीपितवान् । **शीलवन्तः गुणवन्तः प्रज्ञावन्तश्च**[2] इत्यनेन तु क्रमशोऽधिशीलाधिचित्ताधिप्रज्ञाश्चेति शिक्षात्रयप्रतिपत्तिसमन्विताः निर्दिष्टाः । शीलप्रज्ञयोश्च पृथगुक्तत्वाद् गुणस्तावदत्र ध्यानजो ग्राह्यः, गोबलीवर्दन्यायेनेति ।

क्लेशवति पश्चिमकाले तु कथं तथाविधशीलादिगुणवन्तो भविष्यन्तीति चिन्तयित्वा **सुभूते** इत्याद्याह । **पर्युपासिताः** इति चीवर-पिण्डपातादिभिः पर्युपासिताः, छत्रध्वजपताकादिभिश्च पूजिता भविष्यन्ति । अवरोपितकुशलमूलाः तावदववादमनुशासनीं च शिरसादाय शीलादिगुणसम्पद्भ्यः प्रयत्नवन्तो द्रष्टव्याः। तेषां ततोऽपि बहुतरं पुण्यमभिधातुं **अनेकबुद्धशतसहस्रैः** इत्युक्तम्।

---

1 अभूतविनिवृत्तये भूतोक्तिः । भूतशब्दनिर्देशोऽभूतस्य नित्यस्य निवृत्त्यर्थम् । -प्र.वा. १/९ पृ. ९, बौ.भा.प्र. १९६८ ।

2 शिक्षयोपासनात्पूर्वं कुशलस्यावरोपणात् ।
शीलवन्तोऽन्यबुद्धेषु गुणवन्तश्च कीर्तिताः ॥
सपुद्गलेषु धर्मेषु संज्ञाया विप्रहाणतः ।
प्रज्ञावन्तश्च संज्ञाया अष्टधाष्टार्थभेदतः ॥
-त्रि.प्र.का., ति.सं.प्र., १९७८ ।

ज्ञातास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते सुभूते, तथागतेन । सर्वे ते सुभूते, अप्रमेयमसंख्येयं पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति, प्रतिग्रहीष्यन्ति । तत्कस्य हेतोः ? न हि सुभूते, तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानामात्मसंज्ञा प्रवर्तते, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्गलसंज्ञा प्रवर्तते । नापि तेषां सुभूते, बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्मसंज्ञा प्रवर्तते, एवं नाधर्मसंज्ञा । नापि तेषां सुभूते, संज्ञा नासंज्ञा प्रवर्तते ।

अनेन तेषां हेतुसिद्धिः संदर्शिता । **ज्ञातास्ते तथागतेन** इति नामान्याशयाश्च । **दृष्टास्ते तथागतेन** इति कायाः ।

अनेन तावत् कल्याणमित्रपरिगृहीता इति दर्शितम् । तच्च सम्प्रस्थितानां प्रोत्साहनार्थम्, विप्रस्थितानां ह्रीसञ्जननार्थमाह । अन्यथा सर्वेषां ज्ञानात् सर्वज्ञो भगवानिति देशनया को विशेषो दर्शितो भवेत्, अथवा तत्तेषां भव्यत्वं यत् तत्प्रमुखं कृत्वा देशना प्रवर्तितेत्यवगन्तव्यम् । भव्या ज्ञाता इति वाक्यशेषः । अतस्तेषामशेषं पुण्यस्कन्धसङ्ग्रहं दर्शयितुं **सर्वे ते सत्त्वाः** इत्याह । **प्रसविष्यन्ति** इति पुण्योत्पादकालः, **प्रतिग्रहीष्यन्ति** इति निरोधकाले तद्वासनाः परिग्रहीष्यन्ति ।

एभिः सर्वैरभूतसंज्ञां निराकृत्य भूतसंज्ञोत्पादने छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमित्यादर्शितं तथा स्थानस्यास्यौदार्यमपि परिदीपितम् । तत्कस्य हेतोः ? ते अनेकबुद्धशतसहस्रपर्युपासिताः कथं ज्ञास्यन्त इति ज्ञापकहेतौ परिपृष्टेऽत्र **तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम्** इत्याद्याह । अनेन तावत् योगसमापत्तौ कथं प्रतित्तव्यमित्येतत् प्रकाशितम्, गम्भीरता चाप्यभिहिता ।

अहमित्यात्मग्रहणम् **आत्मसंज्ञा** सा । ममेति ग्रहणं **सत्त्वसंज्ञा**, तस्यैवात्मन आ स्थितिं परिग्रहः **जीवसंज्ञा**, पुनः पुनः गतिषु गमनादानं **पुद्गलसंज्ञा** । यदि नास्ति आत्मादिसंज्ञा तर्हि किं श्रावकादिवद् अस्ति रूपादिधर्मसंज्ञा ? इति चिन्तायां **न धर्मसंज्ञा** इत्युक्तम् । परमार्थतः कस्यचिदपि धर्मस्याभावादित्यभिप्रायः ।

अथ किम् उच्छेदवादिनामिव अभावसंज्ञा ? इति चिन्तायां **एवं नाधर्मसंज्ञा प्रवर्तते** इत्युक्तम् । संवृतौ अविचाररमणीयतया धर्माणां सद्भावात् संवृतिपथस्थितेभ्यस्तावद् अधर्मसंज्ञा नैव युक्तिमती, न तु परमार्थज्ञानस्थितेभ्यः । तन्निषेधान्न कश्चिद् धर्म उपलभ्यते यत्राधर्मसंज्ञा प्रवर्तेत, धर्माग्रहणे तदभावात् । विषयाभावनिषेधस्तु न कुत्रापि सम्भवति, तद्यथा सत्येऽपि विज्ञप्तिमात्रे विज्ञप्तिमात्रतेयमिति विकल्पयन् न विज्ञप्तिमात्रतायां स्थितः,[1] एवमेव सत्येऽप्यधर्मेऽधर्मबोधस्य तत्रावस्थानासम्भवात् सर्वं समानम् ।

यद्यात्मादीनाम[illegible] तदा तत्र तत्संज्ञाया अप्रवृत्तौ सत्यां 'आत्मैव रूपमिदम्' इत्यादिकं नाममात्रमिति नामाभिनिवेशसंज्ञा तेषां भवेदिति मत्वा **संज्ञाऽपि** इत्युक्तम् । नाम्नस्तावद् रूपस्कन्धान्तर्भूतत्वाद् रूपादिवद् मिथ्यात्वमेव, विप्रयुक्तमपि[2] प्रज्ञप्तिमात्रमिति । तस्मात् संज्ञाऽपि मिथ्याभिनिवेश एवेत्यभिप्रायः ।

यद्येवं तर्हि तस्यामवस्थायां सर्वसंज्ञाविगमाद् मृत-निरोधसमापन्न-पुद्गलवद्[3] योगिनोऽभाव एव स्यादिति **नापि....नासंज्ञा प्रवर्तते** इत्युक्तम् । येन ते योगिनो भवन्ति, तच्च योगिज्ञानं तथ्यसंवृतिस्वभावमिति । व्युत्थाने शुद्धलौकिकज्ञानमुद्भवतीति, अन्यथा अहेतुकमेव तद् भवेत् । यद् योगिज्ञानं संवृतिस्वभावं तत् केनावगम्यत इति चेत् ? तेनैव हेतुना । यथा प्रत्यात्मवेद्यतया पुद्गलनैरात्म्यावबोधेन आत्मस्थितं पुद्गलनैरात्म्यमधिगम्यते, अत्रापि तत्तुल्यम् । ज्ञानं संवित्तिश्च न संवृतौ नाभ्युपगम्येते । योगिना स्वलक्षणप्रत्यभिमुखीकरणात् तत्रस्थं नैरात्म्यं नोपलभ्यते, तदानीमतीतादेस्तावदसंनिहितत्वादनन्तत्वाच्च ।

---

1 यावद् विज्ञप्तिमात्रत्वे विज्ञानं नावतिष्ठति ।
ग्राहद्वयस्यानुशयस्तावन्न विनिवर्तते ॥
विज्ञप्तिमात्रमेवेदमित्यपि ह्युपलम्भतः ।
स्थापयन्नग्रतः किञ्चित् तन्मात्रे नावतिष्ठते । द्र0– त्रिं.वि.मा.सि., २६,२७ का. ।

2 सम्प्रयुक्तविप्रयुक्तचैतसिकाः ? विप्रयुक्तास्तु संस्कारा...... –अभि.को., २/३५ ।

3 आयुरूष्माथ विज्ञानं यदा कायं जहत्यमी ।
अपविद्धस्तदा शेते यथा काष्ठमचेतनः ॥
द्र0– (उद्धृतम्) अभि.को., २/४५, पृ. २४८ ।

तत्कस्य हेतोः ? सचेत्सुभूते, तेषां बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानां धर्मसंज्ञा प्रवर्तते, स एव तेषामात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहो भवेत् । सचेदधर्मसंज्ञा प्रवर्तते, स एव तेषामात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राह इति । तत्कस्य हेतोः ? न खलु पुनः सुभूते, बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन धर्म उद्ग्रहीतव्यो नाधर्मः । तस्मादियं तथागतेन संधाय वाग्भाषिता– कोलोपमं धर्मपर्यायमाजानद्भिर्धर्मा एव प्रहातव्याः प्रागेवाधर्मा इति ।

कथं तर्हि ? निःस्वभावताविचारेण तद्गोचरीभूतानां सर्वधर्माणां सामान्येन नैरात्म्यसङ्ग्रहात् या खलु व्यवस्था सैव युगपदुपलम्भनम् । तेषां तज्ज्ञानमपि परमार्थतोऽविषय एव, (तथापि) सत्यस्वप्नज्ञानवदविसंवादकत्वेन प्रामाण्यं व्यवस्थाप्यते । सामान्येन तत्र तदात्मभावोऽपि संगृह्यते, न तत्र पृथक् तदालम्बकत्वम् । तस्मात् सति नैरात्म्यद्वयावबोधे तेषामनेकशतसहस्रबुद्धानां पर्युपासनं प्रतीयते । बुद्धानामपर्युपासनया तावन्न सम्भवति तदवबोधः तैर्थिकवत् । स तु संसारे न उचितो भवतीत्यभिप्रायः । अनया योगसमापत्त्या कथं प्रतिपत्तव्यं कीदृश्या च भूतसंज्ञया तत् संज्ञातव्यमिति संदर्शितं तद्गाम्भीर्यमित्यपि च परिदीपितम् ।

आत्मादीनामसत्त्वे तेषामात्मादिसंज्ञाया अभावात् पदसमुदायादिभिः आत्मत्वं सूक्तं दुरुक्तं च लक्षणं धर्माधर्मसंज्ञं किं तेषु नियमेन न प्रवर्तते ? नैवम्, यदि बोधिसत्त्वानां न भवेत् तत्र संज्ञा, (तर्हि) अयुक्तचुपपन्नतीर्थकरधर्मान् परित्यज्य भगवद्देशितेषु धर्मेषु तदधिगमाय कथं छन्द उत्पादनीय इत्याशङ्कायां **तत्कस्य हेतोः ?** इति तत्समाधानाय **सचेत् सुभूते** इत्याह ।

अयमभिप्रायः एकानेकस्वभावविचारेण यथा रूपादिलक्षणधर्मा न संविद्यन्ते, तथा देशनाधर्मा अपि । यत्र धर्मसंज्ञा तत्रात्मादिसंज्ञा अपि निश्चयेन नैव प्रहीणा, धर्मनिमित्तग्रहणमूलत्वात् तस्याः । धर्मनिमित्तग्राहकमनसिकारस्य

तस्या एव मनसिकाररूपत्वात् मैत्रीप्रभृतिषु तत्त्वमनसिकारासद्भावे नात्मदृष्टिः परिहीयते । अत एव एकमेव यानम्, तच्च महायानमित्युक्तम् ।[1]

अपि च, बोधिसत्त्वानां सा धर्मसंज्ञा यद्यवश्यमनुत्पन्नदर्शनमार्गः स्यात् तथा सति तेन कथमात्मादिसंज्ञा प्रहीणा स्यात् ? दर्शनमार्गप्रहेयत्वात्तस्याः । अतः सर्वमेतत् परीक्ष्य **स एव तेषामात्मग्राहो भवेत्** इत्युक्तम् । तस्य तद्धेतुत्वात् तदनुशयाप्रहीणत्वाच्चेत्यभिप्रायः । अन्यथा तयोर्भिन्नाकारत्वात् कथं धर्मसंज्ञैव आत्मग्राहः स्यादिति । धर्मास्तावदत्र युक्त्युपपन्नागमलक्षणा एवेष्टाः, तद्विपरीता अधर्माः । एवं सति तत्तत्सूत्रेषु कथं भगवता बोधिसत्त्वेभ्यः सद्धर्मः परिग्राहयिष्यते ? एवमनुचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इति परिपप्रच्छ । तदर्थं **सुभूते** इत्याद्याह । **नोद्ग्रहीतव्यः** वितथमार्गेण विपरीताभिनिवेशलक्षणेन नोद्ग्रहीतव्यः, सत्य इति नाभिनिविष्टव्यमिति वाक्यार्थः । अभिप्रेतसिद्ध्यर्थं कोलोपमदेशितस्य लक्षणस्य न ग्रहणनिषेध इत्यभिप्रायः ।

तस्मात् इत्यादिना स एवार्थः पदान्तरैः प्रयुक्तः, यतो हि सर्वो धर्मोऽधर्मश्च सत्य इत्यभिनिवेशस्य विपरीताभिनिवेशत्वाद्, युक्त्योपपन्नो य आगमसमूहः संसारार्णवोत्तरणाय प्रोक्तः कोलोपमः स (यदा) पारं गत्वा निष्प्रयोजनत्वात् परित्याज्यो भवति, किमु (तदा) तेऽयुक्त्योपपन्नास्तैर्थिकानामिवाधर्माः । सप्रयोजनमपि तदालम्बनं मया नानुज्ञातमित्येवमुक्तवान् तथागतः । अन्यथा धर्माधर्मादिकं यदि सत्यस्वभावं स्यात् तदा परमार्थविषयत्वात् तदभिनिवेशस्य संसारपारगतेष्वपि युक्तिसहं

---

1 महायानं महायानमिति भगवन्नुच्यते सदेवमानुषासुरं लोकमभिभवन्निर्यास्यति आकाशसमतया अतिमहत्तया तन्महायानम् । यथा आकाशे अप्रमेयानामसंख्येयानां सत्त्वानामवकाशः, एवमेव भगवन् अस्मिन् याने अप्रमेयाणामसंख्येयानां सत्त्वानामवकाशः । अनेन भगवन् पर्यायेण महायानमिदं बोधिसत्त्वानां महासत्त्वानाम् । नैवास्यागमो दृश्यते, नैवास्य निर्गमो दृश्यते, नाप्यस्य स्थानं संविद्यते । एवमस्य भगवन् महायानस्य नैव पूर्वान्त उपलभ्यते, नाप्यपरान्त उपलभ्यते, नापि मध्य उपलभ्यते । अथ समं भगवंस्तद्यानम् । तस्मान्महायानं महायानमित्युच्यते ।
–अ.प्र., पृ. १२ ;
आलम्बनमहत्त्वं च प्रतिपत्त्योर्द्वयोस्तथा ।
ज्ञानस्य वीर्यारम्भस्य उपायकौशलस्य च ॥
उदागममहत्त्वं च महत्त्वं बुद्धकर्मणः ।
एतन्महत्त्वयोगाद्धि महायानं निरुच्यते ॥ –सूत्रालंकारः १९/५९,६० ।

पुनरपरं भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– तत्किं मन्यसे सुभूते, अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरा सम्यक्संबोधिः इत्यभिसंबुद्धः, कश्चिद्वा धर्मस्तथागतेन देशितः ? एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– यथाहं भगवन्, भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरित्यभिसंबुद्धः, नास्ति धर्मो यस्तथागतेन देशितः ।

स्यादिति, किमिति तथागतः तन्निषेधतीति ? **इति** तु संग्रहार्थः । तथा **आर्यरत्नकरण्डसूत्रेऽपि** भगवता उक्तम्[1]–

> **"भदन्त सुभूते कोलोपमं धर्मपर्यायमाजानद्भिर्धर्मा एव प्रहातव्याः, प्रागेवाधर्मा इति । यो हि धर्मः प्रहीयते, सोऽपि नाधर्मः इति ।"**[2]

यः सूत्रादिधर्मपर्यायः स कोलोपम उच्यते । **धर्मा एव** इत्येतद् उपलक्षणम् । तेन रूपादयो मार्गलक्षणाश्च धर्माः संगृह्यन्ते । अधर्मा इत्यपि उपलक्षणमात्रम्, तेन प्रसिद्धिविरुद्धाः अधर्मलक्षणाः परपरिकल्पिता आत्मादयश्च उपदिष्टास्तेऽपि संगृह्यन्ते । अथवा धर्माधर्माभिधेयाभिधानात् न सर्वसंग्रहे दोषः । अनेन तावद् विक्षेपं निगृह्य कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यमित्येतद् दर्शितम् ।

(ब)अधिगमधर्मकायस्थानम् : (१) ज्ञानहेतुकधर्मकायः

ननु धर्मादयः सर्वे परमार्थतो मिथ्यास्वभावाः, तदा अभिसम्बुद्धो भूत्वा 'भगवता सर्वे धर्मा देशिताः' इति तदपि मृषैव स्यात्, अत एव बोधिसत्त्वैः तथागतज्ञानहेतुमधिगमधर्मकायं प्राप्तुं छन्दो न जनयितव्यः, इत्येतद् विचार्य ज्ञानहेतुधर्मकायावाप्तये छन्दोत्पादनाय **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्युक्तम् ।

अनेनार्थतः परमार्थस्तु अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति अभिसम्बुद्ध इत्येतयोः

---

1 Toh: 117 Sde bka (Mdo Sde, Ja p. 252) ; द्र.– व.सूत्र. ६वां अध्या. ;

2 तु०– कुल्लूपमं वो भिक्खवे, धम्मं देसेस्सामि निरत्थरणत्थाय, नो गहणत्थाय । तं सुणाथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामी ति । – म.नि., नागरी सं. भिक्षु ज.का. सम्पा., भाग १, पृ. १८०, १९५८ ।

तत्कस्य हेतोः ? योऽसौ तथागतेन धर्मोऽभिसंबुद्धो देशितो वा, अग्राह्यः सोऽनभिलप्यः । न स धर्मो नाधर्मः । तत्कस्य हेतोः ? असंस्कृतप्रभाविता ह्यार्यपुद्गलाः ।

ग्रहणमपि विपक्षतया परिदीपितम्, तथ्यसंवृतिस्वभावं तु तथागतस्य ज्ञानहेतुं ज्ञानधर्मकायं प्राप्तुं छन्दः प्रणिधानं च प्रदर्शिते । **अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिः** इत्युपलक्षणमात्रपरिदीपनेन श्रावक-प्रत्येकबुद्धादीनां प्रतिपत्तिभेदेन भिन्नः ज्ञानहेतुकोऽधिगमकायस्तावन्निर्दिश्यते । श्रावकादीनामपि गुणा बोधिसत्त्वेनावगन्तव्या एव, अन्यथा कथं तावत् सर्वज्ञपदलाभः ।

संवृतिस्वभावस्त्वेवम्- सम्बोधिः सम्बोद्धव्यं देशना देशितव्यमित्यादयः सर्वे पर्यायाः । भगवता कं परमार्थाभिप्रायमभिलक्ष्य सर्वं मिथ्यैवेत्युक्तम्, तदुक्ताभिप्रायं **संगृह्य** आर्यसुभूतिस्थविरः **यथाहं भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि** इत्येतदवोचत् । यथाहमाजानामीत्यभिप्रायविवरणम् । कस्मान्नाभिसम्बुद्धः, धर्मदेशना च न स्त इति चिन्तायां **तत्कस्य हेतोः ?** इति । **अग्राह्यः** इति परमार्थस्तावन्निर्विकल्पज्ञानगोचरोऽपि न भवतीति उक्तपूर्वम् । **अनभिलाप्यः** शब्दाविषयत्वादिति । सर्वे शब्दगोचरास्तावत् समारोपितसामान्यमात्रात्मकाः, सामान्यस्य चाभावरूपत्वात् । इमौ द्वौ (शब्दौ) अभिसम्बुद्धाभावस्य धर्मदेशनाभावस्य च यथाक्रमं हेतुतयाऽभिहितौ ।

ननु स्युः सर्वे भावा अग्राह्याः अनभिलाप्याः, तथापि स्वलक्षणधारणात् परमार्थतः धर्मस्वभावतास्थिता एवेत्याशङ्कायां **न स धर्मः** इत्याह । सर्वभावानां परमार्थतः स्वभावेन परिनिर्वृत्तत्वान्न सम्भवति स्वलक्षणधारकत्वम् । यद्येवं तर्हि भगवता अभावोऽभिसम्बुद्धो द्रष्टव्य इति विचार्य **नाधर्मः** इत्युक्तम् । स तु प्रसज्यप्रतिषेधस्वभावः । अनेन तावद् योगसमापत्तिं निर्दिश्य अध्यारोपोऽपवादान्तश्च निरस्तौ । **तत्कस्य हेतोः ?** इत्युपपत्तिः पृच्छ्यते, तदर्थं **असंस्कृतप्रभाविताः** इत्याह । असंस्कृतत्वं तावद् धर्माणां परमार्थस्वभावः, तच्च युक्त्या विचार्यमाणमनुत्पत्तिलक्षणमेव पर्यवस्यति, यथा पूर्वं विचारितम् ।

उक्तं भगवता **धर्मसंगीतौ**[1]–

'यो आनन्द, धर्मोऽनुत्पन्नः, अनिरुद्धः, अस्थितः अविकृतस्तदुच्यते आर्यसत्यमिति' ।[2] इदमानन्द, अभिसन्धाय तथागतेन असंस्कृतप्रभाविता आर्यश्रावका इति देशितम्, यथा पूर्वमुक्तम् ।

अयञ्च 'उत्पादाद् वा तथागतानाम्, अनुत्पादाद् वा तथागतानाम्'[3], नित्यं तथैव सत्त्वान्निर्विकारत्वाच्चासंस्कृतः[4], तदधिगमादार्यपुद्गलाः तत्प्रभाविता भवन्ति, धर्मतत्त्वाधिगमेन प्रभावितत्वादार्यणाम् । अन्येषु तत्त्वसद्भावो नैव तावद् युज्यते, तच्च (तत्त्वं) असंस्कृतमपि न (स्यात्) प्रसज्यप्रतिषेधस्वभावाभावात्, भावस्वभावत्वात्तस्य । आर्यैः नान्यविधो भावस्वभावोऽवबुध्यते, तद्भिन्नस्वभावस्यैवाधिगमात् । भावग्रहणाभावेन तदभावरूपत्वे सति भावग्राह एव तावत् प्रसज्यते । अत एव **आर्यसन्धिनिर्मोचनसूत्रे**[5] उक्तम्– **'न तत्त्वस्य भावादितरोऽर्थः'** इति ।

अतः यथोक्तदोष आपद्यते । तत्तु (तत्त्वं) परमार्थतो नास्ति भावस्वभावः, असिद्धैव भावस्वभावता कस्यापि । भावस्वभावतेव तदपि

---

1 Toh: 238 Sde bka (Mdo Sde, Sha p.6)

2 तु0– आर्याणामेतानि सत्यानि तस्मादार्यसत्यानीति सूत्र एवोक्तम् । किमन्येषामेतानि न सत्यानि ? सर्वेषामेतानि सत्यान्यविपरीतत्वात् । आर्यैस्तु यथैतानि तथादृष्टानि न पुनरन्यैस्तथेति । अत आर्याणामेतानि सत्यान्युच्यन्ते । न त्वार्याणां विपरीतदर्शनात् ।
यदार्याः सुखतः प्राहुस्तत्परे दुःखतो विदुः ।
यत्परे सुखतः प्राहुस्तदार्या दुःखतो विदुः ॥ – अ.वि.सू.नि., पृ. १५७–१५८ ; अपि च तु0– "अविपरीतत्वादिति । यस्मात् तदार्याणामेत्येषां चाविपरीतम् । दुःखमेव नान्यथा । आर्यैस्तु यथैतानि सत्यानि तथा दृष्टानि । दुःखसत्यं दुःखतः अनित्यतः शून्यतोऽनात्मतश्च । एवं यावन्मार्गो मार्गतः न्यायतः प्रतिपत्तितो नैर्याणिकतश्च । नान्यैरनार्यैः एवं दृष्टानि । अत आर्याणामेतानि सत्यान्युच्यन्ते । न त्वनार्याणां सत्यान्युच्यन्ते । कस्मात् ? विपरीतदर्शनात् । –अभि.को.(स्फु.), पृ. ८७४ ।

3 द्र0– उत्पादाद्वा तथागतानामनुत्पादाद्वा तथागतानां स्थितैवैषा धर्माणां धर्मता । –म.शा.वृ., १/३, पृ. १५, बौ.भा.प्र. १९८३ । ।

4 .... त्रिविधं चाप्यसंस्कृतम् ।
आकाशं द्वौ निरोधौ च; ...... ॥
कतमौ द्वौ ? प्रतिसंख्यानिरोधः, अप्रतिसंख्यानिरोधश्चेति । एतदाकाशादित्रिविधमसंस्कृतम् । द्र0 –अभि.को., १/५ पृ. १८–१९ ।

5 Toh: 106 Sde bstan (Mdo Sde, Ca)

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, यः कश्चित्कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, अपि नु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततोनिदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? सुभूतिराह– बहु भगवन्, बहु सुगत, स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् । तत्कस्य हेतोः ? योऽसौ भगवन् पुण्यस्कन्धस्तथागतेन भाषितः, अस्कन्धः स तथागतेन भाषितः । तस्मात्तथागतो भाषते– पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति ।

संस्कृतं प्रसज्येत । अतः अभावरूपत्वेन धर्मेषु सत्त्वादतत्त्वमेव स्वभावेन तत् । सर्वेषामपि तज्ज्ञानप्रसङ्गः, भावस्वभाववत् । संक्लेशहेतुप्रसङ्गोऽपि दुर्निवारः स्यात् । अत एव तेषु **आर्यसन्धिनिर्मोचनादिषु– 'न तत्त्वस्य भावादितरोऽर्थः'** इत्युक्तम् । अत एव **न धर्मो नाधर्मः** इत्युवाच । अनेन भावाभावसदसदादीनां निषेधरूपं देशितम् । अपि चानेन विक्षेपनिग्रहोऽपि निर्दिष्टः । एतत्सर्वैः स्थानस्यास्य गम्भीरत्वमपि संदर्शितम् ।

(२)पुण्यहेतुकधर्मकायः

यदि भगवतोऽभिसम्बोधिर्वा धर्मदेशना वा नास्ति कश्चिद् धर्मः, कथं तर्हि बोधिसत्त्वेन पुण्यहेतुधर्मकायं प्राप्तुकामेन सद्धर्मपरिग्रहेऽनुप्रवर्तितव्यमिति विचिन्त्य पुण्यहेतुधर्मकायकामताच्छन्दोत्पादनाय **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्युक्तम् । तत्र सप्तरत्नानि तावत् स्वर्ण–रौप्य–वैडूर्य–अश्मगर्भ–मुसारगल्व–लोहितमुक्ता–स्फटिकाः **आर्यसद्धर्मपुण्डरीके**[1] उक्तानि । 'चतुर्द्वीपादीनां सहस्रं

---

1 ये यापि धातून् करोन्ति पूजां जिनान् तेषां परिनिर्वृतानाम् ।
रत्नमयान् स्तूपसहस्रानेकान् सुवर्णरूपस्य च स्फाटिकस्य ॥
ये चाश्मगर्भस्य करोन्ति स्तूपान् कर्केतना मुक्तमयाश्च केचित् ।
वैडूर्यश्रेष्ठस्य तथैन्द्रनीलान् ते सर्वि बोधाय अभूषि लाभिनः ॥
–सद्धर्म.– २/७८–७९;
मुसारगल्ववैदूर्यरूप्यस्फटिकहाटकम् ।
सहलोहितमुक्ताभिरश्मगर्भैश्च वर्ण्यते ॥

साहस्रो लोकधातुः[1] । तत्सहस्रं द्विसाहस्रः[2] । तत्सहस्रं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुः[3] ।' **ततो निदानम्** इति रत्नदानानां निदानात् ततः पुण्योद्भवः, तद्हेतोः सम्भवतीत्यर्थः । सर्वाणि कुशलचित्तानि, तदुत्पन्ना वासनाः पुण्यानि । तेषां राशिः स्कन्ध इति । फलबाहुल्यात् तद्बाहुल्यम् । **बहु** इति विशेषणम् । **बहु बहु** इति द्विरुक्त्या बाहुल्याधिक्यम् ।

यदि परमार्थतः सर्वे (धर्माः) अनुत्पन्नाः, कथं ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? इत्याशङ्क्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्युक्त्वा स्वयमभिप्रायं विदित्वा **अस्कन्धः** इत्यभिहितवान् । परमार्थत इति शेषः । प्रज्ञप्तिसत्त्वात् स्कन्धानां न पुण्यस्कन्धो भावरूपेण सम्भवति । पुण्यमपि वासनास्वरूपमवस्थाविशेषे उपचर्यते । भावानां स्थिरत्वेन अभिसंस्कारेण अप्रवृत्तत्वात् चित्तमपि प्रज्ञप्तिसन्मात्रमेव । एकानेकस्वभावेन प्रतिस्वं परीक्षायां मिथ्यैव तावत् स्वभावः । अत एव न पुण्यस्कन्धः परमार्थतो विद्यते ।

अनेन योगसमापत्तिः परिदीपिता, अध्यारोपान्तश्च निषिद्धः । विद्यन्त एव पुण्यस्कन्धाः संवृतौ । अत एव **पुण्यस्कन्धस्तथागतेन भाषितः** इत्युक्तम् । यद्येवं न स्यात्, परमार्थतः स पुण्यस्कन्धो भवेत् (तदा) परमार्थस्य शब्दागोचरत्वात् न भवेत् तदभिधानम् । अभाषितमित्येवं वचनं निरर्थकमिति चेत् ? यतो भाषितास्तस्मात् संवृतावेवेत्यवगन्तव्यम् । अनेनापवादान्तस्य निषेधो निर्दिष्टः । एवमार्यसुभूतिना अन्तद्वयपरिहारः कृतः ।

तदनन्तरं पार्षदा उदारधर्मश्रवणभव्याः, तेन च बहुतरं पुण्यमिति आवेदितुं भगवता **यश्च खलु पुनः सुभूते** इत्याद्युक्तम् । अनेन तथागतानां

रत्नं सप्तविधं सर्वं प्राधान्यादथवापरे ।
तद्भेदा मणयः सर्वे वर्णसंस्थानलेशतः ॥
द्र०– आलोकः, पृ. ३६४ ।

1 चतुर्द्वीपकचन्द्रार्कमेरुकामदिवौकसाम् ।
ब्रह्मलोकसहस्रं च साहस्रश्चूडिको मतः ॥ – अभि.को., ३/७३ ।

2 "तत्सहस्रं द्विसाहस्रो लोकधातुस्तु मध्यमः ।"
तेषां चूडिकानां लोकधातूनां सहस्रं द्विसाहस्रो मध्यमो लोकधातुः । –अभि.को., ३/७४, पृ. ५२८, बौ.भा.सं., १९८७ ।

3 "तत् सहस्रं त्रिसाहस्रः"; तेषां द्विसाहस्राणां लोकधातूनां सहस्रं त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुः । –अभि.को., ३/७४, पृ. ५२८ ।

भगवानाह– यश्च खलु पुनः सुभूते, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो विस्तरेण देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् ।

पुण्यहेतुकाधिगमकायस्य प्रवचनकायतो निर्जातत्वात् ततश्चतुष्पादिकायामपि गाथायां देश्यमानायां (यदा) तादृशं पुण्यायतनं भवेत् (तदा) तथागतानां पुण्यहेतुकधर्मकायस्य तु कथैव केति निर्दिश्यते । नायं पदार्थः, (तथापि) सामर्थ्यलभ्योऽयमर्थ इत्यदोषः । एतेन परमार्थतः धर्मदेशनायाः अभिसम्बुद्धस्य चाप्यसत्त्वे संवृतौ तावत् पुण्यकायदेशनायाः सत्त्वात् बोधिसत्त्वैः पुण्यमधिगन्तुं प्रवर्तयितव्यमेवेत्यभिप्रायः ।

अनेन तावद् विशिष्टपुण्यप्रतिपादनेन औदार्यमस्य परिदीपितम्, तदुत्पादाय च छन्दप्रणिधाने निर्दिष्टे । षट्पादिकाया गाथायाः सत्त्वेऽपि **चतुष्पादिका** इति विशेषीकृता । **गाथा** इति यत्र न यतिः, 'पाद' शब्देन्न चतुःपादं गाथापरिमाणं परिगृह्यते । **उद्गृह्य** इति स्वाध्यायं विधाय । **देशयेत्** इति पदानि । **सम्प्रकाशयेत्**[1] इत्यर्थः । **असंख्येयम्**[2] इति संबहुलम् । **अप्रमेयम्**[3] इति प्रमाविषयातीतत्वात् । अनेन चार्थतः पुण्यानुत्पत्तिविपक्षस्तावन्निराकृतः । पुण्यमित्युपलक्षणमात्रमेतेन तथागतस्य समस्तः पुण्यसम्भारो निर्दिष्टः ।

किमिति श्रद्धेयमात्रमुत युक्तितोऽवगम्यमिति मनसि कृत्वा **तत्कस्य हेतोः ?** इति पृच्छायाम् **अतो निर्जाता हि सुभूते, तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामनुत्तरा सम्यक्संबोधिः**[4] इति युक्तिवचनमभिहितवान् । एवं

---

1 तु0– उपदिशन्ति भावनामयज्ञानोत्पादात् । परिमोचनार्थं यतो ग्रन्थार्थनिश्चयोत्पादनतः संप्रकाशयन्ति । –आलोकः, पृ. २८६

2 एकत्वादिसंख्यारहितत्वेन असंख्येयानाम् । –आलोकः, पृ. ३३५ ।

3 प्रत्यक्षादिप्रमाणेन प्रमातुमशक्यत्वादप्रमेयानाम् । –आलोकः, पृ. ३३५ ।

4 प्रज्ञापारमिता निर्जाता हि आनन्द बुद्धानां भगवतां बोधिः । येऽपि ते आनन्द अभूवन्नतीतेऽध्वनि तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः, तेषामप्यानन्द, बुद्धानां भगवतां

तत्कस्य हेतोः ? अतो निर्जाता हि सुभूते, तथागतानामर्हतां सम्यक्संबुद्धानामनुत्तरा सम्यक्संबोधिः, अतो निर्जाताश्च बुद्धाः भगवन्तः । तत्कस्य हेतोः ? बुद्धधर्मा[1] इति सुभूते, अबुद्धधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते बुद्धधर्मा इति ।

बहुतरं पुण्यम् इति तच्च बृहत्फलत्वात्तत् बहुतरं पुण्यम्, न तु स्वरूपतस्तस्य कायाभावात् । रत्ननिर्जातं तत्पुण्यं तु महापरिभोगादि गौणसांसारिकं फलं प्रापयति । प्रज्ञापरिगृहीतत्वे सति दानादीनां महाबोधिफलमधिगम्यते, न तु प्रादेशिकानाम् । धर्मदानेन तावदक्षयाप्रतिमतथागतपदप्राप्तेः तन्महत्त्वं किमिति न प्रसक्तम् ? यथा धर्मेणानुग्रहो न तथा रत्नैः परेषामनुग्रहः । तथा हि परेभ्यः सम्प्रकाशितेन क्रमशोऽनेन धर्मेण क्षिप्रमेव बुद्धत्वपदं लभ्यते, न तु रत्नैः । अत एव परेभ्यः परानुग्राहकत्वाद् रत्नदानाद् धर्मदानं विशिष्टमित्यभिसन्धिः ।

अतो निर्जाताः इति संसाध्यते । दशचरितानि निःश्रित्य पारम्पर्येण प्राप्यन्त इत्यर्थः । तानि तावद् दश चरितानि[2]– लेखनं पूजनं दानं वाचनं श्रवणम् उद्ग्रहणम् सम्प्रकाशनं स्वाध्यायः चिन्तनं भावना चेति । **अतो निर्जाताश्च बुद्धा भगवन्तः**[3] इति संवृतौ एतान्याश्रित्य बुद्धाः प्रज्ञप्ता इति

प्रज्ञापारमितानिर्जातैव अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभूत् । तेऽपि ते आनन्द अनागतेऽध्वनि भविष्यन्ति तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः, तेषामप्यानन्द बुद्धानां भगवतां प्रज्ञापारमितानिर्जातैव अनुत्तरा सम्यक्संबोधिर्भविष्यति । येऽपि ते आनन्द अप्रमेयेष्वसंख्येषु लोकधातुषु तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धा एतर्हि तिष्ठन्ति ध्रियन्ते यापयन्ति, तेषामप्यानन्द बुद्धानां भगवतां प्रज्ञापारमितानिर्जातैव अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिः। –अ.प्र., पृ. २२९ ।

1 भोटसंस्करणे वैद्यसंस्करणे च "बुद्धधर्मा बुद्धधर्माः" इत्येवं पाठः । जोशीसंस्करणे तु "बुद्धधर्माः" इत्येव पाठः । आचार्यकमलशीलकृताया टीकायामपि "बुद्धधर्माः" इति पाठ उपलभ्यते । अत एव अयमेव पाठः शुद्धः प्रतीयते ।

2 पूजना लेखना दानं श्रवणं वाचनोद्ग्रहः ।
प्रकाशनाथ स्वाध्यायश्चिन्तना भावना च तत् ॥
अमेयपुण्यस्कन्धं हि चरितं तद्दशात्मकम् ।
विशेषादक्षयत्वाच्च परानुग्रहतोऽसमात् ॥ –आलोकः, पृ. ३६५

3 धर्मकायाः मायोपमाद्वयज्ञानस्वभावाः प्रज्ञापारमितात्मका बुद्धाः भगवन्तः । –आलोकः, प. ३७५, दरभंगा संस्करणम्, १९६० ।

वाक्यशेषः । परमार्थतस्तु बोधिः बुद्धश्च भिन्नौ न स्तः ।[1] अनेन तावत् पुण्यस्य परमवैशिष्ट्यपरिदीपनेन तदुत्पादयितुं छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति देशितम् ।

यदि परमार्थतः सर्वधर्मानुत्पाद एव तदा सर्वे बुद्धधर्मा अप्यनुत्पन्ना एव भवेयुः, तत्कथम् अतो निर्जाता अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति ? न बुद्धानां बोधेर्भिन्नत्वमिति विचार्य **तत्कस्य हेतोः ?** इति परिपृच्छा, एतदर्थमत्र **बुद्धधर्माः** इत्युक्तम् । बुद्धप्रज्ञप्तिहेतुका अनुत्तरसम्यक्संबोधिलक्षणा धर्मा एव हि बुद्धधर्माः । तस्मान्नैव केवलं बोधिभिन्नाः परमार्थतः बुद्धाः, अपितु प्रज्ञप्तिहेतुत्वाद् अतो निर्जाता बुद्धाः इत्युक्तमित्यभिप्रायः । तेऽपि परमार्थतोऽनुत्पन्नत्वाद् अबुद्धधर्मा इति, संवृतिमाश्रित्य तथागतानामनुत्तरसम्यक्संबोधिस्तु **अतो निर्जाता** इत्यादिना तथागतेन भाषिता, न तु परमार्थत इति । अत एव तत्तदितरपक्षेभ्यः बुद्धधर्मा इति परमार्थतो नैव वक्तुं शक्यते । प्रत्यात्मवेदनीयत्वेनानभिलाप्यास्त इत्यभिप्रायः । अनेन योगसमापत्तिः विक्षेपनिग्रहः गाम्भीर्यञ्च देशितानि ।

अत्र केचिदाहुः– कथं त्रिधा भिन्नोऽयं धर्मकायः । अथ धर्मकायप्राप्तिः धर्मकायहेतोश्चानुरूपतया पुण्यस्वभावः, प्रज्ञप्त्या च प्रवचनस्वभावो धर्मकाय इति चेद् ? तथा सति रूपकायोऽपि तत्प्राप्तेरनुरूपहेतुत्वात् तत्प्रापकहेतुत्वाच्च धर्मकायः स्यादिति । (अतः) तन्न सत्यम्, भगवतां बुद्धानां धर्मकायस्तु परिशुद्धज्ञानस्वभावस्तथा या च तस्य सामान्यधर्मता, तस्यां व्यवस्थाप्यते । नास्त्यस्यायं विपाकभेदः, न चात्र प्रवचनपुण्ययोरुपचारेण **धर्मः** इति देशनाऽपि । किमिव तर्हीति चेत् ? वस्तुमात्रं धर्म इति देशना । धर्मा इत्यादि स्वयमेवं ख्यातत्वात् । स्वसामान्यलक्षणधारणाद् धर्मा इति यत् व्याख्यातं तत् सर्वधर्मसाधारणमिति न रूपकायस्तथागतत्वेन निर्दिष्टः, अज्ञापकत्वात् । प्रज्ञप्तित इत्युच्यमानेऽपि न रूपकायो धर्मकायत्वेन प्रसक्तो भवति, पुण्यहेत्वनुरूपत्वात्

---

1 यं च पिण्डपातं परिभुज्य तथागतोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः, यं च पिण्डपातं परिभुज्य निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिवृतः, द्वाविमौ पिण्डपातावसमसमफलौ असमसमविपाकौ इति । तु.– आलोकः, पृ. ३८४

तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु स्रोतआपन्नस्यैवं भवति- मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति ? सुभूतिराह- नो हीदं भगवन् । न

तस्य । यथोक्तम्[1]-

बुद्धानां रूपिकायो हि पुण्यं सम्भृत्य जायते ।
धर्मकायः समासेन ज्ञानसम्भारजो नृप ॥

तस्माज्ज्ञानसम्भारस्यैव तत्प्राप्त्युपायत्वान्न रूपकायेन स गृह्यते, प्रज्ञप्तिहेत्वभावान्नोच्यते रूपकायो 'धर्मकायः' इति । प्रवचनकायस्तु सम्यग्ज्ञानस्य फलमिति । सम्भारलक्षणपुण्यनिचयस्यापि तत्प्राप्तिहेतुत्वात् प्रज्ञप्त्या धर्मकाय इत्युच्यमानोऽपि युज्यत एवेति अलमधिकेन । अन्यत् कुचोद्यं युक्तमयुक्तं वेति विचक्षणैर्विवेचियिष्यत इति मत्वा पदबाहुल्यभिया न लिख्यते । धर्मकायाप्तिछन्दस्थानमुक्तम् ।

इतः परं द्वादशविपक्षाणां प्रतिपक्षाणि द्वादशस्थानानि यथाक्रमं वेदितव्यानि। इमे तावद् द्वादश विपक्षाः-

१. अभिमानः
२. अभिमानाभावेऽपि अल्पश्रुतत्वम्
३. बाहुश्रुत्येऽपिहीनालम्बनमनसिकारभावना
४. हीनालम्बनमनसिकारभावनाया अभावेऽपि सत्त्वोपेक्षा
५. तदुपेक्षाया अभावेऽपि बाह्यशास्त्रेषु सानुरागा प्रवृत्तिः
६. तथा प्रवृत्त्यभावेऽपि भावनिमित्ताभिभवोपायेष्वकौशलम्
७. तत्र उपायकौशलेऽपि पुण्यसम्भारासञ्चयः
८. पुण्यसम्भारसञ्चयेऽपि लाभसत्कारकौसीद्यैः पिण्डास्वादनम्
९. तथास्वादनाभावेऽपि दुःखाक्षान्तिः
१०. दुःखाधिवासनायामपि ज्ञानसम्भारासञ्चयः
११. ज्ञानसम्भारसञ्चयेऽपि आत्मपरिग्रहः
१२. आत्मग्रहाभावेऽपि अववादायोगः

---

1 रत्ना., ३/१३, पुनरुद्धारः (आचार्यङवङ्समतेन) ति.सं. संस्करणम् ।

स्रोतआपन्नस्यैवं भवति– मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति । तत्कस्य हेतोः ? न हि स भगवन् कंचिद्धर्ममापन्नः, तेनोच्यते स्रोतआपन्न इति । न रूपमापन्नो न शब्दान् न गन्धान् न रसान् न स्प्रष्टव्यान् धर्मानापन्नः । तेनोच्यते स्रोतआपन्न इति । सचेद् भगवन्, स्रोतआपन्नस्यैवं भवेत्– मया स्रोतआपत्तिफलं प्राप्तमिति, स एव तस्यात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहो भवेदिति ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु सकृदागामिन एवं भवति– मया सकृदागामिफलं प्राप्तमिति ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । न सकृदागामिन एवं भवति– मया सकृदागामिफलं प्राप्तमिति । तत्कस्य हेतोः ? न हि स कश्चिद्धर्मो यः सकृदागामित्वमापन्नः । तेनोच्यते सकृदागामीति ।

५.भावनाविशेषलाभेऽनभिमानस्थानम् :

तत्र भगवता धर्मपुद्गलयोर्विस्तरेण नैरात्म्ये देशितेऽपि अनादिकालीनदृढात्माभिनिवेशसञ्चयबलेन यदि कश्चिदेवं मन्येत– यस्य सत्त्वादिसंज्ञा प्रवर्तते, न स बोधिसत्त्व इति[1] ? एवं तर्हि यदुक्तं भगवता 'तस्मिन् कालेऽहं वीरदत्तो नाम नृपोऽभवम्,' युष्मभ्यं मया धर्मो देशयिष्यते इत्यादि कथं स्यात् । (अतः) सत्त्वसंज्ञादिविरहस्य नैवमभिप्राय इति विघ्न–भूताभिमानविसंयोगार्थं पञ्चमस्थानमधिकृत्याह– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्यादि।

अस्यायमत्र सामान्यतोऽर्थः– ये मम मृदुश्रावकाः स्रोतआपन्नत्वादिषु धर्मनैरात्म्यानधिगमाद् अप्राप्तरसानुभवाः, तेषामपि अहन्त्वेन ममत्वेन चाभिनिवेशो न भवति, किं खलु पुनः उभयनैरात्म्याधिगमेन प्रहीणनिरवशेषावरणानामिति । **तस्मिन् कालेऽहम्......** इत्यादि यत्तल्लोकेन सह व्यवहारप्रज्ञप्त्यर्थं परसन्तानव्यवच्छेदमात्रज्ञापनार्थं वा, सेनावनादिव्यवहारवत्, न त्वेकत्व–

---

1 सत्त्वसंज्ञा च ते नाथ, सर्वथा न प्रवर्तते ।
दुःखार्तेषु च सत्त्वेषु त्वमतीव कृपात्मकः ॥ –चतुस्तवः १/९ (निरौपम्य स्तव. –उद्धृतम् बो.च. ९/७६)

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु अनागामिन एवं भवति– मयानागामिफलं प्राप्तमिति ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । न अनागामिन एवं भवति– मया अनागामिफलं प्राप्तमिति । तत्कस्य हेतोः ? न हि स भगवन् कश्चिद्धर्मो योऽनागामित्वमापन्नः । तेनोच्यते अनागामीति ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु अर्हत् एवं भवति– मया अर्हत्वं प्राप्तमिति ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । नार्हत् एवं भवति– मया अर्हत्वं प्राप्तमिति । तत्कस्य हेतोः? न हि स भगवन् कश्चिद्धर्मो योऽर्हन्नाम । तेनोच्यते– अर्हन्निति । सचेद् भगवन् अर्हत् एवं भवेत्– मया अर्हत्वं प्राप्तमिति, स एव तस्यात्मग्राहो भवेत्, सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहो भवेत् ।

शाश्वतत्वाभिनिवेशतया । तत्त्वज्ञानस्थितैः न शक्यते तावल्लोकेन सह व्यवहर्तुम् । तस्मादभिमानस्थानविसंयोगार्थं त्वयाऽपि नात्मन्यभिनिवेष्टव्यमिति समादापयति ।

तत्र स्रोतः निर्वाणमहानगरप्रापकदर्शनमार्गलक्षणम्, आपन्नः प्राप्तः, दर्शनप्रहेयसमस्तक्लेशप्रहायकः स्रोत आपन्न इति, तस्य च कर्तरि कर्मणि क्रियायां चाभिनिवेशप्रहाणेन इदम्प्रत्ययताधिगमान्नैरात्म्याधिगमो दर्शितः । **मया** इति कर्तर्यभिनिवेशः । **फलम्** इति कर्मण्यभिनिवेशः । **प्राप्तः** इति क्रियायामभिनिवेशः । इत्यनेन तावदर्थतः मया प्राप्तमिति विपक्षत्वेन परिदीप्यते । **न स्रोतआपन्नस्यैवं भवति मया प्राप्तम्** इत्यनेन उपलक्षणमात्रप्रदर्शनेन सर्वेषामभिमानानां प्रहेयत्वं प्रदर्श्यते । तत्र छन्दः प्रणिधानञ्चापि निर्दिश्यत इति । आर्यसुभूतिरपि भगवतोऽभिप्रायं निर्दिशन् परमार्थस्थापनार्थं तत्र योगसमापत्तिं च ग्रहीतुं **न हि स भगवन् कञ्चिद् (धर्म) आपन्नः** इत्याह । कथमिति **न रूपमापन्नः** इत्याद्याह ।

अनेन तावत् परमार्थतः फलद्वैविध्यस्याप्राप्यत्वमपि निर्दिश्यते, तथा हि– फलभूतं प्राप्यस्वभावं किञ्चित् स्यात् (तर्हि) संस्कृतमसंस्कृतं वा स्यात् । तत्र तावदनुत्पन्नमेवासंस्कृतम्, अभावरूपत्वाद् शशविषाणमिव तन्न युज्यते

प्राप्तुम्, अप्राप्त्यवस्थाऽविशिष्टत्वात् । संस्कृतं तावत् क्षणिकम्, उत्पादसमनन्तरं विनाशित्वात्, स्थितेरभावात् केनापि कथमपि तन्न प्राप्तुं शक्यते । यस्मिन् सन्ताने नैरात्म्यमार्गलक्षणहेतुसन्निहिततया क्लेशसमुत्पादात्यन्तविरुद्धाश्रयलक्षणं फलमुत्पद्यत इति फलं प्राप्यत इत्येवमुच्यते, न तु परमार्थतः ।

अपि च, प्राप्यप्रापकभावः[1] खलु भिन्नकालिकः समकालिको वा स्यात् । तत्र न तावत् प्रथमः पक्षः द्वयोरपि स्थितत्वात्, भिन्नकालिकस्तु एकस्मिन् प्रत्यासन्नेऽपरस्य चासंनिहिते सति (भवति), तत्कथं द्वयोः स्थितिरिति । न च समकालावस्थितयोरुभयोः परस्परोपकारकत्वम्, असति चोपकारे प्राप्यप्रापकभावो नैवोपयुज्यते, अतिप्रसङ्गत्वात् ।

अन्योऽन्यसंयोगेनोत्पादलक्षणेनापि प्राप्यप्रापकभावस्य समकालिकत्वं न युज्यते, तथा हि- येऽमूर्तभावाः, ते नैव संयुज्यन्ते, क्वचिदप्यनवस्थानात्तेषाम् । न स्यात् प्राप्यप्रापकभावे समकालत्वमात्रमपि तेषाम्, अतिप्रसङ्गात् । न चाप्येकस्य हेतुत्वम्, उभयोः साधारणत्वात्, इदं प्राप्यमिदञ्च प्रापकमिति निश्चयो न भवति । ये तावन्मूर्ताः, तेषां सर्वात्मना संयोगे सति एकत्वं प्रसज्यते, एकदेशेन (संयोगे तु) सावयवत्वं प्रसज्यते । नैरन्तर्येणावस्थानेऽपि न भवितुं शक्नोति उभयोः साधारणत्वात् । अविशेषान्न निश्चयः । अतः कल्पनासमारोपित एवायम् । अनेन तावत् सर्वः कर्मकर्त्रादिव्यवहारः स्पष्टमवबोद्धव्यः ।

धर्माः इति धर्मायतनम्, अनेनासंस्कृतमपि संगृह्यते, धर्मायतनस्य सप्तद्रव्यात्मकत्वात्,[2] शेषेण रूपादिना च धर्मायतनैकदेशेन च संस्कृता निर्दिश्यन्ते । उपलक्षणमिदम् अतश्चक्षुरादिकं ग्रहीतव्यम् । एवं यतः परमार्थतः स कञ्चित् (धर्म) नापन्नः, मया प्राप्तमित्यपि न मन्यते, तस्मात् सन्मार्गस्थितत्वात् स्रोतआपन्न[3] इत्युच्यते ।

---

1 द्र०- निरवयवत्वनिराकरणप्रसङ्गे, वि.मा.सि., पृ. ४८,५१, स.सं.वि.वि.सं. १९७२ ।

2 वेदना, संज्ञा, संस्काराः, अविज्ञप्तिः, आकाशम्, प्रतिसंख्यानिरोधः, अप्रतिसंख्यानिरोधश्च । -अभि.को.टी., पृ. ५० (बौ.भा.प्र.)

3 यः कामवीतरागः, स षोडशे दर्शनमार्गचित्तक्षणे स्रोत आपन्नः । -आलोकः, पृ. २९०; एवं व्यवस्थित आर्यः स्रोत आपत्तिफलसाक्षात्क्रियायै प्रतिपन्नक इत्युच्यते । षोडशे तु

तत्कस्य हेतोः ? अहमस्मि भगवंस्तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अरणाविहारिणामग्र्यो निर्दिष्टः । अहमस्मि भगवन् अर्हत् वीतरागः । न च मे भगवन्नेवं भवति– अर्हन्नस्म्यहं वीतराग इति ।

यदि मया प्राप्तमित्यभिनिवेशस्तदा कथं नोच्येत स्रोत आपन्न इति विचिन्त्य **सचेद् भगवन्** इत्याद्याह । **मया** इति यस्याहमित्यभिनिवेशः स्यात्तस्य नास्त्यात्मदृष्टिप्रहाणम्, यश्चाप्रहीणात्मदृष्टिः स अनुत्पन्नार्यमार्गः, यश्चानुत्पन्नार्यमार्गः, स पृथग्जन[1] इति कथं स्यात् स्रोत–आपन्न इत्यभिसन्धिः। एवं हि 'मया' इति योऽयमभिनिवेशः, स आत्मदृष्टिसमुदयः । अनेन चित्तप्रग्रहो निर्दिष्टः । अनेन तावत् सकलेन स्थानस्यास्य गाम्भीर्यमभिहितम् ।

अमुमेवार्थं दृष्टान्तान्तरे प्रपञ्च्य निर्देष्टुं **सकृदागामिनः**[2] इत्याद्याह । अत्रापि पदार्थाभिसन्ध्यादीनि पूर्ववद् योज्यानि । प्रहीणभावना–हेयषड्विधकामावचरक्लेश एवार्यसकृदागामी, सकृदागामित्वात् कामधातौ । प्रहीणभावनाहेयसकलकामावचरक्लेश एवानागामीत्युच्यते,[3] पुनरनागामित्वात्

मार्गेऽन्वयज्ञानस्थितः स स्रोत आपन्न इत्युच्यते । –म.शा.वृ., २४/४ पृ. २१२, बौ.भा.सं., १९८३ ।

1 अनुत्पन्नमार्गो बालपृथग्जनः । तन्निबन्धना रागादयो धर्माः पृथग्धर्माः । –आलोकः, पृ. ३२५; पृथग्जनत्वम् । 'पृथग्जनत्वं कतमत् ? आर्यधर्माणामलाभः' इति शास्त्रपाठः । –अभि.को., २/४० पृ. २२५, बौ.भा.प्र. १९८७ ।

2 ततः कामावचरषट्प्रकारक्लेशप्रहाणात् सकृदागामी । –आलोकः, पृ. २९०; तत्र दर्शनमार्गादूर्ध्वं कामावचरभावनाप्रहातव्यषष्ठक्लेशप्रकारप्रतिपक्षविमुक्तिमार्गाख्यज्ञान–क्षणादर्वाग् ज्ञानक्षणावस्थितः आर्यः सकृदागामिफलप्रतिपन्नक इत्युच्यते । सकृदिमं लोकमागत्य परिनिर्वाणात् सकृदामीत्युच्यते, तत्फलार्थं प्रतिपन्नकः प्रयोगस्थः सकृदागामिफलप्रतिपन्नक इत्युच्यते । षष्ठे तु क्षणे सकृदागामीत्युच्यते । –म.शा.वृ., २४/४ पृ. २१२, बौ.भा.प्र. ; निमित्तदृष्टिलक्ष्यलक्षणाभावाद्ध्यानगतिलक्षणसुदृष्टत्वात् सकृदेतं लोकमागम्य दुःखस्यान्तक्रियायै परिनिर्वास्यति । तेनोच्यते सकृदागामीति । –लंका. २/१७३, पृ. ४९, मि.संस्करणम् ।

3 षष्ठात् क्षणादूर्ध्वं नवमक्लेशप्रकारप्रहाणविमुक्तिमार्गक्षणादर्वाग्ज्ञानक्षणेषु वर्तमान आर्यः अनागामिफलप्रतिपन्नक इत्युच्यते । अनागत्य इमं लोकं तत्रैव परिनिर्वाणादनागामीत्युच्यते । तत्फलार्थं प्रतिपन्नकः प्रयोगस्थोऽनागामिफलप्रतिपन्नक इत्यच्यते । नवमे तु क्षणे अनागामीत्युच्यते । –म.शा.वृ. २४/४, पृ. २१२, बौ.भा.प्र.; यदुत अतीतानागतप्रत्युत्पन्नस्य रूपलक्षणभावाभावप्रवृत्तेर्दृष्टिदोषानुशय–

सचेन्मम भगवन्नेवं भवेत्– मया अर्हत्वं प्राप्तमिति, न मां तथागतो व्याकरिष्यत् अरणाविहारिणामग्र्यः सुभूतिः कुलपुत्रो न क्वचिद्विहरति, तेनोच्यते अरणाविहारी अरणाविहारीति ।

कामधातौ । यदा समस्तत्रैधातुकावचरक्लेशमलानां प्रहाणं जायते, तदा स सकललोकपूज्यत्वाद् अर्हन्नित्युच्यते[1] । **न हि स कश्चिद् धर्मो योऽर्हन्नाम** प्रहीणतथाविधक्लेशावरणज्ञानसन्ततौ उपचरितत्वात्, सन्ततेश्च प्रज्ञप्तौ सत्त्वान्न स कश्चन परमार्थतः, समारोपित एवासावित्यभिप्रायः।

साम्प्रतम् आर्यसुभूतिः 'अहं' पदप्रयोज्यमात्मानमधिकृत्य विशिष्टत्वेन अरणाविहारीति साधारणगुणत्वेन अर्हन्निति च 'अहमस्मि' इत्यनेनोक्त्वा चित्तप्रग्रहमात्रं दर्शयितुं **अहम्** इत्याद्यवोचत् । **अरणा**[2] इति समाधिविशेषः, अत्र चोभतोभागविमुक्तत्वमर्हत्त्वमालम्ब्य तदितरेषु रणा नोत्पाद्यन्त इति विचिन्त्य योगः समापद्यते । ततो व्युत्थाय तमालम्ब्य तदितरेषु नोपजायन्ते रणाः । यस्तया अरणया विहरणशीलः स एवमुच्यते । सुगमोऽयं विभङ्गः ।

विकल्पस्य अनागामित्वादनागामीरूपप्रहीणत्वाच्च संयोजनानामनागामीत्युच्यते । –लंका., २/१७३, पृ. ४९, मि.सं. १९६३ ।

1 सर्वे एवात्र पूजादक्षिणागुणप्रकर्षाद्यर्हतया अर्हन्तः । –आलोकः, पृ. २७३; कामावचरनवमविमुक्तिमार्गादूर्ध्वं नैवसंज्ञानासंज्ञातयनभूमिकनवमक्लेशप्रकारप्रहाण–विमुक्तिमार्गक्षणादर्वाग्ज्ञानक्षणेषु वर्तमान आर्यः अर्हत्फलप्रतिपन्नक इत्युच्यते । सदेवमानुषासुराल्लोकात् पूजार्हत्वादर्हन्नित्युच्यते । तत्फलार्थं प्रतिपन्नकः प्रयोगस्थः अर्हत्फलप्रतिपन्नक इत्युच्यते । भवाग्रिकनवमक्लेशप्रकारप्रहाणात्तु नवमविमुक्तिमार्गे व्यवस्थितः अर्हन् भवति । –म.शा.वृ. २४/४, पृ. २१३, बौ.भा.प्र. ; द्र0.– लंका. २/१७३, पृ. ४९ ।

2 अरणा इति यस्य समाधेः प्रमाणात् परेषां सन्ताने स्वपरव्यवधानार्थेन रणयन्तीति रणाः क्लेशा न जायन्ते, स अरणासमाधिः, तद्विहारिणां मध्ये अग्रतायां निर्दिष्टः सन् निर्दिष्टस्य अचित्ततामिति विभक्तपरिणामेन योज्यम् । –आलोकः, पृ. २९३ ; रणा हि क्लेशा आत्मपरव्याबाधनादिति । ये ह्यात्मानं परांश्च व्याबाधन्ते ते रणाः, युद्धानीत्यर्थः । तथैव च क्लेशा रणा उच्यन्ते । तदनुशयितत्वादिति । तैरनुशयिता उपसेविता इत्यर्थः । अथ वा– अनुशयिनः कृतास्तैरनुशयिताः, तद्भावस्तदनुशयितत्वम्, तस्मात् – तदनुशयितत्वात् । अथ वा– तेषामनुशयितत्वम्, तस्मात् । सरणाः सास्रववत् । द्र0– अभि.को., १/८, पृ. २९, बौ.भा.प्र. १९८७ ।

भगवनाह– तत्किं मन्यसे सुभूते– अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकाद् उद्गृहीतः ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकाद् उद्गृहीतः ।

न मां व्याकरिष्यत् इति तदा अप्रहीणत्वादात्मदृष्टेर्मया स्रोत–आपत्तिफलमपि दुर्लभम्, किं खलु पुनः उभतोभागविमुक्तेनार्हता प्राप्यमरणाविहारित्वमित्यभिसन्धिः । कथमरणायां विहर्तव्यमिति चिन्तायां **न क्वचिद् विहरति** इत्यवोचत् । प्राप्तं मया किञ्चत् संस्कृतमसंस्कृतं वेत्येवमभिनिवेशेन योऽस्थितः, स एवारणाविहारीति द्विरभिधानम्, नापर इत्यर्थः । अधुना **अहमस्मि भगवंस्तथागतेनार्हता सम्यक्सम्बुद्धेन अरणाविहारिणामग्र्यो**[1] **निर्दिष्टः । अहमस्मि भगवन् अर्हन् वीतरागः** इति नात्माभिनिवेशेन, अथ कथमिति चेत् ? व्यवहार–मात्राभिनिवेशतया, एतच्च प्रागेव मया प्रोक्तम् ।

६.बुद्धोत्पादारागता–स्थानम् :

नन्वसति कस्मिंश्चिदपि प्राप्ये प्रापके वा परमार्थतः, बोधिसत्त्वभूतेन भगवता कथं तथागतदीपङ्करस्यान्तिकाद् धर्म उद्गृहीतः? अथ नोद्गृहीत इति चेद् ? तदाऽस्माभिर्धर्ममुद्ग्रहीतुकामैः कथमाराधनीयस्तथागतोत्पाद इति ये परिकल्पयन्ति तेषामल्पश्रुतत्वप्रतिबन्धापाकरणार्थं षष्ठं स्थानमधिकृत्याह– **अस्ति स कश्चिद् धर्मो यस्तथागतेन दीपङ्करस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्सम्बुद्धस्यान्तिकादुद्गृहीतः ?** इति । सुभूतिरपि प्रागेवाभिप्रायं विदित्वा **नो हीदम्** इत्यवोचत् । नास्ति परमार्थतः कस्यचिदपि धर्मस्य प्राप्यप्रापकत्वेन उद्ग्रहणं नाम, यथोक्तं पूर्वम् । 'सर्वे धर्माः प्रकृत्या शान्ताः'

---

1 साधु साध्वायुष्मान् सुभूते । यथापि नाम त्वं भगवता अरणाविहारिणामग्रताया निर्दिष्टो निर्दिशसि । –अ.प्र., पृ. ३; तुलनीयम्– एतं सन्तं एतं पणीतं यदिद ... । –म.नि., भाग–३, पृ. २९ ; द्र.– अं.नि., भाग–१, पृ. २४–२५ ।

भगवानाह– यः **कश्चित्सुभूते बोधिसत्त्व एवं वदेत्– अहं क्षेत्रव्यूहान् निष्पादयिष्यामीति, स वितथं वदेत् । तत्कस्य हेतोः ? क्षेत्रव्यूहाः क्षेत्रव्यूहा इति सुभूते, अव्यूहास्ते तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहा इति । तस्मात्तर्हि सुभूते, बोधिसत्त्वेन** महासत्त्वेन **एवमप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यं यन्न क्वचित्प्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम् । न रूपप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यं न** शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्य**धर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम् ।**

तथापि तथागतानुभावेन नानापदसमुदायादीनां ज्ञानावभासोत्पादमात्रे **उद्गृहीतः** इत्युपचर्यते, अतः श्रुतपर्येषणं सफलम् ।

अनेनार्थतः 'बोधिसत्त्वेन श्रुतपर्येषणकाले बुद्धोत्पाद आराधनीयस्तदनन्तरं बुद्धधर्मा उद्गृहीतव्याः' इत्यभिनिवेशो विपक्षत्वेन निर्दिष्टः । तत्प्रहाणे छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमित्यपि निर्दिष्टम् । **अस्ति स कश्चिद् धर्मो दीपङ्करस्यान्तिकादुद्गृहीतः ?** इति दिङ्मात्राभिधानेन उद्गृहीतधर्मस्य सर्वनिमित्त विनिवर्तते । 'नास्ति स कश्चिद् धर्म उद्गृहीतः' इत्यनेन परमार्थतः धर्माणामग्राह्यत्वं व्यवस्थाप्य तत्र योगसमापत्तिः विक्षेपनिग्रहश्च निर्दिष्टौ । स्थानस्यास्य गाम्भीर्यमपि परिदीपितम् ।

७.क्षेत्रविशुद्धिप्रणिधान–स्थानम् :

यदि परमार्थतः कर्मकर्त्रादयो न स्युस्तदा कथं बोधिसत्त्वा बुद्धक्षेत्रपरिशोधनार्थं प्रणिदधतीति तर्कयतां तेषां हीनालम्बन–मनसिकारभावनाविबन्धविसंयोगार्थं सप्तमस्थानमधिकृत्याह– **यः कश्चिद् बोधिसत्त्वः** इति । **वितथम्** इति मृषा । यद्येवं (तर्हि) भगवान् बोधिसत्त्वानां तत्तत्क्षेत्रपरिशुद्धिसम्पदं कथमुक्तवानिति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इति पृच्छायां **क्षेत्रव्यूहाः** इत्यादि समाधानमभिहितम् । बहूनि क्षेत्राणि तु क्षेत्रव्यूहाः । **अव्यूहास्ते** इति परमाणुभिरारब्धोऽवयविभूतो वा नास्ति कश्चिद् व्यूहः परमार्थत इत्यव्यूहा एव ते, तथापि स्वप्नोपलब्धक्षेत्रव्यूहवद् अविचाररमणीयमात्र संवृतिसत्त्वमुक्तं **तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहाः** इति । अन्यथा

तद्यथापि नाम सुभूते, पुरुषो भवेदुपेतकायो महाकायो यत्तस्यैवं रूप आत्मभावः स्यात् तद्यथापि नाम सुमेरुः पर्वतराजः । तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु महान् स आत्मभावो भवेत् ? सुभूतिराह– महान् स भगवन्, महान् सुगत स आत्मभावो भवेत् । तत्कस्य हेतोः ? आत्मभाव–आत्मभाव इति भगवन् न भावः स तथागतेन भाषितः। तेनोच्यते आत्मभाव इति । न हि भगवन् स भावो नाभावः । तेनोच्यते आत्मभाव इति ।

परमार्थस्वभावस्त्वनभिलाप्यतयाऽनभिलाप्य इत्यभिप्रायः । उक्तञ्चाप्रतिष्ठितत्वं प्रागेव । एषां मुषितस्मृतिकानामुपकाराय उपसंहारोपायेन स्मारयितुं **तस्माद्** इत्याद्याह । **एवम्** इति यथोक्तेन विधिना, कस्यचिदपि वस्तुनः सिद्धेरभावात् तत्र 'अप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्' इत्यर्थः । शेषं तु पूर्ववत् ।

तत्र **वितथं वदेत्** इत्यनेनार्थतः परमार्थतः मया क्षेत्रव्यूहो निष्पाद्यत इत्यभिनिवेशो विपक्षत्वेन परिदीपितः । 'क्षेत्रव्यूहाः' इति निमित्तमात्राभिधानेन समस्तहीनालम्बनभावनाविसंयोगो निर्दिष्टः । हीनालम्बनमनसिकारभावनां प्रति छन्दः प्रणिधानमपि (न कर्त्तव्यमित्यपि) निर्दिष्टम् । **अव्यूहास्ते तथागतेन भाषिताः** इत्यनेन परमार्थव्यवस्थापनेन योगसमापत्तौ प्रवृत्तिः गम्भीरता च निर्दिश्येते । **तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहाः** इत्यनेनापवादान्तं परिहृत्य विक्षेपनिग्रहो निर्दिष्टः, स्थानस्यास्य औदार्यं च परिदीपितम् ।

८.सत्त्वपरिपाक–स्थानम् :

स्कन्धेभ्यः पृथक्त्वेनासत्त्वेऽपि किं नाभिन्ना एव सत्त्वाः ? अन्यथा सत्त्वपरिपाकार्थं कथं बोधिसत्त्वाः प्रवर्तेरन् ? इति यो विचारः, तस्मात् सत्त्वोपेक्षालक्षणविघ्नभूताद् विसंयोगार्थम् अष्टमस्थानमधिकृत्य **तद्यथापि नाम** इत्युक्तम् । **पुरुषः** इत्यसुरेन्द्रो राहुरिति । तस्यात्मभावस्तु कामधातौ सुमेरुपरिमाणः । तस्य महत्त्वेऽपि व्यर्थैव तन्महत्ता । किमर्थं देशितं भगवतेत्यभिप्रायं वक्तुकामनया **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यापृष्टम् । तमेव अभिप्रायं वक्तुमाह– **न भावः** इति । परमार्थतः एकानेकस्वभावेन वियोगात्

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते– यावत्यो गङ्गायां महानद्यां वालुकास्तावत्य एव गङ्गानद्यो भवेयुः, तासु या वालुकाः, अपि नु ता बहव्यो भवेयुः ? सुभूतिराह– ता एव तावद्भगवन् बहव्यो गङ्गानद्यो भवेयुः, प्रागेव यास्तासु गङ्गानदीषु वालुकाः ।

निःस्वभावता[1] एव । स्वप्नदृष्ट इव स आत्मभावः संवृतितः प्रोक्तस्तथागतेन, न तु परमार्थतः ।

तेनोच्यते आत्मभावः इत्यत्रोपपत्तिमाह । एवमयं संवृतिरेव, तस्मात्तथोच्यते, अन्यथा परमार्थतः कस्यचिदपि धर्मस्यासिद्धत्वात् तथा नोच्येतेत्यभिप्रायः । अभावं तावद् भावत्वेनाभ्युपगच्छतां तेषां जैमिन्यादीनां प्रतिषेधार्थम् **न स भावः** इत्याह । अभावस्य तु भावव्यतिरेकेण स्थितलक्षणत्वात् कथं तद्विपरीतस्वभावो न स्यात् ? 'तेनोच्यते आत्मभावः' । अन्यथा परमार्थतः कस्यचिदप्यात्मभावस्यासिद्धेः किमित्यात्मभाव इहोच्यते, ततोऽयमभावत्वेन देशितः । सुमेरुमात्रपरिमाणोऽपि य आत्मभावो यदा निःस्वभावत्वात् परमार्थतो नास्ति, तदा कथं परात्मभावः सस्वभावः सात्मको वा भवेत् ?

अत्रार्थतः सत्त्वपरिपाकायोद्यमरतानां बोधिसत्त्वानां सत्त्वाभिनिवेशः परमार्थतः विपक्षत्वेन प्रदर्शितः तत्प्रहाणाय छन्दः प्रणिधानं च निर्दिष्टे । 'पुरुषः' इत्युपलक्षणमात्राभिधानेन अण्डजादीनां सर्वेषां पृथगात्मभावानां परिग्रहणमुक्तम् । **न भावः स तथागतेन भाषितः** इत्यनेन तावत् परमार्थं व्यस्थाप्य योगसमापत्तिस्थानं गम्भीरत्वं च परिदीपिते । **न स भावः** इत्यनेन तु विक्षेपनिग्रहो निर्दिष्टः ।

९.बाह्यशास्त्रेषु व्यपगतरागता–स्थानम् :

सम्प्रत्यस्य धर्मपर्यायस्य महार्थत्वप्रतिपादनेन बाह्यशास्त्रेष्वभिनिविष्टानां तत्रानुनयविक्षेपपरिहारार्थं नवमस्थानमधिकृत्य– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याह ।

---

1 निस्वभावा अमी धर्मास्तत्त्वतः स्वपरोदिताः ।
एकानेकस्वभावेन वियोगात् प्रतिबिम्बवत्।। –म.अव. १का.(उद्धृतम् बो.च. पृ. १७३)

भगवानाह– आरोचयामि ते सुभूते, प्रतिवेदयामि ते । यावत्यस्तासु गङ्गानदीषु वालुका भवेयुस्तावतो लोकधातून् कश्चिदेव स्त्री वा पुरुषो वा सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु सा स्त्री वा पुरुषो वा ततो निदानं बहु पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? सुभूतिराह– बहु भगवन्, बहु सुगत, स्त्री वा पुरुषो वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् । भगवानाह– यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा तावतो लोकधातून् सप्तरत्न–परिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इतो धर्मपर्यायादन्तशश्च–तुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् ।

अनेन तावत् चतुर्भिः प्रकारैरस्य धर्मपर्यायस्य वैशिष्ट्यं परिदीप्यते– पुण्यपरिग्रहः, देवादिभिः सत्कारः, दुष्करकृत्यविधानम्, तथागतादि–तुल्यताकरणम् । तत्र पुण्यपरिग्रहस्तु यदाह **ततो निदानं बहुपुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात्** इति । देवादिभिः सत्कारस्तु यदाह **स पृथिवीप्रदेशः चैत्यभूत्यभूतो भवेद्**[1] इति । दुष्करकृत्यविधानं तु यदाह **परमेण ते आश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति** इति । तथागतादितुल्यताकरणं तु यदाह **तस्मिंश्च पृथिवीप्रदेशे शास्ता विहरत्यन्यतरान्यतरो वा विज्ञगुरुस्थानीयः** इति ।

तत्र रत्नदानस्य पुण्याभिधानं विशेषद्वयेन विशिष्टं परिदीपितम्- वस्तुविशेषः क्षेत्रविशेषश्च । वस्तुविशेषोऽपि तावत् उदारः प्रणीतश्चेति । –

---

1 द्र0– अ.प्र. पृ. २८ ; अपि च– चैत्यभूतो वन्दनादिना पुण्योपचयहेतुत्वात् । पितेव पितृभूत इत्युपमावाचकभूतशब्दस्योपादानादन्यचैत्यसमानत्वेन चैत्यभूतः स पृथिवीप्रदेश इत्येके । यत्र हि नाम पुद्गलनैरात्म्यद्योतिकया "ये धर्मा हेतुप्रभवा" इत्यादिगाथया अधिष्ठितो भूभागः स्तूपो मतः, तत्र समस्तवस्तुनैःस्वाभाव्यप्रकाशिकाया मातुरुद्ग्रहणादिनोपेतः स्तूपो नितरामेव, इत्यतः साक्ष्येव साक्षिभूत इति तत्स्वभावत्वे चैत्यमेव चैत्यभूत इति चन्द्रगोमी । –आलोकः पृ ३६१ ।

अपि नु खलु पुनः सुभूते, यस्मिन् पृथिवी प्रदेशे इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य भाष्येतं वा संप्रकाश्येत वा, स पृथिवीप्रदेशश्चैत्यभूत्यभूतो भवेत् सदेवमानुषासुरस्य लोकस्य –

तत्रौदार्यं तु वस्तुभेदसंबाहुल्यम्, यदाह **तावतो लोकधातून्** इति । प्रणीतस्तु लोके दुर्लभत्वेन ख्यातः यदाह **सप्तरत्नपरिपूर्णां**[1] **कृत्वा** इति । क्षेत्रं स्वपरार्थसम्पद्योगेन विशिष्टम् । तत्र परार्थसम्पत्तावत् हेयोपादेयार्थानां परेभ्योऽविपर्ययेण सम्प्रकाशनम्, आह **तथागतेभ्यः** इति । यथा वस्तुतथता तथा भाषितत्वात् निरुक्त्या तथा उक्त इति कथ्यते ।

स्वार्थसम्पत्तु ज्ञान–प्रहाणसम्पद्भेदेन द्विविधा । तत्र **अर्हद्भ्यः** इत्यनेन प्रहाणसम्पद् दर्शिता, हतक्लेशारित्वाद् निरुक्त्या 'अर्हन्' इत्युच्यते । **सम्यक्सम्बुद्धेभ्यः** इत्यनेन तावज्ज्ञानसम्पदुक्ता । तस्मात् पदत्रयस्योक्तेः साफल्यमिति सामान्येन सङ्ग्रहार्थः ।

आरोचयामि इतीच्छा द्योतिता भवति । **आरोचयामि प्रतिवेदयामि** अवबोधयामि प्रज्ञामुत्पादयामीत्यर्थः । तत्र पूर्वं तावत् परस्य फलम् अथवा अपरं तु पूर्वस्य व्याख्यानम् । **देशयेत्** इति शब्दं **सम्प्रकाशयेत्** इति छन्दम् अधिमुक्तिमुत्पादयेदित्यर्थः । संख्यया परिच्छेत्तुमशक्यत्वाद् **असंख्येयम्** इति । प्रमापयितुमशक्यत्वाद् दृष्टान्ताभावाद् वा **अप्रमेयम्** इति ।

भाष्येत इति आत्मना ग्रन्थस्वाध्यायः, **सम्प्रकाश्येत** इति परेभ्यः सम्यक् पदार्थदेशना, अथवा 'भाष्येत' इति पदम् 'सम्प्रकाश्येत' इत्यर्थम् । **चैत्यभूत्यभूतः** इति वन्दनीयः, चैत्य एव चैत्यभूतः वशीभूत इतिवत्, यदेवं पुद्गलनैरात्म्यगाथामात्रोपदेशेनापि चैत्यभूत्यभूतो जायते किं खलु पुनः नैरात्म्यद्वयोपदेशेन इत्यभिप्रायः । **उद्गृह्य** इति पदम्, **धारयिष्यन्ति** इत्यविस्मरणम्, **वाचयिष्यन्ति** इति पुस्तकगतम् **पर्यवाप्स्यन्ति** इति अर्थम् ।

---

1 द्र०– आलोकः, पृ. ३६४; सद्धर्म., २/७८–७९; म.सू.सं., पृ. ३३५ ।

कः पुनर्वादो ये इमं धर्मपर्यायं सकलसमाप्तं धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति[1]**। परमेण ते सुभूते, आश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति । तस्मिंश्च सुभूते, पृथिवीप्रदेशे शास्ता विहरत्यन्यतरान्यतरो वा विज्ञगुरुस्थानीयः।**

अनेन तावद् श्रुतमयप्रज्ञया धारणं दर्शितम्, चिन्तामय्या भावनामय्या प्रज्ञया चोद्गृहीतत्वाद् **योनिशश्च (मनसि करिष्यन्ति)**[2] इत्याह । अविपरीततयाऽर्थमवबोधयिष्यन्तीति वाक्यशेषः । क्वचिद् **धारयिष्यन्ति** इत्येकमेव "पदम्, तत्र धारणं तु पदार्थयोर्द्रष्टव्यम् । **परमेण आश्चर्येण** इति तु एवंविधगम्भीरोदारधर्मस्याधिगतत्वात् ।

शास्ता ...स्थानीयः इति धर्मभाणकः, शास्तृकृत्यकरणात्, स एव साक्षाद् धरमाणबुद्ध इवेति वाक्यशेषः[3] । **गुरुः** इति मञ्जुघोषाद्यन्यतरः कश्चित् तत्कार्यसाधनाय धर्मभाणकः स्थानीयरूपेण द्रष्टव्यः । कुत्रचित् **अन्यतरान्यतरो** इति पदद्वयम् । तच्च ये केचन गुरुसदृशाः (तेषां) सर्वेषां पर्यायः । अतस्तत्र स्थानीयः इति निर्दिष्टः । एभिः सर्वैः स्थानस्यास्यौदार्यं निरूपितम् । अर्थतश्च सद्धर्मपरिग्रहमुत्सृज्य बाह्यशास्त्रानुरागो विपक्षत्वेन परिदीपितः, तस्मिन्ननुरागं परित्यज्य धर्मं प्रतिपत्तुं छन्दः प्रणिधानं च दर्शिते । **इतो धर्मपर्यायाद्** इत्युपलक्षणमात्रपरिकीर्तनेन बाह्यशास्त्रेष्वनुरागं परिवर्ज्य सर्वसद्धर्मान् प्रति यत्न आस्थेय इति परिदीपितम् ।

अचिन्त्यसामर्थ्यान्वितत्वादयं धर्मपर्यायः नाममात्रश्रवणेनापि परानुपकरोतीति सत्त्वानां पुण्योत्पादकथनाय आर्यसुभूतिः **को नाम अयम्** इति पृष्टवान् । –

1 धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, योनिशश्च मनसि करिष्यन्ति । –इति भोटपाठः ।

2 संस्कृतमूले पाठोऽयं नोपलभ्यते किन्तु भोटपाठे प्रस्तुतटीकायां च "योनिशश्च मनसि करिष्यन्ति" एवं पाठोऽस्ति ।

3 तु0– परमार्थशास्त्रकृत्या कुर्वाणं शास्तृकृत्यमिव लोके ।
यं बुद्धिमतामग्र्यं द्वितीयमिव बुद्धमित्याहुः ॥ –अभि.को. स्फु., पृ. ३, बौ.भा.प्र. ११/७ ।

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– को नाम अयं भगवन् धर्मपर्यायः, कथं चैनं धारयामि ? एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– प्रज्ञापारमिता नामायं सुभूते, धर्मपर्यायः । एवं चैनं धारय । तत्कस्य हेतोः ? यैव सुभूते, प्रज्ञापारमिता तथागतेन भाषिता सैव अपारमिता तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते प्रज्ञापारमितेति ।

कथं चैनं धारयामि इत्यनेन अस्योद्ग्रहणेनाप्यप्रमेयपुण्यं भवतीति परिदीप्यते ।

प्रज्ञापारमिता नाम[1] इति यस्या तन्नाम तत्तथा उच्यते । इयं प्रज्ञाऽपि, पारमधिगम्य परिच्छेदयतीत्यपि पारमितेति, प्रज्ञा च सा पारमिता चेति समासः । अथवा प्रज्ञायाः पारं प्रज्ञापारम्, अनया तदधिगम्य परिच्छिद्यतेऽतस्तथोच्यते । सा चार्थतः सर्वविधप्रज्ञासु उत्तमा ताथागती प्रज्ञा, नान्यदा प्रज्ञया पारं परिमापयितुं शक्यम् । अथवा प्रज्ञापारम् इता गता इत्येवार्थः । सा च यथोक्ता प्रज्ञैव, न त्वन्यत् तत्पारगमनासम्भवात् । अनेन दानपारमितादयोऽप्युक्ता भवन्तीति । तदभिधानेनायं धर्मपर्यायोऽपि तथोक्तः, यथा सीताहरणादिकाव्ययोजना । तस्याश्च भगवतः प्रत्यात्मवेद्यत्वेनासाधारणत्वात् परमार्थतश्चानुत्पन्नत्वात् सा शब्देनाभिधातुं न शक्यत इत्याशयेन वितर्क्य **तत्कस्य हेतोः?** इति पृष्टवान् । **यैव सुभूते, प्रज्ञापारमिता तथागतेन भाषिता सा** इत्युदतरत् ।

परमार्थतः प्रत्यात्मवेद्यत्वेनासाधारणत्वात् परमार्थतश्च सर्वधर्माणाम् अत्यन्तानुत्पन्नत्वात् च सा न शब्देनाभिधेया, तथापि विकल्पप्रतिबिम्बः –

---

1 श्रुतचिन्ताभावनामयज्ञानोदयक्रमेण सर्वाकारज्ञानाधिगमात् पारं प्रकर्षपर्यन्तम् एति इति विगृह्य क्विपि सर्वापहारिलोपे अनित्यमागमशासनमित्यलुकि तत्पुरुषे, कृति बहुलमिति अलुकि च कर्मविभक्तेः कृते पारमिस्तद्भावः पारमिता । प्रज्ञाया धर्मप्रविचयलक्षणायाः पारमिता प्रज्ञापारमिता मुख्या । बुद्धो भगवान् मायोपमं ज्ञानमद्वयम् । –आलोकः, पृ.२८२ ।

तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन भाषितः ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन भाषितः ।

स्वस्वरूपबहिर्भूत इवारोप्यते[1] । स विकल्पोऽपि प्रकृत्या भ्रान्तः, अतस्तेन समारोपित आकारोऽपि मिथ्यैव । तस्मात् विकल्पप्रतिबिम्बभूता या प्रज्ञापारमिता तथागतेन देशिता, सा शब्देन व्युत्पाद्यमाना अपारमितैव, न तु तथागतस्य प्रज्ञा, सत्यसंवृत्या ज्ञेयस्य पारङ्गतत्वात्तस्याः, अन्यथा कथं भगवान् सर्वज्ञः स्यादिति । ततो भ्रान्तप्रतीतेः स विकल्पप्रतिबिम्बो नैव भेदेनावगम्यते, अतो ज्ञानस्वभावत्वेन सैव परमार्थप्रज्ञा **तथागतेन भाषिता** इत्युच्यते । तस्मात् तथाविधदेशनायां नैव विरोध इत्यभिप्रायः । अथवा या ताथागती प्रज्ञा प्रतीतिरूपत्वेन तथागतेन भाषिता सैव परमार्थतो न विद्यते, परमार्थतोऽपारङ्गतत्वात्तस्याः । **एव** इति शब्दस्तु **अपारमिता** इत्येतदनन्तरं द्रष्टव्यः ।

अनेन परमार्थत्वं प्रतिपाद्य तत्र योगसमापत्त्या कथं प्रतिपत्तव्यमिति निर्दिष्टम् । यथा प्रज्ञापारमिता विकल्पप्रतिबिम्बात्मिकैव बाह्यत्वेन समारोप्य भगवता भाषिता, तथैव सर्वे धर्मा अपि नान्यथा तथागतेन कथिता इति देशनार्थमाह– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इति । परमार्थतः सर्वधर्माणामसिद्धत्वात्, सिद्धेष्वपि स्वलक्षणस्यासाधारणत्वेन सङ्केतेन प्रज्ञपयितुमशक्यत्वात्, सामान्यलक्षणमेव तावत् प्रज्ञप्यमानत्वात्, स्वसामान्यलक्षणे व्यतिरिच्य अपरस्याभिधेयस्याभावात् परस्परपरिहारस्थितलक्षणत्वात्तयोः, अत एव च परमार्थतः 'नास्ति कश्चिद् धर्मो यस्तथागतेन भाषितः' इति विज्ञाय स्थविरः[2] सुभूतिः **नो हीदं भगवन्, नास्ति स कश्चिद् धर्मो यस्तथागतेन भाषितः** इत्यवोचत् । अनेन विक्षेपनिग्रहः गाम्भीर्यं च निर्दिष्टे भवतः ।

---

1 तम् आत्मादिनिर्भासं रूपादिनिर्भासं च तस्माद् विकल्पाद् बहिर्भूतमिवोपादाय आत्माद्युपचारो रूपादिधर्मोपचारश्च अनादिकालिकः प्रवर्तते, विनापि बाह्येनात्मना धर्मैश्च, तद्यथा तैमिरिकस्य केशोण्डुकाद्युपचार इति । –वि.मा.सि., पृ. ९८, स.सं.वि.वि.संस्करणम्, १९७२ ।

2 सदेवके लोके पूजादिभिः स्थाविर्यप्राप्तत्वात्स्थविरः । –आलोकः, पृ. २८१ ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते– यावत् त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजः कच्चित् तद्बहु भवेत् ? **सुभूतिराह– बहु भगवन्, बहु सुगत, पृथिवीरजो भवेत् । तत्कस्य हेतोः ?** यत्तद्भगवन् पृथिवीरजस्तथागतेन भाषितम्, **अरजस्तद् भगवंस्तथागतेन** भाषितम् । **तेनोच्यते पृथिवीरज इति । योऽप्यसौ लोकधातुस्तथागतेन** भाषितः, अधातुः **स तथागतेन** भाषितः । **तेनोच्यते लोकधातुरिति ।**

१०.सत्त्वभाजनलोकयोः पिण्डग्राहविशीर्णतायोग–स्थानम् :

एवं सर्वधर्मेषु नैरात्म्यं विस्तरेण दर्शितम्, तथापि ये तावद् आदिकर्मिकाः कथं सर्वधर्मेषु नैरात्म्यं भावयितव्यमिति चिन्तयन्ति, भावनिमित्तमभिभवितुमनुपायकौशलविसंयोगार्थं दशमस्थानधिकृत्याह– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्यादि । अत्र द्विविधेन उपायेन एकानेकस्वभाववियोगाधिगमात् सर्वधर्मनैरात्म्यं भावयितव्यमिति दर्श्यते । तत्र द्विविध उपायस्तावत् तनूकरणोपायः निराभासकरणोपायश्च । तत्र **यावत् पृथिवीरजो भवेत्** इत्यनेन एकस्वभाववियोगाधिगमात् तनूकरणोपायो निर्दिश्यते । न युज्यते ह्यस्य लोकधातोरेकत्वम्, आवृत्तानावृत्तादिविस्पष्टलक्षणयुक्तत्वाद्[1] । अनेकत्व–निराकरणाय तावत् परमाणोर्निराकरणमभ्युपेतव्यम् । अत एव परमाणुविभावनायां सत्यामेकत्वं प्रहीयत एवेति । बोधिसत्त्वैस्तावत् प्रायेण परीत्तालम्बन–मनसिकाराभावात् त्रिसाहस्रमहासाहस्रलोकधात्वालम्बनार्थं **त्रिसाहस्रमहासाहस्रे**[2] इत्याह । अनेन तावदौदार्यं परिदीपितम् ।

ते च परमाणवोऽपि यदि दिग्भागभेदेन भिन्नत्वादसिद्धा एव स्युः, (तर्हि) कथं तद् बहु रजः[3] ? इति प्रवादिनामाशयमभिलक्ष्य **कस्य**

---

1 'छायावृती कथं वा' । यद्येकैकस्य परमाणोर्दिग्भागभेदो न स्यात्, आदित्योदये कथमन्यत्र छाया भवति, अन्यत्र आतपः । न हि तस्यान्यः प्रदेशोऽस्ति यत्रातपो न स्यात् । –वि.मा.सि., पृ. ५२, स.सं.वि.वि.सं. १९७२ ।

2 द्र०– अभि.को. ३/७३–७४

3 दिग्भागभेदो यस्यास्ति तस्यैकत्वं न युज्यते । –विं.वि.मा.सि., १४का. : अपि च, द्रष्टव्यम्– बो.च.पं., ९वाँ परि. पृ. २३५ ।

हेतोः ? इत्यपृच्छत् । यत्तद् पृथिवीरजः इति तदुदतरत् । बहु तत् पृथिवीरजोऽपि यः परमाणुस्वभाव उक्तस्तदेकत्वग्रहणनिषेधात् तदरज एव । मायानिर्मितस्वभावत्वान्नास्ति परमाणुः परमार्थतः, बुद्ध्योपचरितरूपत्वात् । इदं तावदेकत्वग्रहणोपायमात्रम्, न तु परमार्थम्, **तेनोच्यते पृथिवीरज इति** । तद् युक्तं संवृतौ सत्त्वात्, अन्यथा परमार्थतस्तस्यासत्त्वाद् अनभिलाप्यत्वाच्च स्वलक्षणं नाभिलप्यत इत्येवमभिप्रायः । उद्भावनासंवृत्याऽपि[1] तस्य देशनं न युज्यते, तदीयान्यतरात्मस्वभावस्य अप्रतिभासमानत्वात् । अनेन तावद् अनेकस्वभावावियोगाधिगमोपायो निराभासकरणत्वेनोपदर्श्यते । एवञ्चान्तशः परमाणूनामपि युक्त्या प्रत्येकं परीक्ष्यमाणानां प्रतीतावेव सत्त्वात् प्रतीयते लोकधातूनां चानेकस्वभावावियुक्तत्वम्, ततश्च (तेषां) निःस्वभावत्वमवगम्यते ।

एवं खलु भाजनलोकस्य एकानेकस्वभावावियोगेन निःस्वभावत्वमृ एवमभिधाय सत्त्वलोकस्याप्यभिधानार्थं **योऽसौ लोकधातुः** इत्याह । अत्र लोकधातुना सत्त्वलोकोऽभिप्रेतः, इतरस्य पूर्वमेवोक्तत्वात् । **अधातुः सः** इति एकानेकस्वभावरहितः स इत्यभिप्रायः । एवं यो हि रूपस्कन्धः स भाजनलोकत्वेनाभिहितः, शेषाश्चत्वारः स्कन्धास्तु यथैकानेकस्वभावेन वियुक्तास्तथा पूर्वं विवेचिता एव । एवं सति परमार्थतो निःस्वभावत्वात् सर्वे धर्मा मायोपमा दृश्यन्ते योगिभिः ।

अनेन गाम्भीर्यमपि तावदुक्तम् । अर्थतः परमार्थे सत्त्वभाजनलोकीयभावाभिनिवेशो विपक्षत्वेन परिदीपितः । तत्प्रहाणार्थं च छन्दः प्रणिधानं च निर्दिष्टे । त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ इति निमित्तमात्राभिधानेन सर्वभावानां निःस्वभावत्वभावना सन्दर्शिता । **अरजस्तत्** इति **अधातुः** इत्याभ्यां परमार्थव्यवस्थापनया योगसमापत्त्या कथं प्रतिपत्तव्यमिति तत् परिदीपितम् । **तेनोच्यते लोकधातुः** इत्यनेनापवादान्तं परिहृत्य विक्षेपनिग्रहो निर्दिष्टः ।

---

1 प्रज्ञप्तिप्रतिपत्तितः । तथोद्भावनयोदारं..... । त्रिविधा हि संवृतिः– प्रज्ञप्तिसंवृतिः, प्रतिपत्तिसंवृतिरुद्भावनासंवृतिश्च । –म.वि.भा., १०का. पृ. २१, के.पी.जा.सं. पटना, १९६७ ; द्र.– आलोकः, पृ. २८८ ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, द्वात्रिंशन्महापुरुष–लक्षणैस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो द्रष्टव्यः ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । न द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणैस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो द्रष्टव्यः । तत्कस्य हेतोः? यानि हि तानि भगवन् द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानि तथागतेन भाषितानि, अलक्षणानि तानि भगवंस्तथागतेन भाषितानि । तेनोच्यन्ते द्वात्रिंशन्महापुरुषलक्षणानीति।

११.तथागतपूजासत्कार–स्थानम् :

सम्प्रति ये बोधिसत्त्वाः पुण्यसम्भारप्रतिपत्तयेऽत्यन्तमुपकारित्वाद् भगवन्तं पूजयेयुस्तेषां तस्य (भगवतः) अविनाशिकायो न पूरयति पुण्यसम्भारम्, सम्यङ्मनसिकाराप्रवृत्तत्वात् । तस्मात् तेषां सम्भारासञ्चयतो वियोगार्थं एकादशस्थानमधिकृत्याह– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्यादि । सामान्यतोऽत्रायं सङ्ग्रहार्थः, तथागतपूजासत्कारेषु लक्षणसम्पदा तथागतो न द्रष्टव्यः, अथ कथमिति चेत् ? परमार्थधर्मतायामित्युच्यते ।

इह अवशिष्टव्याख्यानं तु रूपकायाप्तिकामतास्थानानुरूपम् । न चात्र पुनरुक्तिरप्याशङ्कनीया । पूर्वं रूपकायाप्तिकामताप्रसङ्गे तु तद्व्युदासो दर्शितः,[1] अधुना तथागतपूजासत्कारप्रसङ्गे दर्शितत्वाद् भिन्न एव (रूपकायः) । अत्रार्थतः रूपकाये तथागताभिनिवेशं विपक्षत्वेन निर्दिश्य तत्प्रहाणार्थं छन्दः प्रणिधानं चापि प्रदर्शिते । लक्षणानि इत्युपलक्षणमात्रोक्त्या सकलो रूपकायः परिदीपितः । **अलक्षणानि** इति परमार्थव्यवस्थानम् । **तेन** इत्यादिना विक्षेपनिग्रहो निर्दिष्टः ।

१२.कायचित्तपरिश्रान्तौ वीर्यवैमुख्यानारम्भलाभ–सत्कारविरहितता :

एवं सर्वधर्माणां नैरात्म्यावगमोपाये निर्दिष्टेऽपि कायजीवितेष्वासज्य ये लाभसत्काराध्यवसिताः कौसीद्यलाभसत्कारपिण्डपातानुरक्ता तेषां तत्रानुरक्ति–विसंयोगार्थं द्वादशस्थानमधिकृत्याह– **यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा** इत्यादि ।

---

1 द्र0–, उपरि टीकायाम्, पृ. १२९

भगवानाह– यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा दिने दिने गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, एवं परित्यजन् गङ्गानदीवालुकासमान् कल्पांस्तानात्मभावान् परित्यजेत्, यश्च इतो धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत् संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् ।

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिर्धर्मवेगेनाश्रूणि प्रामुञ्चत् । सोऽश्रूणि प्रमृज्य भगवन्तमेतदवोचत्– आश्चर्यं भगवन्, परमाश्चर्यं सुगत, यावदयं धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितोऽग्रयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय, श्रेष्ठयानसंप्रस्थितानामर्थाय, यतो मे भगवन्, ज्ञानम् उत्पन्नम् । न मया भगवन्, जात्वेवंरूपो धर्मपर्यायः श्रुतपूर्वः ।

अनेन चासारेऽनेकशतसहस्रदुःखैकस्थानतुच्छात्मभावे तस्मिन् स्निह्यन् एतावच्छरीरपरित्यागेनापि यत्पुण्यं न प्राप्तम्, तदन्तरायकरत्वात्तस्मिन् कायजीविते निरपेक्षचित्ततया सर्वात्मनाऽस्मिन् (धर्मपर्याये) योगः करणीय इति परिदीपितम् । अनेनार्थतः कौसीद्यादयो विपक्षत्वेन दर्शिताः । तत्प्रहाणाय सद्धर्मसमादानाय च छन्दः प्रणिधानञ्चापि निर्दिष्टे । **इतो धर्मपर्यायात्** इत्युपलक्षणमात्रोक्त्या समस्तमहायानश्रवणादीनि आबध्यन्ते । **बहुतरं पुण्यम्** इत्यनेन औदार्यमुक्तम् ।

धर्मवेगेन इति धर्मश्रद्धाबलेनेत्यर्थः । **आर्यसुभूतिः अश्रूणि प्रामुञ्चत्** तदपि भगवतोऽधिष्ठानेनान्येषु कुसीदेषु जनेषु अद्भुतमहायानधर्मस्याभिधानेन परमश्रद्धोत्पादार्थे द्रष्टव्यम् । तस्माद् हस्तेन **अश्रूणि प्रमृज्य भगवन्तमेतदवोचत् आश्चर्यं भगवन्, यावदयं धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितः** इत्याह । **यावद्** इति कारित्रविशेषः[1] । यावता प्रकारेण देशनार्हास्तान् बोधिसत्त्वानुपदिशन्त्विति वाक्यार्थः ।

कस्मादित्याकाङ्क्षायां **यतो मे ज्ञानमुत्पन्नम्** इत्यकथयत् । **यतः** इत्यार्यसत्यगोचरज्ञानोत्पादमारभ्य एतत्पर्यन्तं धर्मपर्यायस्य परमपुण्यफलस्य यथोक्ता देशना श्रावक–प्रत्येकबुद्धानामगोचरा नैवं श्रुतपूर्वेत्यर्थः । एतेन –

---

1 अयं पाठः पेकिंग–नरथङ् संस्करणानुसारम्, दे.गे संस्करणे तु "अकारित्रविशेषः" ।

परमेण ते भगवन्, आश्चर्येण समन्वागता बोधिसत्त्वा भविष्यन्ति, ये इह सूत्रे भाष्यमाणे श्रुत्वा भूतसंज्ञामुत्पादयिष्यन्ति । तत्कस्य हेतोः ? या चैषा भगवन् भूतसंज्ञा, सैव अभूतसंज्ञा । तस्मात् तथागतो भाषते भूतसंज्ञा भूतसंज्ञेति ।

दौर्लभ्यं प्रोक्तम् । एवं विशिष्टं पुण्यं श्रुत्वा येषां वीर्यमारभ्य प्रवृत्तानामस्मिन् धर्मे यथारुतसंज्ञा भवति तेषां तद्दोषपरिजिहीर्षया **परमेणाश्चर्येण** इत्यवोचत् । विपुलपुण्यान्युत्पादयतोऽधमपुरुषस्य तादृग्दुष्करश्रद्धाधिमुक्तितोऽत्यन्तगम्भीर–पुद्गल–धर्मनैरात्म्याधिमुक्तितश्च ममेव[1] पुद्गलनैरात्म्यमात्रशुद्धज्ञानेन, परमेण ते आश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति । **भूतसंज्ञाम्** इत्यविपरीतार्थसंज्ञाम्, न तु शब्दाभिनिवेशेनेदं भूतत्वमिति संज्ञा । एवमत्र परमार्थमभिप्रेत्य सर्वधर्मनिःस्वभावत्वं निर्दिष्टम्, न तु संवृतिम्, निःस्वभावताया अभावात्तत्र । तस्मान्न दर्शनादिना विरोध इत्यभिप्रायः ।

ननु भूतसंज्ञायां सत्यां, संज्ञाया अपि सत्त्वं परमार्थतः स्यात्, असत्सु च संज्ञेयेषु संज्ञाया अप्यभावः प्रसज्येत, तस्मात् कथं परमार्थतः सर्वधर्मनिःस्वभावत्वं सिध्येदित्युपालम्भं विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यवोचत् । **या चैषा भगवन्, भूतसंज्ञा** इत्युदतारत् । संज्ञानाम न काचन, एकानेकस्वभावेन वियोगात्, परमार्थतः सा असंज्ञैव । अत एव नोच्यते भूतसंज्ञेयं भूतसंज्ञात्वेनेति दर्शितम्, यतो ह्यविचाररमणीयमात्रतः विद्यते तस्मात् तां **तथागतो भाषते भूतसंज्ञा**, अन्यथा सर्वथाऽभावान्न भाषेत । ततः परमार्थव्यवस्थायां कथं योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यम्, कथं च विक्षेपो निग्रहीतव्य इत्युभयं दर्शितं गाम्भीर्यञ्चापि निगदितम्, अध्यारोपापवादान्तावपि परिहृतौ ।

तेषु कुसीदेष्वेवाश्चर्योत्पादनार्थम् **न मम भगवन्, आश्चर्यं यदहमिमं धर्मपर्यायं भाष्यमाणमवकल्पयामि, अधिमुच्ये, येऽपि ते भगवन्, सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे –**

---

1 सुभूति इव अयमर्थः ।

न मम भगवन्, आश्चर्यं[1] यदहमिमं धर्मपर्यायं भाष्यमाणमवकल्पयामि अधिमुच्ये । येऽपि ते भगवन्, सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, ये इमं भगवन्, धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ते परमाश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति ।

समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां ये इमं भगवन्, धर्मपर्यायम् उद्ग्रहीष्यन्ति, धारयिष्यन्ति, पर्यवाप्स्यन्ति, ते परमाश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति इत्याह ।

अत्रायं सामान्येन समासार्थः – अनागते सद्धर्मविप्रलोपकाले ये बोधिसत्त्वा इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यन्ति, न ते पुद्गलादिभिर्गृहीता भविष्यन्ति, मय्यप्येवं[2] सम्भावनायां सद्धर्मोत्थानकालेऽपि युष्माकमेतादृशप्रतिपत्त्यभावे इदमत्यन्तं लज्जास्थानं तत् स्यादित्युच्यते । तत्र 'अहम्' इति पुद्गलनैरात्म्यं बोध्यते, **इमं** इत्यनेन पुद्गलधर्मनैरात्म्यं प्रकाश्यते, **भाष्यमाणम्** इति तु साक्षात् प्रकाश्यमानं भगवता, **अवकल्पयामि** इति प्रसादाकारः प्रसन्नता संदर्श्यते, **अधिमुच्ये** इति सम्प्रत्ययश्च, **ते सत्त्वाः** इत्यनेन भगवन्, अनागते कल्पे भाविनः । अत्रोद्ग्रहीष्यन्तीत्यादीनि यानि पदानि तानि पूर्वमेवोक्तानि ।

तच्चैवं निरुच्यते– पुद्गलनैरात्म्यमात्रमवगन्तुर्मम भगवतः सकाशात् साक्षात् श्रवणबलेन यद्धि नैरात्म्यद्वयप्रतिपादकेऽस्मिन् धर्मे प्रसादसम्प्रत्ययमात्रं जातं तन्नैवाश्चर्यम् । ये भगवन् (तेषु) कल्पेषु अस्मिन् (धर्मे) धारणादिक्रमेण ईदृशं धर्मपर्यायमधिगम्य पर्यवाप्स्यन्ति ते परमाश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्ति । भगवन्, (तेषु) कल्पेषु बहुलतया महायानविप्रकृष्टा भवन्ति, तेषु

---

1 जोशीसंस्करणे "दुष्करम्" इति पाठः किञ्च वैद्यभोटसंस्करणयोश्च "आश्चर्यम्" पाठः । अत्र टीकामुसारं "आश्चर्यम्" पाठ एव समीचीनोऽस्ति ।

2 मयि इति सुभूतिः ।

अपि तु खलु पुनर्भगवन् न तेषामात्मसंज्ञा प्रवर्तिष्यते, न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्गलसंज्ञा प्रवर्तिष्यते, नापि तेषां काचित्संज्ञा नासंज्ञा प्रवर्तते । तत्कस्य हेतोः ? या सा भगवन्, चात्मसंज्ञा, सैवासंज्ञा । या सत्त्वसंज्ञा जीवसंज्ञा पुद्गलसंज्ञा, सैवासंज्ञा । तत्कस्य हेतोः ? सर्वसंज्ञापगता हि बुद्धा भगवन्तः ।

श्रद्धोत्पादस्त्वतिदुर्लभ इत्यभिप्रायः ।

एतेन कौसीद्यं प्रहाय सद्धर्मग्रहणादौ छन्देन प्रणिधानेन च स्थातव्यमित्यादर्शितम् । न केवलं तेषु आगमयोग एवापितु (तेषु) प्रतिपत्तिसम्पदमपि दर्शयितुम् **अपि तु खलु पुनर्भगवन्** इत्यवोचत् । आत्मा इत्यादिवचनम् तूपलक्षणम्, अतस्तेषां धर्मसंज्ञा (अपि) न प्रवर्तिष्यते, द्वयोर्नैरात्म्ययोर्युगपदधिगमात् ।

यद्यनात्मादिकं सत् तदा संज्ञापि तत्र नियमेन प्रवर्तयेदिति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इति पृष्ट्वा **आत्मसंज्ञा** इत्युदतारीत् । यथात्मेत्याद्युक्तस्तथा अयमहमित्यप्यात्मसंज्ञा या सर्वजनप्रसिद्धा, तस्या अपि परीक्षाऽक्षमत्वादकिञ्चनत्वे सति आत्माद्यनुभवाभावादसत्याः का कथा । अनेन तावद् योगसमापत्तिः निर्दिष्टा ।

ननु चासत्त्वे सत्यात्मादेस्तद्विपर्ययेण नात्मसंज्ञा प्रवर्तिष्यत इति कुत इत्याभ्यन्तरोत्थितं प्रश्नं विचार्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यवोचत् । **सर्वसंज्ञापगता हि बुद्धा भगवन्तः**[1] इत्युदतरत् । अत्रायमर्थः – समस्तभावानां यथावत्तत्त्वाधिगमेन 'बुद्धा भगवन्तः' इत्युच्यते । परमार्थतः कस्यापि संज्ञेयस्याभावात्, न कुत्रापि ते संज्ञा प्रवर्तते, अन्यथा विपर्यासः स्यात् । बोधिसत्त्वास्तु बुद्धानुशिक्षामनुवर्तन्ते, अन्यथा कथं तत्पदं प्राप्नुयुः, तस्मात् बुद्धैर्भगवद्भिर्यथा सर्वसंज्ञापगतत्वं शिक्षितं तथा बोधिसत्त्वैरपि शिक्षितव्यम् । तस्माद् ये बोधिसत्त्वास्तस्यामनुशिक्षन्ते तेषामात्मादिसंज्ञा नियमतो न प्रवर्तते ।

---

1 सर्वकल्पविकल्पप्रहीणो हि तथागतः । –अ.प्र., पृ. १७७ ; प्रज्ञापारमिताज्ञानमद्वयं सा तथागतः । –प्र.पि. १का. ; विधूतकल्पनाजालगम्भीरोदारमूर्त्तये । –प्र.वा. १/१ ।

एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– एवमेतत् सुभूते, एवमेतत् । परमाश्चर्यसमन्वागतास्ते सत्त्वा भविष्यन्ति, ये इह सुभूते, सूत्रे भाष्यमाणे नो त्रसिष्यन्ति न संत्रसिष्यन्ति न संत्रासमापत्स्यन्ते । तत्कस्य हेतोः ? परमपारमितेयं सुभूते, तथागतेन भाषिता यदुतापारमिता । यां च सुभूते, तथागतः परमपारमितां भाषते, तामपरिमाणा अपि बुद्धा भगवन्तो भाषन्ते । तेनोच्यते परमपारमितेति ।

एवमेतत्' इति विनेयानां निश्चयापादनार्थं स्वयमभ्युपगम्य भगवता द्विरुक्तम् । इतः पूर्वमनारब्धवीर्यानधिकृत्याभिहितम् । सम्प्रति पुद्गला धर्मगाम्भीर्यं श्रुत्वा त्रस्यन्ति । अतः प्रथमतरमनारब्धवीर्याणां तेषाम् अनारब्धवीर्यत्वापनयनार्थं **ये सत्त्वाः** इत्याद्याह । सन्त्रासे सति नारभन्ते वीर्यम्, श्रावकयानेऽस्मिन् भगवता धर्ममात्रमिदं पुद्गलासत्त्वमित्युक्तम्, महायाने तु तदपि धर्ममात्रं मिथ्येति देशितम्, तस्माद् अनादिकालीन–सहजात्मदृष्टिसम्प्रयुक्तान्तःकरणा अभावितात्मानः पुद्गलनैरात्म्यं श्रुत्वा नास्त्यहमिति त्रसिष्यन्ति । तन्निषेधार्थं **नो त्रसिष्यन्ति** इति देशितम् । ये धर्ममात्रेऽभिनिविष्टास्ते धर्मनैरात्म्यदेशनाश्रवणकाले सन्त्रसिष्यन्ति, यद् धर्ममात्रं तस्याप्यसत्त्वे 'अहो ! न मया भाव्यम्' इति मत्वा दशदिगवलोकनेनापि शरणाभावात् सन्त्रासे तदपाकरणाय **न सन्त्रसिष्यन्ति** इत्युद्दिष्टम् । चिन्ताकाले उभयाभावयोगस्याशक्यत्वात् सन्त्रसिष्यन्ति 'कथमस्माभिर्नैरात्म्यद्वयमधिगन्तव्यम्' इत्यादिमसन्त्रासापसारणार्थं **न सन्त्रासमापत्स्यन्ते** इत्युक्तम् ।

अन्ये तावन्नैरात्म्यद्वयानवबोधाद् यो हि त्रासो मृदु–मध्याधिमात्रात्मकः स एभिस्त्रिभिः पदैः यथाक्रममुदीरित इत्येवं मन्यन्ते, अपरे तु त्रिविधस्त्रासः श्रवण–मनन–भावनाकाले भवतीत्यभ्युपगच्छन्ति । सम्प्रति लाभसत्कारेषु वीतरागत्वात् 'ते परमाश्चर्येण समन्वागता भविष्यन्तीति ।' श्रोतुकामानां हिताय स्वयं पूर्वं प्रश्नमुत्थाप्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यवोचत् । **परमपारमितेयं** इत्युक्तम् । प्रज्ञापारमितेयं बोधेरासान्नहेतुः । अस्या अभावेन दानादि–पारमितानामभावात् सर्वपारमितासु श्रेष्ठा । न केवलं मयैवेयं परमा प्रोक्ता,

अपि तु खलु पुनः सुभूते, या तथागतस्य क्षान्तिपारमिता, सैव अपारमिता । तत्कस्य हेतोः ? यदा मे सुभूते, कलिंगराजा अङ्गप्रत्यङ्गमांसान्यच्छेत्सीत्, नासीन्मे तस्मिन् समये आत्मसंज्ञा वा सत्त्वसंज्ञा वा जीवसंज्ञा वा पुद्गलसंज्ञा वा, नापि मे काचित्संज्ञा वा असंज्ञा वा बभूव । तत्कस्य हेतोः ? सचेन्मे सुभूते, तस्मिन् समये आत्मसंज्ञा अभविष्यत्, व्यापादसंज्ञापि मे तस्मिन् समयेऽभविष्यत् । सचेत्सत्त्वसंज्ञा जावसंज्ञा पुद्गलसंज्ञाभविष्यत्,

---

अपि तु सर्वबुद्धैरपीयं परमेत्युक्तेति दर्शनार्थं **यां च परमपारमितां** इति निगदितम् ।

अनेन 'एकबुद्धेन देशितमपि अविपरीतार्थत्वेन गृह्यते सर्वबुद्धैकाभिप्रेतत्वे खलु किमुच्यताम्' इत्येवं दीपितम् । (यदि) अस्माभिः सर्वैः परमा संसाधिता स्यात्, कथं न (वयं) परमेणाश्चर्येण समन्वागता भविष्यामः ? अनेन परमत्वदर्शनेन ह्रियः द्वितीयं स्थानं निर्दिश्यते, तथा हि– धर्मोऽयं (एतावान्) श्रेष्ठस्तथापि त्वं यल्लाभसत्काराध्यवसितः प्रमादेन स्थितस्तदतीव लज्जाजनकमि ुच्यते । अनेन चित्तप्रग्रहः सन्दर्शितः ।

१३.दुःखाधिवासन–स्थानम् :

एवं ह्रीस्थाने शतेऽपि ये दुःखेऽक्षान्त्या वीर्यातिशयमारब्धुं नोत्सहन्ते, तेषां दुःखाक्षान्तेर्व्‍ गमार्थं त्रयोदशस्थानमधिकृत्याह **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्यादि । ।कमत्र क्षान्तिः ? केन लक्षणेन सा क्षान्तिर्ज्ञायते ? तस्याः य आकारः, यथा वाऽऽकारः, यश्चाक्षान्तेः प्रतिपक्षः सोऽनेन स्थानेन दर्श्यते । कीदृशी क्षान्तिरिति चेत् ? सर्वधर्मानुपलम्भस्वभावः, अतः **या तथागतस्य क्षान्तिपारमिता सैव अपारमिता** इत्युक्तम् । परमार्थतः का क्षान्तिः,[1] येन क्षान्तिः, यत्र क्षान्तिः, यश्च क्षम्यः, या च क्षान्तिः, तेषां सर्वेषामनुपलम्भात्

---

1 न च द्वेषसमं पापं न च क्षान्तिसमं तपः ।
तस्मात्क्षान्तिं प्रयत्नेन भावयेद्विविधैर्नयैः ॥ – बो.च. ६/२ ।

व्यापादसंज्ञापि मे तस्मिन् समयेऽभविष्यत् । तत्कस्य हेतोः ? अभिजानाम्यहं सुभूते, अतीतेऽध्वनि पञ्चजातिशतानि यदहं क्षान्तिवादी ऋषिरभूवम् । तत्रापि मे नात्मसंज्ञा बभूव न सत्त्वसंज्ञा, न जीवसंज्ञा, न पुद्गलसंज्ञा बभूव ।

सैव अपारमिता । एवं परमार्थतोऽनुत्पन्नत्वात् नास्ति तत्र पारं गतेत्यभिसन्धिः । अनेन तस्याः क्षान्तेः स्वभावेनानुत्पन्नत्वं गाम्भीर्यं चापि दर्शितम् ।

एवं सर्वधर्मानुपलम्भमनसिकारेण कुतः बोधिसत्त्वानां क्षान्तिरिति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इति ज्ञापकहेतौ पृष्टे **यदा सुभूते** इत्याद्युत्तरमाह । अङ्गानि हस्तपादादीनि, प्रत्यङ्गानि अङ्गुल्यादीनि । **नापि मे काचित्संज्ञा** इति परदेहसंज्ञा, शस्त्रसंज्ञा, छेदसंज्ञा, परसंज्ञा, क्षान्तिसंज्ञादयश्च । अनेन सर्वधर्मानुपलम्भोऽभिहितः ।

ननु असत्याञ्च कस्याञ्चित् संज्ञायां मूर्च्छावस्थावद् चित्ताभावो भविष्यतीति चेत् ? तत्र **नापि असंज्ञा वा बभूव** इत्याह । तस्मिन् काले सर्वधर्मनैरात्म्यावबोधकं योगिज्ञानं तथ्यसंवृतिस्वभावमभिप्रेतम् । तच्च कथमिति चित्तगतं प्रश्नं विकल्प्य स्वयं **तत्कस्य हेतोः ?** इत्युक्त्वा **सचेत् सुभूते** इत्युदतरत् । **व्यापादसंज्ञापि** अस्यायमभिप्रायः यत्र आत्मसंज्ञा, तत्र नूनं तन्मात्रेणात्मस्नेहो जायते । एवमात्मस्नेहसम्प्रयोगेऽवश्यं स्व-परविकल्पौ जायेते । तेनैवं य आत्मोपकारित्वेनोपादत्तास्तेष्वात्मीयत्वं परिकल्प्यते, इतरेषु च परत्वं कल्प्यते । अत एवात्मानुरूपा प्रवृत्तिः । तत्रात्मनि आत्मीयेषु च प्रवृत्तौ अनुरागः, तद्विपरीतेषु च द्वेषः । ताभ्यां सम्बद्धः समस्तो दोषराशिः सम्भवति । अत एवोक्तम्[1] :

आत्मनि सति परसंज्ञा स्व-परविभागात् परिग्रहद्वेषौ ।
अनयोः सम्प्रतिबद्धाः सर्वे दोषाः प्रजायन्ते ॥ इति ॥

यत्र व्यापादादिदोषौघस्तत्र कथं क्षान्तिवादीति प्रसेत्स्यति, येन क्षान्तिबलेन कलिङ्गराजा एव सत्त्वः नरकं गमिष्यतीत्यभिप्रेतम् । अनेन कृतापकारेऽपि

---

1 प्र.वा., १/२२१

तस्मात्तर्हि सुभूते, बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन सर्वसंज्ञा विवर्जयित्वा अनुत्तरायां सम्यक्संबोधौ चित्तमुत्पादयितव्यम् । न रूपप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्, न शब्दगन्धरसस्प्रष्टव्य- धर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्, न धर्मप्रतिष्ठितं चित्तम् उत्पादयितव्यम्, नाधर्मप्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम्, न क्वचित् प्रतिष्ठितं चित्तमुत्पादयितव्यम् ।

सति निर्विकारतया नियतं व्यापादादिसम्भवाभावतया आत्मादिसंज्ञाव्यपगमहेतुतया च ईदृश्याः क्षान्तेर्ज्ञानमादर्शितम् ।

अनेनैव च त्रिविधाः क्षान्तयोऽपि तावन्निर्दिश्यन्ते[1] । अत्र **कलिङ्गराजा** इत्यनेन अपकारमर्षणक्षान्तिः परिदीपिता, **अङ्ग-प्रत्यङ्ग** इत्यनेन दुःखाधिवासनक्षान्तिः **मे तस्मिन् समये** इत्यादिना च धर्मनिध्यानक्षान्तिः । अनेन धर्मपुद्गलविकल्पयोर्विपक्षतया निर्देशेन विनेयास्तत्प्रहाणे यथोक्तक्षान्त्युत्पादे सम्यग्ग्रहणे चावतरन्ति । तदेवम्, विनेयजनाः 'यदा भगवानेव बोध्यर्थमेवंविधां परां क्षान्तिं भावितवान्, तत्कथमस्माभिर्न भावनीया, दुष्करकर्मण्यननुष्ठिते दुर्लभपदं नाधिगम्यते' इति विचारयन्ति । ततस्ते विनेयास्तस्यां प्रोत्साह्यन्ते । अङ्ग प्रत्यङ्गेति निमित्तमात्राभिधानेन सर्वदुःखाधिवासनक्षान्तिः समुदीरिता ।

सम्प्रति यदाकारा सा क्षान्तिः, तथा दर्शयितुम्- **अभिजानाम्यहं सुभूते** इत्याह । तदपि **कलिङ्गराजा मे अङ्गप्रत्यङ्गमांसान्यच्छेत्सीत्** इत्येतत्प्रसङ्गप्राप्तम्, साक्षान्नोक्तम् । सा च क्षान्तिः द्विविधा दीपिता- निरन्तरपरापकारदुःखविषयिका परापकारासह्यदुःखविषयिका च । तत्र निरन्तरदुःखविषयस्तु यत् **पञ्चजातिशतानि** इति । एतेन अस्यौदार्यम् अभिहितम् । असह्यदुःखविषयस्तु यत् अङ्ग-प्रत्यङ्गानीति कथितम् ।

त्रिविधं (हि) दुःखं तावद् असह्यं वस्तु, तद्यथा- संसारदुःखं सत्त्वप्रतिकूलप्रवृत्तिदुःखं परिभोगवैकल्यदुःखं च । तत्र प्रथमस्यासह्यवस्तुनः प्रतिपक्षत्वेन **तस्मात्तर्हि** इत्युक्तम् । समस्तेनानेन असह्यप्रहाणात् बोधौ छन्देन

---

1 धर्मनिध्यानक्षान्तिः, दुःखाधिवासनाक्षान्तिः, परापकारधर्मक्षान्तिः । -ध.सं. (म.सू.सं. पृ. ३३७) ति.सं.संस्करणम् १९८८ ; द्र0- बो.च.पं., ६/८ पृ. ८३, १९६० मि.सं. ।

तत्कस्य हेतोः ? यत्प्रतिष्ठितं तदेवाप्रतिष्ठितम् । तस्मादेव तथागतो भाषते- अप्रतिष्ठितेन बोधिसत्त्वेन दानं दातव्यम् । न रूपशब्दगन्धरसस्पर्शधर्मप्रतिष्ठितेन दानं दातव्यम् ।

प्रणिधानेन च स्थातव्यमिति दर्शितम् । बोधिचित्तोत्पादे सति न केनापि संसारदुःखेन स्पृष्टो भविष्यतीत्यभिप्रायः । बोधिचित्तोत्पादेऽपि आत्माभिनिविष्टतया त्रिविधदुःखसंज्ञाभिः सन्त्रस्य कदाचित् पुनर्नोत्पादः स्यादतः **सर्वसंज्ञा विवर्जयित्वा** इत्याह । सर्वसंज्ञाश्चात्र आत्मादिसंज्ञाः त्रिविधदुःखसंज्ञाश्च । रूपाद्यभिनिवेशेन श्रावकादिवत् संसारं परिकल्प्य तद्दुःखसन्तप्ताः न कदाचिदपि बोधिचित्तमुत्पादयन्ति, अतः **न रूपप्रतिष्ठितम्** इत्याद्युक्तम् ।

रूपादिषु सत्ताभिनिवेशो हि तत्र प्रतिष्ठित इति पूर्ववदत्राप्युक्तः, न चात्र पुनरुक्तिरपि । अनेन असह्यवस्तुनः प्रतिपक्षोऽभिहितः । पूर्वेण तु पारमितायां योगः करणीयः । अत्र विनेयैः **नाधर्मप्रतिष्ठितम्** इति शेषः । अनेन तावदभावेऽभिनिवेशः प्रतिषिध्यते । **न क्वचित् प्रतिष्ठितम्** इत्यनेन रूपादिषु नाममात्रसत्ताभिनिवेशः प्रतिषिध्यते, योगसमापत्तिश्चोदीरिता भवति ।

किं रूपादीनां सतां तत्सत्त्वस्य प्रहाणार्थम्, यदुत असतां वितथाभिनिवेशस्य प्रहाणार्थं प्रतिषेधः क्रियते ? इति चित्तोत्थितं प्रश्नं वितर्क्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यपृच्छत् । उत्तरार्थमाह- **यत्प्रतिष्ठितं तदेवाप्रतिष्ठितम्** इति । अत्रायमर्थः- अनादिकालतस्तच्चित्तं रूपादिषु भावाभिनिवेशबलेन रूपादौ प्रतिष्ठितम्, यः खलु सत्याभिनिवेशः, स तस्य रूपादिवस्तुनोऽभावात् परमार्थतो न प्रतिष्ठितः । **तस्मादेव** इत्यनेनोपसंहारेणात्र द्वितीये पक्षे प्रतिष्ठितत्वमेव दर्शितं भवति । दानशब्देनात्रापि पूर्ववत् षट् पारमिता एवाभिप्रेताः ।

द्वितीयासह्यवस्तुनः प्रतिपक्षत्वेन **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । समस्तेनानेन बोधिसत्त्वा येषामर्थायातिदुष्करपारमिता- योगमारब्धुमुत्सहन्ते, तेऽपि सत्त्वा यदि परमार्थतो न स्युः, सत्त्वसंज्ञाऽपि परमार्थतो न स्यात्, कथं ते तथाविधेषु मिथ्याप्रवृत्तेषु सत्त्वेषु खिन्ना भवेयुः

अपि तु खलु पुनः सुभूते, बोधिसत्त्वेन एवंरूपो दानपरित्यागः कर्त्तव्यः सर्वसत्त्वानामर्थाय । तत्कस्य हेतोः ? या चैषा सुभूते, सत्त्वसंज्ञा, सैव असंज्ञा । य एवं ते सर्वसत्त्वाः तथागतेन भाषितास्त एव असत्त्वाः ।

इत्यादर्शितम् । तत्र सत्त्वं संज्ञां च प्रतिषिध्य नैरात्म्यद्वयमुदीरितम् । **सर्वसत्त्वानामर्थाय** इत्यनेनात्रौदार्यं दर्शितम् । अवशिष्टेन सकलेन गाम्भीर्यं सन्दर्शितम् ।

एवं तावद् युक्त्या क्षान्तिर्युज्यत इति निर्दिश्य साम्प्रतं तथागते सम्प्रत्ययोऽपि युज्यत इति निरूपयन् **भूतवादी** इत्याद्याह । प्रथमम् उद्देशः, शेषं विधेयम् । अथवा सत्यचतुष्टयमुद्देशः, क्रमशः अभिसम्बध्यते । अथवा **भूतवादी** इति साध्यम्, **तथागतः** इति ज्ञापकनिर्देशः[1] । यथाऽन्ये बुद्धा भगवन्तः क्लेशज्ञेयावरणानि प्रहीणवन्तस्तथैव तथागतोऽप्ययं गतः प्राप्तः, तेन तथागतः[2] । तस्मादविपर्यस्तत्वेन भूतवादीति, विपरीतदेशनायाश्च हेतोरावरणस्याभावः सिध्यति हेत्वनुपलब्धेः ।

तथागत एवायमिति कथं सिध्यतीत्याह– **सत्यवादी** इति । 'सत्यम्' चतुरार्यसत्यलक्षणम्, तस्य यो वादी, स तथागत इति निर्धार्यते ।[3] अत्यन्तपरोक्षार्थस्तु सर्वथा सम्यक् कथयितुं न शक्यते, यथोक्तम्–[4]

परोक्षोपेयतद्धेतोस्तदाख्यानं हि दुष्करम् ।

---

1 तथागतो कालवादी, भूतवादी, अत्थवादी, धम्मवादी, विनयवादी, तस्मा तथागतो ति वुच्चति । –दीघनिकाय, जिल्द ३, पृ. १०४ ; द्र. –अ.प्र., ३१अध्या. पृ. २५३

2 द्र0– प्रस्तुता टीका, उपोद्घात–प्रसङ्गे ।

3 आर्यसत्यानां च अभावात् सद्धर्मोऽपि न सम्भवति । सतामार्याणां धर्मः सद्धर्मः । तत्र निरोधसत्यं फलधर्मः, मार्गसत्यं तु फलावतारधर्मः । एष तावदधिगमधर्मः । तत्संप्रकाशिका देशना आगमधर्मः । सर्व एष आर्यसत्यानामभावे सति नास्तीति ।
अभावाच्चार्यसत्यानां सद्धर्मोऽपि न विद्यते ।
धर्मे चासति संघे च कथं बुद्धो भविष्यति ।।
–म.शा.वृ. २४/४, पृ. २१३, बौ.भा.सं. १९८३

4 प्र.वा. १/१३४ ।

तत्कस्य हेतोः ? भूतवादी सुभूते, तथागतः, सत्यवादी तथावादी अनन्यथावादी तथागतः, न वितथवादी तथागतः ।

अयं सत्यवादी सत्यं केन रूपेण जानातीत्याह– **तथावादी** इति । स वस्तुतत्त्वमविपरीततया यथावद् वदतीति तथावादी । स हेयोपादेयतत्त्वं सोपायं यथास्थितं तथैव भाषतेऽतः स कथं न सत्यवादी स्यादिति । एवंभूतेऽपि तद्देशितानि चत्वारि सत्यानि किं तथैव प्रतिष्ठितानीति ? इत्यत आह– **न वितथवादी** इति । यतोऽविपरीतप्रमाणोपपन्नानि, न प्रमाणबाधितानि उक्तान्यतः सत्यानीत्यर्थः । एतेन समग्रेण कार्यकारणेन भगवतः प्रामाण्यं साधितम् । अत एवोक्तम्–[1]

तायात् तत्त्वस्थिराशेषविशेषज्ञानसाधनम् ।

एकस्यापि भावस्वभावस्य परमार्थतोऽसिद्धत्वाद् एकमपि सत्यं तावद् दुःसाध्यम्, किमिति सत्यचतुष्टयमिति चतुःसत्याभिधानाच्च भूतवादीति ।

एवं भगवता 'मायोपमाः पञ्चस्कन्धाः'[2] इत्युक्ते सति कथं तेषां दुःखसत्यस्वभावत्वम्, दुःखस्यापि परमार्थतोऽनृतत्वात् तत्समुदयनिरोधयोरप्यसत्त्वमेव, अत्यन्ताभावभूते शशश्रृङ्गादौ तावत्तौ (समुदय–निरोधौ) न सम्भवतः । निरोधस्य त्वभावात् तत्प्रापको मार्गोऽपि नैव परमार्थतः, गम्याभावे नैव गमकोऽपि । **तथोक्तम्– 'बोधिं प्रतिष्ठाय एकस्यापि सत्यस्य सिद्धिर्न दृष्टा, किमिति चतुर्णाम् ?'** इति देशनावत् ।

एतत् प्रविचिन्त्य ये भूतवादिनि शब्दशोऽभिनिविष्टास्तेषामध्यारोपान्त-परिहारार्थम् **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । **न तत्र सत्यम्** इति परमार्थतः कस्यचिदपि स्वभावस्यासिद्धेः । **न मृषा** इत्यत्र सत्यव्यवच्छेदेन

---

1 प्र.वा. १/२८२ ।

2 तुलनीयम्– "यदपीदमुपादानं तत् स्वाभावान्न विद्यते ।" यद्यपि इदमुपादानं रूपवेदनासंज्ञासंस्कारविज्ञानाख्यं स्कन्धपञ्चकम्, तदपि स्वभावेन न विद्यते, प्रतीत्यसमुत्पन्नत्वात् । म.शा.वृ. २२/९ बौ.भा.प्र. ; अपि च– मायोपमास्ते देवपुत्राः सत्त्वाः, स्वप्नोपमास्ते देवपुत्राः सत्त्वाः । .... सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमा । –द्र०. म.शा.वृ. २२अध्या. पृ. १९५, बौ.भा.प्र., १९८३ ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, यस्तथागतेन धर्मोऽभिसंबुद्धो देशितो निध्यातो, न तत्र सत्यं न मृषा । तद्यथापि नाम सुभूते, पुरुषोऽन्धकारप्रविष्टो न किञ्चिदपि पश्येत्, एवं वस्तुपतितो बोधिसत्त्वो द्रष्टव्यो यो वस्तुपतितो दानं परित्यजति । तद्यथापि नाम सुभूते, चक्षुष्मान् पुरुषः प्रभातायां रात्रौ सूर्येऽभ्युद्गते नानाविधानि रूपाणि पश्येत्, एवमवस्तुपतितो बोधिसत्त्वो द्रष्टव्यो योऽवस्तुपतितो दानं परित्यजति ।

स्थितत्वात् तद्व्यवच्छेद्यत्वाभावाद् येन मृषात्वं भवेत् तन्मृषा । अथ वा **न सत्यम्** इति यथा मायोपमा मृषा ज्ञानरूपा । अविचाररमणीयमात्रतया स्थितत्वाद् **न मृषा** इति । अनेन तावद् अन्तद्वयप्रतिषेधेन मध्यमा प्रतिपद् एव निर्दिश्यते । श्रावकाणामात्माभिनिवेशस्य प्रहाणार्थं पुद्गलनैरात्म्यांशमात्रेण चत्वार्यार्यसत्यानि देशितानि, न तु सर्वेभ्य इत्यविरोधः ।

कायादिकमुपलभ्य तदर्थको दानं ददाति, अनुपलभ्य अतदर्थको वा, तयोः को विशेष इति यच्चिन्तनं तत् तृतीयस्यासह्यवस्तुनः प्रतिपक्षत्वेनाह **तद्यथापि नाम** इत्यादि । यः काय–भव–भोगात्मकवस्तुषु सुखमात्रत्वेनाभिनिविश्य (सत्यत्वेनैवाभिनिविश्य) तदर्थिकस्तत्र पतित्वा दानं ददाति, स अन्धकारप्रविष्टपुरुषसदृशः, सतोरपि चक्षुषोः वस्त्वर्थानुपलम्भेन हेयोपादेयार्थानभिज्ञतया विपर्यस्तार्थेषु समस्तदुःखस्थानेषु पतितो भवति । ततः बोधिसत्त्वा महासुखभोगात् प्रच्युता भविष्यन्ति । तद्वियोगेन श्रावकादिवत् दुःखसन्तप्ततया बोधेर्व्यावृता भविष्यन्ति ।

यो वस्त्वपतितो दानं ददाति, कायादिवस्त्वनुपलभ्य तदनर्थी भूत्वा दानं ददाति तत्तु **यथापि नाम चक्षुष्मान् पुरुषः नानाविधानि रूपाणि पश्येत्** दृष्ट्वा च हेयस्य हानम् उपादेयस्य चोपादानमिव । (अथ) तदपि असत्यरुणोदये[1] कदाचिन्न दृश्यत इति ? **सूर्येऽभ्युद्गते** इत्याह । सूर्येऽभ्युद्गतेऽपि अन्धकारपूर्णेषु गृहादिषु न पश्यतीति मत्वाऽऽह **प्रभातायाम्**

---

1 पेकिंग नरथङ् च संस्करणयोः "असत्यरुणोदये" पाठः प्राप्यते यः शुद्धः प्रतीयते दे.गे. संस्करणे तु "तदपि अरुणोदये" इति पाठः ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, ये कुलपुत्रा वा कलिदुहितरो वा इमं धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ज्ञातास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते तथागतेन । सर्वे ते सुभूते, सत्त्वा अप्रमेयमसंख्येयं पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति प्रतिग्रहीष्यन्ति ।

इति । प्रभातेति शब्दः अन्धकारद्योतनार्थमुक्तः तस्मान्निरन्धकारायां दिशायामित्यर्थः ।

तत्सामग्र्येऽपि योऽन्धः, स कदाचिदपि न पश्यतीत्याशङ्कायां **चक्षुष्मान्** इत्याह । **एवमवस्तुपतितो बोधिसत्त्वो द्रष्टव्यः,** सः अविद्यातामिस्रप्रबोधेन ज्ञानसूर्याभ्युद्गमेन च नानाविधानि ज्ञेयानि यथावत् सम्पश्यति, विपर्यस्तवस्तूनि समस्तदुःखस्थानानि हेयदुःखानि चापि मृषात्वात् परिवर्जयति, समस्तसुखस्थानस्यानुत्तरसम्यक्सम्बोधिलक्षणस्योपादेयस्योत्तमपदस्यापि कामनया तत्र प्रवर्तते ।

तस्माद् बोधिसत्त्वा महाभोगसम्पदनुप्राप्य अनुत्तरसुखेन कायं स्थिरीकृत्य बोधेरविनिवृत्ता भवन्तीत्यभिप्रायः, अत एव अविनिवृत्ता इति । पूर्वं त्वालम्बनमात्रेण तस्मिन् स्थितिरादर्शिता, अत्र तु आलम्बनपूर्वकं तस्मिन्ननुरागलक्षणे पतनम् । तस्मादत्र पतित इत्युक्तम्, पूर्वं तु प्रतिष्ठित इत्युक्तम् । अनेन सकलेन चित्तप्रग्रहः परिदीपितः ।

१४.ध्यानरसास्वादविरति-स्थानम् :

अनेन प्रकारेण क्षान्तिप्रवृत्ता अपि ये ध्यानरसमास्वादयन्तस्तत्रैवासक्ता ज्ञानसम्भारपारिपूरये हेतुभूतं महायानधर्ममनारब्धास्तेषां ज्ञानसम्भारवियोगपरिहारार्थं चतुर्दशस्थानमधिकृत्य **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । स्थानेनानेन ध्यानरसास्वादापगमाय पञ्चभिः प्रकारैः सद्धर्मं प्रति वीर्यार्थं गुणविशेषः परिदीपितः, (यथा)- १. तथागतानुभावः, २. विशिष्टपुण्यसञ्चयः, ३. धर्मतत्साधनयोः प्रशंसनम्, ४. देवादिभिः सत्कारः, ५. पापपरिशोधनं च ।

यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा पूर्वाह्णकालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, एवं मध्याह्ण-कालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, सायंकालसमये गङ्गानदीवालुकासमानात्मभावान् परित्यजेत्, अनेन पर्यायेण बहूनि कल्पकोटिनियुतशतसहस्राण्यात्मभावान् परित्यजेत्, यश्चेमं धर्मपर्यायं श्रुत्वा न प्रतिक्षिपेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्, कः पुनर्वादो यो लिखित्वा उद्ग्रहणीयाद्धारयेद्वाचयेत्पर्यवाप्नुयात्, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयेत् ।

तत्र तथागतानुभावस्तु **ज्ञातास्ते तथागतेन** इत्यादि यदाह । **उद्ग्रहीष्यन्ति** इत्यादिपदानां व्याख्यानं पूर्ववदेव । भगवान् हि सर्वं विजानातीति सर्वज्ञः द्रष्टा च । तत्र किं महद् आश्चर्यं तेष्वित्यन्वेषणायां पुण्यसञ्चयवैशिष्ट्यमादर्शयितुमाह **सर्वे ते सत्त्वाः** इति । अप्रमेयपुण्यस्कन्धानां प्रसवनाद् ज्ञातास्ते भाग्यवन्त इति वाक्यशेषः ।

किं च तावत् पुण्यस्कन्धस्य वैशिष्ट्यम्, येन (सः पुण्यस्कन्धः) अपरिमितो भवतीति विचिन्त्य विशिष्टपुण्यसंग्रहं दर्शयन् **यश्च खलु पुनः सुभूते ! स्त्री वा पुरुषो वा** इत्याद्याह ।

सूर्य-प्रभा-पृथ्वीजलाद्यवस्थाविशेषः **पूर्वाह्णः** । एवम्भूतेष्ववस्था-विशेषेष्वेव **कालः** इति प्रज्ञप्यते, न तु विशिष्टत्वेन परिकल्पित इवेति दर्शयितुं कालशब्दस्तत्सामान्याधिकरण्येन विशेष्यते । अन्यथैकात्म्याद् अयं पूर्वाह्ण इत्यादिभेदा न स्युः ।। विशेषणान्तरैर्भेदेऽभ्युपगते स एव विशेषः सूर्याद्यवस्थानां विशेषः पूर्वाह्णादिव्यवहारप्रज्ञप्तीनां च हेतुः स्यात्, अकिञ्चित्करत्वे किमदृष्टसामर्थ्येन कालेन प्रज्ञप्तेनेत्यभिप्रायः । न च स मन्दतीव्रबुद्ध्यादिलिङ्गवानपि युज्यते, मन्दादिबुद्धीनां तद्धेतुतः समुद्भवे क्रमेणोत्पत्तिविरोधाद्, एतच्च पूर्वं दर्शितमेव । बाधकप्रमाणस्यापि प्रागेवात्मदूषणप्रसङ्गे दर्शितत्वात् किमधिकेन ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, अचिन्त्योऽतुल्योऽयं धर्मपर्यायः । अयं च सुभूते, धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितोऽग्रयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय, श्रेष्ठयानसंप्रस्थितानां सत्त्वानामर्थाय । ये इमं धर्मपर्यायमुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ज्ञातास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धज्ञानेन, दृष्टास्ते सुभूते, तथागतेन बुद्धचक्षुषा, बुद्धास्ते तथागतेन । सर्वे ते सुभूते, सत्त्वा अप्रमेयेण पुण्यस्कन्धेन समन्वागता भविष्यन्ति ।

सामान्यजनैः राङ्केतवशेनोत्पन्नस्तथाविधः प्राणिनामवस्थाविशेषः **कालः** इति व्यवहारे प्रज्ञप्यते, न तु शब्दार्थसम्बन्धप्रज्ञप्तिवशेनेति दर्शयितुं **समये**[1] इति शब्देन विशेष्यते । कस्यचिदेकस्याप्यकथनेन यथोक्तदेशनाऽभिप्रायस्य प्रतिपादनाभावात् पदत्रयमुक्तम् । सङ्केतविषयत्वेन प्रज्ञापकं शब्दमारोप्य समानाधिकरण्यं कृतम् । ध्यानरसास्वादविरागायात्रेदमुक्तम् । पूर्वं देयस्य एवंविधस्य च कालस्यानिर्देशान्नैव तावत् पुनरुक्तिदोषः ।

अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयाद् अप्रमेयमसंख्येयम्[2] इत्यनेन औदार्यं परिदीप्यते । संख्या–द्रव्यकाल–विशेषैर्विशिष्टं दानोद्भूतं पुण्यमभिभूयते । एवं तावत् **गङ्गानदीबालुकासमान** इति संख्याविशेषं दर्शयति । **आत्मभावः** इति दुरवगाहो द्रव्यविशेषः । **कल्पकोटिनियुतशतसहस्राणि** इति कालविशेषः । सा च कल्पकोटिः नियुता, साऽपि शतसहस्रेति पदेन युक्ता ।

एतत् कथं ज्ञातव्यम् ? इति धर्मस्तुतिवैशिष्ट्यं दर्शयितुम् **अपि तु खलु सुभूते** इत्याद्याह । **अचिन्त्योऽयं धर्मपर्यायः** अत्यन्तगम्भीरः सर्वधर्माणां निस्वभावतालक्षणः तथागतैः प्रत्यात्मवेदनीयः, श्रावकादिभिरपरैश्चापि

---

1 तु०– समयाः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः । –अ.को., ३/३/१४९;
शपथाचारसिद्धान्तेषु तथा धियि ।
क्रियाकारे च निर्देशे संकेते कालभाषयोः ॥ –इति मेदिनी, १२०/१११ ।

2 प्रत्यक्षादिप्रमाणेन प्रमातुमशक्यत्वादप्रमेयाणाम् । एकत्वादिसंख्यारहितत्वेन असंख्येयानाम् । –आलोकः, पृ. ३३५, ३५१ ।

अचिन्त्येनातुल्येनामाप्येनापरिमाणेन पुण्यस्कन्धेन समन्वागता भविष्यन्ति । सर्वे ते सुभूते, सत्त्वाः समांशेन बोधिं धारयिष्यन्ति ।

चिन्तयितुमशक्यो ह्यत्र निर्दिष्टः । **अतुल्यः** इति अन्यत्र एवंविधस्य अदर्शनात्, एतत्तुल्यस्य विशिष्टस्य वाऽभावात्, तुल्यस्य अधिकस्य वाऽभावेन अचिन्त्यहेतुतोऽचिन्त्यमेव फलं सम्भवतीत्युक्तम् । कथं अतुल्य इति चिन्तायामाह **श्रेष्ठयानसम्प्रस्थितानाम्** इति । अतिशयेन पारं गतस्तु श्रेष्ठ इति । श्रावकादीनाम् **अयं धर्मपर्यायः** इत्युक्तम् । **अग्रयानम्** इत्यग्राणां यानं वा अग्रं चेदं यानमिति वा पदविग्रहः । ये तत्र सम्प्रस्थितास्ते तथोच्यन्ते । एवमेव श्रेष्ठयानसम्प्रस्थितानामित्यपि तत्समानमेव । तौ तावत् पर्यायौ ।[1] पर्यायदेशनाभिप्रायस्तु विनेयजनोपकारः, येन कतिपये भव्या भवन्ति ।

इतरयानान्यपेक्ष्य श्रेष्ठ इति केचित् । समस्तक्लेशज्ञेयावरणविशुद्ध्या वा श्रेष्ठः अथवा अग्रमिति परमम् । प्रत्येकबुद्धयानमपि श्रावकयानापेक्षया परमिति विचारणायामाह– **श्रेष्ठयानसम्प्रस्थितानाम्** इति । अत्यन्तं प्रशस्तगमनात् श्रेष्ठ इत्युक्तम् । श्रावकाद्यनेकयानेभ्योऽतिशयेन प्रशस्यत्वादत्र **श्रेष्ठः** इति शब्द प्रयुक्तः । तच्च महायानमित्येव ।[2] श्रावकादिनामभव्यत्वाद् धर्मदेशनेयं बोधिसत्त्वेभ्य एवोक्ता । तेन सिद्धोऽयं धर्मपर्यायोऽतुल्य इति । **तथागतेन भाषितः** इत्यन्येषामगोचरत्वात् । धर्मपर्यायोऽयम् इत्यादिभिः यथोक्तानर्थान् प्रसाध्य उपसंहृत्य च तत्प्रतिपत्तुं विशेषस्तुतिः सन्दर्शिता ।

यतो हि धर्मपर्यायोऽयमचिन्त्योऽप्रमेयश्च तस्माद् विपाकोऽप्यस्याचिन्त्य एव । ततः **ये इमं धर्मपर्यायं धारयिष्यन्ति** इत्यादि तु सिद्धमेवेत्यर्थः । **अप्रमेयम्** इत्युद्देशः, शेषस्तान्निर्देशः । तत्र **अचिन्त्यम्** इति चिन्ताविषयातिक्रान्तत्वेन अननुमेयत्वात् । **अतुल्यम्** इत्यप्रतिसमम् । **अमाप्यम्** इति सर्वसत्त्वप्रयोगेऽपि मापयितुमशक्यत्वात् । **अपरिमाणम्** इति

---

1 पर्यायवचनं किमर्थमिति चेत् उच्यते । तदा च आयत्यां च कस्यचित्कथंचिदर्थावबोधार्थम् । –आलोकः, पृ. ३५९ ।

2 द्र0– अ.प्र., पृ. ३, १२ ।

तत्कस्य हेतोः? न हि शक्यं सुभूते, अयं धर्मपर्यायो हीनाधिमुक्तिकैः सत्त्वैः श्रोतुम्, नात्मदृष्टिकैर्न सत्त्वदृष्टिकैर्न जीवदृष्टिकैर्न पुद्गलदृष्टिकैः । नाबोधिसत्त्वप्रतिज्ञैः सत्त्वैः शक्यमयं धर्मपर्यायः श्रोतुं वा उद्ग्रहीतुं वा धारयितुं वा वाचयितुं वा पर्यवाप्तुं वा । नेदं स्थानं विद्यते ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, यत्र पृथ्वीप्रदेशे इदं सूत्रं –

महद्भिर्देशादिभिरप्यपरिमाप्यत्वाद् आकाशतोप्यधिकम् । अथवा सर्वाण्यपीमानि पर्यायान्तर्गतानि । **सर्वे ते सुभूते, सत्त्वाः समांशेन बोधिं धारयिष्यन्ति** इति बोधिभारोद्वहनम् अंशोद्वहनसदृशम् । अनेन तावत् सकलेन ध्यानसुखास्वादं परित्यज्य ज्ञानसम्भारपारिपूरिहेतौ धर्मपरिग्रहणादौ छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति दर्शितम् ।

कस्मात् खलु श्रेष्ठयानसम्प्रस्थितेभ्यो भगवता भाषितो न त्वन्येभ्यः, किं खलु भगवत्यपि रागो द्वेषश्च इति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्याह, अतः **सुभूते हीनाधिमुक्तिकैः** इत्युदतरत् । अनेन खलु भगवति सर्वसत्त्वेषु एकसुतवद् वात्सल्यमिति नास्ति रागो द्वेषो वा । तथापि ये यदा भव्या भवन्ति तदा तेभ्यो देशयन्ति, न त्वन्येभ्यः । अन्यथा उपायानभिज्ञत्वान्नैव भवेद् भगवान् सर्वज्ञः इत्येवं दर्श्यते । हीनाधिमुक्तिकैरिति श्रावक-प्रत्येकबुद्धैः । **आत्मादिदृष्टिकैः** इति तैर्थिकैः । **नेदं स्थानं विद्यते** इति नास्ति तदर्थमवकाश इति ।

यच्छ्रावकैः प्रत्येकबुद्धैश्चापि श्रोतुं न शक्यते तत्कथं शक्यते पृथग्जनैः श्रोतुम् ? यत्तैर्न श्रोतुं शक्यं तत् कथं शक्यत उद्ग्रहीतुं वा पर्यवाप्तुं वा । अतस्तदसम्भवमित्यर्थः । अनेन तावद् योगसमापत्ताववतार्यते ।
यद्येवं कथं तावदार्यसुभूतिना धर्मपर्यायोऽयं श्रोतुं शक्यत इति चेद् ? भगवतोऽधिष्ठानेनेति नास्ति दोषः । सर्वप्रदेशेषु यस्मिन् पृथिवीप्रदेशे सूत्रमिदं भाष्यते स एवैकः पृथिवीप्रदेशोऽनुशंसनीय इति प्रतिपादयन् देवादिसत्कारवैशिष्ट्यं दर्शयितुम् **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्यवोचत् ।

प्रकाशयिष्यते, पूजनीयः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति सदेव-मानुषासुरस्य लोकस्य वन्दनीयः प्रदक्षिणीयश्च स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति, चैत्यभूतः स पृथिवीप्रदेशो भविष्यति ।

अपि तु ये ते सुभूते, कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, योनिशश्च मनसि करिष्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, ते परिभूता भविष्यन्ति, सुपरिभूताश्च भविष्यन्ति । तत्कस्य हेतोः ? यानि च तेषां सुभूते, सत्वानां पौर्वजन्मिकान्यशुभानि कर्माणि कृतान्यपायसंवर्तनीयानि, दृष्ट एव धर्मे तया परिभूततया तानि पौर्वजन्मिकान्यशुभानि कर्माणि क्षपयिष्यन्ति, बुद्धबोधिं चानुप्राप्स्यन्ति ।

पूर्वं तावद् बाह्यशास्त्राभिष्वङ्गपरिवर्जनार्थमुक्तम्, सम्प्रति ध्यानरसास्वादवर्जनार्थमिति नास्ति पुनरुक्तता, समस्तसंगृहीतार्थाभिधानेऽपि भिन्नप्रसङ्गाभिधानान्नास्ति पुनरुक्ततेति ज्ञातव्यम् । **पूजनीयः** इति छत्रध्वजपताकादिभिः, **वन्दनीयः** इति नमस्करणीयः, **प्रदक्षिणीयः** प्रदक्षिणायोग्यः, अत एव पूजनीयत्वादिधर्मैर्युक्तत्वाद् चैत्यः ।[1]

ननु ईदृशेषु धर्मपर्यायेषु अभ्युद्यतानामपि कथं केचित् परिभूता दृश्यन्त इति चिन्तायां पापपरिशोधनविशेषदेशनाय **ये सुभूते, कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा** इत्याद्याह । **परिभूता भविष्यन्ति** इति परिभाषणभण्डनादिभिर्व्यापन्ना भविष्यन्ति, **सुपरिभूताश्च भविष्यन्ति** इति वधबन्धनादिभिः पीडिता भविष्यन्ति ।

एवमेते महात्मानः कथं परिभूता भविष्यन्तीति विचिन्त्याह **तत्कस्य हेतोः ?** इति । **तेषां सत्त्वानाम्** इत्याद्युदतरत् । **पौर्वजन्मिकानि** इति पूर्वजन्मनि कृतानि । **दृष्ट एव धर्मे** इति प्रत्युत्पन्नजीविते । **बुद्धबोधिं**

---

1 चैत्यभूतो वन्दनादिना पुण्योपचयहेतुत्वात् । पितेव पितृभूत इत्युपमावाचकभूतशब्दस्योपादानादन्यचैत्यसमानत्वेन चैत्यभूतः स पृथिवीप्रदेशः । –आलोकः, पृ. ३६१; यत्र हि नाम .... इति चन्द्रगोमी । –आलोकः, पृ. ३६१ ; अन्यत्रापि द्रष्टव्यम्– अ.प्र., पृ. २८ ।

तत्कस्य हेतोः ? अभिजानाम्यहं सुभूते, अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैरसंख्येयतरैः दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य परेण परतरेण चतुरशीतिबुद्धकोटिनियुतशतसहस्राण्यभूवन् ये मयारागिताः, आराग्या न विरागिताः । यच्च मया सुभूते, ते बुद्धा भगवन्त आरागिताः, आराग्या न विरागिताः, यच्च पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपकाले वर्तमाने इमानेवंरूपान् सूत्रान्तानुद्ग्रहीष्यन्ति धारयिष्यन्ति वाचयिष्यन्ति पर्यवाप्स्यन्ति, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयिष्यन्ति, अस्य खलु पुनः सुभूते, पुण्यस्कन्धस्यान्तिकादसौ पौर्वकः पुण्यस्कन्धः शततमीमपि कलां नोपैति, सहस्रतमीमपि शतसहस्रतमीमपि –

चानुप्राप्स्यन्ति इति पापानि परिशोध्य कालान्तरे भावनानिरता न चिरं अनुत्तरसम्यक्सबोधिमभिसम्बुद्ध्य बुद्धा भविष्यन्तीति वाक्यार्थः ।

ततो निदानं **बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम्** इति यदाह तत्र केन प्रकारेण अप्रमेयाख्येयावबोधः स्यात् ? इत्यत्र **अभिजानाम्यहं सुभूते** इत्याद्याह । अत्र प्रभावेण बहुतरेण चाप्रमेयमसंख्येयं च परिदीपितम् । तत्राभिजानामि सुभूते **अतीतेऽध्वन्यसंख्येयैः कल्पैः असंख्येयतरैः** इत्यादिना प्रभावः परिदीपितः । अयं तावत् पुण्यस्कन्धस्यैव प्रभावः । एतावता प्रशस्तरो विशिष्टतरः (पूर्वकः) पुण्यस्कन्धोऽप्यभिभूयते । दीपङ्करतः यावत् असंख्येयकल्पम् । असंख्येयकल्पस्तावद् गणनातीतत्वात्, **दीपङ्करस्य परेण परतरेण चतुरशीतिबुद्धकोटिनियुतशतसहस्राण्यभूवन्, ये मयारागिताः** इति प्रतिपत्त्यर्चया[1] आराधिताः । **न विरागिताः**[2] इत्यन्तरालेऽपि तदभिनिर्हारस्य अनुत्सृष्टत्वात् । **यच्च** इति कर्तृविशेषः ।

ततोऽयमर्थः यश्च आरागणादिकः (पुण्यस्कन्धः), यश्च उद्ग्रहणादिश्रद्धादिपुण्यस्कन्धस्तदुत्पादितश्च वासनात्मकः स्कन्धः, अनयोः (पुण्यस्कन्धयोः) पूर्वपुण्यस्कन्धः उत्तरपुण्यस्कन्धस्यास्य **शततमीमपि कलां**

---

1 पूजाविशेषः । (पूजाभेदः)

2 त०– अ.प्र.. प. १०६ ।

कोटितमीमपि कोटिशततमीमपि कोटिशतसहस्रतमीमपि कोटिनियुत-शतसहस्रतमीमपि । संख्यामपि कलामपि गणनामपि उपमामपि उपनिषदमपि यावदौपम्यमपि न क्षमते ।

सचेत्पुनः सुभूते, तेषां कुलपुत्राणां कुलदुहितॄणां वा अहं पुण्यस्कन्धं भाषयेम्, यावत्ते कुलपुत्रा वा कुलदुहितरो वा तस्मिन् समये पुण्यस्कन्धं प्रसविष्यन्ति, प्रतिग्रहीष्यन्ति, उन्मादं सत्त्वा अनुप्राप्नुयुश्चित्तविक्षेपं वा गच्छेयुः । अपि तु खलु पुनः सुभूते, अचिन्त्योऽयं धर्मपर्यायस्तथागतेन भाषितः । अस्य अचिन्त्य एव विपाकः प्रतिकांक्षितव्यः ।

नोपैति इति ।[1] एतावतोऽल्पीयस्त्वं दर्शयितुं **सहस्रतमीमपि** इत्याह । **संख्या** इति तुल्येष्वेव युज्यते, यथा हिमवता (तुल्यः) विन्ध्य इत्युच्यते, न तु सर्षपः । **कलाम्** इत्यंशः, स च समानजातीय एव, यथा सुमेरोः कला पर्वतशिखरमेव, न तु तृणशिखरः । **गणनाम्** इत्यपि तुल्येष्वेव, यथा सुमेरुरपि गिरिः, हिमवानपि गिरिः, न तु सर्षपः । **उपमाम्** इत्यपि सदृशेष्वेव, यथा गोसदृशो गवय इत्युच्यते, न तु मक्षिका । लघुरपि परिकर्मवशेन तस्य (महतः) कृत्यं करोति, यथा निशिते कृते सति दात्रमप्यसिकृत्यं करोतीति मत्वा **उपनिषदम्** इत्याह । ताडन-पीडनादिविस्तारोपायेन तीक्ष्णीकृतेऽप्यतिलघुतया न क्षमत इत्यर्थः । अत एव **औपम्यमपि** इत्याह । तस्योपमाभावमपि न क्षमते ।

सर्वज्ञवचनादेवैतज्ज्ञातव्यम्, एवंविधेषु इन्द्रियविषयातीतेषु विषयेषु सर्वज्ञवचनस्यैव प्रामाण्यात् । अपि च परिशुद्धे काले सर्वसत्त्वानामपि परिशुद्धत्वान्नाश्चर्यम्, अपरिशुद्धे तावत् काले ये सत्त्वा क्षणमात्रमाशयपरिशुद्धा भवन्ति, तदाश्चर्यम् । एवं प्रभावमुखेन तावदप्रमेयत्वं प्रदर्शितम् ।

कथमसंख्येयं संख्ययेति विचारणायां **सचेत्पुनः सुभूते.... तस्मिन् समये** इत्याद्याह । तेन बहुलं परिदीपितम् । तत्पुण्यगणनयापि विषादमनुप्राप्य

---

1 द्र०- आलोकः, पृ. ३६७ ।

अथ खल्वायुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्- कथं भगवन्, बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन स्थातव्यम्, कथं प्रतिपत्तव्यम्, कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ? भगवानाह- इह सुभूते, बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन एवं चित्तमुत्पादयितव्यम्- सर्वे सत्त्वा मया अनुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्याः । एवं च सत्त्वान् परिनिर्वाप्य न कश्चित्सत्त्वः परिनिर्वापितो भवति । तत्कस्य हेतोः ? सचेत्सुभूते, बोधिसत्त्वस्य सत्त्वसंज्ञा प्रवर्तेत, न स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः । तत्कस्य हेतोः ? नास्ति सुभूते, स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितो नाम ।

व्यामुग्धचित्तान्तर्विशेषे उन्मादमनुप्राप्नुयुः । ततः उद्भूतेनोन्मादेन चित्तविक्षेपं वा गच्छेयुः । अनेन गाम्भीर्यमौदार्यं चोपदिष्टम् ।

एवमस्माद् धर्मपर्यायात् संख्याप्रभावप्रतिसंयुक्तमेवंविधं फलं कथं ज्ञायत इति ? **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । फलं पुनः हेत्वनुरूपमेव भवति । लघिष्ठेऽपि न्यग्रोधवृक्षबीजेऽतिशयसारसम्पन्नत्वाद् बृहच्छाखापल्लव-वृक्षभूतं फलं नोपदृश्यते । धर्मपर्यायोऽप्ययम् अल्पपरिवर्तोऽप्यत्यन्तगम्भीरः, अचिन्त्यधर्मदेशनाद् अचिन्त्यः । अतोऽस्मादचिन्त्याद् हेतुप्रत्ययानुरूपमचिन्त्यं फलं भवति, हेतुप्रत्ययप्रभावस्तावत् सर्वज्ञगोचरत्वाद् अचिन्त्यः । विपाकशब्दोऽत्र फलार्थः, तेन निष्यन्दादिफलानि संगृह्यन्ते । एतेन सर्वेण चित्तप्रग्रहो दर्शितः ।

१५.अभिसमयकालेऽहमितिविकल्पवियोग-स्थानम् :

एवं निराकृतेऽपि ध्यानरसास्वादे प्रत्यासन्नेऽभिसमयकाले यैः बोधिसत्त्वैः आत्मवैशिष्ट्यमवलोक्य 'अहं सम्यक्सम्बोधिमार्गप्रतिपन्नः, सर्वे मया सत्त्वाः परिनिर्वापयितव्याः' इति मन्यमानैस्तैस्तस्मिन् आत्मग्राहविकलेऽभिसमयकाले कथं स्थातव्यम्, कथं प्रतिपत्तव्यम्, कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम् ? इत्येतद् दर्शयितुं पञ्चदशस्थामधिकृत्याह- **सुभूति.........अवोचत्- कथं भगवन्, बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितेन स्थातव्यम्** इति । स्थातव्यमित्यादिदेशनात्रयं तु

तत्किं मन्यसे सुभूते, अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यान्तिकादनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः ? एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– यथाहं भगवन्,

---

प्रागेवोक्तं भगवता । **नास्ति सुभूते, स कश्चिद् धर्मो यो बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितो नाम** इत्यवशिष्टेनात्र आत्मग्राहविसंयोगः क्रियते । शेषाणां (पदानां) व्याख्या तु पूर्ववत् ।

यथेदं पुद्गलधर्मनैरात्म्यं प्रागेव भगवता प्रकाशितं तथोक्ते सति बोधिसत्त्वेषु पुनः अभिसमयकाले कथमात्मग्राहः सम्भवेद् ? तन्निराकरणायोक्तमपि किं पुनरुच्यते ? अथैवमपि देशनायां संमुह्येत् प्रागुक्तस्यानवस्थानं च स्यादिति ? तथा देशितेऽपि अनादिकालात्यन्त-दृढीभूतात्माभिनिवेशवशतया केषाञ्चित् सम्मोहस्यानिवृत्तेः देशितोऽप्यर्थः पुनरुपदिश्यते । पुनर्देशनाकाले पारिषद्यानां सम्मोहनिवृत्तेर्नानवस्था स्यात् । भगवता कृतस्योपदेशस्य फलं तावत् सम्मोहविनिवृत्तिरेव विनेयजनानामिति न निष्फलम् । अत एव सम्मोहनिवृत्तौ सत्यां फलाभावेन पुनः प्रवृत्त्यभावात् प्रकृतमेवेदम् ।

१६.अववादपर्येषणस्थानम् :

यदि बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितो नाम न स्यात् स कश्चिद् धर्मः (तर्हि) कथं भगवान् दीपङ्करस्य शास्तुरन्तिकादववादं प्राप्य अनुत्तरां सम्यक्सम्बोधिमभिसम्बुद्धः ? अथ न स्याद् (सः) अभिसम्बुद्धः (तर्हि) अभिसमयकाङ्क्षिणाऽववादो न पर्येष्टव्य इति ये मन्यन्ते, तेषामववाद-वियोगविसंयोगाय षोडशस्थानमधिकृत्य **तत्किं मन्से सुभूते** इत्याद्याह । पूर्वं धर्मकायाप्तिकामतावसरे धर्मग्राहनिषेध उक्तः,[1] इदानीमभिसमयकाले अभिसम्बुद्धस्य तस्य निषेधः क्रियतेऽतो न पुनरुक्तता । नास्ति परमार्थतः स कश्चिदपि ज्ञानज्ञेयात्मको धर्मः, यथा पूर्वं विचारितम् । तद्बलेन अविचाररमणीयमात्रतया श्रुतमय्यादिप्रज्ञोत्पादक्रमेण भगवतः –

---

1 द्र0– वज्र.सू. ७ अध्या. ; द्र0– प्रस्तुता टीका, ४ स्थानम्,

भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, नास्ति स भगवन्, कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यान्तिकाद् अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । एवमुक्ते भगवानायुष्मन्तं सुभूतिमेतदवोचत्– एवमेतत्सुभूते, एवमेतत् । नास्ति सुभूते स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन दीपंकरस्य तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्य अन्तिकादनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । सचेत्पुनः सुभूते, कश्चिद्धर्मस्तथागतेनाभिसंबुद्धोऽभविष्यत्, न मां दीपंकरस्तथागतो व्याकरिष्यत्– भविष्यसि त्वं माणव –

स्वयम्भूसर्वज्ञज्ञानं[1] तथ्यसंवृत्या ग्राह्यात्मकं समुद्भवति ।

ननु तदपि भगवतो दीपङ्करस्यानुभावमात्रमिति चेद् ? एवं सत्यपि अनुरूपमेव, तथापि तस्मिन् सर्वबुद्धानां साधारणानुभावाः, न केवलं भगवतो **दीपङ्करस्यैव** । यदि न स्यादभिसम्बुद्धः (कश्चित् तर्हि) कथं तेन **सम्यक्संबोधौ** भगवान् व्याकृत इति विचार्य **सचेत् पुनः सुभूते** इत्याद्याह ।

अयमभिप्रायः– यदि भगवतः प्रत्यात्मवेद्यो धर्मः परमार्थतो तथाभूतो **भवेत्** तदा स्यादभिसम्बुद्धः, अथवा 'मया पुनः धर्मोऽभिसम्बुद्धः' इत्यहङ्कारः **समुद्भवेत्** तदा स्याद् 'अभिसम्बुद्धः' इत्येवं विपरीताभिनिवेशात् तथागतस्य **व्याकरणं** न भवेत् । यतो हि तदा 'मयाऽभिसम्बुद्धः' इति न भवति, न च **धर्मादिष्वप्य**भिनिवेशः भवति । तत एवाहम् अविपरीतसम्यग्ज्ञानमार्गस्थितौ **व्याकृतः** ।

नास्ति स कश्चिद् धर्मोऽभिसम्बुद्धः इत्यनेन अर्थतो दीपङ्करस्यान्तिकाद् **अववाद**ग्राहविकल्पं विपक्षत्वेन दर्शयित्वा तद्विकल्पप्रहाणाय छन्दः प्रणिधानं **चापि** देशितम् । दीपङ्करेत्युपलक्षणमात्रेणाभिहितेन सर्वे धर्मोद्ग्रहणविकल्पा **निवर्तन्ते** । **नास्ति** इत्यनेन तस्य गम्भीरत्वमुक्तम्, सम्यक्सम्बोधये **अववाद**पर्येषणविधानेन तावदस्योदारत्वं चोक्तम्, श्रावकप्रत्येकबुद्धाववादाद् अत्यन्तविशिष्टत्वात् ।

---

1 **सर्वज्ञे**यावबोधेनातिशयबुद्धिसद्भावात् बुद्धाः, परोपदेशमन्तरेण स्वयंबोधात् स्वयंभुवः । –आलोकः, पृ. ३६८ ।

अनागतेऽध्वनि शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति । यस्मात्तर्हि सुभूते, तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन नास्ति स कश्चिद् धर्मो योऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । तस्मादहं दीपंकरेण तथागतेन व्याकृतः– भविष्यसि त्वं माणव अनागतेऽध्वनि शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धः । तत्कस्य हेतोः ? तथागत इति सुभूते भूततथताया एतदधिवचनम् ।

यदि तथागतेन सम्यक्सम्बुद्धेन न स्यात् स कश्चिद् धर्मो योऽनुत्तरायां सम्यक्सम्बोधौ अभिसम्बुद्धः, तदा कथं तथागतत्वं भवेत् ? तद्यथा पूर्वबुद्धा अभिसम्बोधिं गताः, तथैवात्रापि गतत्वादभिसम्बुद्धस्तथागत उच्यत इति चेत् ? अभिसम्बुद्ध इत्याख्यस्य कस्यचिद् धर्मस्याभावात् तत्कथं भवेदिति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः** इति पृष्ठवान् । **तथागत इति सुभूते** इत्यादि चोदतरत् । **तथता** इति धर्माणामविपरीतस्वभाव उच्यते, स चादिशान्तादिस्वभावः, सर्वधर्मसाधारणत्वात् सा **भूतः** इति वचनेन विशेषिता, भूतस्तु[1] यथार्थत्वेन तथागतज्ञानमभिधीयते । तस्यास्तथताया या परमार्थतोऽनुत्पन्नधर्मता स तथागत इत्युच्यते । यथोक्तम् –[2]

अनुत्पादधर्मः सततं तथागतः । इति ।

परमार्थतो धर्मताऽपि धर्मिणो नेतरा, अतः परमार्थतः सर्वधर्माणामनुत्पादो धर्मता । सर्वधर्माधिगमस्वभावोऽविचाररमणीयः परमार्थतोऽनुत्पन्नः तथ्यसंवृतौ परिकल्प्यमानः सज्ज्ञानविशिष्टः 'तथागतः'[3] उच्यत इति वाक्यार्थः । तस्य च परमार्थतोऽनुत्पन्नत्वान्नास्ति कश्चिद् ग्राह्यो ग्राहको वा । तस्मान्नास्ति कश्चिद् धर्मोऽप्यभिसम्बुद्धः (नाम) परमार्थतः । तथ्यसंवृतिमाश्रित्य तेन विशिष्टज्ञानेन यथा अभिसम्बुद्धः तथा गत इत्येवमभिप्रायः ।

---

1 भूतार्थभावनाप्रकर्षपर्यन्तजं योगिज्ञानं चेति । –न्या.बि., १/११ ।

2 म.शा.वृ., २२/१६, पृ. १९५ (उद्धृतम् ह.का.सू.), Toh: 207 Sde bka (Mdo Sde, Tsha p. 95.

3 स एवमधिगतसर्वज्ञज्ञानो भगवान् यथा धर्माणां तत्त्वं व्यवस्थितं तथैव अशेषतो गतत्वाद् बुद्धत्वात् तथागत इत्युच्यते । –म.शा.वृ., २२ अध्या., पृ. १८७ ।

यः कश्चित्सुभूते, एवं वदेत्– तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धेति, स वितथं वदेत् । अभ्याचक्षीत मां स सुभूते, असतोद्गृहीतेन ।[1] तत्कस्य हेतोः ? नास्ति सुभूते, स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेन अनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । यश्च सुभूते, तथागतेन धर्मोऽभिसम्बुद्धो देशितो वा तत्र न सत्यं न मृषा । तस्मात्तथागतो भाषते सर्वधर्मा बुद्धधर्मा इति । तत्कस्य हेतोः ? सर्वधर्मा इति सुभूते, अधर्मास्तथागतेन भाषिताः । तस्मादुच्यन्ते सर्वधर्मा बुद्धधर्मा इति ।

परमार्थाश्रयेणाभिसम्बुद्ध इति कस्मात्तथा नोच्यते ? इति चिन्तायां **यः कश्चित् सुभूते** इत्याद्याह । **तत्कस्य हेतोः ?** इति **न सत्यम्** इत्यनेन योज्यम् । शेषस्तु सुगमान्न व्याख्यायते । एवं तर्हि 'संवृतितः तथागतेन अभिसम्बुद्धः' इति व्यवस्थैव कथं व्यवस्थाप्यत इति विचार्य **यश्च धर्मः** इत्युक्तम् । **यः** इति रूपादिलक्षणधर्मः, **तत्र न सत्यम्** इति मायावत्प्रतिभासमानानां विचार्यमाणानामत्यन्तशून्यत्वेनानुत्पन्नत्वात् शशश्रृङ्गवद् अत्यन्ताभावः । **न मृषा** अविचाररमणीयस्वभावेन मायावत्प्रतिभासमानात् । अथवा नापि सत्यम्, न कस्यापि धर्मस्य परमार्थतः सिद्धेः । न मृषा, न च विचारगोचरः कश्चित् सत्यः सिद्धः, सर्वधर्माणामनुत्पादात् ।

अनेनाध्यारोपापवादान्तौ निराकृत्य मध्यममार्गं च व्यवस्थाप्य योगसमापत्तौ **प्रवर्त्यते** । **तस्मात्** इत्येवं परमार्थतः सर्वधर्माणामनुत्पादात् **न सत्यं न च मृषा** । तथागतोऽपि परिशुद्ध्याऽनुत्पादधर्मतया प्रभावितः, अनुत्पादधर्मतायाः [redacted]रणत्वात्, (तथा हि)[2] –

अनुत्पादधर्मः सततं तथागतः

---

1 इदं वाक्यं भोटपाठे देगे संस्करणे नोपलभ्यते ।

2 अनुत्पादधर्मः सततं तथागतः सर्वे च धर्माः सुगतेन सादृशाः ।
निमित्तग्राहेण तु बालबुद्धयः असत्सु धर्मेषु चरन्ति लोके ॥
तथागतो हि प्रतिबिम्बभूतः कुशलस्य धर्मस्य अनास्रवस्य ।
नैवात्र तथता न तथागतोऽस्ति बिम्बं च संदृश्यति सर्वलोके ॥ –म.शा.वृ., २२/१६ (हस्ति.सू., प्रसन्नपदायामुद्धृतम्) पृ. १९५ दरभंगा संस्करणम् १९८३, See- Toh: 207 Sde bka (Mdo Sde, Tsha p. 95.

तद्यथापि नाम सुभूते, पुरुषो भवेदुपेतकायो महाकायः ? आयुष्मान् सुभूतिराह योऽसौ भगवंस्तथागतेन पुरुषो भाषित उपेतकायो महाकाय इति, अकायः स भगवंस्तथागतेन भाषितः । तेनोच्यते उपेतकायो महाकाय इति ।

सर्वे च धर्माः सुगतेन सादृशाः ।
निमित्तग्राहेण तु बालबुद्धयः
असत्सु धर्मेषु चरन्ति लोके ॥

इत्यादि । **सर्वधर्मा बुद्धधर्माः** इति तथागतो भाषते । यद्यनुत्पन्ना एवामी धर्मास्तत् कथं **सर्वधर्माः** इत्युच्यन्त इति प्रविचिन्त्य **सर्वधर्मा इति सुभूते** इत्याद्याह । अयमत्रार्थः– परमार्थतस्तथा विद्यन्ते, न तु व्यवहारप्रज्ञप्तितः । असन्तस्तावत् परमार्थतो रूपादिधर्माः, किन्त्वपरमार्थ खल्वविचारितमाश्रित्य यस्मात् स्वसामान्यलक्षणग्रहणं तस्मात् **सर्वधर्माः** इत्युच्यन्ते, न तु परमार्थतः, तत्र स्थितानां सर्वेषां दृश्यमानत्वेऽप्यभावात् । अनेन तावद् विक्षेपनिग्रहः सन्दर्शितः ।

१७.अभिसमय–स्थानम् :

यदि न स्यात् स कश्चिद् धर्मो भगवताऽभिसम्बुद्धः कथं (तर्हि) बोधिसत्त्वा उपादत्तमववादं सम्मुखीकृत्य धर्मपुद्गलनैरात्म्यमधिगच्छेयुः ? इति विचिन्त्याभिसमयप्रतिपादनार्थं **तद्यथापि नाम** इत्याद्याह । अयमभिसमयस्तावत् ज्ञानप्राप्तिनिरभिमानिताभ्यां संदर्श्यते । कथं ज्ञानप्राप्त्येति चेत् ? द्विविधं ज्ञानमाश्रित्य, गोत्रसम्परिग्रहज्ञानं समताज्ञानञ्च । तत्र यज्ज्ञानप्राप्त्या तथागतगोत्रे समुत्पद्य बुद्धगोत्रे नियतो जायते तद् गोत्रसम्परिग्रहज्ञानम् । तदुत्पादेन उपेतकायो भवति । उपेत इत्यात्मना परिगृहीतः, कायस्तु तथागतकायः । येन सोऽधिगतः, स उपेतकायः । कथं ज्ञायते तज्ज्ञानप्राप्तिरित्याह – **महाकायः** इति ।

अनेन पुद्गलधर्मनैरात्म्यसमताज्ञानं समवाप्य अभिसमयः सम्प्रदर्श्यत इत्यतो गोत्रज्ञानमभिधीयते । तेन समताज्ञानेन पुद्गलधर्मनैरात्म्यमधिगम्य सर्वे

भगवानाह– एवमेतत्सुभूते, यो बोधिसत्त्व एवं वदेत्– अहं सत्त्वान् परिनिर्वापयिष्यामीति, न स बोधिसत्त्व इति वक्तव्यः । तत्कस्य हेतोः ? अस्ति सुभूते, स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वो नाम ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । नास्ति स कश्चिद्धर्मो यो बोधिसत्त्वो नाम । भगवानाह– सत्त्वाः सत्त्वा इति सुभूते, असत्त्वास्ते तथागतेन भाषिताः, तेनोच्यन्ते सत्त्वा इति । तस्मात्तथागतो भाषते– निरात्मानः सर्वधर्मा निःसत्त्वाः निर्जीवा निष्पुद्गलाः सर्वधर्मा इति ।

सत्त्वा आत्मनि (आत्मवत्) सङ्गृहीता भवन्ति । तस्मात् समस्तसत्त्वकायानामात्मनि सङ्ग्रहेण स महाकाय इति । नाप्यपार्थकोऽयं शब्दः, एवं सर्वसत्त्वानामात्म– सङ्ग्रहेण स काय इत्युच्यते । तेषां संबहुलत्वेऽपि न महाकायशब्दार्थत्वम् । अनेन स्थानस्यास्य औदार्य समुदीरितम् ।

अयमभिप्रायः– बोधिसत्त्वानामभिसमयोऽप्ययं तथ्यसंवृतिमाश्रित्य विशिष्टज्ञानोत्पादमात्रेण प्रभावितो भवति । परमार्थतो न किञ्चिन्निरूपकं निरूप्यं वेति दर्शयितुम्, आर्यसुभूतिः– **भगवंस्तथागतेन पुरुषो भवेदुपेतकायः** इत्याद्याह । अनेनार्थतस्तावदुपेतकाय–महाकायाभिनिवेशस्तु विपक्षत्वेन निर्दिष्टः । (अतः) तत्प्रहाणाय छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति दर्शितम् । उपेतकायो महाकाय इति निमित्तमात्राभिधानेन बोधिसत्त्वानां सर्वधर्मेष्वभिनिवेशो निवर्तते । परमार्थेऽपि तावद् व्यवस्थाप्य योगसमापत्तौ चावतार्यते । गाम्भीर्यमप्युक्तम्, समारोपान्तोऽपि निराकृतः । पूर्वेण तावदपवादान्तः प्रतिषिद्धः ।

यदि तथागतेन स एव कायो नोक्तः स्यात् तदा प्राप्ताभिसमयो बोधिसत्त्वः 'एवं मया बोधिसत्त्वाभिसमयः सम्प्राप्तः साम्प्रतमहं सत्त्वान् परिनिर्वापयिष्यामि' इत्येतत् कथं सञ्चिन्तयेदित्यन्यदीयं सद्विकल्पं समुदीक्ष्य निरभिमानितयाऽभिसमयं दर्शयितुं **यो बोधिसत्त्वः** इत्याद्याह । अनेन य एवं वदेत् – **अहं सत्त्वान् परिनिर्वापयिष्यामीति** 'अहं बोधिसत्त्वोऽस्मि

यः सुभूते, बोधिसत्त्व एवं वदेत्– अहं क्षेत्रव्यूहान् निष्पादयिष्यामीति, सोऽपि तथैव वक्तव्यः । तत्कस्य हेतोः? क्षेत्रव्यूहाः क्षेत्रव्यूहा इति सुभूते, अव्यूहास्ते तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते क्षेत्रव्यूहा इति ।

यः सुभूते, बोधिसत्त्वो निरात्मानो धर्मा निरात्मानो धर्मा –

इत्यभिमानी स तथ्यतो न बोधिसत्त्वः इति दर्श्यते । **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यत्र ज्ञापकहेतुः परिपृष्टः । **धर्मः** इति तु रूपादिस्वभावो वा पुद्गलादिस्वभावो वा । युक्तितो विचारणायां तस्य धर्मस्यादृष्टत्वाद् आर्यसुभूतिरप्याह **नो हीदम्** इति । तस्या युक्तेः सर्वत्र साधारणत्वाद् भगवान् नैरात्म्यद्वयावतारणार्थं **तस्माद्** इत्याह । **निसत्त्वाः** इत्यादि तावदुपलक्षणम्, निःस्वभावा अपि द्रष्टव्याः । अनेन विक्षेपनिग्रहो निर्दिष्टः । उक्तोऽभिसमयः ।

अत ऊर्ध्वं **बुद्धभूमेः पर्येषणम्** । तदपि बुद्धस्य सप्तभिः सम्पद्भिः संगृह्यते । सप्त सम्पदश्च –

१. क्षेत्रपरिशुद्धिसम्पद्
२. अनुत्तरदृष्टिपरिशुद्धिसम्पद्
३. अनुत्तरज्ञानपरिशुद्धिसम्पद्
४. प्राप्तपुण्यस्कन्धाधिपत्यसम्पद्
५. कायसम्पद्
६. वाक्–सम्पद्
७. चित्तसम्पच्च ।

१. क्षेत्रपरिशुद्धिसम्पद् :

तत्र यदि न स्यात् कश्चिद् बोधिसत्त्वो नाम धर्मः, (तर्हि) कस्तावद् बुद्धक्षेत्रं परिनिष्पादयितुं यत्नं कुर्यात् ? इत्याशङ्कां निराकर्तुं बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिसम्पदमधिकृत्य– **यः सुभूते बोधिसत्त्वः** इत्याद्याह । **सोऽपि तथैव वक्तव्यः** इत्यभिमानित्वान्नोच्यते स बोधिसत्त्व इत्यर्थः ।

इत्यधिमुच्यते स तथागतेनार्हता सम्यक्संबुद्धेन बोधिसत्त्वो बोधिसत्त्व[1] **इत्याख्यातः** ।

पुद्गलधर्मनैरात्म्ययोरनधिगमेऽप्यधिगतमित्यभिमानात् । एवमहमस्मीत्यभिमानान्न तस्य पुद्गलनैरात्म्यावगमः, न च धर्मनैरात्म्यावबोधः, असत्सु क्षेत्रव्यूहेष्वपि तत्राभिमानात् । अनेन क्षेत्रव्यूहेषु मायोपमत्वाधिमुक्त्या बोधिसत्त्वेन कथं स्थातव्यमित्येतद् दर्शितम् ।

यदि परमार्थतो न स्युस्ते क्षेत्रव्यूहाः (तदा) भगवता कथमुक्ता इति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्याह । पूर्ववदस्य व्याख्यानम् । न चेयं पुनरुक्तिः । पूर्वं तावदधिमुक्तिचर्याभूमिस्थितानां बोधिसत्त्वानां बोधिसत्त्व-क्षेत्रपरिशुद्धौ प्रणिधानावस्थायां बोधिसत्त्वविकल्पस्य निषेधार्थम् (उक्ताः), सम्प्रति बुद्धक्षेत्रपरिशुद्धिपरिनिष्पत्तये ये बोधिसत्त्वा एवंविधेनाभिनिवेशेन प्रवर्तन्ते, येषां चैवंविधो विकल्पः, तन्निराकरणार्थमुक्तम् । न चानवस्थाप्रसङ्गः, तदेवंविधस्य कस्यचिदितरविकल्पस्यासम्भवात् ।

अनेनेह बोधिसत्त्वेन कथं प्रतिपत्तव्यं तद् व्यपदिष्टम् । कीदृशो बोधिसत्त्वो नामेत्यत्र **यः सुभूते बोधिसत्त्वः** इत्याद्याह । **निरात्मानो धर्माः** इति द्विरुक्त्या द्विविधेन नैरात्म्येन सर्वधर्माणां नैरात्म्यं दर्श्यते । **बोधिसत्त्वो बोधिसत्त्वः** इति द्विरुक्त्या तदेव द्विविधं नैरात्म्यज्ञानं दर्श्यते । अथवा **एकस्तावद् बोधिसत्त्वः** आवृत्तः, **बोधिसत्त्व इत्याख्यातः** इत्युत्तरस्तु (कथनस्य) प्रकारः ।

तेन किं दर्शयिष्यत इति चेद् ? केन निष्पाद्यन्ते यदि **पुद्गलादिग्राहकाभावः, क्षेत्रव्यूहाः** इति धर्मग्राहकस्याप्यभावः, **उभयाभावाधिगमेन बोधिसत्त्व इत्याख्यात** इति निर्दिष्टम् । अनेन चित्तप्रग्रहो देशितः । एभिः सर्वैः स्थानैः गाम्भीर्यं दर्शितम् । तत्र मायावद्बुद्धक्षेत्रपरिनिष्पादनाधिमुक्त्या बोधिसत्त्वानां प्रवृत्तिप्रदर्शनेनौदार्यमुक्तम् ।

---

1 प्रो. जोशीमहोदयेन सम्पादिते संस्करणे "बोधिसत्त्वो महासत्त्वः" इति पाठः, किन्तु भोटपाठे दे.गे. संस्करणे तु "बोधिसत्त्वो बोधिसत्त्वः" इति पाठ उपलभ्यते यश्च आचार्यकमलशीलस्य टीकामनुसरति । अतएवात्र भोटपाठ एव गृहीतः ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते– संविद्यते तथागतस्य मांसचक्षुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य मांसचक्षुः । भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, संविद्यते तथागतस्य दिव्यं चक्षुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य दिव्यं चक्षुः । भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, संविद्यते तथागतस्य प्रज्ञाचक्षुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, संवद्यिते तथागतस्य प्रज्ञाचक्षुः । भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, संविद्यते तथागतस्य धर्मचक्षुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य धर्मचक्षुः । भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, संविद्यते तथागतस्य बुद्धचक्षुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, संविद्यते तथागतस्य बुद्धचक्षुः ।

२.अनुत्तरदृष्टिपरिशुद्धिसम्पद् :

यदि नास्ति बोधिसत्त्वो नाम कश्चिद् धर्मः, तदा तथागतः परिशुद्धदर्शनेन परिशुद्धज्ञानेन च युक्त एव न भवेत्, तस्य बोधिसत्त्वादुत्पन्नत्वात्, तस्याभावे स कथं भवतुमर्हति, अहेतुकत्वे नित्यसत्त्वादिदोषाः,[1] तस्माद् यस्यां संनिपतिततायां परिषद्येवं विकल्पो भवेत्, तस्याः कृते परिशुद्धं दर्शनं ज्ञानञ्चेत्यनुत्तरद्वयमधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । पूर्वतः भगवतोऽभिप्रायं गृहीत्वा आर्यसुभूतिरप्याह– **संविद्यते** इति ।

अनेन परमार्थतः बोधिसत्त्वो नाम स कश्चिद् धर्मो न भवति, तथापि संवृतौ पुण्यज्ञानसम्भारं परिपूर्य परिशुद्धज्ञानदर्शनाभ्यां यस्तथागतो भवति, (तेन) अविचाररमणीयस्कन्धमात्रस्य बोधिसत्त्वस्यास्तित्वं भवत्येव । अन्यथा संवृतावपि यदि स न भवेत् तदा कस्तथागतो भवेदित्येवं तावत् दर्शितम् । तत्र **संविद्यते तथागतस्य प्रज्ञाचक्षुः** इत्येव तावन्नोच्यते, (अपि तु) विशिष्टं विशुद्धदर्शनमभिधातुं चक्षुषो विद्यमानत्वं दर्शितम् ।

---

1 दे.गे. संस्करणे तु "नित्यसत्त्वाद्यर्थदोषाः" इति पाठः ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, यावन्त्यो गंगायां महानद्यां वालुकाः, अपि नु ता वालुकास्तथागतेन भाषिताः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, एवमेतत् सुगत । भाषितास्तथागतेन वालुकाः । भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, यावत्यो गंगायां महानद्यां वालुकाः, तावत्य एव गंगानद्यो भवेयुः, तासु या वालुकाः, तावन्तश्च लोकधातवो भवेयुः, कच्चिद्बहवस्ते लोकधातवो भवेयुः ? सुभूतिराह– एवमेतद्भगवन्, एवमेतत् सुगत, बहवस्ते लोकधातवो भवेयुः । भगवानाह– यावन्तः सुभूते, तेषु लोकधातुषु

समासतश्चतुर्विधं भवति चक्षुः – रूपग्राहकम्, परमार्थसत्यग्राहकम्, संवृतिसत्यग्राहकम्, सर्वाकारज्ञेयग्राहकं च । रूपग्राहकमपि द्विविधम्– कर्मफलं भावनाफलञ्चेति । पञ्चविधं चक्षुः क्रमशः– तत्र स्थूलविषयत्वात् प्रथमं रूपग्राहकं कथितम्, परमार्थवशेन संवृतिज्ञानं परिशुद्ध्यतीत्यतः पूर्वं परमार्थसत्यग्राहकं पश्चाच्च संवृतिसत्यग्राहकमभिहितमिति सङ्गच्छते क्रमनिर्देशः । पुद्गलधर्मनैरात्म्ययोः संविद्यते प्रज्ञाचक्षुः, संवृतौ धर्ममात्रमेव तावदवभासते, न तु पुद्गल इति पुद्गलशून्ये धर्ममात्रे धर्मचक्षुः, सर्वज्ञेयानां सर्वाकारज्ञानं तावद् बुद्धचक्षुरित्युच्यते, अनेनेदानीं साक्षात्कृत्य विहरणात् । तथ्यसंवृतौ पञ्चचक्षुषां देशनयोक्तं विशुद्धदर्शनम् ।

३.अनुत्तरज्ञानपरिशुद्धिसम्पद् :

विशुद्धज्ञानाभिधानार्थम्– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । त्रैकालिकाः चित्तचैतसास्तावच्चित्तसन्ततिः । ततः त्रैकाल्यविषयत्वेन तद्विषयावबोधो ज्ञानमित्युच्यते, न तु दर्शनम् । तदपि सरागचित्तवीतरागचित्तेत्यादिनानाविध–संक्लेशव्यवदानभावेन वेदितव्यम् ।

तावन्तो लोकधातवः इत्युपलक्षणम्, अनन्तलोकधात्वन्तर्निहितसत्त्वानां चित्तधारायाः परिज्ञानात् । तथाहि– संवृतौ तथागतस्य मांसचक्षुरादीनि भवन्ति, अतस्तन्निष्पादनार्थं बोधिसत्त्वेन छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यम् । अनेन तावद् वचनेन सम्पद्द्वयं परिदीपितम् ।

सत्त्वाः, तेषामहं नानाभावां चित्तधारां प्रजानामि । तत्कस्य हेतोः ? चित्तधारा चित्तधारेति सुभूते, अधारैषा तथागतेन भाषिता, तेनोच्यते चित्तधारेति । तत्कस्य हेतोः ? अतीतं सुभूते, चित्तं नोपलभ्यते । अनागतं चित्तं नोपलभ्यते । प्रत्युत्पन्नं चित्तं नोपलभ्यते ।

तत्किं मन्यसे सुभूते, यः कश्चित्कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इमं त्रिसाहस्रमहासाहस्रं लोकधातुं सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्,

---

मांसचक्षुरादीन्यपि एकानेकस्वभावाभ्यां विचारणायामनुपलब्धान्येव । न ह्यर्थान्तरज्ञानेन ग्रहणं युज्यते, यथा पूर्वं विचारितम्, एवं सति कथं प्रज्ञास्येते तथागतस्य मांसचक्षुरादिविद्यमानता चित्तधारा चेति चित्ताशयं विदित्वा **तत्कस्य हेतोः ?** इत्याह । बोधिसत्त्वेन कथमनयोर्द्वयोर्विशुद्धयोर्योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यम् ? इत्येतदभिधातुं **चित्तधारा चित्तधारा** इत्याद्याह ।[1] परमार्थतः **अधारा** इति । स्वभावतोऽसत्त्वेऽपि संवृतिमधिकृत्याह– **तेनोच्यते चित्तधारेति** इति । अन्यथा परमार्थतः सर्ववाग्गोचरातीतत्वान्न वक्तुं शक्ष्यत इत्यभिप्रायः । चित्तधारेत्युपलक्षणम् । मांसचक्षुरादीन्यपि चक्षुःस्वभावरहितान्येव उक्तानीति कथनं प्रकृतं साक्षान्नोक्तम् ।

अत्र कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यमिति तदभिधातुमाह **तत्कस्य हेतोः?** इति । अधारेत्यनेन सह योजनीयम् । अतीतादीनां चित्तानां परमार्थतोऽनुत्पन्नत्वाद् अनुपलम्भः । सत्त्वेऽपि ग्रहणानुपपत्त्या नानुपलम्भः । तथा सति अचित्तधारादेशनमपि न भवेत्, न चानुपलम्भमात्रेण भावानां निःस्वभावत्वं स्यात् । यथा त्रैकालिकचित्तस्य परमार्थतोऽभावस्तथा पूर्वमुक्तं वक्ष्यते च ।[2] चित्तोक्तिरुपलक्षणम्, ततोऽतीतादिमांसचक्षुरादीन्यप्यनुपलब्धान्येव । अत्र **अधारा** इत्यादिभिः पदैर्गाम्भीर्यमुक्तम्, शेषैरौदार्यम् ।

---

1 तु0– म.शा.वृ., पृ. २३–२४, बौ.भा.प्र. १९८३ ।

2 तु0– चित्तं हि सुभूते, तथागतेन न अतीतं उपलब्धं, न अनागतं न प्रत्युपन्नं उपलब्धं असत्त्वाच्चित्तस्य । –अ.प्र., पृ. १३२ ।

अपि तु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं बहु पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयात् ? सुभूतिराह– बहु भगवन्, बहु सुगत । भगवानाह– एवमेतत् सुभूते, एवमेतत् । बहु स कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा ततो निदानं पुण्यस्कन्धं[1] प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् । तत्कस्य हेतोः ? पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति सुभूते, अस्कन्धः स तथागतेन भाषितः, तेनोच्यते पुण्यस्कन्ध इति ।[2] सचेत् सुभूते, पुण्यस्कन्धोऽभविष्यत्, न तथगतोऽभाषिष्यत् पुण्यस्कन्धः पुण्यस्कन्ध इति ।

४.प्राप्तपुण्यस्कन्धाधिपत्यसम्पद् :

यदि नास्ति त्रैकालिकं चित्तं तदा पुण्यस्कन्धोऽपि न स्यात्, चित्ताश्रितत्वात्तस्य । ततः तथागतस्य पुण्यस्कन्धाधिपत्यसम्पदं सम्पादयितुं कथं बोधिसत्त्वो यत्नं कुर्यादिति विचिन्त्य पुण्यस्कन्धाधिपत्यसम्पदमधिकृत्य– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । अनेन **कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा** योऽन्तशो रत्नादिकं बाह्यवस्तु त्यजति, सोऽपि (यदि) महापुण्यस्कन्धेन युक्तो भवति (तदा) कथं न तथागतस्य असंख्येयाप्रमेयकल्पेषु दुष्करानेकशतान्यभ्यस्यतः पुण्यस्कन्धाधिपत्यं स्यादित्येवं देशितम् ।

अत एव परमार्थतोऽसत्यपि पुण्यस्कन्धे संवृतौ सत्त्वाद् बोधिसत्त्वेन तत्र वशीभावं निष्पादयितुं छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमित्यादर्शितम् । अनेनौदार्यमप्युक्तम् । कथं न परमार्थतः पुण्यस्कन्धसत्त्वं व्यवस्थाप्यत इति विचिन्त्य 'बोधिसत्त्वेनात्र कथं प्रतिपत्तव्यम्, कथञ्च चित्तं प्रग्रहीतव्यम्,' इत्युभयं सन्दर्शयितुं **सचेत् सुभूते** इत्याद्याह । **सचेत्** इति 'यदि' इत्यर्थः । **न तथागतोऽभाषिष्यत्** इति परमार्थतोऽभिधानं नाचरिष्यत् । अनिर्देशेऽपि तथा ख्यायत इत्यभिप्रायः । यथा परमार्थतः पुण्यस्कन्धस्याभावस्तथा प्राग्वर्णितः । अनेन तथागतस्य पुण्यस्कन्धाधिपत्यसम्पदं परिनिष्पादयितुं प्रस्थितेन बोधिसत्त्वेन परमार्थतस्तदनुपलम्भेन योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यम् । परमार्थतस्तदालम्बनाभि–

---

1 जोशी संस्करणे "पुण्यस्कन्धम्" इति पाठः नोपलभ्यते ।

2 इदं वाक्यं भोटपाठे दे.गे. संस्करणे च नोपलभ्यते ।

तत्किं मन्यसे सुभूते, रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । न रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः । तत्कस्य हेतोः ? रूपकायपरिनिष्पत्तिः रूपकाय-परिनिष्पत्तिरिति भगवन् अपरिनिष्पत्तिरेषा तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते रूपकायपरिनिष्पत्तिरिति ।

निवेशपरिहारेण चित्तं प्रग्रहीतव्यम् इत्युभयं देशितम्, गाम्भीर्यमप्युक्तम् ।

५.कायसम्पद् : (अ) रूपकायसम्पद्

यदि पुण्यस्कन्धो नैव स्यात् तदा तथागतानां द्विविधा कायलक्षणसम्पद्–अनुव्यञ्जनकायसम्पद्, लक्षणकायसम्पच्च याऽनुत्तरपुण्येनाभिनिर्वर्तयितुमिष्यते, सा नैव स्यात्, कारणाभावात् । तस्मात् तथागतस्य द्विविधां कायसम्पदं परिनिष्पादयितुं कथं बोधिसत्त्वैर्यत्नोऽनुष्ठेय इति विचिन्तयद्भ्यस्तथागतस्य रूपकायसम्पदमधिकृत्य– **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह ।

रूपकायः इत्यनुव्यञ्जनकायरूपेण द्रष्टव्यः । लक्षणकायः पश्चाद् वक्ष्यते गोबलिवर्दन्यायेन । ततोऽयमत्रार्यसुभूतेराशयः– यथा परमार्थतोऽस्कन्ध एव पुण्यस्कन्धस्तथा रूपकायोऽप्यनुत्पन्न एव । अतः परमार्थतः **न रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः** इत्युच्यते ।[1] संवृतौ मायानिर्मितबुद्धवद् विद्यत एव रूपकायः, तत उपपन्न एव (तस्य) पुण्यस्कन्धादुद्भवः ।

तस्माद् बोधिसत्त्वेन मायानिर्मितबुद्धस्य तथाविधरूपाधिमुक्त्या तत्प्रतिपत्तये छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति देशितम् । नाप्यत्र पुनरुक्तिता । पूर्वमधिमुक्तिचर्याभूमौ रूपकायाप्तिकामताकाले[2] तथागतपूजासत्कारकाले[3] च तथाविधोऽभिनिवेशः परिवर्जितः, सम्प्रति शुद्धाध्याशयभूमौ तथागतरूपकाय–

---

1 द्र.– आलोकः, पृ. २५३ ।

2 द्र0– प्रस्तुता टीका, ३ स्थानम्,

3 द्र0– प्रस्तुता टीका, ११ स्थानम्,

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् । न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः । तत्कस्य हेतोः ? यैषा भगवन् लक्षणसंपत्तथागतेन भाषिता, अलक्षणसंपदेषा तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते लक्षणसंपदिति ।

भगवानाह– तत्किं मन्यसे सुभूते, अपि नु तथागतस्यैवं भवति– मया धर्मो देशित इति ? सुभूतिराह– नो हीदं भगवन् ।

सम्पदं परिनिष्पादयितुं सम्प्रस्थितस्य बोधिसत्त्वस्य रूपेऽभिनिवेशो भवतीति यासां प्रसिद्धिस्तासां परिषदां दुर्विकल्पो निराकृत इत्युक्तत्वात् ।

एवं तर्हि तथागतानां रूपकायः कस्माद् देशित इति विचिन्त्य **तत्कस्य हेतोः** ? इत्यपृच्छत् । न रूपकायपरिनिष्पत्त्या तथागतो द्रष्टव्यः इत्यनेन योजनीयम् ।[1] नासौ तावत् सिध्यति, अवयविरूपेण परमाणुसञ्चयरूपेण वा रूपस्यासिद्धत्वाद्, यथा विचारितं प्राक् । अनेन बोधिसत्त्वेन कथं प्रतिपत्तव्यम्, तन्निर्दिष्टम् । **तेन** इति इत्थं संवृतौ भावः, न तु शशविषाणवत् सर्वथाऽभावः । अनेन चापवादान्तं परिहृत्य कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम्, (इति) एतन्निर्दिष्टम् । अनेन सर्वस्थानेन गाम्भीर्यं प्रदर्शितम् । संवृतौ तथागतस्य रूपकायसम्पदं निष्पादयितुं बोधिसत्त्वैः करणीयानां यत्नानां निदर्शनेन औदार्यमपि दीपितम् ।

(ब)लक्षणकायसम्पद् :

लक्षणकायसम्पदमधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । अत्र पूर्ववत् सर्वमभिहितम् ।

६.वाक्सम्पद् :

यदि रूपकायपरिनिष्पत्त्या न तथागतो द्रष्टव्य इति चेत्, तदा देशनाऽपि भगवता नैव भवेत्, रूपकायेन संगृहीतत्वात् तस्याः ? अतो

---

1 द्र०– आलोकः, पृ. २५३–५४; समाधि.सू. (तथागतकायनिर्देशपरिवर्तः)

न तथागतस्यैवं भवति- मया धर्मो देशित इति । भगवानाह- यः सुभूते एवं वदेत्- तथागतेन धर्मो देशित इति, स वितथं वदेत् । अभ्याचक्षीत मां स सुभूते, असतोद्गृहीतेन । तत्कस्य हेतोः ? धर्मदेशना धर्मदेशनेति सुभूते, नास्ति स कश्चिद्धर्मो यो धर्मदेशना नामोपलभ्यते ।

बोधिसत्त्वैस्तथागतस्य वाक्सम्पदं निष्पादयितुं कथं यत्नः कर्त्तव्य इति विचिन्तयद्भ्यो वाक्सम्पदमधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । परमार्थतो वाच्य-वाचक-वचनानामभावात् **न तथागतस्यैवं भवति मया धर्मो देशित इति** । अन्यथा विपर्ययान्न भवेत् सर्वज्ञः । यथा वाचकाः आत्मादयः, वाच्या बाह्याध्यात्मिका भावाः, वचनानि करणरूपाणि शब्दस्वभावाभावात्मकानि वा तथा विस्तरेण प्रागेवोक्तानि । सर्वे भावाः शून्यत्वव्याप्ताः प्रागेव प्रतिपादिताः । संवृतौ वाच्य-वाचक-वचनानाम् अविचाररमणीयत्वेन व्यवहारमात्र एव (ते) भवन्ति, न तु परमार्थे ।

यदि वस्तुतत्त्वस्यैवमभिधानेऽपि व्यामोहेन केचित् परमार्थतस्त्रयाणां (तेषां) परमार्थसत्त्वं कल्पयेयुस्तदा 'किं नु स्यात्' इति विचिन्त्य **यः सुभूते** इत्याद्याह । **अभ्याचक्षीत** इत्यभ्यालपेत् । कथं तदभूतमालपितुं शक्यत इति विचारणायामाह **असतोद्गृहीतेन** इति । विपरीताभिनिवेशतो वितथग्रहणात् तदभूतमित्यर्थः । अनेन तथागतस्य वाक्सम्पदि प्रवृत्तेन बोधिसत्त्वेन प्रतिश्रुत्कादिवज्ज्ञात्वा प्रवर्तितव्यमिति, बोधिसत्त्वेन कथं स्थातव्यमिति देशितम्।

यदि वचनादित्रयमसत् (तदा) पुद्गलधर्मनैरात्म्यदेशकेन भगवता नानापदवाक्यात्मिकेयं धर्मदेशना कथं प्रसिध्यति ? तस्यां सत्यां तदभिधेयो वाच्योऽपि स्यादेव, यश्च तद्देशको वाचकः, सोऽपि भवेदेव । तद्बलेन त्रीण्यपि (वाच्य-वाचक-वचनानि) भवेयुरिति चिन्तायां **तत्कस्य हेतोः ?** इति पृष्टम् । अत्र **धर्मदेशना** इत्युदतरत् ।

अयमभिप्रायः- परमार्थतः धर्मदेशनायां सत्यां (सा) स्वलक्षणस्वभावा वा स्यात् सामान्यलक्षणस्वभावा वा । तत्र न तावत् प्रथमः पक्षः, सर्वं पारमार्थिकं स्वलक्षणं तावत् पूर्वमेव विस्तरेण निराकृतम् । न च द्वितीयोऽपि-

असति स्वलक्षणे आधारस्याभावेन कस्यचिदप्यसत्त्वात् । सामान्यद्रव्यत्वाभ्युपगमे स्वलक्षण एव सङ्गृहीतं स्यादिति तन्निषेधेन तस्यापि निषेध एव । अन्यव्यावृत्त्या सामान्यलक्षणमध्यारोपितस्वभावमिति परिकल्पिते सति धर्मदेशनाया नैरर्थक्यत्वेन सिद्धसाधनम् ।

तस्याः (शब्दात्मिकाया देशनायाः) परमार्थतः स्वलक्षणसत्त्वेऽपि न युज्यते तया धर्मदेशना । स्फोटादिशब्दस्य नित्यस्वभावस्य परैः पदत्वेन परिकल्पितस्य क्रमाक्रमाभ्यामर्थक्रियाकारित्वं तावद् विरुध्यते, सर्वसामर्थ्यापगतत्वाच्चैतन्यादिषु कुत्रापि खलु नैव युज्यते, अकिञ्चित्करत्वेन कथं तद् भवेत् पदम् ? अनित्यस्यापि तावत् स्वलक्षणस्य न युज्यते पदत्वम्, सङ्केतकाले दृष्टस्य व्यवहारकालेऽनन्वयात् । न हि युज्यते अन्यस्य सङ्केतोऽन्यस्य च व्यवहारः, अतिप्रसङ्गात् । अत एव स्वलक्षणमप्यभिधातुं न युज्यते, अनन्वयात् । सामान्यपदार्थेऽभिधेयत्वेनाभ्युपगते सति अभिधेयस्वभावत्वेन तस्य स्वलक्षणस्वरूपत्वान्न हि प्रदेशान्तरगमनम् ।

एकत्वं तु देशकालादिभिन्नास्वनेकव्यक्तिष्वनुगतमपि न युज्यते[1] तथा हि- (अथ) एकस्यां व्यक्तौ सर्वात्मना व्याप्तं स्यात् तदा येन एकत्वेन परिकल्पितः स स्वभावस्तेन अन्यत्राधिगतेतरव्यक्तिभिः सम्बद्धः तदितरस्वभावस्तत्र न भवेदिति, एकत्वहानिप्रसङ्गात् । (अथ) एकदेशेन व्याप्तं स्यात् तदा सावयत्वाग्रहणदोषः । एवं यावत्यो भिन्नव्यक्तयस्तासामेकदेशेन व्याप्तिव्यवस्थया तावतीनां ग्रहणं स्यात्तदा एकव्यक्तिग्रहणं तावदेकदेशग्रहणेन युक्तं भवेत्, भिन्नव्यक्तिषु देशकालपरिमाणादिभिन्नासु तास्वेकव्यक्तिग्रहणं तावदेकदेशग्रहणाद् युगपद्ग्रहणाभाव एव । तस्माद् वाच्य-वाचकत्वं तावदध्यारोपेणैव युज्यते, न तत्त्वतः । अत एवोक्तं भगवताऽन्यत्र[2] -

येन येन हि नाम्ना वै यो यो धर्मोऽभिलप्यते ।

---

1 नित्यमेकमनेकानुगतम् सामान्यम् । तर्क संग्र., पृ. (सामान्यलक्षणम्)

2 त.सं.पं., पृ. ३३९,(उद्धृतं भवसंक्रान्तिसूत्रम्) ;
अपि च तुलनीयम्- ;
यस्य यस्य हि शब्दस्य यो यो विषय उच्यते ।
स स संघटते नैव वस्तूनां सा हि धर्मता ॥ -त.सं., ८६९ का. ।

एवमुक्ते आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– अस्ति भगवन् केचित्सत्त्वा भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि पश्चिमे काले पश्चिमे समये पश्चिमायां पञ्चशत्यां सद्धर्मविप्रलोपे वर्तमाने, य इमानेवंरूपान्

न स संविद्यते तत्र धर्माणां सा हि धर्मता ॥

वचनं मिथ्या, वाच्य–वाच्यकानां या देशना तद्द्वारा[1] आगता, साऽपि स्पष्टैव । उभयोरभावो भगवता पृथकत्वेन नोक्तः । अनेन बोधिसत्त्वेन कथं प्रतिपत्तव्यम्, कथञ्च चित्तं प्रग्रहीतव्यमित्येतद् दर्शितम् । एतेन सर्वेण गाम्भीर्यं दर्शितम् ।

७.सप्तधा चित्तसम्पदः –

१. स्मृत्युपस्थानम्
२. अभिसम्बोधिः
३. महाधर्मार्थप्रज्ञप्तिः
४. महाववादार्थप्रज्ञप्तिः
५. धर्मकायपरिग्रहणम्
६. संसारे निर्वाणे चाप्रतिष्ठानम्
७. प्रस्थिति–पारिशुद्धिः ।

१.स्मृत्युपस्थानम् :

तत्रेदानीमेवं गम्भीरधर्मोऽयमनागते काले घनीभूते कुदृष्टिजाले कथं सफलो भविष्यतीति नाभिश्रद्धधन्ति परिवाराः । य एवं चिन्तयन्ति तेषामविश्रम्भं निवारयितुम् आर्यसुभूतिश्चित्तसम्पत्सु स्मृत्युपस्थानमधिकृत्य **भगवन्** इत्याद्याह । भगवताऽप्यनागतेऽध्वनि शीलवन्तो गुणवन्तश्च भविष्यन्तीति किं नोक्तपूर्वम् । सम्प्रति तेषां सत्त्वेऽसत्त्वे वा एकान्तेनानभिनिवेशं देशयितुम् **अस्ति** इति नोक्तम्, अन्तद्वयनिषेधार्थं **ते सुभूते** इत्याद्याह ।

---

1 तद्द्वारा इति वक्तृद्वारा इत्यर्थः । तेनोच्यते–
वक्तृञ्चापरवक्तृञ्च साश्वासत्त्वञ्च भेदकम् ।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत्प्रसङ्गेन कथास्वपि ॥ –काव्यादर्शः, १३ श्लोक ।

धर्मान् श्रुत्वा अभिश्रद्धास्यन्ति ? भगवानाह– न ते सुभूते, सत्त्वा नासत्त्वाः । तत्कस्य हेतोः ? सत्त्वाः सत्त्वा इति सुभूते, असत्त्वास्ते[1] तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते सत्त्वा इति ।

तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु अस्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः ? आयुष्मान् सुभूतिराह–

परमार्थतः स्कन्धपुद्गलादीनां सत्स्वभावानुपलम्भात् **न सत्त्वाः** इत्यनेनाध्यारोपान्तनिषेधः, अविचारैकरमणीयत्वेन सदैव विद्यमानत्वेन **नासत्त्वाः** इत्यनेनापवादान्तनिषेधः । **भविष्यन्ति** इत्यनया देशनया भगवतः कीदृगविपरीतस्मृत्युपस्थानमिति सत्त्वेभ्यो दर्शयित्वा भगवतस्तस्यां स्मृत्युपस्थानसम्पदि बोधिसत्त्वेन छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति निर्दिष्टम् । **न ते सत्त्वाः नासत्त्वाः**[2] इत्यनेन योगसमापत्तिनिर्दिष्टा ।

यदि न ते सत्त्वाः स्युस्तदा कथं भगवता 'भविष्यन्त्यनागतेऽध्वनि शीलवन्तो गुणवन्तश्च ते'[3] इत्याद्युक्तमित्येवं परिवितर्क विचार्य **तत्कस्य हेतोः ?** इत्यपृच्छत् । **असत्त्वास्ते भाषिताः** इति परमार्थतोऽसत्त्वा एव, संवृतिसत्स्कन्धसद्भावमाश्रित्य भाषितास्ते । संवृतौ सत्त्वात् **तेनोच्यन्ते सत्त्वा इति** । अन्यथा संवृतावप्यसत्त्वे न (ते) भाषिताः स्युरित्यनेन चित्तप्रग्रहो दर्शितः । सर्वेण तावदनेन गाम्भीर्यमुक्तम् । सर्वसत्त्वेभ्यो भगवताऽप्रतिहतस्मृत्युपस्थानदेशनात् तावदौदार्यं निर्दिष्टम् ।

२.अभिसम्बोधिः

यदि न स्याद् भगवतः काचिदपि धर्मदेशना, तदा न स्यात् (सः) सम्यक्सम्बुद्धोऽपि, ततस्तथागताभिसम्बोधिसिद्धये व्यर्थः स्याद् बोधिसत्त्वानां यत्नः । यतोऽभिसम्बुद्धधर्मा इष्यन्ते, अतो देशनाऽपि भवतीति मन्वानेभ्यः –

---

1 प्रो. जोशी संस्करणे "असत्त्वास्तथागतेन" इति पाठः । भोटपाठे दे.गे. संस्करणे तु "असत्त्वास्ते तथागतेन" इति पाठ उपलभ्यते । टीकानुसारं भोटपाठ एव शुद्धस्तेन अत्रापि भोटपाठ एव उद्गृहीतः ।

2 अयं पाठः पेकिंगसंस्करणमनुवर्तते, दे.गे. संस्करणे तु 'न ते सत्त्वाः' इत्येवं पाठः ।

3 द्र.– वज्र.सू. ६ अध्या. ।

नो हीदं भगवन् । नास्ति स कश्चिद्धर्मो यस्तथागतेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । भगवानाह– एवमेतत्सुभूते, एवमेतत् । अणुरपि तत्र धर्मो न संविद्यते नोपलभ्यते । तेनोच्यते अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, समः स धर्मो न तत्र किंचिद्विषमम् । तेनोच्यते अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरिति ।

तेभ्योऽभिसम्बोधिम् अधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । आर्यसुभूतिः पूर्वाभिप्रायं गृहीत्वा **नास्ति सः** इत्युदतरत् । तदेवं मन्यते– परमार्थाभिप्रायेण भगवता धर्मदेशना प्रतिषिद्धेति । यथा परमार्थतः कस्याश्चिदपि धर्मदेशनाया अभावः (तथा) अभिसम्बुद्धस्याप्यभावः, एतत् पूर्वं निर्दिष्टम् ।

संवृतितः भगवतो धर्मदेशना, सम्बोधिः, तद्धेतुप्रतिपत्तिश्चापि विद्यन्त एव, तस्माद् बोधिसत्त्वेनानुत्तरसम्यक्सम्बोधेस्तथ्यसंवृतिस्वभावायाः साधनार्थं यत्नः करणीयः । अनेन बोधिसत्त्वेन कथं स्थातव्यमिति दर्शितम् । पूर्वमववादपर्येषणकाले[1] बोधिसत्त्वानां 'अभिसम्बोधिः परमार्थः' इति यो विकल्पः, स अपनोदितः, इदानीं बुद्धभूमिपर्येषणकाले परेषां तादृग्विकल्पनिराकरणान्न भवति पुनरुक्तिदोषः ।

भगवता अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिस्तथ्यसंवृतौ व्यवस्थापिता, सा कीदृशीति अत्र **अणुरपि** इत्याद्याह । यत्र ज्ञानं प्रचरति (तत्र) भगवता ग्राह्यस्वरूपस्य स्वलक्षणस्य सूक्ष्मोऽपि धर्मस्वभावो नोपलब्धः, स तावत् समस्तधर्मनैरात्म्यावबोधस्वरूपा अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिः । तैर्थिक–शैक्षाशैक्षज्ञानाच्छ्रेष्ठत्वेन 'अनुत्तरा' । सर्वभावानां तथताया यथावदधिगमस्वभावत्वेन उच्यते सम्यक्सम्बोधिरित्यर्थः । तत्र सर्वधर्माणामनुपलब्धिहेतोः **"न"** इत्युक्तम् । यतो ह्यसत्त्वं ततोऽनुपलम्भः । विद्यमानत्वे नानुपलब्धिः, सत्सु सर्वधर्मेषु तथागतस्य आलम्बनज्ञानस्यैव ज्ञापकत्वात् । अनेन धर्मनैरात्म्यावबोधस्वभावो निर्दिष्टः ।

---

[1] द्र.– वज्र.सू. १७ अध्या ; प्रस्तुता टीका, १६ स्थानम् ।

निरात्मत्वेन निःसत्त्वत्वेन निर्जीवत्वेन निष्पुद्गलत्वेन समा सा अनुत्तरा सम्यक्संबोधिः सर्वैः कुशलैर्धर्मैरभिसंबुध्यते । तत्कस्य हेतोः ? कुशला धर्माः कुशला धर्मा इति सुभूते, अधर्माश्चैव ते तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते कुशला धर्मा इति ।

यश्च खलु पुनः सुभूते, स्त्री वा पुरुषो वा यवन्तस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ सुमेरवः पर्वतराजानः, तावतो राशीन् सप्तानां रत्नानामभिसंहृत्य तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः –

साम्प्रतं पुद्गलनैरात्म्यावबोधस्वभावं प्रतिपादयितुं **अपि तु खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । **समः स धर्मः** इति तदवबोधितेषु सर्वधर्मेषु पुद्गलनैरात्म्यसाम्यात् । **न तत्र किञ्चिद्विषमम्** इति सर्वत्र तदविपर्ययात्, आत्मग्राहहेतोर्भावाभिनिवेशस्य प्रहीणत्वात् । भगवता तावदात्मग्राहः सवासनः प्रहीणः । तेन सैव पुद्गलनैरात्म्यज्ञानस्वभावा सम्बोधिः, अनुत्तरा सम्यक्सम्बोधिरित्युच्यते, नान्या । केन रूपेण समः स धर्म इत्यत्र **निःसत्त्वत्वेन** इत्याद्याह । अनेन सर्वेण कथं योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यमिति तन्निर्दिष्टम् । सा कथमभिसम्बुद्ध्यत इत्याह **कुशलैर्धर्मैः** इति । सा पुण्यज्ञानसम्भारात्मकैः कुशलैर्धर्मैरभिसम्बुद्ध्यत इत्यर्थः ।

यद्यसत्त्वाद् अणुरपि धर्मो नोपलभ्येत, कथं नाम भवेयुः कुशला धर्माः? यतस्तैरभिसम्बुद्ध्यतेऽतः **कुशला धर्माः** इत्याद्याह । परमार्थास्तु अधर्मा एव । संवृत्तौ सत्त्वात् **कुशला धर्माः** इत्युक्तम् । तस्मात् कुशलेर्धर्मैरभिसम्बुध्यत इत्यत्र नास्ति दोषः । अनेन अध्यारोपापवादान्तग्राह–विक्षेपनिराकरणेन चित्तप्रग्रहो निर्दिष्टः । एतैः सर्वैः स्थानैः गाम्भीर्यमपि सन्दर्शितम् । अशेषपुद्गलधर्मनैरात्म्यावबोधरूपस्य सम्यक्सम्बोधिस्वभावस्य परिदीपनेन औदार्यमपि दर्शितम् ।

३.महाधर्मार्थप्रज्ञप्तिः

भगवतः सा सम्यक्सम्बोधिः कथं वेदितव्या ? इति विचार्यमाणे महार्थधर्मतया प्रज्ञापितत्वेन तत्सत्तां दर्शयितुं **यश्च खलु पुनः सुभूते** –

सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च कुलपुत्रो वा कुदुहिता वा इतः प्रज्ञापारमिताया धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य परेभ्यो देशयेत्, अस्य सुभूते पुण्यस्कन्धस्य असौ पौर्वकः पुण्यस्कन्धः शततमीमपि कलां नोपैति, यावदुपनिषदमपि न क्षमते।

तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु तथागतस्यैवं भवति– मया सत्त्वाः परिमोचिता इति ? न खलु पुनः सुभूते, एवं द्रष्टव्यम् । तत्कस्य हेतोः ? नास्ति सुभूते, कश्चित्सत्त्वो यस्तथागतेन परिमोचितः।

इत्याद्याह । **सुमेरवः पर्वतराजानः** इत्युपलक्षणम् । अनन्तलोकधातून् रत्नैः परिपूर्य दानेन यत् पुण्यं तदपि उपमां नैव क्षमते । **इतः प्रज्ञापारमितायाः** इत्युपलक्षणमात्रपरिदीपनेन सकलो महायानधर्मः परिलक्षितो भवति । **यावद्** इति वचनेन सहस्रतमी कला – 'शतसहस्रतमी कला .... उपमा–औपम्यमित्येतानि' संगृह्यन्ते ।[1] एवं महार्थधर्मप्रज्ञपनेन हेतुना भगवतश्चित्तसम्पदः सम्यक्सबोधेः आनुत्तर्यमवगम्यते, तथाविधसम्यक्सबोधिम् अन्तरा तथाविधधर्मदेशनाया अशक्यत्वात् ।

तस्मादेतादृक्चित्तसम्पत्सम्पादने छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यम् । सकलेनानेन कथं स्थातव्यं बोधिसत्त्वेनेति निर्दिश्यते, अनेनैवौदार्यमप्यभिहितम् । सा च सम्बोधिः तथ्यसंवृतिस्वभावा द्रष्टव्या, न तु परमार्थतः, प्रागेवोक्तत्वात्, साक्षादनुक्तमपि सामर्थ्यतः योगसमापत्तिः, चित्तप्रग्रहः गाम्भीर्यं च निर्दिष्टम् ।

४.महाववादार्थप्रज्ञप्तिः

भगवतो लोकोत्तरज्ञानावस्थायां सत्त्वसंज्ञा सर्वथा न प्रवर्तते,[2] अत्यन्तसमाहितत्वात्, अदो नाश्चर्यम् । सत्त्वेभ्यो विमुक्त्युपदेश–कालेऽसमाहितावस्थायां विशुद्धलौकिकज्ञानावस्थायामपि सत्त्वादिसंज्ञा न प्रवर्तत इति तन्निर्दिश्य अववादमहार्थत्वेन प्रज्ञप्तिहेतुना भगवतोऽनुत्तरचित्तसम्पदं

---

1 द्र.– वज्र.सू. १६ अध्या. ; तु.– अ.प्र., पृ. ३६,८०, एवं आलोकः, पृ. ३६७ ।
2 सत्त्वसज्ञा च ते नाथ सर्वथा न प्रवर्तते । –चतुःस्तवः १/९,(निरौपम्य स्तवः)

यदि पुनः सुभूते, कश्चित्सत्त्वोऽभविष्यद्यस्तथागतेन परिमोचितः स्यात्, स एव तथागतस्यात्मग्राहोऽभविष्यत् सत्त्वग्राहो जीवग्राहः पुद्गलग्राहोऽभविष्यत् । आत्मग्राह इति सुभूते, अग्राह एष तथागतेन भाषितः । स च बालपृथग्जनैरुद्गृहीतः । बालपृथग्जना इति सुभूते अजना एव ते तथागतेन भाषिताः । तेनोच्यन्ते बालपृथग्जना इति।

प्रतिपत्स्यमानां दर्शयितुं महार्थविवादमधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह। प्रश्नस्योत्तरमप्रतीक्षमाणः सपदि स्वतः **न खलु पुनः सुभूते, एवं द्रष्टव्यम्** इत्याद्याह । तस्माद् भगवतश्चित्तसम्पदस्तादृशे महार्थविवादहेतौ बोधिसत्त्वेन छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति निर्दिष्टम् ।

किं सत्त्वानां सत्त्वेऽपि संक्लेशहेतुभूततया तथा नाभिप्रेयते तथागतेन ? आहोस्वित् सत्त्वाभावादिति चिन्तयतामाशयं विज्ञाय तत्कस्य हेतोः ? इति पप्रच्छ । स्कन्धात्मकस्य पुद्गलात्मकस्य च कस्यचित् सत्त्वस्य परमार्थतोऽभावाद् एवं नोपलभ्यत इति दर्शयितुमाह– **नास्ति कश्चित् सत्त्वो यस्तथागतेन परिमोचितः** इति । अनेन बोधिसत्त्वैः कथमत्र योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यमिति तन्निर्दिष्टम् ।

अभावः कथं ज्ञातव्य इत्यत्र **यदि पुनः सुभूते** इत्याद्याह । अयमत्राभिप्रायः – यथाज्ञेयं तथागतस्य ज्ञानं प्रवर्तते, अन्यथा अप्रहीणावरणत्वेन कथं स्यात् तथागतत्वम् । तस्माद् यदि सत्त्वः स्यात् तदा सन्दृश्येत स तथागतेन, आत्मनः प्रत्यक्षोपलब्धतया विचिकित्साऽभावात् । स एव तावत्तस्य प्रगाढ आत्मग्राहः स्यात् । ततश्च आत्मग्राहहेतुतः समुत्पन्नं निखिलक्लेशजालबन्धनमप्यतिदृढं स्यात् तदा रागाद्यतिप्रगाढबद्धस्य आवरणाप्रहाणेन भगवतः तथागतपदप्राप्तिर्न स्यात् । भगवता च तत्पदं प्राप्तम्, अतः प्रहीणसकलावरणः सः । प्रहीणावरणया अशेष आत्मग्राहशिखरी विशीर्यते, तस्मात् सत्त्वाभावो न ज्ञायते ।

आत्मन्यसति किमात्मदृष्टिलक्षण आत्मग्राहो न भवति ? किमर्थं भगवता आत्मादिसंज्ञा नोच्यते ? इत्यत्र **आत्मग्राह इति सुभूते** इत्याद्याह । यदि (भगवता) आत्मादिवस्तुन एव ग्रहणं स्यात्तदा प्रहीणावरणस्य तस्य भगवत

तत्किं मन्यसे सुभूते- लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः ? सुभूतिराह- नो हीदं भगवन् । यथाहं भगवतो भाषितस्यार्थम् आजानामि, न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः ।

आत्मग्राहः समुद्भवेत्, कस्याप्यात्मग्राहस्याभावात् **अग्राह एष तथागतेन भाषितः** ।

अथ कीदृश आत्मग्राह इति ? **स च** इत्याद्याह । श्रवणादिविरहाद् हेयोपादेययोरनभिज्ञत्वाद् बालाः,[1] प्रेक्षावत्त्ववियोगाद् आर्येभ्यः पृथक्त्वाच्च पृथग्जनाः ।[2] पृथग्जना अपि केचित् सच्छास्त्रं श्रुत्वा योनिशोमनस्कारस्थिताः धर्मनैरात्म्याधिमुक्ताः सत्यमभिनिविशन्ते, तदनात्मग्राहव्यवच्छेदतो बाला इत्याह। बालमात्रकथनात् स्कन्धाद्यभिज्ञा अपि तादृशाः पृथग्जना अनुपजातार्यमार्गतया बाला एव । बालानां वैशिष्ट्यमभिधातुं व्यावृत्तेऽप्यात्मग्राहे बालत्वेन तेष्वात्मग्राह इत्यवभासते, तस्मात्तदाशयवशाद् आत्मग्राह इत्येवं निर्दिष्टम् ।

न तन्मात्रेण सत्यम्, अतिप्रसङ्गात् । अनात्मशब्दप्रयोगेणापि कथं नात्मादीनां सत्यग्रहणम्, यद्यात्मा न स्यात्तदा के तावत् पृथग्जना अभिधीयेरन्? इति विचिन्त्य **बालपृथग्जनाः** इत्याद्युक्तम् । परमार्थतस्तु अजना एव, संवृतिमाश्रित्योक्तत्वान्न दोषः ।। एभिः सर्वैरध्यारोपापवादान्तनिराकरणेन चित्तप्रगृहीतत्वं दर्शितम् । अनेन सर्वेण तावत् साक्षाद् गाम्भीर्यं प्रोक्तम् । अशेषसत्त्वधातुभ्यो महार्थाववादप्रज्ञप्तेर्हेतुत्वदर्शनेन चित्तसम्पद औदार्यमपि निर्दिष्टम् ।

५.धर्मकायपरिग्रहणम् :

यदि बालपृथग्जनाः न स्युः, कथं तथागतस्य लक्षणानुव्यञ्जनैरलङ्कृताः कायसम्पदः सम्भवेयुः ? पृथग्जनाः स्वकरुणामूलकबोधिचित्तमुत्पाद्य पारमितासु प्रयतन्ते(ततश्च) लक्षणादिभिरलङ्कृतास्तथागतकायसम्पत्तिवन्तो भवन्ति, तदभावे मूलाभावात् कथं भवेयुः तादृश्यस्तथागतकायसम्पद इति ? ये पारिषद्याः -

---

1 सांक्लेशिकधर्मयोगाद् बालाः । -आलोकः, पृ. ३२५; द्र.- आलोकः, पृ. ३०२ ।

2 वैयवदानिकधर्मविरहात् पृथग्जनाः । -आलोकः, पृ. ३२५; द्र.- आलोकः, पृ. ३०२

भगवानाह– साधु साधु सुभूते, एवमेतत्सुभूते, एवमेतद्यथा वदसि । न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः । तत्कस्य हेतोः ? सचेत्पुनः सुभूते, लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्योऽभविष्यत्, राजापि चक्रवर्ती तथागतोऽभविष्यत् । तस्मान्न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः । आयुष्मान् सुभूतिर्भगवन्तमेतदवोचत्– यथाहं भगवतो भाषितस्यार्थमाजानामि, न लक्षणसंपदा तथागतो द्रष्टव्यः ।

कृतानल्पविकल्पाः रूपादिषु भावाभिनिवेशेनैवं चिन्तयन्ति, तेभ्यो धर्मकायपरिग्रहमधिकृत्य **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह । पूर्वं[1] धर्मकायतया न व्यवस्थापिताम्, इदानीं धर्मकायं व्यवस्थापयितुमुक्तत्वान्न पुनरुक्तिदोषः ।

लक्षणसम्पदा तावत् परमार्थविचारणायामवयविनः परमाणुसंघातस्य वा स्वभावेनानुपपत्तिं विदित्वा पूर्वकमेवाभिप्रायं गृह्णन् **सुभूतिराह नो हीदम्** । एवमेव उपपत्त्यन्तरं भगवता **सचेत् पुनः सुभूते** इत्यादिनोक्तम् ।

यदि तथागतो लक्षणसम्पन्मात्रेण प्रभावितः स्यात् तदा वक्ष्यमाणहेतुना तुल्यत्वाद् राजापि चक्रवर्ती कथं न भवेत् तथागतः ?[2] ननु स्थानस्थोत्तप्तपूर्णत्वेन विशिष्टा भगवतो लक्षणसम्पद्,[3] न तु चक्रवर्तिनः, ततः स नोच्यते तथागत इत्यपि न युज्यते, स्थानस्थादिविशेषस्यापि जडस्वभावत्वे नास्ति कश्चिद् विशेषः । तेन यदि तथागतो जडस्वभावैर्लक्षणादिधर्मैः प्रभावितोऽभविष्यत् तदा **चक्रवर्ती अपि तथागतोऽभविष्यत्** इति चेत् ? न, तस्मात्तथागतस्तावद् अशेषवस्तुस्वभावस्य यथावदधिगममात्रेण प्रभावित इत्यभिप्रायः । अनेन तथाविधं ज्ञानहेतुकं तथागतकायं प्रति बोधिसत्त्वेन छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति निर्दिष्टम् ।

अधुना परमार्थतस्तत्तथागतज्ञानेऽपि नाभिनिवेष्टव्यमिति दर्शयितुं धर्मकायो

---

1 द्र.– वज्र.सू., ५ अध्या. ।

2 न चैव रूपकायेन सोऽनुमेयस्तथागतः ।
धर्मकायो यतश्चक्रवर्ती माभूत्तथागतः ॥ –त्रि.प्र.का. ६२ का. ।

3 "देशस्थोत्तप्तपूर्णत्वैर्लक्षणातिशयो मुनेः ।" देशस्थतराणि बुद्धानां लक्षणानि, उत्तप्ततराणि, सम्पूर्णतराणि च – इत्येष तेषां विशेषः । – अभि.को. ३/९६, पृ. ५५३, बौ.भा.प्र. १९८७ ; द्र.– आलोकः, पृ. २९९ ।

अथ खलु भगवांस्तस्यां वेलायामिमे गाथे अभाषत–

ये मां रूपेण चाद्राक्षुर्ये मां घोषेण चान्वयुः ।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जनाः ॥ १ ॥
धर्मतो बुद्धा द्रष्टव्या धर्मकाया हि नायकाः ।
धर्मता च न विज्ञेया न सा शक्या विजानितुम् ॥ २ ॥

व्यवस्थाप्यते । बोधिसत्त्वेन कथं योगसमापत्त्या प्रतिपत्तव्यमिति द्वाभ्यां गाथाभ्यां प्रदर्श्यते ।

तत्र पूर्वगाथया कथं तथागतो न द्रष्टव्यः, कैश्च न दृश्यत एतन्निर्दिष्टम् । कथं न द्रष्टव्य इति चेत् ? दर्शनादिव्यवहारप्रज्ञप्त्या । के न पश्यन्तीति चेत् ? मिथ्याप्रहाणप्रसृताः । **रूपेण चाद्राक्षुः** इत्यनेन रूपेऽभिनिविष्टाः पुद्गलाः पारमार्थिकलक्षणादिभिरलङ्कृतं धर्मरूपं पुद्गलरूपं च पश्यन्तीति व्यवहारप्रज्ञप्तिर्निर्दिष्टा । **घोषेण चान्वयुः** इति मां शब्देन एवमेव स तथागत इति ज्ञातवन्त इत्यर्थः । अनेन श्रवणव्यवहारप्रज्ञप्तिर्निर्दिष्टा। उपलक्षणमात्रमिमौ व्यवहारौ । तेन विशेषभेदो विज्ञानं चापि संगृहीतम् ।

मिथ्याप्रहाणप्रसृतास्ते जनाः तावद् वितथमार्गस्थितत्वान्न मां सम्यग् रूपेण द्रक्ष्यन्ति ।[1] प्रहीयतेऽनेनेति प्रहाणं मार्ग इत्युच्यते, तच्च विपरीतत्वान्मिथ्या । तदप्यदर्शनहेतुः ।

अथ कथं बुद्धा द्रष्टव्या इत्यत्र **धर्मतः** इत्याद्याह । धर्माणां यो ह्यकृत्रिमः स्वभावः, स 'धर्मता' इत्युच्यते । सा च युक्त्यागमाभ्यां सिद्धत्वादादितः शान्तादिस्वभावा । सैव तथता, धर्मधातुः, भूतकोटिः, अनिमित्तं परमार्थश्चेत्यादिपर्यायैरुच्यते ।[2]

सर्वत्र तथाभावात् 'तथता', तदालम्बनेन सर्वे बुद्धधर्माः सम्भवन्ति । तद्धेतुभूतत्वाद् 'धर्मधातुः' । अविपरीतत्वाद् भूतः, तत्पर्यन्तत्वाद् भूतकोटिः ।

---

1 रूपानुश्रवमात्रेण न बुद्धज्ञः पृथग्जनः ।
तथताधर्मकायो हि यतोऽविज्ञानगोचरः ॥ –त्रि.प्र.का., ६४ का. ।

2 द्र.– आलोकः, पृ. २५३ ; बौ.चं., ९/२, पृ. १७१, मि.सं. ।

तत्किं मन्यसे सुभूते, लक्षणसंपदा तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा ? न खलु पुनस्ते सुभूते, एवं द्रष्टव्यम् । तत्कस्य हेतोः ? न हि सुभूते, लक्षणसंपदा तथागतेन अनुत्तरा सम्यक्संबोधिरभिसंबुद्धा स्यात् ।

तत्र नीलादिसर्ववस्तुनिमित्तानामभावाद् अनिमित्तं । परमस्य ज्ञानस्य गोचरत्वात् परमार्थः । किमिति सा धर्मतया द्रष्टव्येत्यत्राह– **धर्मकायाः** इति ।[1] स्वभावार्थः कायशब्द उच्यते । तेनायमर्थः – सम्यग्ज्ञाननिबन्धना ये तथागतेषु व्यवस्थापितास्ते परमार्थतो धर्मस्वभावाः । यो यत्स्वभावः, स तत्स्वभावेन द्रष्टव्यः, न त्वन्यस्वभावेन । यद्येवं तर्हि धर्मता प्रकाशस्वभावा भवेत्, अन्यथा कथं तल्लक्षितास्ते द्रष्टुं शक्यन्त इति विचार्य **धर्मता** इत्याद्याह ।

किमशक्यत्वाद् अपरिज्ञेया अथवा परिज्ञाने दोषसद्भावादिति विचिन्त्य **न शक्या** इत्याद्याह । धर्मिस्वभावे सिद्धे तद्धर्मता विज्ञातुं शक्यते, यदा धर्मिस्वभाव एव कश्चित् परमार्थतो न सिद्धस्तदा कथं सा धर्मताऽपि विज्ञातुं शक्यते केवलया स्वसन्तत्या । नास्ति सा केवलेत्यभिप्रायः ।

यद्येवं सम्यग्ज्ञानस्वभावानां बुद्धानामपि धर्मिणां परमार्थतोऽसिद्धत्वान्न स्याद् दर्शनम्, तत्कथं धर्मता द्रष्टव्येति चेत् ? नैष दोषः । ये परमार्थतः सर्वधर्मिणो न पश्यन्ति त एव धर्मतां पश्यन्ति । धर्मता तावदनुत्पन्नस्वभावा, सा कथं तद्विपरीतोत्पादग्रहणेन ग्राह्या, न हि घटग्रहणेन तदनुत्पादग्रहणम् । अनेन तथागतो न रूपकायेन द्रष्टव्यः, अपि तु धर्मकायेन द्रष्टव्य इत्येतन्निर्दिश्यते ।

असत्यपि तथागतस्य लक्षणसम्पत्स्वभावत्वे युज्यत एव लक्षणसम्पद्धेतुकं तथागतस्यानुत्तरसम्यक्सम्बोधिलक्षणम्, गणकैः (लक्षणज्ञैः) बोधिसत्त्वस्य लक्षणसम्पदं द्रष्ट्वा भगवान् अनुत्तरसम्यक्सम्बोधौ व्याकृत इति

---

1 धर्मकाया बुद्धा भगवन्तः । मा खलु पुनरिमं भिक्षवः सत्कायं कायं मन्यध्वम् । धर्मकायपरिनिष्पत्ततो मां भिक्षवो द्रक्ष्यथ, एष च तथागतकायो भूतकोटिप्रभावितो द्रष्टव्यो यदुत प्रज्ञापारमिता । –अ.प्र., ४अध्या., पृ. ४८ ; न तथागतो रूपकायतो द्रष्टव्यः । धर्मकायास्तथागताः । –अ.प्र., ३१अध्या., पृ. २५३ ।

न खलु पुनस्ते सुभूते, कश्चिदेवं वदेत्– बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितैः कस्यचिद्धर्मस्य विनाशः प्रज्ञप्त उच्छेदो वेति । न खलु पुनस्ते सुभूते, एवं द्रष्टव्यम् । तत्कस्य हेतोः ? न बोधिसत्त्वयान–संप्रस्थितैः कस्यचिद्धर्मस्य विनाशः प्रज्ञप्तो नोच्छेदः ।

येषां संशयः, तत्परिहारार्थं **तत्किं मन्यसे सुभूते** इत्याद्याह। यदि लक्षणसम्पद् अनुत्तरसम्यक्सम्बोधेर्हेतुः स्यात् तदा चक्रवर्तिनोऽपि स्यादित्यभिप्रायः । गणकैस्तावत् तथाविधं लक्षणमात्रं द्रष्ट्वा व्याकृतम्, न तु हेतुमित्यदोषः ।

अनेन चित्तप्रग्रहीतत्वं निर्दिष्टम् । अनेन तावत् सकलेन स्थानेन गाम्भीर्यं दर्शिताम् । संवृतौ चाशेषवस्तुस्वभावाधिमगलक्षणस्य तथागतज्ञानस्य निर्देशेन औदार्यमपि निर्दिष्टम् ।

६.संसारे निर्वाणे चाप्रतिष्ठानम् : (अ) निर्वाणेऽप्रतिष्ठानम्

परमार्थतः सर्वधर्माणामभावाद् यदि सा धर्मता विज्ञातुं न शक्यत इति चेत् तत उच्छेदवादी भवान् स्यात् । ततश्च तथागतस्याप्यभावाद् अप्रतिष्ठितनिर्वाणमपि न सिध्यतीति यदाशङ्कितं तदर्थं संसारनिर्वाणयोः अप्रतिष्ठानमधिकृत्य **सुभूते ... एवं .... बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितैः ...** इत्याद्याह । न च भूतविनाशोऽपि प्रज्ञप्तः,[1] धर्मताया यथावदवबोधात् । अत एव चोक्तम्[2] –

नापनेयमतः किञ्चित् प्रक्षेप्तव्यं न किञ्चन ।
द्रष्टव्यं भूततो भूतं भूतदर्शी विमुच्यते ॥

अनागते धर्मप्रवृत्तिप्रतिबन्धकत्वेन उच्छेदोऽपि न प्रज्ञप्तः, यथाभूतधर्मताया देशनात् । सर्वे धर्मा अविचाररमणीयतया यथाभूतैः प्रत्ययैरुत्पद्यमाना अभ्युपेयन्ते, अतो भगवता बुद्धेन तथ्यसंवृतिस्वभावायाः महाकरुणाया निर्माणादौ अधिपतित्वमादाय पुनर्विनेयेभ्यो यथावदुपायोपदर्शनेन

---

1 भावमभ्युपपन्नस्य नैवोच्छेदो न शाश्वतम् ।
उदयव्ययसन्तानः फलहेत्वोर्भवः स हि ।. –म.शा., २१/१५ ।

2 अभि.अ., ५/२१ ।

यश्च खलु पुनः सुभूते, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा गङ्गानदीवालुका समांल्लोकधातून् सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च बोधिसत्त्वो निरात्मकेष्वनुत्पत्तिकेषु धर्मेषु क्षान्तिं प्रतिलभेत, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसवेदप्रमेयमसंख्येयम् ।

निरवच्छिन्नसंसारप्रवाहोऽभ्युपेयते । अनेन भगवतो निर्वाणेऽप्रतिष्ठिततत्वं निर्दिष्टम्। तथाविधे भगवत्काये छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति तदपि निर्दिष्टम् ।

(ब)संसारेऽप्रतिष्ठानम् :

यद्येवं भगवान् संसारप्रवृत्तिमभ्युपैति, तदा संसर्ता एव भवतीति विकल्प्य संसारेऽप्रतिष्ठितत्वं दर्शयितुं **यश्च खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । **निरात्मकेषु** इति मायावत् परतन्त्रत्वात्, न स्वत आत्मभावः, नित्यस्य क्रमाक्रमाभ्यां हेतोर्विरोधात्, अहेतुकस्य अकिञ्चित्करत्वात् । स्वपरयोर्नाधिष्ठानमपि, अधिष्ठातुरेवासम्भवात्, तस्मात् सर्वधर्मास्ते उभयविधाः निरात्मकाः ।

यथोक्तम्[1] : **"आत्मा आत्मेति भिक्षवो बालोऽश्रुतवान् पृथग्जनः प्रज्ञप्तिमनुपतितः, न त्वत्रात्मा वा आत्मीयं वा ।"** अनेन सर्वधर्मेषु पुद्गलनैरात्म्यक्षान्तिः सन्दर्शिता । अनुत्पत्तिकेषु इत्यनेन धर्मनैरात्म्य-क्षान्तिनिर्दिष्टा ।

यदि भावानामुत्पादो भवेद्, अहेतुको वा भवेत्, सहेतुको वा ।[2] सहेतुकेऽपि नित्यहेतुको वा अनित्यहेतुको वेति विकल्पद्वयम् । तत्र न तावत्

---

1 अभि.को. ३/२८, पृ. ४६२, (उद्धृतम्) बौ.भा.प्र. १८८७ ।

2 उत्पादो वा भावानामहेतुको वा स्यात् सहेतुको वा, न तावद् अहेतुकः कादाचित्कत्वदर्शनात् । कारणानपेक्षा हि विशेषाभावाद् उत्पादकालवत् सदा सर्वत्रैव च भावाः किं न भवेयुः । अभावकालाद् अविशेषाद् वा उत्पादकालेऽपि नैव भवेयुः । एवं तावन्न निर्हेतुको युक्तः । द्र0– भा.क्र. १, पृ. १७७, ति.सं.सं., १९८५ ।

प्रथमो विकल्पः कादाचित्कत्वप्रतीतेः । निरपेक्षस्य सदसदवस्थासमत्वेन सर्वत्र निर्विशिष्टत्वात् नित्यं सत्त्वमसत्त्वं वा स्यात् ।[1]

अतश्च कादाचित्कत्वसम्भवाद् द्वितीयोऽपि पक्षस्तावन्न युज्यते ।[2] नित्यस्य इतरैः सहकारिभिस्तावन्न कश्चित् सामर्थ्यविशेषः क्रियते । कुत्रचिदप्यनपेक्षः सन् किमिव क्रमेण कार्यमुत्पादयेन्न युगपदिति । कारणेऽविकले न कादाचित्ककार्यतिरोधानं युज्यते । कथं क्रमेणोत्पादः स्यादिति ।

ये स्वहेतुं भावानां वदन्ति, तेऽप्यर्थतोऽभावादेवाभ्युपगच्छन्ति । स्वभावे सिद्धे हेतुरपि स्यान्न त्वसिद्धे, सर्वसामर्थ्यविरहलक्षणत्वात्तस्य । स्वभावे सिद्धे तस्याहेतुकसिद्धिरेवाभ्युपगता स्यात्, तदितरान्यहेतौ चानभीष्टे कथं न निर्हेतुकः स्यात् । न भावः स्वभावाद् भिन्नः । अतः सिध्यति तत्सिद्धे, (फलतः) अहेतुक एव स्यात् । अन्यथा तत्सिद्धेऽप्यसिद्धत्वात् कथं तदभिन्नस्वभावत्वम्। ततो योऽहेतुवादी पक्षो निरस्तः, स अत्रापि तुल्यः ।

न तावद् युज्यते तृतीयपक्षोऽपि समानासमानकालयोः कारणत्वविरोधात्।[3] तथा हि, हेतौ सति स फलेन (कार्येण) समानकालो वा भवेद् भिन्नकालो वा? न तावत् समानकालात्, स्वयमप्राप्तात्मस्वभावस्य सर्वसामर्थ्यशून्यत्वात् कुत्रापि फले योगाभावात् । आत्मस्वभावे च (प्राप्ते) तत्स्वभाववत् फलस्यापि तत्समानकालभावितया आत्मस्वभावत्वमेव । न तत्र फलं युज्यते ।

---

1 नित्यं सत्त्वं असत्त्वं वाऽहेतोरन्यानपेक्षणात् ।
अपेक्षातश्च भावानां कादाचित्कस्य सम्भवः ॥ –प्र.वा. ३/३५, बौ.भा.प्र. १९६८ ।

2 नापि सहेतुकः । तथा हि यस्तावदीश्वरादिस्तीर्थिकैर्नित्यो हेतुः कल्पितस्ततो भावा न जायन्ते क्रमेणोत्पाददर्शनात् । न त्वविकलकारणस्य (फलस्य) क्रमेणोत्पादो युक्तो निरपेक्षत्वात् । –भा.क्र. १, पृ. १७७–१७८, ति.सं.सं. १९८५ ।

3 नाप्यनित्यात्तत्रातीतानागतयोरवस्तुत्वान्न तावत्ततो जन्म युक्तम् अहेतुकत्वप्रसङ्गात् । नापि वर्तमानात्, समानासमानकालयोस्तत उत्पादायोगात् । तथा हि न तावत् समानकालं कारणं स्वभाववत् कार्यस्यापि तत्समानकालभावितया निष्पन्नत्वात् । –भा.क्र. १, पृ. १७८ ।

भिन्नकालेऽपि तावत् तदितरकालव्यवधानेन वा भवेद्, यथा– वैभाषिकैर्विपाकहेतुरिष्यते, तथा । अथवा अव्यवधानेन वा भवेद्, यथा[1]– सौत्रान्तिकैः कार्यकारणयोरुत्पादविनाशौ 'तुलादण्डोन्नामावनामवद्' उच्येते तथा स्यादिति ? तत्र तदितरकालव्यवधानेन फलोत्पादे सति विनाशादेवोत्पादः अभ्युपगम्येत,[2] सर्वसामर्थ्यविरहितत्वात्तस्य विनाशस्य न युज्यते हेतुभावत्वम्, अन्यथा अकारकस्य विनष्टवस्तुनो विनाशात् कथं (उत्पादः) भवेत् ।

अव्यवधानेनेति पक्षेऽपि यदि सर्वात्मना अव्यवहितस्तदा तदेव समकालत्वं स्यात् । निरवयवयोर्द्वयोर्वस्तुनोः सर्वात्मना अव्यवहितत्वे एककालत्वातिरिक्ता नान्या गतिः । तस्मात् सर्वात्मना अव्यवहिते सति पूर्वं यथा अणुमात्रकम् (इति प्रसक्तम्), तथैव कल्पस्यापि क्षणमात्रकत्वं दुर्निवारम् ।[3]

एकदेशेन चाव्यवहिते सावयवत्वं प्रसज्यते, अतः परमार्थतः सर्वे भावा अनुत्पन्ना एव ।[4] अविचाररमणीया मिथ्यात्वेनोत्पन्ना इव प्रतीयन्त एव, यथा भ्रान्तिज्ञाने प्रतिभासस्वभावाः । (यदि) न स्यात् प्रसिद्धमात्रं प्रमाणं (तदा) 'कार्यकारणयोरागोपालं प्रसिद्धत्वान्न युज्यते विमर्शः' इति वादः कथं युज्येत, प्रसिद्धस्य रूपादेः प्रमाणतः विशीर्णत्वात् । तस्मादुक्तं भगवता **चन्द्रप्रदीपसूत्रे (समाधिराजसूत्रम्)**[5]–

न चक्षु प्रमाणं न श्रोत्रघ्राणं न जिह्वा प्रमाणं न कायचित्तम् ।
प्रमाणं यद्येत भवेयुरिन्द्रियाः कस्यार्यमार्गेण भवेत् कार्यम् ॥

---

1 अपि च बीजं च निरुध्यते, तस्मिन्नेव समये अङ्कुर उत्पद्यते "तुलादण्डोन्नामावनामवत्" । – शालि.सू. (म.सू.सं.) पृ. १०२, दरभंगा सं. १९६१ ।

2 नापि भिन्नकालम्, कालान्तरव्यवधानेनोत्पादेऽतीतादेरेवोत्पत्तिप्रसङ्गात् । –भा.क्र. १, पृ. १७८ ।

3 अव्यवधानेनाप्युत्पादे सर्वात्मना यद्यव्यवधानं तदैकस्मिन्नेव क्षणे सर्वक्षणानाम् अनुप्रवेशात् कल्पस्य क्षणमात्रताप्रसङ्गः । यथा परमाणोः सर्वात्मना संयोगे पिण्डस्याणुमात्रताप्रसङ्गः । –भा.क्र. १, पृ. १७८

4 अथैकदेशेन, तदा क्षणस्य सावयवत्वप्रसङ्गः । स्वतोऽपि नोत्पद्यन्ते, निर्हेतुकपक्षेणैवास्य पक्षस्य सङ्गृहीतत्वात् स्वात्मनि च कारित्रविरोधात् । –भा.क्र. १, पृ. १७८ ।

5 समाधिराजसूत्रम् ९/२३–२४

यस्मादिमे इन्द्रिय अप्रमाणा जडा स्वभावेन अव्याकृतश्च ।
तस्माद् य निर्वाणपथैव्र अर्थिकः स आर्यमार्गेण करोतु कार्यम् ।।

यत्प्रत्यक्षलक्षणमाहुराचार्यास्तच्च प्रत्यक्षं संवृतितः, परमार्थेऽवतारणाय द्रष्टव्यम् । न च संवृतौ न समानपर्यनुयोगः, ततस्तस्य संवृतावुक्तत्वान्न परीक्षणं क्षमते । अतो भगवता शालिस्तम्बादिषु भावानां स्वपरोदयो निषिद्धः ।[1] तथोक्तम् **आर्यलङ्कावतारे**[2] –

"सदसतोरुत्पत्तिविरहितत्वान्महामते, सर्वधर्मा अनुत्पन्नाः ।"

विस्तृतप्रज्ञापारमि...सु चोक्तम् – **"सुभूते, न कश्चिद् धर्म उत्पन्नः, सा (अपि) अनुत्पन्ना"** तत्र या प्रज्ञा, साऽनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिरित्युच्यते ।

तथोक्तं **रत्नाकरनाम(महायान)सूत्रे**[3] –

स्व एव यदा नास्ति परो हेतुः कथं भवेत् ।
स्वाभावात् कथमुत्पादः परस्मात् सुगतोऽवदत् ।।

अपि च,[4]

भावा जायन्ति संवृत्या परमार्थेऽस्वभावकाः ।

यद्येतत् सर्व परिकल्पितस्वभावमधिकृत्योक्तमिति चेत् ? न, सर्वस्वभावानां प्रमाणतो निराकृतत्वात् । अनेनापरोऽल्पकुशलमूलोऽपि (जनो यदा) संसारदुःखं नानुभवति, (तदा) अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्राप्तत्वात् महाज्ञानालोकोदया लब्धानुत्तरपुण्यस्कन्धा बोधिसत्त्वाः कथं संसारदुःखम् अनुभवेयुरित्येवमावेदितम् ।

---

1 द्र.– शालि.सू., पृ. १०२, (म.सू.सं.) १९६१ । ;
अपि च तुलनीयम्–
न स्वतो जायते भावः परतो नैव जायते ।
न स्वतः परतश्चैव जायते जायते कुतः ।। –म.शा., २१/१३

2 लं.सू., १२७ का., पृ. २७, दरभंगा संस्करणम् ।

3 Toh: 124 Sde bka (Mdo Sde, Tha p. 285).

4 भावा जायन्ति संवृत्या परमार्थेऽस्वभावकाः ।
तदा सर्वमिदं सत्यमसत्यं परमार्थतः ।।
–लं.सू. १०/४२९ ; उद्धृतम्– आलोकः, पृ. ४०८ ।

न खलु पुनः सुभूते, बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेन पुण्यस्कन्धः परिग्रहीतव्यः । आयुष्मान् सुभूतिराह– ननु भगवन् बोधिसत्त्वेन पुण्यस्कन्धः परिग्रहीतव्यः । भगवानाह– परिग्रहीतव्यः सुभूते, नोद्ग्रहीतव्यः । तेनोच्यते परिग्रहीतव्य इति ।

द्विविधो हि संसारदुःखस्यानुभवः– कायिको दौर्मनस्यलक्षणश्च । तत्र पूर्वकस्तु पापकर्मणः फलम्, अपरस्तु मोहजः, विपर्यस्तज्ञानसम्भूत एव । तत्रानुत्पन्नेषु धर्मेषु क्षान्तिप्राप्त्या बोधिसत्त्वेषु नास्त्युभयविधो दुःखहेतुः, पापं मोहश्चेति । अकारणान्न सम्भवति दुःखस्पर्शीविहारः ।[1] अनेन कथं बोधिसत्त्वेन प्रतिपत्तव्यमिति देशितम् ।

उत्पादितबहुतरपुण्यस्कन्धा रूपावचरादिसत्त्वा इव किं (ते) संसार एव न भवन्ति ? कथं वा बहुतरपुण्यस्कन्धोत्पादमात्रेण संसारेऽप्रतिष्ठितत्वं सन्दर्शितमित्याशङ्क्य **पुनः सुभूते** इत्याद्याह ।

अनेन तावद् उत्पन्नपुण्यस्कन्धेऽपि तेषां मिथ्याभिनिवेशेन पुण्यस्कन्धपरिग्रहस्य सर्वसंक्लेशमूलविपर्यासस्याप्रहीणत्वम्, अतः (ते) विशिष्टगतिं प्राप्ता अपि संसारे व्यवस्थाप्यन्ते, बोधिसत्त्वानां तु अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिप्राप्तेः पुण्यस्कन्धेषु नास्ति सत्याभिनिवेशः, अतस्तेषां सर्वसंक्लेशमूलसंमोहस्य प्रहीणत्वान्न संसारेऽवस्थानमित्येवं निर्दिश्यते । परविकल्पनिराकरणार्थमार्यसुभूतिरविदिताभिप्राय इव **ननु परिग्रहीतव्यः** इति विपरीतमभ्यधात् ।

तदयमाशयः– तत्तत्सूत्रेषु भगवता 'बोधिसत्त्वः पुण्यस्कन्धं परिगृह्णाति' इत्युक्तम् । अत्र **न परिग्रहीतव्यः** इति वचनेन कथं न विरोध इति ? भगवानपि येनाभिप्रायेणोक्तवान् तदुभयमपि दर्शयितुमाह– **परिग्रहीतव्यः** इति । परिग्रहीत इति यदाह तत्तु परिग्रहलक्षणनय उपसंहारलक्षणः ।

विपरीतग्राहकलक्षणनिराकरणेन नात्र विरोधः । वितथमार्गग्राहकत्वं विपरीतग्रहणमित्यनेन तद्विकल्पप्रहाणाच्चित्तप्रग्रहणं दर्शितम् । **यश्च खलु** –

1 स्पर्शः सुखम्, तेन संहितो विहारः स्पर्शीविहारः, न स्पर्शीविहारः 'अस्पर्शीविहारः' दुःखसहित इत्यर्थः । –वि.मा.सि., पृ. २०४, सं.सं.वि.वि. संस्करणम् ।

अपि तु खलु पुनः सुभूते, यः कश्चिदेवं वदेत्– तथागतो गच्छति वा आगच्छति वा तिष्ठति वा निषीदति वा, शय्यां वा कल्पयति, न मे सुभूते, स भाषितस्यार्थमाजानाति । तत्कस्य हेतोः ? तथागत इति सुभूते, उच्यते न क्वचिद्गतो न कुतश्चिदागतः । तेनोच्यते तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति ।

पुनः सुभूते, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इत्यतः प्रारभ्य औदार्यमुक्तम्, अवशिष्टपूर्वभागैर्गाम्भीर्यं निर्दिष्टम् । एतेन सकलेन स्थानेन शाश्वतोच्छेदान्तं परिहत्य मध्यममार्गो देशितः, निर्दिष्टं च संसारे निर्वाणे चाप्रतिष्ठितत्वम् ।

७.प्रस्थिति–परिशुद्धिः

प्रस्थितिः परिशुद्धिरुच्यते । त्रिविधस्तस्याः प्रभेदः – १. ईर्यापथेन प्रस्थितिः, २. सत्त्वभाजनलोकाधिपत्येन प्रस्थितिः, ३. असंक्लेशेन प्रस्थितिश्च ।

१.ईर्यापथेन प्रस्थितिः

तत्र यदि बुद्धो द्रष्टव्यो धर्मकायेन, न तु रूपकायेन, तदा भगवतश्चतुरीर्यापथेन जन्माभिनिष्क्रमणादिना चागमप्रसिद्धेन कथं न विरोध इति यो मन्यते तदर्थं प्रस्थानसम्पद ईर्यापथेन प्रस्थितिमधिकृत्य **अपि तु खलु पुनः सुभूते यः कश्चिद्** इत्याद्याह ।

गच्छति वा आगच्छति वा इत्येतद्द्वयेन चङ्क्रमणम्, **तिष्ठति** इत्यादिभिः क्रमेणावशिष्टा ईर्यापथा उक्ताः ।[1] ईर्यापथनिर्देशस्तूपलक्षणमात्रम् तेन जन्मादीनामप्यत्र निर्देशो द्रष्टव्यः । भगवत आगमेन परिदीपितानामीर्यापथादीनां यः सम्यक्तया शब्दशोऽभिनिवेशस्तस्य विपरीताभिनिवेशान्न जानाति तथागतेन भाषितस्यार्थम् ।[2]

---

1 न च कुलपुत्र, धर्मता आगच्छति वा गच्छति वा । एवमेव कुलपुत्र, नास्ति तथागतानामागमनं वा गमनं वा । तु.–अ.प्र., पृ. २५३

2 .... ये मां घोषेण चान्वयुः ।
मिथ्याप्रहाणप्रसृता न मां द्रक्ष्यन्ति ते जनाः ॥
–वज्र.सू., २६ अध्या. पृ. ४१, ति.सं. संस्करणम् ।

यश्च खलु पुनः सुभूते, कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा यावन्ति त्रिसाहस्रमहासाहस्रे लोकधातौ पृथिवीरजांसि, तावतां लोकधातूनाम् –

न च भगवान् रूपकायेन प्रभावितः, असौ तु ज्ञानपरिशुद्धः, तस्यामूर्तत्वाज्ज्ञानस्य संवृतावपि गत्यादयो न सम्भवन्ति । गत्यादयस्तु रूपस्कन्धस्य स्थानविशेषप्रभावितत्वात् । ते च भगवतो निर्माणकायमाश्रित्योक्ताः, न च ज्ञानकायमाश्रित्य, तत्र संवृतितः परमार्थतो वा गत्यादीनामसम्भवात् । **तस्माद्** एवंविधायां ईर्यापथप्रास्थितौ **बोधिसत्त्वेन छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति** सन्दर्शितम् ।

यदि तथागते गत्यादयो न संविद्यन्ते (तर्हि) कथं **तथागतः** इति गत्या प्रभावित इवोच्यत इति चित्ताशयं वितर्क्याह– **तत्कस्य हेतोः ?** इति । **न मे स भाषितस्यार्थमाजानाति** इत्यनेन योजनीयम् । अत्रोत्तरार्थं **तथागतः** इत्याद्याह ।

एवमभिप्रेयते– व्यपदेशोऽयं न गत्या प्रभावितः, अपि तु अधिगमेन प्रभावितः, गतः इत्यस्याधिगत्यर्थकत्वात् । वस्तुतत्त्वं यथास्थितिः, तथैवाधिगम्यते, अधिगतत्वात् तथागतः । अथवा पूर्वकैर्बुद्धैर्यथा वस्तुतत्त्वमधिगतमविपर्ययेण तथैवानेनाप्यधिगतमित्यधिगतत्वात् तथागतः । स च तथ्यसंवृतौ ज्ञानकायत्वेन युज्यते, न चान्यत्राविकल्पितत्वात् । तच्च गमनादि क्वचित् संवृतावपि न सम्भवति, अमूर्तत्वात् । परमार्थे तु न सम्भवतितराम्, अनुत्पन्नत्वात् । ततः स वस्तुस्वभावाधिगत्या समस्तलोकस्य ज्येष्ठत्वात् पूजनीयत्वात् **अर्हन्** इत्युच्यते,[1] **सम्यगवबुद्धत्वात् सम्यक्सम्बुद्धः** इत्युच्यते,[2] अन्यथात्वेन जडस्वभावेन रूपकायस्तु तथा नोच्यत इति भावः ।

अनेन योगसमापत्तिः चित्तप्रग्रहश्च सन्दर्शितः । अनेन तावत् सकलस्थानेन गाम्भीर्यं निर्दिष्टम् । संवृतौ तथागतस्य निर्माणकायमाश्रित्य अनन्तलोकधातुषु अप्रतिहतगमनादिप्रदर्शनेन औदार्यमपि प्रदर्शितम् ।

---

1 द्र.– आलोकः, पृ. २७३ ।

2 द्र.– आलोकः, पृ. ३५१ ।

एवंरूपं मषिं कुर्यात् यावदेवमसंख्येयेन वीर्येण तद्यथापि नाम परमाणुसंचयः, तत्किं मन्यसे सुभूते– अपि नु बहुः स परमाणुसंचयो भवेत् ? सुभूतिराह– एवमेतद् भगवन्, एवमेतत् सुगत, बहुः स परमाणुसंचयो भवेत् ।

२.(अ) भाजनलोकाधिपत्येन प्रस्थितिः

यस्तथागतस्य निर्मितरूपकायः, यश्च मनोमयकायः, तस्यापि एकानेकस्वभावविसंयोगान्मायानिर्मितबुद्धवत् मृषात्वं दर्शयितुं भाजनसत्त्वलोक–भावविगमात् प्रस्थितिमधिकृत्य **यश्च खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह । पूर्वं त्वधिमुक्तिचर्याभूमौ बोधिसत्त्वस्याभावो दर्शितः, सम्प्रति बुद्धभूमौ भगवतः प्रस्थितिदर्शनान्न पुनरुक्तिः ।

अत्र पुनर्द्विविधेनोपायेन एकानेकस्वभावावियोगावबोधान्नैरात्म्यं दर्शितम् । **तद्यथापि नाम मषिं कुर्यात्....परमाणुसञ्चयः**[1] इत्यनेन एकानेकस्वभाववियोगावगमेन तनूकरणोपायो दर्शितः । अत्रापि पूर्ववद् व्याख्यानं (वेदितव्यम्) । ननु दिग्भागभेदेन परमाणवोऽसिद्धाः (तदा) कथं ते सञ्चिताः? इति सञ्चिन्त्य **तत्कस्य हेतोः?** इत्याशङ्क्योत्तरमाह (परिहरन्नाह)– **सचेद् भगवन्** इति विज्ञाय एकत्वग्राहकनिवृत्त्युपायार्थमेव परमाणुप्रभेदेन (यः) सञ्चयः स उक्तो न तु परमार्थतोऽनवस्थितत्वात्, अन्यथा परमाणुसञ्चयः सर्वत्र प्रत्यक्षत्वेन प्रसिद्धः चेत । तस्मात् **न भगवानवक्ष्यत् परमाणुसञ्चय इति** अभाषितेऽप्येवमाख्यातत्वात् । अनेन तथागतस्य रूपाभावत्वेन तादृश्यां स्थितौ छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति देशितम् ।

यदि नु स्यात् सञ्चयः (तदा) **अपि नु बहुः स परमाणुसञ्चयो भवेत् ?** इति कस्माद् भगवानवक्ष्यदित्याशयं विदित्वा **तत्कस्य हेतोः?** इत्याह । **असञ्चयः सः** इति पूर्वोत्तरादिदिग्भागभेदेन अवस्थितानां तेषां परमाणूनां स्वभावेनासिद्धत्वान्न युज्यते तत्त्वतः सञ्चयः ।[2] एकत्वग्राह–

---

1 तु.– सद्धर्म.सू., सप्तमोऽध्यायः ।

2 यस्य पूर्वः प्रदेशोऽस्ति पूर्वोऽंशस्तस्य विद्यते,.।। –चतु.श. ९/१५ ।

तत्कस्य हेतोः ? सचेद् भगवन् बहुः परमाणुसंचयोऽभविष्यत्, न भगवानवक्ष्यत्– परमाणुसंचय इति । तत्कस्य हेतोः ? योऽसौ भगवन् परमाणुसंचयस्तथागतेन भाषितः, असंचयः स तथागतेन भाषितः । तेनोच्यते परमाणुसंचय इति ।

निराकरणायैव भाषितम् **तेनोच्यते परमाणुसञ्चय इति** ।

असति च दिग्भागभेदे परमाणवः परमाण्वन्तरैः पूर्वापरोर्ध्वाधोदिग्भागभेदेन परिवृता न स्युः,[1] ततो न भवेदुपचयश्चित्त–चैत्तादिवत् ।[2] भाग एव भवति परमाणुरित्यपि कथनं न युज्यते, तत्रापि तर्कसाम्यात् । एवंभूतेऽनिष्ठितोऽपि न युज्यते । अनिष्ठिताः परमाणवः स्वभावेन तर्हि त्वया किं साध्यते ? अनिष्ठितस्वभावे भावो न सिध्यति, ततः सिद्धमस्माकं मतमिति । अनेकस्वभावत्वमणूनां यदृच्छयापि नोच्यते, (तदा) अनिष्ठिते परमाणौ (अनेकस्वभावत्वं) कथमुपपद्येतेति मयोक्तम् । ये परमाणवस्त्वया निरवयवत्वेन व्यवस्थाप्यन्ते तेषां पूर्वोत्तरादिदिग्भेदाभ्युपेतत्वात् दिग्भागभेदेनाभ्युपगम्यन्ते, तेन सावयवाः (ते) प्रसज्यन्ते । ततः प्रसङ्गसिद्धौ हेतोराश्रयासिद्धिः, न च केवलं चित्तचैतसिकाभ्यामनैकान्तिकाः, अमूर्तत्वात्ते न दिक्ष्ववस्थिताः, पूर्वोत्तरादिदिग्भिरपि नावतिष्ठन्ते ।

तेनोक्तम्[3] –

---

1 षट्केन युगपद्योगात् परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशत्वात् पिण्डः स्यादणुमात्रकः ॥ १२ ॥
आवरणं च कथं भवति, परमाणोः परमाण्वन्तरेण यदि दिग्भागभेदो नेष्यते । न हि कश्चिदपि परमाणोः परभागोऽस्ति, यत्रागमनादन्येनान्यस्य प्रतिघातः स्यात् । असति च प्रतिघाते सर्वेषां समानदेशत्वात् सर्वः संघातः परमाणुमात्रः स्यादित्युक्तम् । –वि.मा.सि., पृ. ४२–५३, स.सं.वि.वि.संस्करणम् ;
अण्वन्तराभिमुख्येन रूपं चेदन्यदिष्यते ।
कथं नाम भवेदेकः परमाणुस्तथा सति ॥ –त.सं.पं. १९९१ श्लोकः, पृ. ६७९ ।

2 न च परमाणवः स्तम्भादिवत् परमार्थतः सन्ति, अर्वाङ्मध्यपरभागसद्भावात् । तदनभ्युपगमे वा पूर्वदक्षिणापरोत्तरादिदिग्भेदो यः, स परमाणोर्न स्यात् । ततश्च विज्ञानवत् परमाणोरप्यमूर्तत्वमदेशस्थत्वं च प्रसज्यते । – वि.मा.सि. पृ. ११३, स.सं.वि.वि.संस्करणम् ।

3 – मूलस्रोतो नाद्यावधि प्राप्तम् ।

यश्च तथागतेन भाषितस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरिति, अधातुः स तथागतेन भाषितः । तेनोच्यते त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरिति । तत्कस्य हेतोः ? सचेद्भगवन् लोकधातुरभविष्यत्, स एव पिण्डग्राहोऽभविष्यत् । यश्चैव पिण्डग्राहस्तथागतेन भाषितः, अग्राहः स तथागतेन भाषितः । तेनोच्यते पिण्डग्राह इति । भगवानाह– पिण्डग्राहश्चैव सुभूते, अव्यवहारोऽनभिलाप्यः । न स धर्मो नाधर्मः स च बालपृथग्जनैरुद्गृहीतः ।

न रूपे नैव नेत्रे च तयोर्मध्येऽपि न स्थितः ।
यत्र स्थितो भवेत्तत्र न सन्नैव हि चाप्यसत् ॥

अलं प्रसङ्गेनेति । अनेन त्वनेकस्वभावराहित्यमवगम्य निराभासोपाय-सन्दर्शनेन योगसमापत्तिश्चित्तप्रग्रहश्चेति निर्दिष्टम् । **बहुः स परमाणुसञ्चयो भवेत्** इत्यनेनौदार्यं चाभिहितम्, अवशेषेण तु गाम्भीर्यम् ।

(ब)सत्त्वलोकाधिपत्येन प्रस्थितिः

सम्प्रति सत्त्वलोकाभावप्रस्थितिमधिकृत्य **भाषितस्त्रिसाहस्रमहासाहस्रो लोकधातुरिति सः** इत्याद्याह ।[1] भाजनलोकस्य पूर्वमुक्तत्वादत्र लोकधातुस्तावत् सत्त्वलोकत्वेनेष्टः । उभयत्र त्रिसाहस्रमहासाहस्राभिधानेन तावदनन्तलोकधातुरुपलक्ष्यते । अत एव **अधातुः स तथागतेन भाषितः** इति पञ्चस्कन्धात्मकः स सत्त्वलोकोऽप्येकानेकस्वभावविरहितः पूर्ववदुक्तः ।

अनेन तथागतस्य तथाविधायां सत्त्वलोकाभावप्रस्थितौ बोधिसत्त्वेन छन्दप्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति निर्दिष्टम् । निराभासेन तु योगसमापत्तिरियं कथं प्रतिपत्तव्येत्यपि सन्दर्शितम् ।

इदानीं चित्तं कथं प्रग्रहीतव्यमिति दर्शयितुं **तत्कस्य हेतोः ?** इति पृष्टवान् । 'अधातुः स तथागतेन भाषितः' इत्यनेन योजनीयम् । उत्तरार्थं **सचेद् भगवन्** इत्याद्याह । यदि सत्त्वलोको यथाप्रसिद्धस्तथा परमार्थतः स्यात् स्थूलैकस्वभावस्तदा तथागतेन यथास्थिति वस्तुतत्त्वमधिगतमिति स एव

---

1 द्र.– उपरि टीकायाम्, पृ. १६० ; अभि.को. ३/७३–७४ ।

तत्कस्य हेतोः ? यो हि कश्चित्सुभूते एवं वदेत्— आत्मदृष्टिस्तथागतेन भाषिता, सत्त्वदृष्टिर्जीवदृष्टिः पुद्गलदृष्टिः तथागतेन भाषिता, अपि नु स सुभूते, सम्यग्वदमानो वदेत् ?

पिण्डग्राहः स्यात् ।

स्कन्धेषु पिण्डग्राह एवात्मग्रहणहेतुः, स एव च तथागतस्य पिण्डग्राहोऽतिगाढतरः स्यात्, तदप्रहाणं चाभिप्रेतं भवेत् । न त्वेवम्, अत एवान्यत्र यो बालजनेभ्यः पिण्डग्राह आत्मग्राहस्य हेतुत्वेन भगवता भाषितः, स परमार्थतोऽग्राह्य एव । ग्राह्ये हि पिण्डे एकानेकस्वभावस्य कस्यचिदभावात् । बालजनप्रसिद्धो भावः केवलं संवृतित उक्तः । **तेनोच्यते पिण्डग्राह इति** । तदर्थसाधनायैवं भगवान् पिण्डग्राहस्यार्थमुक्तवान् । किमुच्यत इति चेत् ? व्यवहारे पिण्डग्राह इति परमार्थेऽभावात् स धर्मस्त्वनभिलाप्य इत्युक्तवान् ।

यद्येवं ग्राह्यः पिण्डो न स्यात् तदा तत्र ग्राहकस्याप्यभावात् कथं व्यवहारे पिण्डग्राह इति विचिन्त्याह— **स च बालपृथग्जनैरुद्गृहीतः** इति । बालास्तु भ्रान्तिवशादसन्तमपि सद्भूतमिव गृह्णन्ति । तदाशयवशेन व्यवहारः प्रज्ञप्यते, (अतो) न विरोध इत्यभिप्रायः । तस्मात् ते बाला इत्युच्यन्ते, अन्यथा यथावस्तु व्यवहारप्रज्ञप्तौ कथं ते बालाः स्युः ?

उक्तमत्र कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यमिति । गाम्भीर्यमौदार्यमपि चात्र पूर्ववद् योजनीयम् । अनेन यदा सर्वे भावाः परमार्थतः स्वभावशून्यास्तदा रूपकायः ज्ञानकायश्च कथं भवेत् परमार्थतः सस्वभावः, मूलसत्त्वस्याभावादिति देशितम्।

सम्प्रति **यो हि कश्चित् सुभूते** इत्यादिना सर्वस्थानेषु योगसमापत्तेः केनोपायेन सर्वत्र समाधेयमिति तत् प्रदश्यते । एवमनुसन्धिः – यदि नास्ति पिण्डग्राहस्तदा तन्मूलप्रभवायाः सत्कायदृष्टेरेवाभावात् कथं भगवान् पञ्चसु दृष्टिषु सत्कायदृष्टिमाहेति तदर्थं **यो हि कश्चित् सुभूते** इत्याद्याह । अत्र कथमविकल्प्यम्, यश्चाविकल्पकः,[1] यस्मिन्नविकल्प्यम्, येनाविकल्पकः, यश्चाविकल्पः, तद्दर्शनेन योगसमापत्तेः सम्यगुपायो दर्शितो भवति ।

---

1 अयं पाठः पेकिंग संस्करणानुसारी, दे.गे. संस्करणे तु "कायविकल्पकः" इति पाठ उपलभ्यते, स चाशुद्ध इति प्रतीयते ।

सुभूतिराह– नो हीदं भगवन्, नो हीदं सुगत, न सम्यग्वदमानो वदेत् । तत्कस्य हेतोः? या सा भगवन् आत्मदृष्टिः तथागतेन भाषिता, अदृष्टिः सा तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते आत्मदृष्टिरिति ।

भगवानाह– एवं हि सुभूते, बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन सर्वधर्मा ज्ञातव्या द्रष्टव्या अधिमोक्तव्याः । तथा च ज्ञातव्या द्रष्टव्या अधिमोक्तव्याः, यथा न धर्मसंज्ञा प्रत्युपस्थामहे । तत्कस्य हेतोः ? धर्मसंज्ञा धर्मसंज्ञेति सुभूते, असंज्ञैषा तथागतेन भाषिता । तेनोच्यते धर्मसंज्ञेति ।

तत्र **यो हि कश्चित् सुभूते** इत्यारभ्य **तेनोच्यते आत्मदृष्टिः** एतत्पर्यन्तमनेन कथमविकल्प्यं तदुद्दिष्टम् । कथमिति चेत् ? उक्तोऽन्यैस्तैर्थिकैरात्मा, भगवता तु पुद्गलनैरात्म्यप्रतिपादनादात्मनिषेधार्थमाह **आत्मदृष्टिः** इति तस्याः आत्मदृष्टेर्निराकरणेन धर्मनैरात्म्यं व्यवस्थाप्यते **अदृष्टिः सा तथागतेन भाषिता** इत्युक्तम् । तामात्मदृष्टिं यदि सत्यतो न गृह्णाति (तदा) एवं प्रयोगे बोधिसत्त्वो योगसमापत्तौ प्रवर्तते । यस्मादविकल्पकस्तस्मात् स तत्रावतरणोपायः ।

एवं हि सुभूते बोधिसत्त्वयानसम्प्रस्थितेन इत्यनेन योऽविकल्पकः स परिदीप्यते । **सर्वधर्माः** इत्यनेन यस्मिन्नविकल्प्यम् तद्दर्शितम् । **ज्ञातव्या द्रष्टव्या अधिमोक्तव्याः** इत्यनेन येनाविकल्प्यं तदभिहितम् । केनाविकल्प्यमिति चेत् ? ज्ञानेन दर्शनेन अधिमुक्त्या च । तत्र ज्ञानं श्रुतमयी प्रज्ञा, दर्शनं चिन्तामयी प्रज्ञा, तयोपनिध्यानत्वाद्, अधिमुक्तिः भावनामयी प्रज्ञा, अध्याशयोऽत्राधिमुक्तिशब्देन वक्तुमिष्यते । सा तु भावनाबलेन सिध्यतीति, अत एव भावनामयी प्रज्ञा निर्वेधभागीयावस्थायामधिमुक्तिशब्देनोक्ता ।

तथा चाधिमोक्तव्या, यथा न प्रत्युपस्थामहे इत्यनेन योऽविकल्पस्तं दर्शयति । **असंज्ञैषा तथागतेन भाषिता** इत्यत्र हेतुः परिकीर्तितः । कस्यचित् संज्ञेयस्य अभावोऽपि, एकानेकस्वभावशून्यत्वात् परमार्थत सा असंज्ञा । संवृतिसत्यमधिकृत्यान्यत्र तथागतेन भाषितम् । तस्या

यश्च खलु पुनः सुभूते, बोधिसत्त्वो महासत्त्वोऽप्रमेयान् असंख्येयांल्लोकधातून् सप्तरत्नपरिपूर्णं कृत्वा तथागतेभ्योऽर्हद्भ्यः सम्यक्संबुद्धेभ्यो दानं दद्यात्, यश्च कुलपुत्रो वा कुलदुहिता वा इतः प्रज्ञापारमिताया धर्मपर्यायादन्तशश्चतुष्पादिकामपि गाथामुद्गृह्य धारयेद्देशयेद्वाचयेत् पर्यवाप्नुयात्, परेभ्यश्च विस्तरेण संप्रकाशयेत्, अयमेव ततो निदानं बहुतरं पुण्यस्कन्धं प्रसुनुयादप्रमेयमसंख्येयम् । कथं च संप्रकाशयेत् ? यथा न प्रकाशयेत् । तेनोच्यते संप्रकाशयेत् इति ।

मिथ्यार्थाधिगमावस्थायां कथं न स्यादविकल्प इत्यभिप्रायः । सर्वस्थानेषु योगसमापत्त्युपायोऽभिहितः ।

३.असंक्लेशेन प्रस्थितिः (अ) देशनाऽसंक्लेशः

द्विधा तावदसङ्क्लेशः – देशनाऽसंक्लेशः, संसारासंक्लेशश्च । तत्र यदि नास्ति धर्मसंज्ञा तदा तथागतस्य सत्त्वेभ्यो तद्धर्मदेशनासंज्ञासमुत्पादे कथं न भवेत् संक्लेशः ? कृपया सत्त्वार्थं यावत्संसारावस्थाने सति धर्मसंज्ञया कथं न स्यात् संक्लेशः ? इति विचिन्त्य तयैव चित्तसम्पदा देशनाऽसंक्लेशं गाथया च संसाराक्लेशमावेदयितुम् **यश्च खलु पुनः सुभूते** इत्याद्याह ।

पूर्वं प्रसङ्गान्तरे लोकधातुप्रशस्तिप्रदर्शनमनुशंसायाः प्रशंसनम्, सम्प्रत्यसंक्लेशाधिकारेऽनन्तलोकधातुदेशनया नोच्यते अनुशंसेति न पुनरुक्तिः। अत्रापि युक्तिस्तु प्राग्वद् वक्तव्या । **उद्गृह्य** इति स्वाध्यायेऽधीतम्, **धारयेत्** इति पदम्, **वाचयेत्** इति पुस्तकादिकं वाचयेत्, **पर्यवाप्नुयात्** इति त्वर्थग्रहणमित्यर्थः । अनेन यस्मान्महार्थोऽयं धर्मस्तस्माद्बोधिसत्त्वेनैवंविधायां महार्थधर्मदेशनायामवश्यमेव छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यं तत्परिदीपितम् ।

भाष्यमाणायामपि कथं न स्यात्संक्लेश इत्येतद्दर्शयितुं **कथं न सम्प्रकाशयेत्** इत्याह । अयमभिप्रायः – परमार्थतोऽनुत्पन्नत्वेनानभिलाप्यत्वेन देशितत्वेऽपि सर्वधर्माणाम्, ते धर्मा अनभिलाप्यस्वभावेन नोच्यन्ते । एवमुक्तम्– यथा विनेयजनास्तथा सर्वे धर्मा आदितोऽनुत्पन्नत्वादनभिलाप्याः

तारका तिमिरं दीपो मायावश्याय बुद्बुदम् ।
स्वप्नं च विद्युदभ्रं च एवं द्रष्टव्यसंस्कृतम् ॥

इदमवोचद्भगवान् । आत्तमनाः स्थविरसुभूतिस्ते च भिक्षुभिक्षुण्युपासकोपासिकास्ते च बोधिसत्त्वाः सदेवमानुषासुर–गन्धर्वश्च लोको भगवतो भाषितमभ्यनन्दन्निति ।

आर्यवज्रच्छेदिका प्रज्ञापारमितासूत्रम् समाप्तम् ॥

तस्मान्न ते केनापि व्यपदेश्या इत्येवं दर्श्यत इति । तथा सति असंक्लेशेन देशना, अविपरीतार्थत्वात् । अन्यथा संक्लिष्टा स्याद् विपरीतदेशनत्वात् । अत एव तथागतो धर्मदेशनाकाले विशुद्धलोकज्ञाने प्रस्थितः, अतो धर्मसंज्ञाभाससमुद्भवेऽपि तत्त्वतोऽभिनिवेशाभावात् संक्लेशदोषाभावः । अनेन योगसमापत्तिः, चित्तप्रग्रहः गाम्भीर्यञ्च निर्दिष्टम्, पूर्वेण तावदौदार्यम् ।

(ब)संसारासंक्लेशः

साम्प्रतं निखिलप्रज्ञापारमिताकायं व्यवस्थाप्य गाथया संसारासंक्लेशो देश्यते । अनया गाथया चत्वारि संस्कृतलक्षणानि परिदीपितानि । (तानि तावत्) स्वभावलक्षणम्, विषयरसास्वादनलक्षणम्, आदीनवान्वयलक्षणम्, निर्याणान्वयलक्षणं चेति ।

तत्र पञ्चस्कन्धात्मकानां भावानां यथाप्रतीति प्रतीत्यसमुत्पादस्तावद् हेतुप्रत्ययसंगृहीतत्वात् संस्कृत इत्युच्यते । एतेषां सर्वेषां स्वभावः तारकाः इव द्रष्टव्यः । रात्रौ यथा तारका अवभासन्ते, न तु दिवसे, तथैव संस्कृता अपि अविद्याज्ञानान्धकारे सति प्रतिभासन्ते, ज्ञानसूर्यालोके सति नावभासन्ते, अतः (ते) तारकस्वभावा इव द्रष्टव्याः । पुद्गलधर्मदृष्ट्यभिनिवेशात्मकाः संस्कृतास्तु मिथ्याप्रतीतिहेतुत्वात् तिमिरवज्ज्ञातव्याः ।

विज्ञानलक्षणं च कर्मवर्तिकं तृष्णास्नेहं चाश्रित्य प्रज्वलनाद् दीप इव द्रष्टव्यम्, एवमेतन्निदर्शनेन संस्कृतस्वभावलक्षणं परिदीपितम् । मायोपमया विषयरसास्वादनलक्षणं निर्दिश्यते, वितथावभासमानत्वात् । तत्रादीनवान्वयलक्षणं संस्कृतस्वभावं द्विविधम् – अनित्यान्वयः दुःखान्वयश्च । अवश्यायोपमया अनित्यतान्वयः प्रदर्श्यते, न चिरं स्थितत्वात् । बुद्–बुदोपमया तावद्

दुःखतान्वयः प्रदर्श्यते, वेदना बुद्बुदोपमा इति, या काचिद् वेदना सेह दुःखमिति भाषितत्वात् ।

त्रिविधैः दुःखैः सर्वा वेदना दुःखा वेदितव्या । तत्र दुःखवेदना तावद् दुःखदुःखम्, तत्सहिता ये संस्कारास्तेऽपि तदनुरूपतया दुःखमेव; सुखावेदना तावद् विपरिणामदुःखेन दुःखम्, तत्सहिता ये धर्मास्तेऽपि तदनुरूपतया दुःखम्, न दुःखा न सुखा वेदना, तत्सहितानि वस्तूनि च संस्कारदुःखम्, उत्पादभङ्गलक्षणत्वेन तानि दुःखम् ।[1] एवं सर्वं संस्कृतं दुःखान्वितं द्रष्टव्यम् ।

तत्र निर्याणान्वयलक्षणं तावत् पुद्गलधर्मशून्यतान्वयम्, तदालम्बन-निर्वृतत्वाद्भगवता खलु द्विविधंनिर्याणालम्बनमुक्तम् । **आर्यसमाधिराजसूत्रे** चाप्युक्तम् :[2]

नैरात्म्यधर्मान् यदि प्रत्यवेक्षते
तान् प्रत्यवेक्ष्य यदि भावयेत ।
स हेतुर्निर्वाणफलस्य प्राप्तये
यो अन्यहेतुर्न स भोति शान्तये ॥

द्विविधनैरात्म्यसम्प्रयुक्ताः सर्वसंस्कृताः, तथा हि– अतीत–प्रत्युत्पन्न–अनागतभेदेन त्रिविधाः संस्कृताः । तत्र ये तावदतीतास्ते स्मृतिमात्रावस्थिता अतो निःस्वभावत्वेन, धर्म–पुद्गलतया शून्याः आत्मनाऽनधिष्ठितत्वात्, ततश्च स्वप्नौपम्येन द्विविधनैरात्म्यान्वयास्ते व्यपदिष्टाः । प्रत्युत्पन्ना विद्युदौपम्येन एकानेकस्वभावरहिताः अग्राह्यस्वभावत्वादिति तेनान्विता व्यपदिष्टाः ।

---

1 दुःखास्त्रिदुःखतायोगाद्यथायोगमशेषतः ।
मनापा अमनापाश्च तदन्ये चैव सास्रवाः ॥ ६/३
तिस्रो हि दुःखता दुःखदुःखता सस्कारदुःखता विपरिणामदुःखता च । ताभिर्यथायोगमशेषतः सर्वैः सास्रवाः संस्कारा दुःखाः । तत्र मनापा विपरिणामदुःखतया। अमनापा दुःखदुःखतया । तेभ्योऽन्ये संस्कारदुःखतया । –अभि.को.भा., पृ. ३२९, जायसवाल संस्करणम्, १९७५ ; अपि च द्रष्टव्यम्– सद्धर्म सू., पृ ८० ; उत्पादस्थितिभङ्गानामन्यत् संस्कृतलक्षणम् । उक्तं हि– त्रीणीमानि संस्कृतस्य संस्कृतलक्षणानि । संस्कृतस्य भिक्षवः, उत्पादोऽपि प्रज्ञायते, व्ययोऽपि स्थित्यन्यथात्वमपि इति । –म.शा.वृ., ७/३, पृ. ६१, बौ.भा.प्र. १९८३ ।

2 समाधि स ९/३७

अनागतास्तावदलब्धस्वभावाः, अभ्रौपम्येन आकाशसमचित्ते तद्बीजदौष्ठुल्येन जनितत्वादिति नैरात्म्यद्वयं तावद्देशितम् ।

अतोऽनेन खलु समग्रेणात्र बोधिसत्त्वैः सदा सर्वसंस्कृतस्वभावमेवं विचार्य छन्द–प्रणिधानाभ्यां स्थातव्यमिति परिदीपितम् । निर्याणान्वयप्रदर्शनेन तावद् योगसमापत्तिश्चित्तप्रग्रहश्च निर्दिष्टः। अनेन सम्पूर्णेनस्थानेन गाम्भीर्यञ्च व्यपदिष्टम् ।

गाथायामस्यां तावदिदं परिदीप्यते– संक्लेशमूलं तावद् विपर्यासः । अतः संस्कृतस्वभावेष्वनेकशः केनचिद् विचारयता मनसिकुर्वता अप्येवं संस्कारपरिज्ञानाद्यदा विपर्यासाभावात् न भवति संक्लेशः (तदा)[1] कथं (नाम) यथावदशेषवस्तुस्वभावपरिभावको विधूताशेषविपर्यासजालस्तथागतः संक्लिष्टो भवेत् । अत एव समस्तसंस्कृतदोषान् अवगच्छन् तथागतः, पद्ममिव संसारदोषाम्भसाऽनवलिप्तचित्तः, प्रतिज्ञातसमस्तजगत्समुद्धरणाशयः, सफल–कारित्रः, महाकरुणान्वितचित्तः, निरवधिजगद्धितसुखसाधनाभिप्रायेण संसारचक्र–संसरणं यावत् प्रतिष्ठितो वेदितव्यः । तथा चोक्तम् –

कर्तुं लोके सुखं शान्तौ भवे चाप्यनधिष्ठितः । इति सर्वसत्त्वानवलोकितुं भूमावस्थीयत इत्यप्युक्तम् ।

त्रैयध्विकानां जननी मुनीनां ख्याता यथाशक्ति मया ततो जगत् ।
विपुलेन पुण्येन वियत्समेन विधूय चान्ध्यं सुगतत्वमाप्नुयात् ॥

आचार्यकमलशीलेन माध्यमिकनयेन विरचिता विस्तृता आर्यवज्रच्छेदिकाटीका परिसमाप्ता । अष्टम्यां शताब्द्यां भारतीयाचार्य–मञ्जुश्रीमित्रेण भोट–लोचावा येशे–देमहाभागेन च भोटभाषायामनूदिता । विदुषां वशंवदेन आचार्यपेमातेनजिनमहादयेन भोटभाषातः संस्कृतभाषायां पुनरुद्धृता सर्वसत्त्वहितसुखार्थम् इति ।

***

---

1 काम जानामि ते मूलं संकल्पात् किल जायसे ।
न त्वां संकल्पयिष्यामि ततो मे न भविष्यसि ॥ –म.शा.वृ. २३/१; (म.वग, ३/११०)

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པའི་ས་བཅད་ཁྲིགས་ཆགས་སུ་བཀོད་པ།

༄༅། །འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་
རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་སློབ་
དཔོན་ཀམལཤཱིལས་མཛད་པ་
བཞུགས་སོ།།

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། ཨཱརྻཔྲཛྙཱཔཱརམིཏཱབཛྲཙྪེདིཀཱཊཱིཀཱ།
བོད་སྐད་དུ། འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་
རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ།
འཇམ་དཔལ་གཞོན་ནུར་གྱུར་པ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།།

གང་ལ་སྐྱེ་བོ་ཀུན་ལ་གྲགས་ལུས་མདུན་ན་གསལ་བར་སྣང་བ་ཡང་།
དངོས་པོའི་ངོ་བོར་[1]འགྱུར་བ་མི་རྙེད་རབ་སྟོན་རྒྱལ་བ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས།
ཡང་དག་དམ་པ་རྟག་པ་མཆོག་གི་འབྲས་བུ་ཐོབ་པའི་གནས་བསྟན་[2]པ།
དུས་གསུམ་བཞུགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀུན་སྙིང་དེ་ལ་རབ་གུས་བདག་ཕྱག་འཚལ།།

གང་ལ་ཅུང་ཟད་གོམས་བྱས་སྐད་གཅིག་ཏུ་ཡང་དགེ་བ་རྒྱ་ཆེན་སོགས།
གང་ཕྱིར་སྡིག་པ་རབ་ཏུ་ཆེ་བ་མཐའ་དག་རྩ་ནས་ཟད་བྱེད་པ།
དེ་བས་དེ་ནི་གོམས་པར་བྱ་ཕྱིར་བླ་མ་རྣམས་ཀྱིས་བསྟན་པ་ཡི།
ལམ་ལས་བརྟགས་ཏེ་བདག་བློས་ཇི་ལྟར་ལྕོགས་པས་[3]བདག་གིས་འདི་བཀྲིའོ།

དེ་ལ་མདོ་སྡེ་འཆད་པར་འདོད་པས་ཉན་པ་དག་ནན་[4]གྱིས་ལེན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་གཟུད་པའི་ཕྱིར་དང་པོར་དགོས་པ་དེ་བརྗོད་པར་བྱའོ།། དགོས་པ་མ་རྟོགས་པར་ནི་རྟོག་[5]པ་དང་ལྡན་པ་དག་གང་ལ་ཡང་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

---

[1] ངོ་བོའི་ པེ། སྣ།

[2] བརྟན་ སྡེ།

[3] པ་ པེ། སྣ།

[4] ནན་ཏན་ པེ། སྣ།

[5] རྟོགས་ སྡེ།

དེའི་འོག་ཏུ་མདོ་སྡེའི་དགོས་པའི་ཐབས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་བརྗོད་པར་བྱ་བ་བསྟོད་པར་བྱ་སྟེ། བརྗོད་པར་བྱ་བས་སྟོང་པའི་མདོ་ནི་སེའུ་བཅུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཚིག་བཞིན་དུ་དགོས་པ་འདོད་པ་སྒྲུབ་པར་མི་བྱེད་དོ།། དེའི་འོག་ཏུ་བརྗོད་པར་བྱ་བ་དེ་གཟུང་སླ་བའི་ཕྱིར་བསྡུས་པའི་དོན་བརྗོད་པར་བྱའོ།། དེའི་འོག་ཏུ་བསྡུས་པའི་དོན་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་ཚིག་གི་དོན་བརྗོད་པར་བྱའོ།། དེའི་འོག་ཏུ་གོ་རིམས་མི་འགལ་བར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཚིག་རྣམས་ཀྱི་མཚམས་སྦྱར་བ་བསྟན་པར་བྱའོ།། དེའི་འོག་ཏུ་སྨྲ་ཕྱིའི་རིགས་པ་དང་འགལ་བ་བསལ་བའི་ཕྱིར་རྩོལ་བའི་ལན་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། ཚུལ་ནི་དེ་ལྟ་བུའོ།།

དེ་ལ་མདོ་སྡེ་འདིའི་མིང་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་བརྗོད་པར་བྱ་བ་དང་དགོས་པ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ལྟར་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཡིན་ཏེ། ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་ཕྲ་བ་རྡོ་རྗེ་ལྟར་གཞིག་དཀའ་བ་དེ་གཅོད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། འདིས་ནི་སྒྲིབ་པ་གཉིས་སྤོང་བ་འདིའི་དགོས་པ་[1]བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། ཡང་ན་གཅོད་པ་ནི་རྡོ་རྗེའི་དབྱིབས་དང་འདྲ་བས་རྡོ་རྗེ་ལྟ་བུ་ཞེས་བྱ་སྟེ། རྡོ་རྗེ་ནི་རྩེ་མོ་གཉིས་སྦོམ་ལ་དབུས་ཕྲ་མོར་བྱེད་དོ།། དེ་བཞིན་དུ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ཡང་ཐོག་མ་དང་ཐ་མ་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་རྒྱ་ཆེ་བར་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། དབུས་ཕྲ་མོས་ནི་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་ས་བསྟན་ཏོ།། དེ་བས་ན་འདི་ནི་རྡོ་རྗེའི་རྣམ་པ་ལྟ་བུ་ཡིན་ཏེ། འདིས་ནི་ས་གསུམ་པོ་འདིའི་བརྗོད་པར་བྱ་བ་ཡིན་པར་བསྟན་ཏོ།།

བསྡུས་པའི་དོན་ནི་མདོར་བསྡུས་ན་རྣམ་པ་ལྔ་སྟེ། འདི་ལྟ་སྟེ། གླེང་གཞི་དང་། གླེང་བསླང་བ་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ་དང་། སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་དང་། དེའི་གནས་སོ།། དེ་ལ་གླེང་གཞི་ནི

1 པར་ པ།

མདོ་སྡེ་འབྱུང་བའི་རྒྱུ་སྟེ། དེ་ཡང་འདི་སྐད་བདག་གིས་ཐོས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། དེ་ནས་ཆེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བའི་བར་འདིས་བསྟན་ཏོ།། དེ་༡ནི་ཡང་དག་པར་སྤྱོད་པར་བྱེད་པས་བདག་ལ་ཡིད་ཆེས་པར་བྱ་བ་བརྗོད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། མདོ་སྡེ་ཐམས་ཅད་ལ་ཡང་བརྗོད་པར་བྱའོ།།

གླེང་བསླང་བ་ནི་མདོ་སྡེའི་དོན་བཤད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་སྐབས་དང་སྦྲར་བ་སྟེ། སྐབས་སུ་མ་བབ་པར་སླས་ན་ཐམས་ཅད་འཆལ་བར་འགྱུར་བས་འཆལ་བ་བསལ་བའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་སྐབས་དང་སྦྲར་བར་བྱའོ།། དེ་ནས་ཆེ་དང་ལྡན་པ་རབ་འབྱོར་སྟན་ལས་ལངས་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་བསྟན་ཏོ།། སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ་ཡང་དེ་ཉིད་ཀྱིས་བསྟན་ཏེ། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱེད་པ་ཡིན་པར་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་རིག་ནས། ཇི་ལྟར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་འགྱུར་བ་དེ་ཉིད་གནས་བརྟན་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཐོག་མར་བཀོད་དོ།།

སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བགྱི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་བསྟན་ཏོ།།

སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་དེའི་གནས་ནི་ཡུལ་གང་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་གང་ཡིན་པ་སྟེ། དེ་ནི་དེའི་གནས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ཡང་རབ་འབྱོར་འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་འདི་སྐད་དུ་བདག་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། སྐར་མ་རབ་རིབ་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཐ་མའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པའི་བར་གྱིས་བསྟན་ཏོ།། སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་དང་དེའི་གནས་

---

༡ དེ་བས་ སྟེ།

འདི་གཉིས་ཀྱིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་བྱ་བ་མཐའ་དག་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་བསྟན་ཏེ་འདི་ནི་རེ་ཞིག་བསྡུས་པའི་དོན་ཏོ།།

ཚིག་གི་དོན་ལ་སོགས་པ་ཡང་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་དག་ད་བརྗོད་དོ།། དེ་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་བྱ་བའི་སྒྲ་ནི་ཁས་ལེན་པ་ལ་སོགས་པ་དོན་མང་པོ[༡]ཞིག་ཏུ་ཡང་སྣང་མོད་ཀྱི། འདིར་ནི་སྐབས་ལ་སོགས་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་ནི་འཛོག་པ་ཡིན་པར་བཟུང་ངོ་།། འདི་ནི་མདོ་སྡེའི་དོན་འོག་ནས་འབྱུང་བ་མཐའ་དག་འཛོག་པར་བྱེད་དོ།། བདག་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཞན་རྣམ་པར་གཅོད་པར་བྱེད་ཅིང་དོན་མངོན་སུམ་དུ་ཐོས་པར་བསྟན་ཏོ།། བདག་ཉིད་ཀྱིས་ཐོས་ཀྱི་ཐོས་པ་གཅིག་ནས[༢]གཅིག་ཏུ་བརྒྱུད་དེ་འོངས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ཐོས་པ་ཞེས་བྱ་བ[༣]ནི་རྟོགས་པ་དགག་པར་བྱེད་དེ། སངས་རྒྱས་མ་གཏོགས་པར་ཆོས་འདི་ལྟ་བུ་དག་རང་གིས་རྟོགས་པ་གཞན་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་ཡིད་མི་ཆེས་པ་སེལ་བར་བྱེད་དོ།། དུས་གཅིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དུས་གཅིག་གི་ཚེ་སྟེ། དུས་ཐམས་ཅད་དུ་ཆོས་དཀོན་མཆོག་འདི་ལྟ་བུ་དག་ཐོས་དཀའ་བར་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། ཡང་ན་བདག་ཉིད་མང་དུ་ཐོས་པར་སྟོན་ཏོ།། དུས་གཅིག་ན་འདི་ཐོས་ཀྱི་གཞན་ན་ནི[༤]གཞན་དག་ཀྱང་ཐོས་སོ་ཞེས་སྟོན་ཏོ།། ཡང་ན་དུས་གཅིག་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་བཞུགས་སོ་ཞེས་འོག་མ་དང་སྦྱར་ཏེ། གདུལ་བ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་དེ་དག་ལ་ཕན་གདགས་པའི་དོན་དུ་གཞན་ན་ནི་གཞན་བཞུགས་སོ་ཞེས་གཞག་པ་ཡིན་ནོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཉོན་མོངས་པ་དང་། ཕུང་པོ་དང་། འཆི་

[༡] མོ་ པེ། སྣ།

[༢] བདག་ཉིད་ཀྱིས་ཐོས་པ་ སྡེ།

[༣] བས་ པེ། སྣ།

[༤] གཞན་ན་ པེ། སྣ།

བདག་དང་། ལྷའི་བུའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་བདུད་དང་བདུད་བཞི་[༡]བཅོམ་པ་དང་ལྡན་པས་ངེས་པའི་ཚིག་གི་ཚུལ་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཞེས་བྱའོ།། ཡང་ན་དབང་པོ་[༢]ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པས་ལེགས་ལྡན་ཞེས་བྱ་སྟེ། ཇི་སྐད་དུ།

།དབང་དང་རབ་ཏུ་ལྡན་པ་དང་། །
།གཟུགས་དང་དཔལ་དང་གྲགས་པ་དང་། །
།ཡེ་ཤེས་དང་ནི་ནན་ཏན་དང་། །
།དྲུག་པོ་དེ་ལ་ལེགས་ཞེས་བྱ། [༣] །

ཞེས་བཤད་པ་ལྟ་བུའོ།། མཉན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དྲང་སྲོང་མཉན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བའི་བསྟི་གནས་ཡིན་པའི་ཕྱིར་གྲོང་ཁྱེར་མཉན་ཡོད་དེ། དེས་མཚོན་པའི་ཡུལ་གྱི་བྱེ་བྲག་ཀུང་ལྷན་གཅིག་འབྲེལ་བའི་ཕྱིར་མཉན་ཡོད་ཅེས་བྱའོ།། ཡུལ་སྨོས་པ་དེ་ཡང་ཡུལ་དེ་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པར་བརྗོད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། འདི་ལྟར་འདི་ཉིད་ལས་ཀྱང་ས་ཕྱོགས་དེ་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་ཡིན་ཞེས་བརྗོད་དོ།།[༤] ཡང་ན

---

༡ བདུད་དང་བཞི་ པེ། སྣ།

༢ དབང་ པེ། སྣ།

༣ བཅོམ་ལྡན་འདས་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲ་ནི། རང་དབང་དང་། ཤིན་ཏུ་སྤྱངས་པ་དང་། གཟུགས་བཟང་བ་དང་། གྲགས་པ་དང་། དཔལ་དང་། བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་ལ་འབྱུང་སྟེ།
།རང་དབང་ཤིན་ཏུ་སྤྱངས་པ་དང་། །གཟུགས་བཟང་བ་དང་གྲགས་པ་དང་།
།དཔལ་དང་བདག་ཉིད་ཆེ་ལྷུགས་དང་། །དྲུག་ལ་སྐལ་པ་ཞེས་བཤད་དོ།
སྡེ་བསྡུན། ༣༩༩༧ མདོ་འགྲེལ་ "ཅི" ཤོག ༣༣༥
ཡང་རྣམ་བཤད་རིགས་པ་ལས།
།དབང་ཕྱུག་དང་ནི་གཟུགས་བཟང་དང་། གྲགས་དང་དཔལ་དང་ཡེ་ཤེས་དང་།
།བརྩོན་འགྲུས་ཕུན་སུམ་ལྡན་པ་ཡི། དྲུག་པོ་དག་ལ་བཅོམ་ཞེས་བཤད།
སྡེ་བསྡུན། ༤༠༨༡ སེམས་ཙམ། "ཤི" ཤོག ༤༡

༤ ཞེས་འབྱུང་ངོ་ པེ། སྣ།

ཡང་དག་པར་སྤྱད་པར་བྱེད་པས་བདག་གི་ཚིག་གཟུང་བར་འོས་པར་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་སྨོས་ཏེ། འདི་ལྟར་འཇིག་རྟེན་ཡིད་ཆེས་པར་བྱ་བའི་དོན་ནི་ས་ཕྱོགས་དང་བཅས་པ་[1]རྣམ་པ་དང་བཅས། དབང་ཕྱུག་དང་བཅས་པས་[2]སླས་ན། གཞན་དག་གིས་ཚིག་གཟུང་བར་འགྱུར་གྱི། གཞན་དུ་ན་ཚིག་གཟུང་བར་འོས་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

ཡུལ་མཉན་ཡོད་ཏ་ཅང་རྒྱ་ཆེས་[3]ཏེ་གང་ན་བཞུགས་གཏོལ་མེད་པས་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། དེ་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཅེས་བྱ་བ་དེའི་ཚལ་ཡིན་པས་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ་ལོ།། དེ་ཡང་ཇི་སྟེ་ན་སུ་ལ་ཡང་མ་གྲགས་ཀྱང་སྙིད་པས་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱི་ཀུན་དགའ་ར་བ་ན་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། ཁྱིམ་བདག་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་ཞེས་པ་[4]མགོན་མེད་པ་རྣམས་ལ་སྙིང་བརྩེ་བ་[5]སྟེ་ཟས་སྦྱིན་པས་དེ་ལྟར་གྲགས་པ་དེས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཕྱིར་རིན་པོ་ཆེ་བཀྲམ་པ་གཤིབས་པས་རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ལས་ཀུན་དགའི་ར་བ་ཉོས་པ་དང་། རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱིས་ཀྱང་དེ་ལས་ཅུང་ཞིག་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཕྱིར་ཁང་པ་ལ་སོགས་པ་བརྒྱན་དུ་བཙུག་པས་དེ་གཉིས་ཀྱི་[6]ཚལ་དེ་གྲགས་སོ།། གང་ཡང་རུང་བ་ཞིག་སྨོས་ན་ནི་ཡུལ་གྱི་བྱེ་བྲག་བརྗོད་པར་འདོད་པ་རྟོགས་པར་མི་འགྱུར་བས་ཚིག་གསུམ་ཆར་སྨོས་སོ།། ཡང་ན་མཉན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་མང་པོའི་ནང་ན་

---

[1] བཅས་ པེ། སྣ།

[2] དབང་དང་བཅས་པར་ པེ། སྣ།

[3] ཆེན་ སྣ།

[4] ཞེས་བྱ་བ་ པེ། སྣ།

[5] བརྩེ་ པེ། སྣ།

[6] ཀྱིས་ པེ། སྣ།

བཞུགས་པས་གཞན་གྱི་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་སྟོན་ཏོ།། རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱི་ཀུན་དགའ་ར་བ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དབེན་པ་ན་བཞུགས་པས་རང་གི་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའོ།།

འདི་ལ་དཔང་[༡]སྐུ་ཡོད་སྐམ་པ་ལ། དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། ཉོན་མོངས་པ་དང་བྲལ་བས་དགེ་སློང་དག་གོ། བདུད་ལ་སོགས་པའི་[༢]ཕྱིར་རྒོལ་བ་དག་གིས་མི་ཕྱེད་པས་མང་པོ་དེ་དག་ལ་དགེ་འདུན་ཞེས་བྱའོ།། དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ཆེན་པོ་དེ་དག་ནི་[༣]ཞལ་ཆེ་བ་དང་མཐུ་གཉིས་ཏེ། དེས་ནི་མཐུ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། ཞལ་ཆེ་བ་ཛེ་ལྷ་བུ་སྐམ་པ་དང་།[༤] སྟོང་ཉིས་བརྒྱ་ལྔ་བཅུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྨོས་ཏེ། དེའི་ཚེ་ན་དེ་སྙེད་ཅིག་ཡོད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རབ་ཏུ་མང་བ་ནི་དེ་དག་གི་ཆེད་དུ་མདོ་སྡེ་འཆད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་དག་ནི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་སྙིང་སྟོབས་ཆེ་བའི་བསམ་པ་དང་ལྡན་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་གོ། ཉན་ཐོས་རྣམས་ལ་ཡང་བྱང་ཆུབ་ལ་སྙིང་སྟོབས་ཡོད་པས་དེ་རྣམ་པར་གཅོད་པའི་ཕྱིར། སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། ཆོས་དང་སེམས་བསྐྱེད་པ་དང་། མོས་པ་དང་། བསམ་པ་དང་། ཚོགས་དང་། དུས་དང་། ཡང་དག་པར་འགྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་ཆེན་པོ་རྣམ་པ་བདུན་དང་ལྡན་པས་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དག་གོ།

---

༡ དབང་ སྡེ།

༢ ལ་སོགས་ པེ། སྣ།

༣ དགེ་འདུན་ཆེན་པོ་ནི་ པེ། སྣ།

༤ སྐམ་པ་ལ་ པེ། སྣ།

དེ་ལ་ཆོས་ཆེན་པོ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་པ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་བསྟན་པ་རྒྱ་ཆེ་བའི་ཕྱིར་རོ།། སེམས་བསྐྱེད་པ་ཆེན་པོ་ནི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་སེམས་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། མོས་པ་ཆེན་པོ་ནི་དེ་དག་ཉིད་ཆོས་ཟབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེ་བ་[1]ལ་མོས་པའི་ཕྱིར་རོ།། བསམ་པ་ཆེན་པོ་ནི་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་ཕན་པ་དང་བདེ་བ་བསྐྱེད་པའི་བསམ་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཚོགས་ཆེན་པོ་ནི་བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་དཔག་ཏུ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དུས་ཆེན་པོ་ནི་བསྐལ་པ་ཆེན་པོ་གྲངས་མེད་པ་གསུམ་གྱིས་བྱང་ཆུབ་འཐོབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡང་དག་པར་འགྲུབ་པ་ཆེན་པོ་ནི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཡང་དག་པར་འགྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།།

བཞུགས་ཤེས་བྱ་བ་ནི་སྤྱོད་ལམ་བཞི་པོ་དག་གིས་སམ། ཡང་ན་ཚངས་པ་དང་ལྷའི་དང་། འཕགས་པའི་བཞུགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་དག་གིས་བཞུགས་པའོ།། ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཞུགས་ཟིན་པར་བསྟན་པའོ།། དེ་ལ་དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ནི་བྱ་བ་བྱས་པ་དང་། སྙིང་རྗེ་ཆུང་བའི་[2]ཕྱིར་དུས་ཐམས་ཅད་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཞབས་ཀྱི་དྲུང་ཉིད་ན་འདུག་པར་རིག་ནས་རྟག་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གོང་དུ་སྨོས་སོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ནི་སེམས་ཅན་དཔག་ཏུ་མེད་པའི་དོན་བསྒྲུབ་པ་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པ་[3]བྱ་བ་མ་བྱས་ལ་སྙིང་བརྩེ་བ་ཆེ་བས་འགྲོ་བའི་དོན་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་རྣམས་སུ་རྒྱུ་བས་དུས་ཐམས་ཅད་དུ་

[1] ཟབ་ཅིང་ཆེ་བ་ སྡེ།

[2] སྙིང་རྗེ་བྲུ་བའི་ སྡེ།

[3] པས་ པེ། སྣ།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་[༡]ཞབས་ཀྱི་དྲུང་ན་མི་འདུག་པས་འོག་ཏུ་སྨོས་སོ།། དེ་བས་ན་ཉན་ཐོས་ཀྱི་མདོ་སྡེ་ལས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་མི་སྨོས་ཏེ། དེ་ནི་དེ་དག་གི་ཆེད་དུ་མ་ཡིན་པ་དང་། མི་རྟག་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེའི་འོག་ཏུའོ།། ཚེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ངེས་པ་སྟེ། འདིས་ནི་ཟས་ཀྱི་དུས་ངེས་པའོ།། དུས་ངེས་པ་ནི་དུས་འདི་ན་[༢]ངེས་པར་བཟའ་བར་བྱའོ་ཞེས་དུས་ངེས་པའོ།། དེ་ཡང་གང་ཡིན་པ་མི་ཤེས་ནས་དེའི་ཕྱིར་སྔ་དྲོ་ཞེས་སྨོས་པས་འཆད་པར་བྱ་བ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་སྔ་དྲོ་ཡང་ཡིན་ལ་དུས་ཀྱི་ཚེ་ཡང་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བར་བསྡུའོ།།

སྔ་དྲོའི་མཚན་ཉིད་ནི་བསྙེན་གནས་གནས་[༣]པ་དང་། རབ་ཏུ་བྱུང་བ་རྣམས་ཀྱི་ཟས་ཀྱི་དུས་ཕྱིར་འཐོབ་པར་འགྱུར་བས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གཅིག་ཏུ་འཆད་པར་[༤]རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་དུས་ཀྱི་ཚེ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། གཞན་དུ་ན་སྔ་དྲོ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་པ་ནི་དེ་གཅིག་ཏུ་འཆད་པར་མི་རྟོགས་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་[༥]དེ་ཕྱི་ན་མཛད་ཀྱང་སྲིད་པས་དེའི་ཕྱིར་ཚིག་གསུམ་ཆར་སྨོས་སོ།། ཤམ་ཐབས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁྲིམ་དུ་འཛུག་པ་དང་མཐུན་པའི་གོས་མནབས་པ་སྟེ། དེ་ཡང་ཉན་ཐོས་རྣམས་བསླབ་པ་དག་ལ་གུས་པར་བྱ་བ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་མཛད་དོ།། གཞན་དུ་ན་ནི་བདག་མ་དུལ་བས་གཞན་འདུལ་བར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། ཆོས་གོས་མནབས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་ཆོས་གོས་མནབས་པ་ནི་བགོ་བའི་མཚན་ཉིད་དུ་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། གཞན་ནི་སྐབས་མ་ཡིན་ནོ།། གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡུལ་གྱི་བྱེ་

---

༡ བཅོམ་ལྡན་འདས་ པེ། སྣ།

༢ དུས་འདི་ སྡེ།

༣ བསྙེན་གནས་ པེ། སྣ།

༤ གཅིག་ཏུ་འཆད་པར་མཛད་པར་ པེ། སྣ།

༥ ཀྱི་ པེ། སྣ།

བྲག་སྟེ། མཉན་ཡོད་རྣམ་པར་བཅད་པའི་དོན་ཏོ།། ཅིའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་ཕྱིར་ཞུགས་ཤེ་ན། ཉན་ཐོས་རྣམས་འདོད་པ་ཆུང་བ་ལ་གཟུད་པ་དང་། ཁྱིམ་གྱི་བུད་མེད་དང་། དབུལ་པོ་དང་། ནད་པ་དང་། རྒན་པོ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཕན་གདགས་པ་དང་། ལོང་བ་ལ་སོགས་པ་མིག་ལ་སོགས་པ་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་། ངོ་མཚར་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་ནར་མ་བསྟན་པས་གཞན་དག་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དད་པ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེ་ལྟར་དགོས་པ་དཔག་ཏུ་མེད་པར་ཁྲོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ།། ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་བྱས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་གི་ཟས་ལ་སོགས་པ་ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་བྱས་ཤིང་བསྒྲུབས་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་བརྗོད་དོ།།

ཚངས་པ་ལ་སོགས་པ་དགེ་བའི་རྩ་བ་ཆུང་ངུ་ལས་སྐྱེས་པ་དག་ཀྱང་ཟས་ཁམ་གྱིས་ཟ་བའི་འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བས་ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་མི་བྱེད་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་དགེ་བའི་རྩ་བ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་ལས་འབྱུངས་པ་ཇི་ག་མཛད་པར་འགྱུར་རམ།[༡] འདི་ལྟར་ཡང་**འཕགས་པ་ཆོས་ཡང་དག་པར་སྡུད་པ**[༢] ལས་ཀྱང་"དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ནི་བསྙིབས་པ་[༣]དང་སྐྲོམས་པ་མི་མངའ་བཤང་གཅི་མི་མཛད། སྐུ་ཉམ་ཆུང་བ་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བཤད་དོ།།" དེ་བདེན་མོད་ཀྱི་འོན་ཀྱང་གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྐུ་དེ་དོན་དམ་པ་ཡིན་[༤]ན་ནི། དེའི་ཚེ་བསྐལ་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྐབས་སུ་ཡང་འགྱུར་བ་ཞིག་ན། གང་གི་ཚེ་འདི་ནི་བཅོམ་

---

༡ མཛད་པར་རམ་ པེ། སྣ།

༢ དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་བསྙིབས་པ་དང་སྐྲོམས་པ་མི་མངའ། བཤང་གཅི་མི་མངའ། སྐུ་ཉམ་ཆུང་བ་མ་ཡིན་མོད་ཀྱི།
བཀའ་འགྱུར། ༣༣༨ མདོ་སྡེ། "ཞ" ཤོག ༨

༣ སྒྲིབས་པ་ པེ། སྣ།

༤ དོན་དམ་པ་མ་ སྡེ།

ལྡན་འདས་ཀྱི་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་སྟེ། སྤྱོད་པ་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་སྟོན་ཅིང་གདུལ་བའི་སེམས་ཅན་གྱི་བསམ་པ་དང་འཚམ་པར་འཇུག་པ་དེའི་ཚེ་ཀུན་གཞི་སྐབས་སུ་ག་ལ་འགྱུར།

མིར་གྱུར་པས་བརྟོན་འགྲུས་བརྩམས་ན་ཡང་བླ་ན་མེད་པའི་གོ་འཕང་[༡] འདི་ལྟ་བུ་ཐོབ་བོ་ཞེས་གཟེངས་བསྟོད་པའི་ཕྱིར་གདུལ་བ་རྣམས་ལ་མིའི་ལུས་སྟོན་པས་དེ་ལྟར་ཞལ་ཟས་ཀྱི་ཚུལ་སྟོན་ཏོ།། སྦྱིན་པ་པོ་དང་། སྦྱིན་བདག་གང་ལ་བསོད་སྙོམས་ཡོངས་སུ་སྤྱོད་བ་བསྟན་པས་དེ་དག་དགའ་བ་བསྐྱེད་པ་དང་། གང་དག་སྐལ་པ་ཡོད་ཀྱང་ལས་ཀྱི་སྒྲིབ་པ་འགའ་ཞིག་གིས་ཡི་དྭགས་ལ་སོགས་པའི་ནང་དུ་སྐྱེས་པ་དག་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཕྱག་གི་སེན་མོ་བདུད་རྩི་ཅན་གྱིས་རེག་ན་ལྷའི་རོ་བྲོ་བ་མཆོག་ཏུ་འགྱུར་ཞིང་ཟད་མི་ཤེས་པ་གཏོང་སྦྱིན་གཞི་སྟོབས་ཅན་ལ་སོགས་པས་ཁྱེར་བ་ཟོས་ན། དེ་དག་བདེ་བ་མཆོག་གིས་སེམས་ཚིམ་པར་གྱུར་པ་དང་། ཏིང་ངེ་འཛིན་མཆོག་ཀྱང་འཐོབ་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་ དཔག་ཏུ་མེད་དོ།

རྣམ་པ་ཅི་འདྲ་བས་ཟས་ཀྱི་བྱ་བ་བྱས་ཤེ་ན། དེའི་ཕྱིར་མཇུག་ཏུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྨོས་ཏེ། ཐམས་ཅད་བླངས་ནས་མཇུག་ཏུ་ཞལ་ཟས་གང་གསོལ་བ་དེ་ནི་བསོད་སྙོམས་ཀྱི་ཞལ་ཟས་མཇུག་ཏུ་གསོལ་བ་སྟེ། ནི་ཉན་ཐོས་རྣམས་སྤྱངས་པའི་ཡོན་ཏན་ལ་གཟུད་པའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པར་ལེན་པ་སྟོན་དུ་བཏང་བ་ཡིན་ནོ།། གསོལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གསོལ་ཟིན་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ཡང་ན་མཇུག་ཏུ་ཞེས་བྱ་ནི་ལན་གཉིས་པ་ལ་བླངས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ལ་ཟས་ཕྱི་མ་ཞེས་བྱ་[༢]སྟེ། ཟས་ཕྱི་མ་དེ་ནི་ཟས་མཇུག་ཀྱང་ཡིན་ལ་བསོད་སྙོམས་ཀྱང་ཡིན་ནོ་

---

[༡] འཕངས་ པེ། སྣ།

[༢] ཅེས་བྱ་བ་ པེ། བྱ་བ་ སྣ།

ཞེས་བྱ་བར་ཚིག་རྣམ་པར་སྦྱར་རོ།། ཡང་ན་ཕྱི་དྲོའི་ཟས་དེ་ཟ་བ་གང་ཡིན་པའི་བསོད་སྙོམས་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ།།

དེ་ལྟ་བས་ན་སྤྱངས་པའི་ཡོན་ཏན་ཅན་ཡིན་པ་དང་། དུས་མ་ཡིན་པའི་ཟས་སྤངས་པའི་ཕྱིར་གསོལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེ་གཉིས་དང་སྦྲལ་ལོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། བཞག་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཞག་སྟེའོ།། དེ་ཡང་བརྒྱ་བྱིན་ལ་སོགས་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲུང་ན་བཀའ་ནོད་པ་ལ་བརྩོན་པ་དག་ཀྱང་རྟག་ཏུ་གནས་མོད་ཀྱི་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་ནི་བདག་ཉིད་བྱེད་པའོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཉིད་ཀྱིས་ལྷུང་བཟེད་དང་ཆོས་གོས་བཞག་པར་མཛད་དོ།། སྐལ་པ་ཆུང་ངུ་གཡོག་མི་འཁོར་བ་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་མི་བདེ་བ་སྤོང་བའི་ཕྱིར་ཡང་ངོ་།།

མི་གཙང་བར་སྣང་བ་རྟག་ཏུ་རིང་དུ་སྤངས་པ་དང་། ཞབས་པདྨ་ལ་འཇོག་མོད་ཀྱི། བྱ་བའི་རྒྱུད་ལ་སོགས་པ་ལ་མོས་པའི་སེམས་ཅན་གྱི་བསམ་པ་དང་མཐུན་པའམ། རྐང་པ་རྟུལ་[༡]ཅན་གྱིས་མལ་ཆ་དང་སྟན་ལ་མི་རྫིའོ་ཞེས་བསླབ་པ་དག་ལ་གུས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཞབས་འཁྲུ་བར་བལྟའོ།།

གདན་བཤམས་པ་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷ་ལ་སོགས་པས་བཤམས་པ་ལའོ།།[༢] སྐུ་དྲང་པོར་བསྲང་སྟེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཏ་ཙང་ཡང་མི་དགུ[༣] ཏ་ཙང་ཡང་མི་དགྱེ་བར་མཛད་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ཆོས་སྟོན་པའི་དུས་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་སྤོང་བའི་སྤྱོད་ལམ་གྱིས་ཅིའི་ཕྱིར་བཞུགས་ཤེ་ན། སྤོང་བ་དག་ཁོ་ནས་ཆོས་འདི

---

༡ རྟུལ་ སྡེ།

༢ བཤམས་པའོ། སྡེ།

༣ དགུག་ སྣ།

བསྟན་པ་དང་། ཤེས་པ་དང་། ཉན་པར་ནུས་ཀྱི་གཞན་དག་གིས་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་སྒྲོང་བ་ལ་འཇིག་རྟེན་ནན་ཏན[༡]བསྐྱེད་དུ་གཟུད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དྲན་པ་སྔོན་དུ་གཞག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་སྔོན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔར་གྱུར་པའི་ཚེ། བླ་ན་མེད་པའི་ཚེ[༢]གོ་འཕང་ཐོབ་ནས་ཇི་ལྟར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན[༣]མི་འཆད་པར་འགྱུར་བ་དེ་ལྟར་བདག་གིས་བྱའོ་ཞེས་སྨོན་ལམ་བཏབ་པའི་སྨོན་ལམ་དེ་དྲན་པ[༤]མངོན་དུ་མཛད་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དག་ནི་རྟག་ཏུ་མཉམ་པར་བཞག་པས་ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་དྲན་པ་ལ་གནས་མོད་ཀྱི། དུས་མ་ཡིན་པར་དྲན་པ་དེས་ནི་ཅིར་ཡང་མི་འགྱུར་གྱི། དུས་སུ་སྨོན་ལམ་དྲན་པ་ནི་འབྲས་བུ་དང་བཅས་པར་འགྱུར་རོ།། དུས་སུ་དྲན་པས་ཀྱང་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྟག་ཏུ་མཉམ་པར་གཞག་པ་ཉིད་དུ་སྟོན་པས་འགལ་བ་མེད་དོ།།

དེ་ནས་དགེ་སློང་མང་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ཅིའི་ཕྱིར་སྨོས་ཤེ་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་མཉན་ཡོད་ན་དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ཚད་ཇི་སྙེད་དང་བཞུགས་པ་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ཆོས་སྟོན་པའི་དུས་ན་དེར་མ་འདུས་ཀྱི། མང་པོ་གསུམ་ལན་ཆད་དེར་འདུས་སོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ཡང་ཡང་དག་པར་སྤྱད་པར་བྱེད་པས་གཞན་དག་ཡིད་ཆེས་པ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་སྨོས་སོ།། འདུས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཉེ་བ་ཙམ་དུ་ཟད་དོ།། འདུག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་སྟན་ལ་འདུག་པའོ།། འཇིག་རྟེན་ནི་ཕལ་ཆེར་ཕྱིར་གཞག་པ་སྔོན་དུ་འགྲོ་བ་ཅན་གྱི་བྱེ་བྲག་འཛོམ་པས་འཇིག་རྟེན་གྱི་གྲགས་པ་དང་མཐུན་པར་གཉིས་ཀ་སྨོས་སོ།། གཞན་དུ་ན་ནི་འདུག་གོ་ཞེས་བྱ་བ

---

༡ འཇིག་རྟེན་ནན་ པེ། སྣ།

༢ བླ་ན་མེད་པའི་ སྡེ།

༣ སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་ པེ། སྣ།

༤ དྲན་པས་ པེ། སྣ།

དེ་ཙམ་ཁོ་ནས་གཉིས་ཀ་སྨོས་པར་འགྱུར་རོ།། གླེང་གཞིའི་ཚིག་གི་དོན་ལ་སོགས་པ་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

ད་ནི་གླེང་བསླང་བ་དང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ་བརྗོད་པར་བྱའོ།། ཤིན་ཏུ་ངོ་མཚར་ཆེ་བར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ལན་གཉིས་སུ་སྨོས་སོ།། བདེ་བར་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བོད་པའོ།། བདག་མེད་པ་གཉིས་ཀྱི་ལམ་ནས་ཡང་དག་པར་གཤེགས་སོ།།[༢] ལེགས་པར་གཤེགས་པས་བདེ་བར་གཤེགས་པ་སྟེ། ལེགས་པར་བསྐྱོད་ཅེས་བྱ་བ་བཞིན་ནོ།། ཡང་ན་ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་བག་ཆགས་དང་བཅས་པ་མ་ལུས་པར་སྤངས་ཏེ། གཤེགས་པས་བདེ་བར་གཤེགས་པ་སྟེ། བུམ་པ་ཤིན་ཏུ་གང་བ་བཞིན་ནོ།། ཡང་ན་ཕྱིར་མི་ལྡོག་པར་གཤེགས་པས་བདེ་བར་གཤེགས་པ་སྟེ། རིམས་ནད་ཤིན་ཏུ་བྱང་བ་བཞིན་ནོ།། ཇི་སྙེད་པས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕན་གདགས་པར་བྱ་བའི་བྱེ་བྲག་སྟེ། ཕན་གདགས་པ་གང་ཇི་སྙེད་པ་དེ་སྙེད་ཀྱིས་ཕན་གདགས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

རྒྱལ་པོ་ལ་སོགས་པ་དག་ཀུང་འབངས་ལ་སོགས་པ་རྟོན་པ་དག་ལ་ཅི་ནུས་ཀྱིས་རྗེས་སུ་འཛིན་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེ་འདིར་ངོ་མཚར་བ[༣]ཅི་ཆེ་སྙམ་དུ་དོགས་པ་ལ་ངོ་མཚར་གྱི་རྒྱུར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་གསུངས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའོ།། ཡང་ན་སྔ་མ་དག་ཇི་ལྟར་བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱི་ལམ་ནས་གཤེགས་ཏེ། ཉོན་མོངས་པ་དང་

༢ ཏེ་ པེ། སྣ།

༣ འདིར་ངོ་མཚར་ པེ། སྣ།

ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་སྤངས་པ་རྙེད་[༡]པ་དེ་ལྟར། འདིར་ཡང་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའོ།། འཇིག་རྟེན་མཐའ་དག་གིས་མཆོད་པར་འོས་པའི་ཕྱིར་རམ། དགྲ་ཉོན་མོངས་པ་དག་བཅོམ་པར་གྱུར་པས་དགྲ་བཅོམ་པའོ།། ཤེས་བྱ་མཐའ་དག་ཡང་དག་པར་ཀུན་ནས་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་སོ།། ཚིག་དེ་དག་གིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་རང་གཞན་[༢]གྱི་དོན་མཐའ་དག་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཡེ་ཤེས་དང་སྤངས་པ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།

དེས་འདི་སྐད་བསྟན་པར་འགྱུར་ཏེ། རྒྱལ་པོ་ལ་སོགས་པ་འབངས་ལ་སོགས་པ་ལ་ཕན་འདོགས་པ་དེ་འདིར་ངོ་མཚར་མི་ཆེ་སྟེ། དེ་དག་ནི་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་ལ་སོགས་པ་རང་གི་དོན་འདོད་པས་གཞན་ལ་ཕན་འདོགས་ཀྱི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་ཏེ། དགྲ་བཅོམ་ཞིང་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་[༣] སངས་རྒྱས་ནས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མཐའ་དག་བརྙེས་པས་གང་ཕན་འདོགས་པ་དེ་ནི་[༤]འདིར་ངོ་མཚར་ཡིན་པར་བསྟན་ཏོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་[༥]ཕན་འདོགས་པ་འདི་ལ་ནི་ཐུགས་བརྩེ་བ་ཆེན་པོ་མ་གཏོགས་པར་ཕན་འདོགས་པའི་རྒྱུ་གཞན་ཅི་ཡང་མེད་པས་རྣམ་པ་འདིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཐུགས་བརྩེ་བ་ཆེན་པོ་ཁོ་ནར་སྟོན་ཏོ།།[༦]

---

[༡] བརྙེས་ པེ། སྣ།

[༢] ཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རང་བཞིན་ སྡེ།

[༣] རྫོགས་པར་ པེ། སྣ།

[༤] ཕན་འདོགས་པ་དེ་དག་ནི་ སྡེ།

[༥] ཀྱིས་ སྡེ།

[༦] ཐུགས་རྗེ་བ་ཆེ་བ་ཁོ་ནར་སྟན་ཏོ་ པེ། སྣ།

ཕན་བཏགས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་སྟེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་[1]ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བསྐོར་བའི་དུས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དགེ་བའི་རྩ་བ་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་དག་སར་ཆུད་པར་མཛད་པ་ཡིན་ཏེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆོས་ཉིད་ལ་རབ་ཏུ་འཇོག་པའི་[2]ཕྱིར་རོ།། ཡོངས་སུ་གདད་པ་ནི་དགེ་བའི་རྩ་བ་ཡོངས་སུ་མ་སྨིན་པ་ལས་དང་པོ་བ་དག་ཕན་བཏགས་པ་དེ་དག་ཉིད་ལ་གདད་པ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆོས་ཉིད་ལ་རབ་ཏུ་འཇོག་ཏུ་གཞུག་པའི་ཕྱིར་རོ།། ང་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པར་བསྟན་པ་ནི་ཁྱེད་ཀྱིས་ཅི་ནས་དེ་དག་ཡོན་ཏན་མ་ཐོབ་པ་ཐོབ་པར་འགྱུར་བ་དང་། ཐོབ་པ་དག་ལས་ཡོངས་སུ་ཉམས་པར་མི་འགྱུར་བ་དེ་ལྟར་གྱིས་ཤིག་ཞེས་བྱ་བའོ།། དེ་ལྟར་ཕན་བཏགས་པ་དང་། ཡོངས་སུ་གདད་[3]པ་གཉིས་ཀྱིས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལ་ཕན་འདོགས་པ་ནི་རྣམ་པ་ལྔས་དམ་པར་རིག་པར་བྱ་སྟེ། དུས་དང་། ཁྱད་པར་དང་། རྒྱ་ཆེ་བ་དང་། བརྟན་[4]པ་དང་། ཁྱབ་པའོ།། དེ་ལ་དུས་ནི་ཚེ་རབས་གཞན་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཁྱད་པར་ནི་ཕྱི་རོལ་པ་དང་། ཉན་ཐོས་དང་། རང་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་ཕན་འདོགས་པ་དག་པས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། རྒྱ་ཆེ་བ་ནི་ཕན་འདོགས་པ་དེ་དག་

---

[1] པེ། དང་ སྣར་ཐང་དཔར་མ་གཉིས་ཀར་ "བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས" ཞེས་བྱ་བ་མེད།

[2] རབ་ཏུ་འཇོག་ཏུ་གཞུག་པའི་ སྡེ།

[3] བཏགས སྡེ།

[4] བསྟན་ སྡེ།

བླ་ན་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བརྟན[༡]པ་ནི་གདན་དུ་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཁྱབ་པ་ནི་ཕན་འདོགས་པ་དེ་བདག་དང་གཞན་གྱི་རྒྱུད་ལ་ཕན་འདོགས་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

ཡོངས་སུ་གཏད་པ་ཡང་རྣམ་པ་གསུམ་གྱིས་དམ་པར་བལྟ་སྟེ། གནས་དང་ཆོས་ཉིད་རབ་ཏུ་འཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་། བཀར་གདགས་པའོ།། གནས་ནི་ཇི་ལྟ་བུས་ཞེ་ན། གང་གིས་དེ་དག་ཆུད་ཟ་བར་མི་འགྱུར་བའི་དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་དག་ལ་ཡོངས་སུ་གཏད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆོས་ཉིད་རབ་ཏུ་ཐོབ་པར་བྱ་བ་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཕན་བཏགས་པ་དག་གཞན་ལ་ཆོས་ཉིད་ཀྱིས་ཕན་འདོགས་པ་བྱེད་དུ་འཇུག་པའི་ཕྱིར་རོ།། བཀར་གདགས་པ་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། ཁྱེད་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གཞན་དག་ལ་ཕན་གདགས་པར་བྱའོ་ཞེས་བཀས་གཏད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། མ་གུས་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། གླེང་བསླང་བ་དང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བའི་ཚིག་གི་དོན་ལ་སོགས་པ་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། ཇི་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་རྣམ་པ་དྲུག་གི་ཕྱིར་ཞུས་ཏེ། དོགས་པ་བཅད་པ་དང་། མོས་པ་བསྐྱེད་པ་དང་། དོན་ཟབ་མོ་ལ་འཇུག་པར་བྱ་བ་དང་། མི་ལྡོག་པར་བྱ་བ་དང་། མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་བསྐྱེད་པ་དང་། དམ་པའི་ཆོས་ཡུན་རིང་དུ་གནས་པར་བྱའོ།།

དེ་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ཇི་ལྟར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པ་ཡིན་སྙམ་དུ་དོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་དོགས་པ་བཅད་པའི་ཕྱིར་རོ།།[༢]
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྒྱུད་ཡོངས་སུ་མ་སྨིན་པ་བསོད་ནམས་མང་བར་བསྒྲགས་

༡ བསྟན་ སྡེ།
༢ ཕྱིར་ སྡེ།

པས་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་མོས་པ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། རྒྱུད་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་རྣམས་དོན་ཟབ་མོ་ལ་འཇུག་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཡང་དག་པ་མ་ཡིན་པའི་བསླབས་པས་མནར་བ་དེ་ཞེན་པ་དང་འཛིན་པ་ལ་རྨོངས་པ་རྣམས་བསོད་ནམས་མང་པོ་འདོད་པས་མི་ལྡོག་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཕན་གདགས་པ་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པ་རྣམས་བདག་གིས་ཆོས་དེ་རྟོགས་པར་མཐོང་ནས་མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། མ་འོངས་པའི་དུས་ན་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་ཡུན་རིང་དུ་གནས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

མདོར་བསྡུ་ན་དོགས་པ་རྣམས་ལ་ཡང་དག་པར་བསྟན་པར་བྱ་བ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡོངས་སུ་མ་སྨིན་པ་བསོད་ནམས་འདོད་པ་རྣམས་ཡང་དག་པར་འཛིན་དུ་གཞུག་པ་དང་། ལོག་པར་བསླབས་པས་མནར་བ་རྣམས་ཡང་དག་པར་གཟིངས་བསྐྱོད་པ་དང་། བསམ་པ་དག་པ་རྣམས་རབ་ཏུ་དགའ་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལ་གནས་པར་བྱ་བ་ནི་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གཉིས་ཀྱིས་སོ།། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ནི་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྙོམས་པར་འཇུག་པས་སོ།། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་ནི་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་ནས་སོ།། དེ་ལ་འདུན་པ་ནི་མངོན་པར་འདོད་པའོ།། སྨོན་ལམ་ནི་མངོན་པར་འདོད་པའི་དོན་ལ་སེམས་མངོན་པར་འདུ་བྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་སེམས་པ་གང་ཡིན་པའོ།། རྣལ་འབྱོར་ལ་སྙོམས་པར་འཇུག་པ་ནི་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གང་ཡིན་པའོ།། རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ལས་རྣམ་པར་གཡེངས་པ་ལས་སེམས་སླར་དེ་ཉིད་ལ་འཇུག་པའོ།། དང་པོས་ནི་སྦྱོར་བའི་ལམ་གཉིས་པས་ནི་ཐུབ་པའི་ལམ་གསུམ་པས་ནི་ཆུད་མི་ཟ་བའི་ལམ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།

གནས་སུ་ཞུས་པས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་ལ་ལེགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་བྱིན་ནོ།། ཉོན་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྣ་བ་བླགས་ཏེ་ཉན་དུ་གཞུག་པའོ།། ལེགས་པར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་འཛིན་དུ་གཞུག་པའོ།། རབ་ཏུ་ཡིད་ལ་ཟུང་ཤིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ལེགས་པར་འཛིན་དུ་གཞུག་པའོ།། དེ་དག་ཀྱང་ཉན་པའི་སྐྱེ་བོ་སྣོད་ཁས་བུབ[1]པ་དང་། མི་གཙང་བ་དང་། རྫོལ་བ་ལྟ་བུ་རྣམ་པ་གསུམ་སྤང་བའི་ཕྱིར་གསུངས་ཏེ་གོ་རིམས་བཞིན་ནོ།། བཤད་དེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེ་དག་ན་བཤད་ཀྱིས་གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་སྟེ། གཞན་དུ་ན་སྣོད་ཁས[2]སྦུབ་པ་དང་། མི་གཙང་བ་དང་། རྫོལ་བ་དག་གི་ནང་དུ་ཆར་བབ་པ་བཞིན་དུ་ཆོས་ཀྱི་ཆར་འདི་དོན་མེད་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ཡང་ན་ང་ནི་ཆད་པར་ཟད་ཀྱི་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི་ནན་ཏུ་སྒྲུབས་ཤིག་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་ཐེག་པ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་སྟེ། གང་གིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ངེས་པར་འབྱུང་བར་བྱེད་པའོ།། དེ་ཡང་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བཅུ་དང་ས་བཅུས་བསྡུས་པ་སྟེ། དེ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ནི་སྨོན་པ་དང་འཇུག་པའི་སེམས་ཀྱིས་ཞུགས་པའོ།། ཕྱི་བྲག་དེ་ནི་ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བསལ་བའི་ཕྱིར་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཞེས་སྨོས་ན་ནི་བྱང་ཆུབ་གསུམ་ཡོད་པས་བྱང་ཆུབ་གཞན་དུ་ཡང་གོ་བར་འགྱུར་རོ།། ཉན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁས་བླངས་སོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཚིག་གི་དོན་ལ་སོགས་པ་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

ད་ནི་དེའི་གནས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེའི་གནས་དེ་ཡང་མདོར་བསྡུས་ན་རྣམ་པ་བཅོ་བརྒྱད་དེ། འདི་ལྟ་སྟེ། སེམས་བསྐྱེད་པ་དང་། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་

---

[1] སྦུབ་ པེ། སྣ།

[2] ཁ་ པེ། སྣ།

པ་ལ་སྦྱོར་བ་དང་། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་དང་། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་དང་། བསྒོམས་པའི་ཁྱད་པར་འདུན་པ་ལ་མངོན་པའི་[༡]ང་རྒྱལ་མེད་པ་དང་། སངས་རྒྱས་འབྱུང་བ་མཉེས་པར་བྱ་བ་དང་། ཞིང་རྣམ་པར་དག་པར་སྨོན་པ་དང་། སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བ་དང་། ཕྱིའི་[༢] བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་བྲལ་བ་[༣]དང་། སེམས་ཅན་དང་སྣོད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་རིལ་པོར་འཛིན་པའི་གཞིག་པར་སྦྱོར་བ་དང་། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་རིམ་གྲོ་བྱ་བ་དང་། ལུས་དང་སེམས་དུབ་ནས་བརྩོན་འགྲུས་ལས་ལོག་པ་དང་། མི་རྩོམ་པ་དང་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་དག་དང་བྲལ་བ་སྟེ། ལུས་དང་སེམས་རབ་ཏུ་དུབ་པ་[༤]བརྩོན་འགྲུས་བརྩམས་པ་ལས་མི་ལྡོག་མ་བརྩམས་པ་ནི་མི་རྩོམ་ལ། བདག་ལ་གཞན་དག་གིས་འདི་ནི་བརྩོན་འགྲུས་དང་ལྡན་པ་ཡིན་ནོ་སྙམ་དུ་ཤེས་པར་གྱུར་ཀྱང་ཇི་མ་རུང་ཞེས་དད་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་འདོད་པ་ཡིན་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་དག་[༥]ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་ཏེ་སྤང་བར་བྱ་བ་དང་། སྡུག་བསྔལ་ལ་ཇི་མི་སྙམ་པ་དང་། བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་དབྲལ་བ་དང་། མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་ན་བདག་གོ་སྙམ་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བྲལ་བ་དང་། གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་དང་། མངོན་པར་རྟོགས་པ་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་སྟེ། གནས་རྣམ་པ་བཅོ་བརྒྱད་པོ་དེ་དག་ནི་བྱང་

---

༡ འདུན་པ་ཐོབ་པ་ལ་མངོན་པར་ པེ། སྣ།

༢ ཅིའི་ཕྱིར་ སྡེ།

༣ དབྲལ་བ་ པེ། སྣ།

༤ པས་ པེ། སྣ།

༥ དེ་ པེ། སྣ།

ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ལ་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བའོ།།

གནས་དེ་དག་གིས་ས་གསུམ་བསྟུས་ཏེ། འདི་ལྟ་སྟེ་གནས་རྣམ་པ་བཅུ་དྲུག་གིས་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་སའོ།། མངོན་པར་རྟོགས་པའི་གནས་གཅིག་པུས་ནི་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་སའོ།། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བས་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སའོ།། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་སྨིན་ལས་འདས་པའི་ཕྱིར་སེམས་བསྐྱེད་ནས། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམས་ལ་རབ་ཏུ་བརྩོན་པ་ནི་དེ་བཞིན་ གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་དང་། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་འཐོབ་པར་འདུན་པ་བསྐྱེད་དོ།། དེ་ནས་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་ལ་སོགས་པ་དང་། ཐ་མ་བདག་གོ་སྙམ་དུ་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ལ་ཐུག་པའི་བར་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་བགེགས་རྣམས་དང་སེམས་བྲལ་བར་བྱེད་དོ།། དེ་ནས་མངོན་པར་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་འཚོལ་[༡]ལོ།། དེ་ནས་མངོན་པར་རྟོགས་པར་བྱེད་དོ།། དེ་ནས་གོང་དུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་ཚོལ་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་དེ་དག་གི་གོ་རིམས་ནི་དེ་ལྟའོ།།

དེ་ལ་བྱང་ཆུབ་ཏུ་སེམས་བསྐྱེད་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས་སེམས་ཅན་ཇི་ཙམ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཇི་ཙམ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚད་དོ།། ཅི་དེ་དག་ལ་ཚད་ཡོད་དམ་སྙམ་པ་ལ་སེམས་ཅན་དུ་བསྡུ་བར་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་ཚད་མེད་མོད་ཀྱི། འོན་ཀྱང་སེམས་ཅན་སེམས་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་དེའི་ངོ་བོ་སྙམ་པ་ལས་ལོག་པའི་སྒྲའི་དོན་ལས་བརྟགས་པའི་ངོ་བོ་སྐལ་བ་འདྲ་བ་ཞེས་གྲགས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་སེམས་ཅན་དུ་བསྡུའོ།། དེས་ནི་མཐོང་བ་དང་། རྣམ་པར་བརྟགས་པའི་དོན་གཅིག་ཏུ་བསྡུས་ནས་དེའི་ངོ་བོར་སྒྲ

[༡] འཚལ་ སྣེ།

བཏགས་པའི་ཕྱིར་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་ཕུང་པོའི་བྱེ་བྲག་གིས་བསྡུས་པ་དག་སྟེ། དེའི་ཕྱིར་དེ་དག་ཆེ་དང་ལྡན་པ་འདྲ་བར་སྣང་ངོ་།།

དེ་ལྟར་སྦྱོར་བསྟན་ནས། བྱེ་བྲག་ཏུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། གྲོང་ལས་སྐྱེས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། བྱེ་བྲག་གི་མཚན་ཉིད་དེ་ཡང་རབ་ཏུ་དབྱེ་བ་[༡]གསུམ་གྱིས་གསུངས་ཏེ། སྐྱེ་གནས་ཀྱི་དབྱེ་བ་ལས་ནི་གྲོང་ལས་སྐྱེས་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་བཞིའོ།། གནས་ཀྱི་དབྱེ་བ་ལས་ནི་གཟུགས་ཅན་དང་གཟུགས་ཅན་མ་ཡིན་པའི་གནས་ཐ་དད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། གཟུགས་ཅན་ནི་འདོད་པ་དང་གཟུགས་ན་སྤྱོད་པ་རྣམས་སོ།། གཟུགས་ཅན་མ་ཡིན་པ་ནི་གཟུགས་མེད་པ་རྣམས་སོ།། མཚན་མར་འཛིན་པའི་དབྱེ་བ་ལས་ནི། འདུ་ཤེས་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། འབྲས་བུ་ཆེ་བའི་ཕྱོགས་གཅིག་དང་། སྲིད་པའི་རྩེ་མོར་སྐྱེ་བའི་སེམས་ཅན་མ་གཏོགས་པར་ཐམས་ཅད་ནི་འདུ་ཤེས་ཅན་ནོ།། འབྲས་བུ་ཆེ་བའི་ཕྱོགས་གཅིག་དང་། སྲིད་པའི་རྩེ་མོར་སྐྱེས་པའི་སེམས་ཅན་རྣམས་མ་གཏོགས་པར་ཐམས་ཅད་ནི་འདུ་ཤེས་ཅན་ནོ།། འབྲས་བུ་ཆེ་བའི་ཕྱོགས་གཅིག་འདུ་ཤེས་མེད་པའོ།། འདི་ཡང་མཚན་མར་འཛིན་པའི་དབྱེ་བར་བྱས་པ་ཉིད་དེ། དེ་མེད་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བས་དེས་མཚོན་པའི་ཕྱིར་རོ།། སྲིད་པའི་རྩེ་མོར་སྐྱེས་པ་རྣམས་ནི་འདུ་ཤེས་མེད་འདུ་ཤེས་མེད་མིན་ནོ།། རབ་ཏུ་དབྱེ་བ་འདི་ནི་བློ་ཞན་པ་རྣམས་ལ་ཕན་གདགས་པའི་ཕྱིར་བྱས་ཀྱི་གཞན་དག་འཕྱུ་བ་སྤང་པའི་ཕྱིར་རབ་ཏུ་མ་སྤྲོས་སོ།། ཆོས་ཐམས་ཅད་སེམས་ཅན་མེད་དོ་ཞེས་བྱ་བ་དང་། བཤད་པ་འདི་མི་འགལ་བར་བསྟན་པར་སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་བདེན་པར་སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཇི་ཙམ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། གདགས་པས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕུང་པོ་ལྔའི་བྱེ་བྲག་གི་བདག

---

[༡] བས་ པེ། སྣ།

ཉིད་དུ་ཤེས་པ་སྟེ། མུ་སྟེགས་ཅན་གྱིས་ཡོངས་སུ་ཤེས་པར་བརྟགས་པ་[1]ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་སྐུར་བའི་མཐའ་སྤངས་པ་ཡིན་ཏེ། བཏགས་པར་ཡོད་ན་སྐུར་བ་མི་འདེབས་པའི་ཕྱིར་རོ།། མི་གནས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་གང་ལ་ཟག་པ་དང་བཅས་པའི་ཕུང་པོ་ལྷག་མ་མེད་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའི་[2]ཉན་ཐོས་ཀྱི་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་འདས་པ་ནི་འདིར་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་དམན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འབྲས་བུ་གྱུ་ནོམ་པ་ཡོད་བཞིན་དུ་སྙིང་བརྗེ་བདག་ཉིད་ཅན་རྣམས་འབྲས་བུ་དམན་པ་དོན་དུ་གཉེར་བ་ནི་རིགས་པ་དང་ལྡན་པ་མ་ཡིན་ནོ།། གལ་ཏེ་འབྲས་བུ་གྱུ་ནོམ་པ་ཡོད་ཀྱང་ཐོབ་པར་བྱེད་མི་ནུས་པས་དེ་ལྟར་དོན་དུ་གཉེར་རོ་ཞེ་ན། ཁྱོད་ཀྱི་ལུགས་ལྟར་ན་རིགས་གསུམ་དང་རིགས་མེད་པ་ཡང་ཡོད་པས་འབྲས་བུ་དམན་པ་ཡང་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་འཐོབ་པར་བྱེད་མི་ནུས་པ་ཉིད་དོ།།

འོན་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་རིགས་ཉིད་[3]འདི་འདྲ་སྟེ། གང་གི་དབང་གིས་ནི་ཐུགས་རྗེ་ཆེན་པོའི་ཤུགས་ཀྱིས་ནོན་པ་དག་ནི་འདི་ཅི་ནུས་སམ་སྙམ་པ་དང་། སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གཞན་གྱི་དོན་མཛད་པ་གཞན་དག་ཀྱང་བཞུགས་བཞིན་དུ་འདིར་བདག་གིས་དོན་མེད་པའི་སྨོན་ལམ་བཏབ་པས་ཅི་ཞིག་བྱ་སྙམ་པ་དེ་ལྟ་བུའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་རྣམས་སྤངས་ཏེ། གཞན་ལ་ལྟོས་[4]པ་རྒྱང་བསྲིངས་ཤིང་། སྙིང་བརྗེ་བ་ཆེན་པོས་ཟིན་པ་རྣམས་

---

[1] ཡོངས་སུ་བརྟགས་པར་ཤེས་པ་ པེ། སྣ།

[2] ཅེས་བྱ་བའི་ པེ། སྣ།

[3] རིགས་གཉིས་ སྡེ།

[4] བལྟོས་ པེ། སྣ།

འགྲོ་བ་སྡུག་བསྔལ་གྱི་མི་འབར་བས་ཉེ་ར་པར་མཐོང་ནས་འདི་སྙམ་དུ་བདག་ཁོ་ནས་བསྐྱབ་པོ་ཞེས་སྨོན་ལམ་འདེབས་ཏེ། ཇི་སྐད་དུ།

དཀའ་འམ་མི་དཀའ་སྙམ་པ་ཡི། |
རྣམ་པར་རྟོག་པ་རྣམ་སྤངས་ནས། |
འགྲོ་བ་འདི་ནི་ཉམ་ཐག་ཅེས། |
ཁྱོད་བདག་ཉིད་ཀྱིས་ཞལ་གྱིས་བཞེས། |

ཞེས་བཤད་པ་ལྟ་བུའོ་ཞེ་ན། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་ཡང་བུ་སྡུག་པ་རྒྱལ་པོར་སྨོན་པ་ལྟར་འཐོབ་པར་བྱ་མི་ནུས་པའི་གྱུ་ནོམ་པ་ཉིད་ལ་ཅིའི་ཕྱིར་སྨོན་ལམ་མི་གདབ། གང་གི་ཕྱིར་ན་དམན་པ་ཁོ་ན་དོན་དུ་གཉེར་བར་བྱེད། དེ་ལྟ་བས་ན་མི་གནས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ཉིད་འདིར་ཕུང་པོ་ལྷག་མ་མེད་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་སུ་རིགས་ཏེ། དེ་ལ་ཟག་པ་དང་བཅས་པའི་ཕུང་པོའི་ལྷག་མ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།

ཅིའི་ཕྱིར་མྱ་ངན་ལས་འདའ་བར་བྱའོ་ཞེས་དེ་སྐད་མ་[1]གསུངས་ཤེ་ན། བསམ་གཏན་དང་པོ་ལ་སོགས་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ས་འོག་མའི་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་རྣམ་གྲངས་སུ་གསུངས་སོ།། ཅིའི་ཕྱིར་ཕུང་པོའི་ལྷག་མ་དང་བཅས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས་སུ་ཞེས་མ་གསུངས་ཤེ་ན། དེ་ནི་སྡུག་བསྔལ་གྱི་ཕུང་པོའི་ལྷག་མ་མ་སྤངས་པའི་ཕྱིར་རོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདའ་[2]བའི་བསམ་པ་ནི་རྒྱུ་གསུམ་གྱིས་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། མི་ཁོམ་པར་སྐྱེས་པ་རྣམས་ལ་དུས་གཞན་དུ་སྟོན་པ་དང་།

---

[1] ཞེས་དེ་སྐད་ པེ།
[2] བཀླའ་ པེ། སྣ།

མི་ཁོམ་པའི་གནས་སྐབས་ནི་ཉེ་བར་མཚོན་པའི་ཕྱིར་སྨོས་[༡]པར་ཟད་ཀྱི་དེར་ཟད་པ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ན་[༢]གནས་པ་ལ་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདའ་བ་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡོངས་སུ་མ་སྨིན་པ་རྣམས་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བ་དང་། ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་རྣམས་རྣམ་པར་གྲོལ་བར་བྱ་བ་སྟེ། དེས་ན་དོན་[༣]གཉེར་མི་ནུས་པ་མ་ཡིན་ནོ།།

སེམས་ཅན་མ་ལུས་པ་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདའ་བའི་བསམ་པ་འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། འདིར་ཇི་ལྟར་འདུན་པ་སྨོན་ལམ་གཉིས་ཀྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་ཡང་བསྟན་ཏོ།། ད་ནི་ཇི་ལྟར་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསླབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་ཀྱང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་དོན་དམ་པར་སེམས་ཅན་གང་ཡང་དམིགས་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། དེ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བྱ།[༤] དེ་ལྟར་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་སོ་སོར་བརྟག་པར་བྱའོ།། ལངས་ནས་འདི་སྙམ་དུ་དོན་དམ་པར་བདག་གིས་སེམས་ཅན་གང་ཡང་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པར་གྱུར་པ་མེད་དོ་སྙམ་དུ་སེམས་བསྐྱེད་པ་གང་ཡིན་པ་འདིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ལ། དོན་དམ་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱང་བསྟན་ཏོ།། སྔ་མས་ནི་ཀུན་རྫོབ་བོ།། ད་ནི་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པས་འདིར་ཇི་ལྟར་སེམས་

---

༡ སྨོན་ སྡེ།

༢ དེ་ནི་ སྣ།

༣ དོན་དུ་ པེ། སྣ།

༤ ཞེས་ པེ། སྣ།

རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཇི་སྟེ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དང་སྦྱར་རོ།།

འོ་ན་སུ་གང་ཟག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་འཇུག་པ་དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བའམ་ཅེ་ན། གང་གི་ཕྱིར་སེམས་ཅན་སྨོས་པ་དེ་ཁོ་ན་མཛད་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། ཡང་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ཅིག་ཤོས་ཀྱིས་ཀྱང་མི་བྱའོ་ཞེས་གསུངས་སོ།། དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། བློ་གྲོས་ངན་པ་དག་གིས་ཕུང་པོ་[༡]ལས་གཞན་པ་ནང་ན་བྱ་བ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་བཞི་པོ་བྱེད་པའི་སྐྱེས་བུ་ཞིག་ཡོད་པར་ཡོངས་སུ་བརྟགས་ནས་སེམས་ཅན་དང་སྲོག་ལ་སོགས་པའི་སྒྲར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་དང་། གང་དག་ཡང་གང་ཟག་བརྗོད་དུ་མི་རུང་བར་འདོད་པ་དེ་དག་གི་ཡང་དེ་ནི་ཕུང་པོར་གདོགས་པའི་ཆོས་དང་མཚན་ཉིད་མི་འདྲ་བར་ཁས་བླངས་པའི་ཕྱིར་ཤུགས་ཀྱིས་དོན་གཞན་པ་ཁོ་ནར་ཁས་བླངས་པ་ཡིན་ཏེ། ཐམས་ཅད་ཀྱང་བརྗོད་དུ་མི་རུང་བར་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་དངོས་པོ་ནི་ནམ་ཡང་བརྗོད་དུ་མི་རུང་བ་མི་སྲིད་དོ།། དེ་ནི་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཚད་མ་མེད་པའི་ཕྱིར་དང་། གནོད་པ་ཅན་ཡང་ཡོད་པའི་ཕྱིར་དེ་ལྟ་བའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ནི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པས་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཁོ་ནར་འགྱུར་རོ།། གང་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་གྱུར་པ་དེ་དོན་དམ་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་[༢]ཇི་ལྟར་འགྱུར།

གཞན་ན་རེ་བདག་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཚད་མ་ཡོད་པ་ཁོ་ན་མ་ཡིན་[༣]ནམ། འདི་ལྟར་བཅིངས་པ་དང་། ཐར་པ་དང་། ལམ་དང་།[༤] འབྲས་བུ་འབྲེལ་བ

---

༡ དག་གི་ཡང་དེ་ནི་ཕུང་པོར་ སྡེ། "དག་གི་ཕུང་པོ" སྣ།

༢ པར་ པེ།

༣ ཁོ་ན་ཡིན་ སྡེ།

༤ ལམ་དང་ ཞེས་དཔར་མ་གཞན་ པེ། དང་ སྣ། ནང་མི་མཆིས།

དང་། དྲན་པ་དང་། ངོ་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་གཞི་གཅིག་པ་[1]གྲགས་པ་དག་ཡིན་ན། བདག་མེད་པར་སྨྲ་བ་ཁྱེད་ཀྱི་ལུགས་ལྟར་ན་དེ་དག་གི་གཞིར་འགྱུར་བར་འགྱུར་བ་གང་ཡིན་པ་གཅིག་པུ་ནི་འགའ་ཡང་མེད་ན་གཞིར་འགྱུར་བ་གང་ཞིག་ཡིན། རྣམ་པར་ཤེས་པའི་སྐད་ཅིག་མ་རྣམས་ཀྱི་སྐད་གཅིག་སོ་སོ་ནི་ཐ་དད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ལྷ་སྦྱིན་བཅིངས་ལ་ཕྱིས་མཆོད་སྦྱིན་གྲོལ་བར་རྣམ་པར་གཞག་པ་ནི་མེད་དོ།། གཞན་གྱིས་བྱས་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་གཞན་གྱིས་མྱོང་བ་ཡང་མེད་དོ།། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བ་དང་། བྱས་པ་ཆུད་ཟ་ཞིང་མ་བྱས་པ་དང་ཕྲད་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་ཏེ། འདི་ལྟར་བྱེད་པ་པོར་བརྟགས་པའི་རྣམ་པར་ཤེས་པའི་སྐད་གཅིག་མ་གང་ཡིན་པ་དེ་དང་། འབྲས་བུ་འབྲེལ་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་བྱས་པ་ཆུད་ཟ་བའི་སྐྱོན་དང་། བྱེད་པ་པོ་མ་ཡིན་པ་དེ་ཁོ་ན་[2]དང་འབྲས་བུ་འབྲེལ་བའི་ཕྱིར་མ་བྱས་པ་དང་། ཕྲད་པའི་སྐྱོན་དུ་ཡང་འགྱུར་རོ།།

དྲན་པ་ལ་སོགས་པ་ཡང་འཇིག་རྟེན་ན་གནས་ཐ་དད་པར་མ་གྲགས་ཏེ། འོ་ན་ཇི་ལྟ་ཞེ་ན། གནས་གཅིག་པ་ཁོ་ན་སྟེ། ལྷས་སྦྱིན་གྱི་སེམས་ཀྱིས་མྱོང་བ་ནི་མཆོད་སྦྱིན་གྱི་སེམས་ཀྱིས་དྲན་པའམ་ངོ་ཤེས་པ་མེད་ཀྱི། གང་གིས་མྱོང་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་དྲན་ཞིང་ངོ་ཤེས་སོ་ཞེས་གྲགས་སོ།། དེ་བས་ན་སྐྱེས་བུ་གཅིག་པུ་[3]གནས་སྐབས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ཞིག་ཡོད་དོ།། སྨྲས་པ་ནི་བཅིང་ པ་དང་ཐར་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་དག་ནི་གཞི་གཅིག་པ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ལྷ་སྦྱིན་ལྕགས་སྒྲོག་གིས་བཅིངས་པ་དང་ཐར་པ་བཞིན་ལ། རྩོད་པའི་གཞིར་གྱུར་པ་བཅིངས་པ་དང་ཐར་པ་གཉིས་ཀྱང་བཅིངས་པ་དང་། ཐར་པ་ཡིན་པས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རང་

[1] པར་ ཡི། སྣ།

[2] མ་ཡིན་པ་ཁོ་ན་ ཡི། སྣ།

[3] སྐྱེས་བུ་གཅིག་ ཡི། སྣ།

བཞིན་གྱི་གཏན་ཚིགས་སོ།། དེ་བཞིན་དུ་བྱེད་པ་པོ་ལ་སོགས་པ་[༡]གཞི་གཅིག་པ་ཉིད་དུ་བསྒྲུབ་པ་ལ་ཡང་སྦྱོར་བ་རྟག་པར་བྱའོ་ཞེས་ཟེར་རོ།།

དེ་ལ་གལ་ཏེ་འདིར་སྐྱེས་བུ་[༢]རང་དབང་ཅན་དོན་དམ་པ་རྟག་པ་གཅིག་པུ་ཞིག་གཞིར་[༣]བསྒྲུབ་ན་ནི་དེའི་ཚེ་དེ་ལྟ་བུའི་སྐྱེས་བུ་དང་གཏན་ཚིགས་ལྡན་ཅིག་འབྲེལ་བར་གང་དུ་ཡང་མ་གྲུབ་པས་མ་ངེས་པ་ཡིན་ནོ།། འདུ་བྱེད་ཐམས་ཅད་སྐད་གཅིག་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ལྷ་སྦྱིན་ལ་སོགས་པ་རྟག་པ་གཅིག་པུའི་ངོ་བོར་མ་གྲུབ་པས་དཔེ་ཡང་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་མ་ཚང་བ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་གཏན་ཚིགས་འགལ་བ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལས་བཟློག་པ་དང་འབྲེལ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

འོན་ཏེ་ཅིའི་ཕྱིར་གཞི་གཅིག་པ་ཉིད་ཙམ་དུ་སྒྲུབ་ན་ནི་[༤]དེའི་ཚེ་གྲུབ་པ་སྒྲུབ་པ་ཡིན་ཏེ། དེས་ཀྱང་རྒྱུད་གང་ལ་ཡོད་པས་བཅིངས་པ་ལ་སོགས་པ་གནས་གཅིག་པར་འདོད་པ་ཉིད་དོ།། འདི་ལྟར་གང་གི་ཚེ་རྒྱུད་གང་ལ་མ་རིག་པ་ལ་སོགས་པ་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུར་གྱུར་པ་དག་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་རྒྱུན་དུ་འབྱུང་བ་དེའི་ཚེ་ན་ནི་དེ་ལ་བཅིངས་པ་ཞེས་འདོགས། ཡང་དེ་ཉིད་ལ་ཐོས་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་གྱིས་འཕགས་པའི་ལམ་སྐྱེ་ནས་[༥]མ་རིག་པ་ལ་སོགས་པ་འགགས་པས་གནས་གྱུར་པ་ལ་ཐར་པ་ཞེས་འདོགས་ཀྱི། དེ་གཉིས་དོན་དམ་པ་རྟག་པ་གཅིག་པུའི་དངོས་པོའི་ཡུལ་ཅན་དུ་གྲུབ་པ་ནི་མེད་དེ། འཇིག་རྟེན་པའི་བཅིངས་པ་དང་ཐར་པ་ཡང་དེ་དང་འདྲ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

---

[༡] སོགས་ལ་ སྣེ།

[༢] སྐྱེས་བུ་དང་ སྣེ།

[༣] སྐྱེས་བུ་ཞིག་ སྣེ།

[༤] ཙམ་དུ་སྒྲུབ་པ་ སྣེ།

[༥] སྐྱེས་ན་ པེ། སྣར།

རྒྱུད་གང་ལ་དགེ་བ་དང་མི་དགེ་བའི་སེམས་དང་ཉམས་སུ་མྱོང་བ་སྐྱེས་པ་དེ་ཉིད་[༡]ལ་དུས་གཞན་ན་རྒྱུད་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་ལ་བརྟེན་ནས་མ་དུ་ལུང་ག་ལ་སོགས་རྒྱ་སྐྱེགས་ལ་སོགས་པའི་ཁུ་བས་བསྒྱུས་པའི་རྒྱུད་ཡོངས་སུ་སྨིན་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་བདེ་བ་དང་། སྡུག་བསྔལ་བ་དང་། དྲན་པ་ལ་སོགས་པ་འབྲས་བུ་འབྱུང་བ་སྣང་བའི་ཕྱིར་དགེ་བ་ལ་སོགས་པ་གནས་གཅིག་ཏུ་གྲགས་ཀྱི། བྱེད་པ་པོ་དང་། ཟ་བ་པོ་དང་། དྲན་པ་པོ་གཅིག་པུ་ནི་གང་ཡང་མེད་དེ། ཐ་སྙད་བཏགས་པ་འདི་ཐམས་ཅད་ནི་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་ཙམ་གྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཏ་ཙང་ཐལ་བ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། ས་བོན་ལ་སོགས་པའི་ནུས་པ་ངེས་པ་བཞིན་དུ་རྒྱུའི་ནུས་པ་སོ་སོར་ངེས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལ་ཡང་[༢]གང་གིས་ན་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་དངོས་པོ་སོ་སོར་ངེས་པར་འགྱུར་བ་དེ་ནི་[༣]གཅིག་པུ་རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་ནི་གང་ཡང་མེད་དེ། གནས་སྐབས་གཞན་དུ་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།། སེམས་ཅན་གྱི་རྒྱུ་འདི་ལ་ཡང་དེ་དང་འདྲ་བར་འགྱུར་ན། བདག་ཏུ་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་འདིས་ཅི་ཞིག་བྱ། བདག་ལ་ཡང་བརྟགས་ཏེ་བྱེད་པ་པོ་ལ་སོགས་པའི་གནས་སྐབས་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་རྒྱུའོ།། ཟ་བ་པོ་[༤]ལ་སོགས་པའི་གནས་སྐབས་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་འབྲས་བུའོ་ཞེས་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་དངོས་པོ་གདོན་མི་ཟ་བར་ཁས་བླང་བར་བྱའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ཏེ་གནས་སྐབས་དེ་གཉིས་སུ་སྐྱེ་བ་མེད་པའམ། གཅིག་ལ་གཅིག་ཕན་འདོགས་པ་མེད་ན་ནི་[༥]ནམ་མཁའ་དང་འདྲ་བར་གྱུར་པས་ཟ་བ་པོ་

---

༡ དེ་དེ་ཉིད་ སྣེ།

༢ ཡང་དག་ སྣེ།

༣ དེ་ལ་ནི་ སྣ།

༤ ཟབ་མོ་ སྣེ།

༥ མེད་པ་ན སྣེ།

ལ་སོགས་པ་འགྲུབ་པར་ཡང་ཇི་ལྟར་འགྱུར། ནུས་པ་སོ་སོར་ངེས་པར་ཁས་བླང་པར་བྱ་སྟེ། འདི་ལྟར་སོ་སོར་ངེས་པའི་བདག་ཉིད་དང་འབྲེལ་བས་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་འབྱུང་བར་འགྱུར་གྱི་ཐམས་ཅད་ལ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་བས་ན་དགེ་བ་ལ་སོགས་པ་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུར་གྱུར་པ་ཇི་ལྟར་ཡོངས་སུ་སྣང་བ་དག་ཁོ་ན་བྱེད་པ་པོ་དང་ཟ་བ་པོ་ཡིན་ན་བལྟར་མི་སྣང་བའི་ངོ་བོ་བདག་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པས་ཅི་ཞིག་བྱ།

རྗེས་སུ་དཔག་པས་བདག་དེ་མ་གྲུབ་ཏུ་ཆུག་ཀྱང་། འོན་ཀྱང་ངར[1] ཤེས་པའི་མངོན་སུམ་གྱི་ཡུལ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་མངོན་སུམ་གྱིས་བདག་གྲུབ་པོ་ཞེ་ན། དེ་ཡང་རིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེར་འཁྲུལ་པའི་ཕྱིར་དང་། རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བཅས་པའི་ཕྱིར་ངར[2]ཤེས་པ་མངོན་སུམ་ཉིད་དུ་མི་འགྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། ངར་ཤེས་པ་ལ་སྣང་བ་ན་གང་གིས་ན་མངོན་སུམ་དུ་འགྱུར་བ་ཇི་ལྟར་ན་རང་གི་གྲུབ་པའི་མཐའ་ལས་བརྟགས་པ་ལྟ་བུ་བདག་གཅིག་པུ་རྟག་པ་ཁྱབ་པ་ནི་མི་དམིགས་སོ།། གདོན་མི་ཟ་བར་དེ་ལྟར་ཤེས་པར་བྱའོ།། དེ་ལྟར་མ་ཡིན་ཏེ་གལ་ཏེ་ངར་ཤེས་པ་མངོན་སུམ་དུ་གྱུར་ན་ནི་དེའི་ཚེ་བདག་ཡུལ་དུ་གྱུར་པ་ལ་རབ་ཏུ་སླུ་བ་རྣམས་རྩོད་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བཅས་པས་ངར་འཛིན་པ་ངེས་པའི་བདག་ཉིད་ཅན་དུ་གྱུར་པའི་ཕྱིར་རོ།། ངེས་པས་ཡུལ་དུ་བྱས་པ་ལ་ནི་སྒྲོ་འདོགས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེ་ལྟ་བས་ན་འདྲ་བ་གཞན་དང་གཞན་དུ་འབྱུང་བས་བསླུས་པ་དང་། ཐོག་མ་མེད་པའི་དུས་ནས་གོམས་པའི་དབང་གིས་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ཕུང་པོ་སོ་སོར་ངེས་པ་ཉིད་ལ་གཅིག་པུར་སྒྲོ་བཏགས་ནས་ཕ་རོལ་རྣམ་པར་སྤྱོད་པའི་ཕྱིར་

---

[1] སྡེར་ སྣེ།
[2] དང་ སྣེ།

ངའོ་སྙམ་དུ་ཤེས་ཏེ། ཤེས་པ་དེ་ལ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དེ་དག་ཉིད་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།།

གལ་ཏེ་ང་ར་འཛིན་པ་འདི་ལུས་ཀྱི་ཡུལ་ཅན་ཞིག་ཡིན་ན་ཇི་ལྟར་ངའི་ལུས་ཞེས་ཐ་དད་པ་ཙམ་འཛིན་པར་འགྱུར་ཞེ་ན། དེ་ནི་བདག་གི་དམིགས་པ་ཅན་ལ་ཡང་མཚུངས་ཏེ། གལ་ཏེ་ང་ར་འཛིན་པ་འདི་བདག་གི་ཡུལ་ཅན་ཞིག་ཡིན་ན་དེའི་ཚེ་ཇི་ལྟར་ངའི་བདག་[༡]ཅེས་སེམས་པར་འགྱུར། ཅི་སྟེ་དངོས་པོ་ཉིད་དུ་ཐ་དད་པ་མེད་ཀྱང་ཐ་དད་པ་གཞན་སྲུངས་པས་དེ་ཙམ་ཤེས་པར་འདོད་པའི་ཕྱིར་མཆི་གུའི་ལུས་ཞེས་བྱ་བ་བཞིན་དུ་ཐ་དད་པར་བརྟགས་པས་འཛིན་པས་འགལ་བ་མེད་དོ་ཞེ་ན། དེ་ནི་ལུས་ཀྱི་དམིགས་པ་ཅན་ལ་ཡང་མཚུངས་སོ།།

བདག་གི་ཡུལ་ཅན་ཡང་རིམ་གྱིས་འབྱུང་བ་དང་འགལ་ཏེ་འོག་ནས་བཤད་དོ།། ང་ར་འཛིན་པ་ཁོ་ན་ཡང་བདག་མ་ཡིན་ལ་དེའི་ཡུལ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་བདག་ཡིན་ནོ་ཞེས་བརྗོད་པར་ཡང་མི་ནུས་ཏེ། དེ་དག་དེ་དང་མཚན་ཉིད་མི་འདྲ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་དག་ནི་རིམ་ཉིད་དུ་དམིགས་པའི་ཕྱིར་གཅིག་པུའི་ངོ་བོའམ་རང་དབང་ཅན་དུ་མེད་དོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར།[༢]

བདག་ལྟ་ཉིད་ནི་བདག་གི་མཚན་ཉིད་མིན། །
ཉེ་གནས་མི་འདྲ་བས་ན་མ་ཡིན་ནོ།[༣] །

---

༡ ངའི་བདག་ཉིད་ སྡེ།

༢ ཐེག་པ་ཆེན་པོ་མདོ་སྡེ་རྒྱན་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

༣ བདག་ཏུ་ལྟ་བ་བདག་ཉིད་བདག་མཚན་མིན།།
ངན་པར་གནས་མིན་མཚན་ཉིད་མི་འདྲ་ཕྱིར།།
སྡེ་བསྟན། ༤༠༣༠ སེམས་ཙམ། "ཕི" ཤོག ༦

ཞེས་བཤད་དོ།། མིང་དུ་འདོགས་ན་ནི་འདོད་པས་འདི་ལ་བརྩད་པ་ཅི་ཡང་མེད་དོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་བདག་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཚད་མ་ཙུང་[1]ཟད་ཙམ་ཡང་མེད་དོ།། མངོན་སུམ་དང་རྗེས་སུ་དཔག་པ་ལས་མ་གཏོགས་པའི་ཚད་མ་ནི་མེད་དོ་ཞེས་ཕྱོགས་གཞན་དུ་དཔྱད་ཟིན་ཏོ།།

གནོད་པ་ཅན་གྱི་ཚད་མ་ཡང་བསལ་བ་ཁོ་ནར་དམིགས་ཏེ། དེ་ལྟར་གལ་ཏེ་བདག་ཕུང་པོ་དག་ལས་གཞན་མ་ཡིན་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ཕུང་པོ་བཞིན་དུ་སྐད་ཅིག་པར་འགྱུར་བའམ། ཡང་ན་བདག་བཞིན་དུ་ཕུང་པོ་རྟག་པ་དག་ཏུ་འགྱུར་ཏེ། དེ་དང་ཐ་མི་དད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཕུང་པོ་བཞིན་དུ་དུ་མ་ཉིད་དུ་ཐལ་བར་འགྱུར་བ་ཡང་བཟློག་དཀའ་བར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་ཕུང་པོ་རྣམས་ཁོ་ན་ལ་བདག་ཅེས་མིང་འདོགས་པ་[2]ཡིན་ཏེ། མིང་ལ་ནི་བརྩད་པ་མེད་དོ།།

འོན་ཏེ་ཕུང་པོ་བདག་དང་ཐ་དད་པར་འདོད་[3]ན་ནི་དེའི་ཚེ་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་དང་འབྲེལ་བ་མེད་པས་དེ་ཟ་བ་པོ་ལ་སོགས་པར་མི་འགྲུབ་པར་འགྱུར་རོ།། སྦྱོར་བ་ནི་གང་ཞིག་བདེ་བ་དང་སྡུག་བསྔལ་ལ་སོགས་པར་དང་འབྲེལ་བ་མེད་པ་དེ་ནི་བྱེད་པ་པོའམ་ཟ་བ་པོ་མ་ཡིན་ལ། གྲོལ་བར་བྱེད་པའམ་འཁོར་བར་བྱེད་པ་ཡིན་པར་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། དཔེར་ན་མོ་གཤམ་གྱི་བུ་བཞིན་ལ། བདག་ཀྱང་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་དང་འབྲེལ་བ་གང་ཡང་མེད་པས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་ནི་མི་དམིགས་པ་ཡིན་ནོ།། གཏན་ཚིགས་མ་གྲུབ་པ་ཉིད་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་དང་འབྲེལ་བ་ཞིག་ཡིན་ན་གཞི་དང་

[1] ཚུང་ སྡེ།

[2] མིང་འདོད་པ་ སྡེ།

[3] འདོན་ སྡེ།

གནས་པའི་མཚན་ཉིད་དམ། ལྡན་པའི་མཚན་ཉིད་དམ། རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་མཚན་ཉིད་དམ་ཕྱོགས་གསུམ་དུ་འགྱུར་གྲང་ན།

རེ་ཞིག་ཕྱོགས་དང་པོ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། ཅི་ཡང་མི་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་ལྟར་འོག་ཏུ་འགྲོ་བའི་ཆོས་ཅན་ལ་སོགས་པ་ལ་འོག་ཏུ་འགྲོ་བའི་གེགས་[1]བྱེད་པས་གཞིར་རྣམ་པར་གཞག་ན། བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་ནི་ལུས་མེད་པས་འོག་ཏུ་འགྲོ་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་བདག་ཅི་ཞིག་བྱེད་ན་གཞིར་འགྱུར། གནས་པར་བྱེད་པས་ཀྱང་གཞི་མ་ཡིན་ཏེ། གནས་པ་དང་གནས་པ་པོ་ཐ་མི་དད་པའི་ཕྱིར་དེ་ཉིད་བྱེད་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ཡང་དགག་པར་བྱའོ།། གནས་པ་དང་ཐ་དད་ན་ཡང་དེ་གནས་པ་པོ་དེ་ལ་ཕན་འདོགས་པར་བྱེད་པ་མ་ཡིན་པ་ཉིད་དེ། གནས་པ་དོན་གཞན་དུ་གྱུར་པ་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལ་ནི་གནས་པ་བསྐྱེད་པའི་མཐུ་ཡང་མེད་དེ། ཐམས་ཅད་ལ་མཐུ་མེད་པར་གསལ་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ།། བདག་ཉིད་ཀྱིས་འགྱུར་བའི་ངོ་བོ་ཉིད་ལ་ནི་གནས་[2]པར་བྱེད་པ་གང་ཡང་མེད་དེ། དེ་ནི་མི་གནས་པའི་[3]ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དེས་དེ་གཞིག་[4]པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་ཏེ། གནས་པར་བྱས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། མི་འགྱུར་བའི་ངོ་བོ་ཉིད་ལ་ཡང་གནས་པར་བྱེད་པས་ཅི་ཞིག་བྱ་སྟེ། བདག་ཉིད་ཀྱིས་བརྟན་པའི་ངོ་བོ་ཉིད་དུ་གནས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེ་ལྟ་བས་ན་ཅི་ཡང་མི་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ལྡན་པའི་འབྲེལ་བ་ཡང་མི་རུང་སྟེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་ན་ནི་ཐམས་ཅད་ཀྱང་ཐམས་ཅད་ཀྱི་

---

[1] བགེགས་ པེ།

[2] ངོ་བོ་ཉིད་ལ་ནི་མི་གནས་ པེ། སྣ།

[3] དེ་ནི་གནས་པའི་ སྡེ།

[4] བཤིག་ པེ། བཞིག་ སྣ།

ལྡན་པ་ཅན་གྱི་རྒྱུར་འགྱུར་རོ།། དོན་གཞན་དང་དོན་གཞན་དུ་ལྡན་པར་ནི་མི་རིགས་ཏེ། ལུགས་ཀྱི་ཐུར་མ་བཞིན་དུ་ཐམས་ཅད་བདག་ཉིད་གནས་པའི་ཕྱིར་རོ།། གཞན་ཡང་གལ་ཏེ་ལྡན་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་བདག་བདེ་བའམ་སྡུག་བསྔལ་བར་གྱུར་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ལྡན་པ་དེ་གཅིག་པུ་སྟེ། བྱེ་བྲག་མེད་པའི་ཕྱིར་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་སོ་སོར་ངེས་པའི་བདག་དང་[1]འབྲེལ་བ་ཅན་དུ་མི་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་བདག་གཅིག་པུ་བདེ་བ་ལ་སོགས་པས་ཀྱང་ཐམས་ཅད་བདེ་བ་ཉིད་དམ་སྡུག་བསྔལ་[2]ཉིད་དུ་མི་འགྱུར་རོ།། མི་མཐོང་བའི་སྟོབས་ཀྱིས་ངེས་པའི་ཁས་ལེན་ན་ནི་དེ་ཁོ་ནས་ངེས་པ་ཡིན་ན་ལྡན་པ་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པས་ཅི་ཞིག་བྱ།[3] དེ་ནི་གང་དུ་ཡང་མཐུ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འབྲེལ་བ་ཅན་ཐ་དད་པས་ཐ་དད་པར་འདོགས་པ་ལ་ཡང་དོན་དམ་པར་ནི་དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཐ་དད་པ་མེད་ན། གང་གིས་རང་བཞིན་ཐ་དད་པ་ལ་རག་ལུས་པའི་དོན་བྱེད་པའི་ཐ་དད་པར་འགྱུར། དེ་ལྟ་བས་[4]ན་འབྲེལ་བ་འདི་ནི་བློ་གྲོས་ངན་པས་ཡོངས་སུ་རྟོགས་པ་ཁོ་ནའོ།།

རྒྱུ་དང་འབྲས་བུས་འབྲེལ་བ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་རིམ་གྱིས་འབྱུང་བར་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།། རྒྱུ་མ་ཚང་བ་མེད་པ་ཅན་གྱི་འབྲས་བུ་ནི་རེས་འགའ་འབྱུང་བའམ་མི་འབྱུང་བར་མི་རིགས་ཏེ། བྱེ་བྲག་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། གཞན་དག་གིས་བྱེ་བྲག་ཏུ་བྱུར་མི་རུང་བའམ། མཐུ་རག་མ་ལུས་པ་ཅན་གྱི་བདག་ནི་གང་གིས་ན་ལྷན་ཅིག་བྱེད་པའི་རྒྱུ་ལ་ལྟོས་ནས་རིམ་གྱིས་སྐྱེ་བར་འགྱུར་བ་ལྷན་ཅིག་བྱེད་པ་ལ་ལྟོས་པ་ནི་མེད་དོ།། དེས་ན་གལ་ཏེ་སྡུག་བསྔལ་སྐྱེད་

---

༡ - བདག་ཉིད་དང་ སྣེ།

༢ སྡུག་བསྔལ་བ་ པེ། སྣ།

༣ བྱ་སྟེ་ པེ། སྣ།

༤ དེ་བས་ སྣ།

པའི་རྒྱུ་ཡིན་པས་དེ་བཅིངས་པ་ཡིན་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ཐམས་ཅད་དུ་བཅིངས་ནས་རྣམ་པར་གྲོལ་བར་མི་འགྱུར་ཏེ། རང་བཞིན་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་ཡོངས་སུ་མི་གཏོང་བའི་[1]ཕྱིར་རོ།། ཡོངས་སུ་གཏོང་ན་ནི་རྟག་པ་ཉིད་དུ་ག་ལ་འགྱུར། ཅི་སྟེ་སྡུག་བསྔལ་མེད་པའི་གནས་སྐབས་སྐྱེས་[2]པའི་རྒྱུ་ཡིན་པས་གྲོལ་བ་ཡིན་ན་ནི་དེའི་ཚེ་གྲོལ་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར་ཏེ། ནམ་ཡང་བཅིངས་པར་མི་འགྱུར་ན་དེའི་ཚེ་གཞི་[3]ཅན་གྱི་བཅིངས་པ་དང་གྲོལ་བ་དག་ཏུ་ཇི་ལྟར་རབ་ཏུ་བརྟག

དེ་བཞིན་དུ་གལ་ཏེ་སེམས་པ་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་བྱེད་པའམ་བསྐྱེད་ནུས་པས་བྱེད་པ་པོ་ཡིན་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ཐམས་ཅད་བྱེད་པ་པོར་འགྱུར་གྱི་ཟ་བ་པོར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། འོན་ཏེ་བདེ་བ་ལ་སོགས་པ་བསྐྱེད་པའི་རྒྱུས་ཟ་བ་པོ་ཡིན་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ཟ་བ་པོ་ཉིད་དུ་འགྱུར་གྱི་བྱེད་པ་པོར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། སེར་སྐྱ་པས་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པའི་བདེ་བ་ལ་སོགས་པས་འགྱུར་བ་མེད་པ་ནམ་མཁའ་ལྟ་བུ་ཡང་ཟ་བ་པོར་རིགས་པ་དང་ལྡན་པ་མ་ཡིན་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། འགྱུར་ན་ནི་རྟག་པ་ཉིད་ཉམས་སོ།། རྒྱུ་ཙམ་གྱིས་ནི་བྱེད་པ་པོ་དང་ཟ་བ་པོར་མི་འགྱུར་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བཞིན་དུ་དྲན་པ་པོ་ལ་སོགས་པ་ཡང་དེའི་གཞི་ཅན་དུ་མི་རུང་ཞེས་སྦྱར་བར་བྱའོ།།

དེ་ལྟ་བས་ན་བདག་མེད་པར་སྨྲ་བའི་ཕྱོགས་ཁོ་ན་ལ་ཐར་པ་དང་བཅིངས་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་པར་གཞག་པ་རིགས་པ་དང་ལྡན་ཏེ། རྣམ་པར་གཞག་པ་ནི་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་བྱེ་བྲག་ཙམ་གྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་རོ།། རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་དངོས་པོ་དེ་ཡང་མི་རྟག་པ་ཁོ་ན་ལ་སྲིད་ཀྱི་རྟག་པ་རྣམས་ལ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་

༡ མི་གཏོང་ན་ནི་ པེ། སྣ།
༢ སྐྱེད་ སྣ།
༣ དེའི་གཞི་ པེ། སྣ།

དག་ལ་འབྲས་བུ་གང་ལ་ཡང་རིམ་གྱིས་བསྐྱེད་པའི་མཐུ་མེད་དེ། སྔར་ཇི་སྐད་བཤད་པ་བཞིན་ནོ།། ཅིག་ཅར་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། ཡང་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུའི་འབྲས་བུ་བསྐྱེད་པའི་མཐུའི་ངོ་བོ་ཉིད་རྗེས་སུ་འབྲང་སྟེ། སྔ་མ་བཞིན་དུ་འབྲས་བུ་བསྐྱེད་པ་དང་བྲལ་བར་མི་རིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། རྗེས་སུ་མི་འབྲང་ན་ནི་ངོ་བོ་ཉིད་སྔ་མ་ཉམས་པར་འགྱུར་རོ།། རིམ་དང་ཅིག་ཅར་དག་ལས་མ་གཏོགས་པ་གང་གིས་དོན་བྱེད་པར་འགྱུར་བའི་རྣམ་པ་གཞན་ནི་མེད་དེ། དེ་གཉིས་ནི་ཕན་ཚུན་སྤངས་ཏེ་གནས་པའི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་སྐད་གཅིག་པ་མ་ཡིན་པ་གང་ཇི་སྙེད་པ་ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་གཞན་གྱིས་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི་དོན་བྱེད་པའི་ནུས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་མེད་པར་ཐ་སྙད་གདགས་པའི་ཡུལ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་མཁས་པ་[1]ཆེན་པོ་སངས་རྒྱས་པ་དག་སྨྲའོ།། རི་བོང་གི་རྭ་ལ་སོགས་པ་ལ་མེད་པར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་ཡང་དོན་བྱེད་པའི་ནུས་པ་མེད་པ་ཙམ་གྱི་རྒྱུའི་ཕྱིར་རོ།། ཤུགས་ཀྱིས་ན་ཡོད་པར་ཐ་སྙད་གདགས་པ་དོན་བྱེད་ནུས་པའི་ཡུལ་ཉིད་དེ། ཡོད་པ་དང་མེད་པ་ནི་ཕན་ཚུན་སྤངས་ཏེ་གནས་པའི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།།

རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་ནུས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་སྟོང་པ་རི་བོང་གི་རྭ་ལ་སོགས་པ་དང་བྱེ་བྲག་མེད་པ་ལ་ཡང་དངོས་པོ་ཞེས་མིང་དུ་འདོགས་ན་ནི་མིང་ལ་ནི་བརྩད་པ་[2]མེད་དོ།། འོན་ཀྱང་དོན་བྱེད་པར་[3]འདོད་པ་རྟོགས་པ་དང་ལྡན་པ་དག་ནི་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་མི་དམིགས་པའི་ངོ་བོ་ཉིད་མོ་གཤམ་གྱི་བུ་ལ་སོགས་པ་དང་བྱེ་བྲག་མེད་པ་ལ་དངོས་པོར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་རིགས་པ་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་སྨྲའོ།། དེ་ལྟ་

---

[1] ཞེས་མཁས་པ་ པེ། སྣ།

[2] བརྗོད་པ་ སྣ།

[3] དོན་མེད་པའི་ སྡེ།

བས་ན་གདན་ཚིགས་མ་གྲུབ་པ་མ་ཡིན་ནོ།། ནམ་མཁའ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཡང་བྱེད་པ་པོར་ཐལ་བར་འགྱུར་བས་མ་ངེས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། ཕྱོགས་དང་མཐུན་པ་ལ་ཡོད་པས་འགལ་བ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། བདག་གི་མཚན་ཉིད་གཞན་ཡང་མེད་པས་དེ་ལྟ་བས་ན་མོ་གཤམ་གྱི་བུ་དང་འདྲའོ།། གང་ཟག་དག་ཀྱང་གལ་ཏེ་འཇིག་ན་ནི་ཕུང་པོ་རྣམས་ཀོ་ནའི་ནང་དུ་འདུས་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་སྟེ། ཕུང་པོ་རྣམས་ཀྱིས་འདུས་བྱས་མཐའ་དག་བསྡུས་པའི་ཕྱིར་རོ།། འོན་ཏེ་མི་འཇིག་ན་དེའི་ཆེ་ཕུང་པོར་གདགས་པའི་ཆོས་རྣམས་དང་མི་འདྲ་བས་དེ་ལས་དོན་གཞན་པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཉེས་པ་ནི་བརྗོད་ཟིན་ཏོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་བརྗོད་དུ་མི་རུང་བ་ཞེས་བྱ་བ་དངོས་པོ་ཙུང་ཟད་ཀྱང་མེད་དེ། དེས་ན་ཆོས་ཐམས་ཅད་བདག་མེད་དོ་ཞེས་བྱ་བ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སེང་གེའི་སྒྲ་ནི་མུ་སྟེགས་བྱེད་གླང་པོ་ཆེའི་ཁྱུ་མཐའ་དག་སྐྲག་པར་མཛད་ཅིང་བཟླ་བ་མེད་པ་ཡིན་པས་མང་དུ་མི་དགོས་སོ།།

ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། ཡང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་ཡང་སྔར་བཤད་པ་དང་དམིགས་ཀྱིས་བསལ་བའི་རང་བཞིན་ཚིག་གཉིས་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་ནི་བྱ་མོད་ཀྱི་དངོས་པོ་ལ་གནས་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། སྦྱིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྦྱིན་པ་རྣམ་པ་གསུམ་གྱི་དབང་དུ་མཛད་ནས་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དྲུག་ཅར་བསྟན་གྱི་སྦྱིན་པ་འབའ་ཞིག་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལ་ཟང་ཟིང་སྦྱིན་པས[1]ནི་སྦྱིན་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བསྟན་ཏོ།། མི་འཇིགས་པ་སྦྱིན་པས་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའོ།། ཆོས་སྦྱིན་པས་ནི་བརྩོན་འགྲུས་དང་། བསམ་གཏན་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམས

[1] པ་ སྣོ།

ཏེ། བརྩོན་འགྲུས་མེད་ན་ཆོས་བཟུང་བ་དང་བསྟན་པ་ལ་ཡོངས་སུ་སྐྱོ་སྟེ་ཆོས་མི་སྟོན་པར་འགྱུར་རོ།། བསམ་གཏན་མེད་ན་དད་པ་ལས་ལྷག་པར་བྱ་བ་འདོད་པས་ཉོན་མོངས་པ་ཅན་གྱི་སྟོན་པར་འགྱུར་རོ།། ཤེས་རབ་མེད་ན་དེ་ནི་དེ་ལ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་སྟོན་པར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་གསུམ་ཆར་མེད་ན་ཆོས་སྦྱིན་པ་འགྲུབ་པར་མི་འགྱུར་རོ།། གཞན་དག་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ཀུན་ཏུ་འགྲོའི་ཞེས་འཆད་དོ།།

སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དྲུག་པོ་དག་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། དངོས་པོ་ལ་མི་གནས་པར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་འདི་ལ་རྣལ་འབྱོར་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་ལྟར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་ནས་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། དེ་ལ་དངོས་པོ་ལ་མི་གནས་པས་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བའི་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཡོད་པ་བསྟན་ཏོ།།

སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དང་། སྦྱིན་པ་པོ་དང་། ལེན་པ་པོ་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་ལ་དེ་ཁོ་ནར་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་ནི་གནས་པའོ་ཞེས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དངོས་པོ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་ནས་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་ན་ལོག་པར་སྦྱོར་བར་འགྱུར་ཏེ། དོན་དམ་པར་ན་གང་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་མེད་པར་འགྱུར་བའི་དངོས་པོ་ཅི་ཡང་མེད་པས་[༡]ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེ་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་ཚད་མ་མེད་པའི་ཕྱིར་དང་། གནོད་པ་ཅན་ཡོད་པའི་ཕྱིར་[༢]ཏེ། འདི་ལྟར་གཞན་དག་གིས་དོན་གྱི་དངོས་པོ་རྣམ་པར་ཤེས་པ་དང་

---

༡ མེད་པར་ སྣེ།

༢ ཡོད་པའི་ཡང་ཕྱིར་ པེ།

ཐ་དད་པ་དོན་དམ་པར་འདོད་པ་དེ་ནི་རེ་ཞིག་མངོན་སུམ་དུ་མི་འགྲུབ་སྟེ། དོན་གཞན་ལ་ཤེས་པས་འཛིན་པ་མི་རིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དོན་ལ་ཤེས་པས་འཛིན་པ་རྣམ་པ་དང་བཅས་པའམ། རྣམ་པ་མེད་པའམ། གཞན་གྱི་རྣམ་པའམ་ཕྱོགས་གསུམ་དུ་འགྱུར་གྲང་ན། རེ་ཞིག་རྣམ་པ་དང་བཅས་པས་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། རི་མོའི་གདིང་བ་ལ་སོགས་པ་མཐོང་བའི་ཚེ་ཤེས་པ་གཅིག་པུ་དང་ཐ་མི་དད་པས་རྣམ་པ་རྣམས་ཀྱང་གཅིག་པུའི་ངོ་བོར་ཐལ་བར་འགྱུར་བའམ། ཤེས་པ་ཡང་རྣམ་པ་རྣམས་དང་ཐ་མི་དད་པས་རྣམ་པའི་ངོ་བོ་བཞིན་དུ་དུ་མའི་བདག་ཉིད་དུ་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།།

དུ་མ་ཉིད་དུ་ཡང་རིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་གཅིག་ཙམ་འཛིན་པའི་ཤེས་པ་ཉམས་སུ་མྱོང་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཤེས་པ་གཅིག་མི་འགྲུབ་པོ།། དེ་མ་གྲུབ་ན་དུ་མ་ཡང་མི་འགྲུབ་པོ།[1] དུ་མ་ནི་གཅིག་འདུས་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཤེས་པ་རྣམས་ནི་ལུས་མེད་པའི་ཕྱིར་གང་གིས་རི་མོའི་རྣམ་པ་ཉིད་གཞུང་གཟུགས་པའི་དོན་དུ་ཤེས་པ་དུ་མ་སྐྱེ་བར་རྟོག་པ་ཡིགས་པར་འགྱུར་བ་ཤེས་པ་ཡུལ་ལ་ཁྱབས་པར་གནས་པས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པར་སྐྱེ་བ་ཡང་མི་སྲིད་དོ།།

གཞན་ཡང་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་དམ་ཕྱོགས་གཅིག་འདྲ་བར་འགྱུར་གྲང་ན། རེ་ཞིག་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་དུ་མ་ཡིན་ཏེ། དོན་བཞིན་དུ་ཤེས་པ་བེམས་པོའི་ངོ་བོར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཆ་ཤས་ཀྱིས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། གཅིག་པུ་ལ་ཆ་ཤས་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ལྷག་པའི་བྱེ་བྲག་གིས་ཆ་ཤས་སུ་ཡོངས་སུ་བརྟགས་ན་ཡང་དངོས་པོ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་འདྲ་བ་ཐམས་ཅད་ལ་ཡོད་པས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཐམས་ཅད་ལ་རིག་པར་འགྱུར་རོ།། འོན་ཏེ་དེ་ལས་སྐྱེས་པ་དང་འདྲ

[1] སྣེ་ པོ། སྣ།

བ་གཉིས་ཀྱིས་རིག་པར་འཇོག་ན་ནི་དེ་མ་ཐག་པའི་རྐྱེན་དོན་མཐུན་པ་ཡང་འཛིན་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།།

འདྲ་བ་ཡོད་དུ་ཆུག་ཀྱང་དོན་དམ་པར་ཕྱི་རོལ་གྱི་དོན་མངོན་སུམ་དུ་མི་འགྲུབ་སྟེ། ཤེས་པས་སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་པ་བདག་ལ་ཡོད་པ་རིག་པའི་ཕྱིར་རོ།། གང་གིས་དོན་ཡང་མངོན་སུམ་དུ་འགྱུར་བ་སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་པར་རིག་པ་གཉིས་པ་ནི་མེད་དོ།། གལ་ཏེ་གང་དེའི་རྣམ་པར་ཤེས་པ་དེ་ཉིད་དོན་འཛིན་པ་ཡིན་ནོ།། ཞེ་ན། བརྟགས་པའི་བློ་ནས་ནི་ཡིན་གྱི་དོན་དམ་པར་དེ་རིག་པ་ནི་མེད་དེ། བདག་ལ་ཡོད་པའི་རྣམ་པ་ཉིད་རིག་པའི་ཕྱིར་རོ།། དོན་ཤིན་ཏུ་ལྐོག་ཏུ་གྱུར་པའི་ཕྱིར་རོ་[1]ཤེས་པ་དེའི་རྣམ་པ་ཁོ་ན་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ག་ལ་ཡོད། རྒྱུ་ནི་ངེས་པར་བདག་གི་ངོ་བོ་བསྐྱུན་པ་ཁོ་ནས་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཉིད་དུ་གྲུབ་པ་མེད་དེ་འཁྲུལ་པ་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།།

རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཀྱི་རགས་པར་སྣང་བའི་ཤེས་པའི་ཡུལ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་དག་ཕྲ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་དག་འདུས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་དག་ལས་དོན་གཞན་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། རྣམ་པར་རྟོག་པའི་ཡུལ་ཡང་དངོས་པོ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདུས་པའི་དོན་གཞན་ན་ནི་ཕྱོགས་ཐ་དད་པར་སྣང་བའི་ཕྱིར་དང་། བསྒྲིབས་པ་དང་མ་བསྒྲིབས་པ་ཆོས་མི་མཐུན་པ་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་གཅིག་པུར་མི་རིགས་སོ།། འདུས་པ་དུ་མ་ཡིན་ན་ཡང་རྡུལ་ཕྲ་རབ་དེ་དག་ཉིད་ཡིན་པར་འགྱུར་གྱི། དེ་དོན་གཞན་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

རྣམ་པ་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཕྱོགས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཅི་ཡང་མི་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡོད་པ་ཙམ་གྱིས་རིག་ན་ནི་ཤེས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཐམས་ཅད་རིག་པར་འགྱུར་ཏེ། ཐམས་ཅད་ལ་ཡང་བྱེ་བྲག

[1] ཕྱིར་རོ། ཞེས་པ་ པེ། སྣ། གཉིས་ཀར་མེད།

མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་འདི་ནི་སྔོན་པོ་རིག་པ་ཡིན་གྱི་སེར་པོ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་རྣམ་པར་གཞག་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། རྣམ་གཞག་པའི་རྒྱུའི་བྱེ་བྲག་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བྱེ་བྲག་གཅིག་ཁས་ལེན་ན་ནི་དེ་ཉིད་རྣམ་པ་དང་བཅས་པར་ཁས་བླངས་པར་འགྱུར་ཏེ། ཇོག་པའི་ངོ་བོ་ཙམ་དུ་བྱེ་བྲག་མེད་པའི་ཤེས་པའི་བདག་ཉིད་ལ་ནི་རྣམ་པ་མ་གཏོགས་པ་ཐ་དད་པ་གཞན་མེད་དོ།།

གཞན་གྱི་རྣམ་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཕྱོགས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་ན་ནི་རྣམ་པའི་རྣམ་པར་ཤེས་པ་ཡང་གཟུགས་ཀྱི་ཡུལ་ཅན་དུ་བརྟག་པར་བྱ་བར་འགྱུར་རོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དོན་མངོན་སུམ་དུ་འགྲུབ་པོ།། རྗེས་སུ་དཔག་པས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། མངོན་སུམ་དུ་མ་གྲུར་པའི་དོན་དེ་དང་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པ་རྟགས་གང་དང་ཡང་ལྷན་ཅིག་འབྲེལ་བར་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཤེས་པ་འབྲས་བུ་དང་ཐ་དད་པ་ཞིག་གྱིར་རྒྱུ་ཙམ་དུ་རྗེས་སུ་དཔོག་ན་ནི་འདོད་པ་མི་འགྲུབ་སྟེ། རྒྱུ་གཞན་དེ་མ་ཐག་པའི་རྐྱེན་ཡང་ཡོད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཚད་མ་གཞན་ཡང་མེད་དོ།། དེ་བས་ན་རེ་ཞིག་ཕྱི་རོལ་གྱི་དོན་ནི་མི་འགྲུབ་བོ།།

ཤེས་པའི་བདག་ཉིད་དོན་དམ་པ་ཡང་མངོན་སུམ་དུ་མི་འགྲུབ་སྟེ་གཉིས་སུ་མེད་པའི་བདག་ཉིད་སོ་སོར་རིག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལ་མ་ཡིན་ན་ནི་ཐམས་ཅད་དེ་ཁོ་ན་མཐོང་བར་མི་འགྱུར་རོ།། རྗེས་སུ་དཔག་པས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་དང་རྟགས་གང་ཡང་ལྷན་གཅིག་འབྲེལ་བར་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།།

གལ་ཏེ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་རྣམ་པར་བྱང་བར་ཇི་ལྟར་འགྱུར་ཞེ་ན། མ་ཡིན་ཏེ། ཁྱོད་ཀྱི་ལྟར་ན་དེ་གཉིས་དང་དེ་གང་ཡང་འབྲེལ་བར་མ་གྲུབ་པའི་

ཕྱིར་རོ།། དེ་གཉིས་ནི་དོན་དམ་པ་བའི་དངོས་པོ་དང་གང་དུ་ཡང་[1]འབྲེལ་བར་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལས་སྐྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་འབྲེལ་བར་མ་གྲུབ་སྟེ། དེ་ནི་ཐམས་ཅད་དུ་ལོག་ཏུ་གྱུར་པའི་ཕྱིར་རོ།། ལོག་ཏུ་གྱུར་པ་དང་འབྲེལ་བ་ནི་ཚུ་རོལ་མཐོང་བ་གང་གིས་ཀྱང་གཟུང་བར་མི་ནུས་སོ།། གང་གི་ཚེ་མ་རིག་པ་ལ་སོགས་པ་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ཡང་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པའི་རྒྱུ་བར་འགལ་བ་མེད་ལ། མ་རིག་པ་ལ་སོགས་པ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ལོག་ན་རྣམ་པར་བྱུང་བ་དེ་དང་མི་མཐུན་པའི་གནས་འབྱུང་བའི་མཚན་ཉིད་མ་བརྟགས་གཅིག་པུ་ན་དགའ་བ་ཡང་འཐད་པ་དེའི་ཚེ་དོན་དམ་པར་དངོས་པོ་མེད་པས་དེ་གཉིས་ཀྱང་མེད་པར་ཇི་ལྟར་ཐལ་བར་འགྱུར། གང་ཞིག་དེ་གཉིས་གཅིག་ཏུ་ངེས་པར་རྒྱུ་མེད་པར་ཁས་ལེན་པ་དེ་ལ་ཐལ་བ་འདི་འབྱུང་གི ཀུན་རྫོབ་ཏུ་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་བར་འབྱུང་བར་སྨྲ་བ་ལ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

དེ་ལྟ་བས་ན་དོན་དམ་པའི་དངོས་པོ་རང་བཞིན་བསྒྲུབ་པར་བྱེད་[2]པའི་ཚད་མ་ནི་ཅུང་ཟད་ཀྱང་མེད་དོ།། གནོད་པ་ཅན་ནི་ཡོད་པ་ཉིད་དེ་འདི་ལྟར་གང་གཅིག་དང་དུ་མའི་ངོ་བོ་ཉིད་དང་བྲལ་བ་དེ་ནི་དོན་དམ་པར་ངོ་བོ་ཉིད་མེད་དེ། དཔེར་ན་ནམ་མཁའི་པདྨ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ལ། གཞན་དག་གིས་འདོད་པ་[3]ཤེས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་བདག་ཉིད་དངོས་པོའི་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱང་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་གྱིས་སྟོང་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་གྱིས་ན་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་མི་དམིགས་པ་ཡིན་ཏེ། གཅིག་དང་དུ་མ་དག་གིས་ནི་ངོ་བོ་ཉིད་ལ་ཁྱབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་གཉིས་ཀྱང་དེ་ལ་མེད་དེ། འདི་ལྟར་རེ་ཞིག་གང་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་སྐྱེ་

---

[1] གང་དུ་གང་ སྣ།

[2] མེད་ སྣ།

[3] འདོད་པས་ སྣ།

མཆེད་ཕྱི་རོལ་གྱི་དངོས་པོ་དེ་ནི་གཅིག་པུ་མ་ཡིན་ཏེ། བསྒྲིབས་པ་དང་མ་བསྒྲིབས་པ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་འགལ་བ་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆོས་འགལ་བ་དང་ལྡན་བཞིན་དུ་ཡང་གཅིག་པ་ཉིད་ཡིན་ན་ནི[1] ཐམས་ཅད་ཀྱང་རྫས་གཅིག་ཏུ་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་ལྷན་གཅིག་འབྱུང་བ་དང་འཇིག་པར་འགྱུར་རོ།།

དུ་མ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་དུ་མར་བཞག་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཏུ་ཐ་དད་པར་འགྱུར་ལ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཀྱང་ཆ་ཤས་མེད་པའི་ཕྱིར་ཕ་རོལ་དང་ཚུ་རོལ་ན་གནས་པ་ནི་མེད་དེ་སེམས་དང་སེམས་ལས་བྱུང་བ་བཞིན་ནོ།། དེའི་ཕྱིར་ཕྱོགས་ལ་ཁྱབ་པར་གནས་པར་སྣང་བར་ཡང་མི་འགྱུར་བ་ཞིག་ན་འགྱུར་ཏེ། དེ་བས་ན་ཕྱོགས་ཆ་ཐ་དད་པར་ཁས་བླང་བར་བྱའོ།། དེ་ཁས་ལེན་ན་ནི་གཅིག་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། དེ་ལྟ་བས་ན་དེ་ལྟར་རེ་ཞིག་ཕྱི་རོལ་གྱི་དོན་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བ་ཉིད་དུ་གྲུབ་བོ།།

སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པར་སྣང་བའི་ཤེས་པ་ཡང་རི་མོའི་རྣམ་པ་འཛིན་པར་སྣང་བའི་ཕྱིར་གཅིག་པུའི་ངོ་བོ་ཉིད་མ་ཡིན་ཏེ། ཐ་དད་པའི་རྒྱུད་ལ་ཡོད་པའི་རྣམ་པར་ཤེས་པའི་སྐད་གཅིག་མ་དུ་མ་བཞིན་ནོ།། དུ་མ་རྣམ་གྲངས་བཞིན་དུ་རྣམ་པར་ཤེས་པ་ཅིག་ཅར་འབྱུང་ངོ་ཞེས་བརྗོད་དུ་ཡང་མི་རུང་སྟེ། ཆ་ཤས་མེད་པ་དང་ལུས་མེད་པ་རྣམས་ལ་ནི། ཚུ་རོལ་དང་ཕ་རོལ་ན་གནས་པ་མི་རིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟར་གནས་པ་མེད་ན་ནི། དེ་ལྟར་སྣང་བར་མི་འགྱུར་རོ།།

འོན་ཏེ་རྣམ་པར་ཤེས་པ་ནི་གཅིག་པུ་ཁོ་ན་ཡིན་ལ། རྣམ་པ་རྫུན་པ་རྣམས་དེ་ལ་སྣང་བས་སྣ་ཚོགས་ཀྱི་སྐྱོན་དུ་མི་འགྱུར་རོ་ཞེ་ན། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་གོ་བརྫུན་པ་དེ་དག་ཇི་ལྟར་དེ་ལ་སྣང་བར་འགྱུར། སྣང་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གསལ་བའི་

[1] གཅིག་པ་ཉིད་ནི་ སྣེ།

བདག་ཉིད་ལ་བྱ་སྟེ། དེ་ནི་ཤེས་པའི་བདག་ཉིད་དུ་གདགས་པའི་ཆོས་ཡིན་ན་བརྟེན་པ་རི་བོང་གི་རྭ་ལ་སོགས་པ་དང་འདྲ་བར་ཤིན་ཏུ་མེད་ན་གོ་སྣང་བར་ཇི་ལྟར་འགྱུར།

དེ་ལྟ་བས་ན་གསལ་བའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་རྣམ་པ་རྣམས་བརྟེན་པ་ཉིད་དུ་ཁས་ལེན་ན་ཁྱོད་ཀྱི་བདེན་པར་འགྱུར་བ་གང་ཡིན་པ་ཤེས་པའི་ངོ་བོ་གཞན་ཅི་ཞིག་ལུས་ཏེ། རྣམ་པར་ཤེས་པ་ཡང་གསལ་བའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ལ། སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པ་ཡང་བདག་ཉིད་ཀྱིས་སྣང་བའི་གསལ་བའི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པའི་རང་གི་ངོ་བོ་དང་ཐ་དད་པ་གཞན་བདེན་པར་འགྱུར་བ་གང་ཡིན་པ་གསལ་བའི་བདག་ཉིད་[1]ཞེས་བྱ་བ་ཅི་ཡང་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། གཞན་རྣམ་པར་བཅད་པ་ལ་ལྟོས་ནས་བྱེ་བྲག་རྣམས་ཁོ་ན་ལ་སྒྲོ་ཐ་སྙད་འདོགས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

བྱེ་བྲག་རྣམས་བརྟེན་ན་ནི་ཐམས་ཅད་ཀྱང་བརྟེན་པར་ཤིན་ཏུ་གསལ་བར་འགྱུར་ཏེ། རྣམ་པར་ཡོད་པ་མ་ཡིན་པ་རྣམས་ནི་བདེན་པའི་ངོ་བོའི་ཤེས་པའི་བདག་ཉིད་དེ་ལ་གང་གིས་ན་དེ་ལ་ངེས་པར་སྣང་བར་འགྱུར་བ་དེའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་མཚན་ཉིད་དམ། དེ་ལས་འབྱུང་བའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་འབྲེལ་བ་ཡང་མེད་དོ།། འབྲེལ་བ་མེད་ན་ནི་སྣང་བར་མི་རིགས་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་གཏན་ཚིགས་མ་གྲུབ་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། དངོས་པོའི་རྣམ་པ་གཞན་མེད་པའི་ཕྱིར་མ་ངེས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ། མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ལ་ཡོད་པའི་ཕྱིར་འགལ་བ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དངོས་པོ་རྣམས་ཇི་ལྟ་ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་བརྟགས་པ་དེ་ལྟ་དེ་ལྟར་འགྲེལ་ལོ།།

---

[1] རྣམ་པར་ཤེས་པ་ཡང་གསལ་བའི་བདག་ཉིད་ཞེས་བྱ་བ་ཅི་ཡང་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། སྡེ།

དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར།[1]

དངོས་རྣམས་ཇི་ལྟར་རྣམ་བརྟགས་ན། །
བདེན་པར་དེ་ཡི་ངོ་བོ་མེད། །
འདི་ལྟར་དེ་དག་གཅིག་པུ་དང་། །
དུ་མའི་ངོ་བོར་ཡོད་མ་ཡིན། །

ཞེས་བཤད་དོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཀྱང་ **ལང་ཀར་གཤེགས་པ་** ལས།[2]

ཇི་ལྟར་གཟུགས་རྣམས་མེ་ལོང་ལ། །
གཅིག་དང་གཞན་ཡང་རྣམ་སྤངས་པར། །
སྣང་ཡང་དེ་ན་ཡོད་མ་ཡིན། །
དེ་ལྟར་དངོས་པོའི་ངོ་བོ་ཉིད། །

བློ་ཡིས་རྣམ་པར་གཞིགས་ན་གོ །
ངོ་བོ་ཉིད་ནི་གཟུང་དུ་མེད། །
དེ་ཕྱིར་དེ་དག་བརྗོད་མེད་ཅིང་། །
ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱང་མེད་པར་བཤད། །

---

[1] དབུ་མ་རྒྱན་ལས།
།དངོས་པོ་གང་གང་རྣམ་འཕྱུད་པ། །དེ་དང་དེ་ལ་གཅིག་ཉིད་མེད།
།གང་ལ་གཅིག་ཉིད་ཡོད་མིན་པ། །དེ་ལ་དུ་མ་ཉིད་ཀྱང་མེད།
སྡེ་བསྟན། ༣༨༨༤ དབུ་མ། "ས" ཤོག ༦༡

[2] །མེ་ལོང་ལ་ནི་ཇི་ལྟར་གཟུགས། །གཅིག་དང་ཐ་དད་ཉིད་སྤངས་པ།
།སྣང་སྟེ་དེ་ནི་མེད་པའང་མིན། །སྐྱེ་བའི་མཚན་ཉིད་དེ་བཞིན་ནོ།
།བློ་ཡིས་རྣམ་པར་གཞིགས་ན་ཡང་། །གང་ཕྱིར་རང་བཞིན་མི་རིག་སྟེ།
།དེ་ཕྱིར་དེ་དག་བརྗོད་དུ་མེད། །ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱང་མེད་པར་བསྟན།
སྡེ་བཀའ། ༡༠༧ མདོ་སྡེ། "ཅ" ཤོག ༡༨༩

ཅེས་གསུངས་སོ།། དེ་བཞིན་དུ་**འཕགས་པ་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་རྒྱལ་པོའི་མདོ་**ལས་ཀྱང་།[༡]

དཔེར་ན་ཆུ་ཤིང་སྙིང་པའི་སྡོང་པོ་ལ། །
སྙིང་པོ་འདོད་མིས་རིམ་པར་བཤིག་བྱས་ཀྱང་། །
ཕྱི་དང་ནང་ན་སྙིང་པོ་ཡོད་མིན་པ། །
དེ་ལྟར་ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཅད་ཤེས་པར་གྱིས། །

ཞེས་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ཡིན་པས་དེ་ལྟར་མངོན་པར་མ་ཞེན་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱའོ།། དངོས་པོ་ལ་གནས་པས་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་འདི་འདིར་རིགས་པ་དང་ལྡན་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟར་ན་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་སྦྱོར་བ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཡོད་པ་ཡོངས་སུ་བསྟན་པ་ཡིན་གྱི་གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་དངོས་པོ་ལ་ཅི་ཡང་མེད་པས་དངོས་པོ་ལ་གནས་པས་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་མི་བྱ་ན་དངོས་པོ་མེད་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པས་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལྟ་ཞིག་སྙམ་པ་ལས། ཅི་ལ་ཡང་མི་གནས་པར་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དངོས་པོ་མེད་པར་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཡང་སྤང་བར་བྱ་སྟེ། དེ་ནི་དངོས་པོར་འཛིན་པ་མེད་ན་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དང་། སྦྱིན་པ་པོ་ལ་སོགས་པ་ཡོད་དེ། དེའི་ཕྱིར་དངོས་པོ་མེད་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡང་མི་རིགས་པར་དགོངས་པའོ།། གཟུགས་ལ་མི་གནས་

[༡] །ཇི་ལྟར་ཆུ་ཤིང་སྙིང་པའི་སྡོང་པོ་ལ། །སྙིང་པོ་འདོད་ཕྱིར་སྐྱེས་བུས་དེ་གཤགས་ཀྱང་། །ཕྱི་དང་ནང་དང་ཕྱི་རོལ་ཀུན་ན་སྙིང་པོ་མེད། །དེ་ལྟར་ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཅད་དེ་བཞིན་གྱིས། སྡེ་བཀའ། ༡༣༧ མདོ་སྡེ། "ད" ལེའུ་ ༩/༣༣ ཤོག ༣༨

པར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་གང་ལ་མི་གནས་པར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དེ་ཉིད་རྒྱས་པར་སྟོན་ཏོ།།

ཆོས་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲས་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་ཡོངས་སུ་གཟུང་ངོ་།། སྐྱེ་མཆེད་འདིས་ནི་སྒྲས་ཏེ་མཚོན་པ་ཡིན་པས་དེས་ན་མིག་ལ་སོགས་པ་ནང་གི་སྐྱེ་མཆེད་རྣམས་མ་སྨོས་སོ།། མི་སྐྱེ་བ་ལ་སོགས་པར་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཡང་མི་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་ཅི་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། མཚན་མ་ནི་དངོས་པོའི་རང་གི་མཚོན་པ་སྟེ་རྟགས་སོ།། དེ་ཡང་མ་སྐྱེས་པ་ལ་སོགས་པའོ།། དེ་ལ་རྟོགས་པ་ནི་འདུ་ཤེས་སོ།། དེ་ལ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་ནི་དེ་ལ་མི་གནས་པའོ།། དེས་ནི་ཅི་ལ་ཡང་མི་གནས་པར་ཞེས་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། ཡང་ན་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་འདིས་ཟབ་པ་ཡང་བསྟན་ལ། སྒྲོ་བཏགས་པ་དང་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་དགག་པ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

དམིགས་པ་ཅན་རྣམས་ལྟ་བ་འདི་ལ་ནི་བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་བྱ་བར་རུང་བ་བཀག་སྟེ། འདི་ལྟར་མཆོད་པ་དང་ཕན་གདགས་པར་འདོད་པས་གང་བྱིན་པ་དེ་ཤིན་ཏུ་དང་བ་བསྐྱེད་ཀྱི། སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དང་། སྦྱིན་པ་པོ་དང་། ལེན་པ་པོ་མི་དམིགས་པ་ལ་གནས་པས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། འདི་ལྟར་མེད་པའི་ཕྱིར་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་མི་དམིགས་སམ། འོན་ཏེ་ཡུལ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཕྱོགས་དང་པོ་ནི་སུས་ཅི་ཡང་བྱིན་པ་མེད་པས་བསོད་ནམས་མེད་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། སེམས་ཅན་དག་མེད་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་སེམས་ཅན་གྱི་དོན་གྱི་ཕྱིར་ཡོངས་སུ་ངལ་བར་བྱས་པ་དེ་ཡང་དོན་མེད་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ལྟ་བས་ན་མེད་པ་ཁོ་ན་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་གཟིགས་པས་ཡུལ་མ་ཡིན་པ་ཡང་མ་ཡིན་[1]ནོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་འདོད་པ་རྣམས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྨྲས་ལ་སོགས་པ་ཇི་ལྟར་ཡོངས་སུ་བཏང་བར་འགྱུར་ཞེས་རྒོལ་བར་བྱེད་པ་དེ་མཐའ་དག་སེམས་ལ་བཞག་ནས། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་ལན་དུ། རབ་འབྱོར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་ལས་བྱུང་བའི་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་ཡོངས་སུ་དག་པའི་ཕྱིར་འབྲས་བུ་ཡིད་དུ་འོང་བ་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་མངོན་པར་འགྲུབ་པར་བྱེད་པ་ཡིན་གྱི། ཕྱིན་ཅི་ལོག་ནས་འབྱུང་བས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། ལོག་པར་ལྟ་བ་ལས་བྱུང་བའི་ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱི་ཡན་ལག་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ།། སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་ནི་ཇི་སྐད་སྨོས་པའི་ཚུལ་གྱིས་ན་གང་ཡང་མེད་པས་དེར་དམིགས་པ་ནི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཁོ་ན་སྟེ། སྨིག་རྒྱུ་ལ་ཆུར་དམིགས་པ་བཞིན་ནོ།། དེ་བས་ན་དེ་ལས་བྱུང་བའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་ཚུལ་ཐམས་ཅད་ནི་བདག་དང་བདག་གིར་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ལས་བྱུང་བའི་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་རྒྱུ་རྣམ་པར་དག་པ་མ་ཡིན་པ་ལས་བྱུང་བས་སྟོབས་ཆུང་བའོ།། སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་དམིགས་པའི་རིག་བྱར་གྱུར་པ་མི་དམིགས་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་དོན་གྱིས་ཡུལ་ཡིན་པས་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པ་སྟེ། སྨིག་རྒྱུ་ལ་ཆུར་མི་དམིགས་པ་[2]བཞིན་ནོ།། དེ་བས་ན་རྒྱས་པའི་རྒྱུ་ལས་བྱུང་བའི་ཕྱིར་དེ་ལས་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་འབྲས་བུ་ཆེ་བ་ཡིན་ཏེ། ས་བོན་གྲུང་པོ་ལས་མངོན་པར་གྲུབ་པའི་མྱུ་གུ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ།། དེ་བས་ན་མི་དམིགས་པ་ལ་གནས་པའི་སྦྱིན་

---

[1] ཡུལ་མ་ཡིན་ སྣེ།

[2] ཆུར་དམིགས་པ་ སྣེ།

པ་ལ་སོགས་པ་དེ་ནི་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་ལས་[༡]བྱུང་བས་མཁས་པ་རྣམས་ལ་ཕྱིན་ཏུ་དང་བ་བསྐྱེད་པ་ཡིན་གྱི་གཞན་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

གང་གིས་ན་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་མི་འཇུག་པའི་ཕྱིར་བསོད་ནམས་མེད་པར་འགྱུར་བ་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གཅིག་ཏུ་མེད་པར་འདོད་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་པར་ཁས་བླངས་པའི་ཕྱིར་རོ།། མཉམ་པར་མ་བཞག་པའི་གནས་སྐབས་ན་སྒྱུ་མ་ལྟ་བུར་དམིགས་པའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་དུ་དམིགས་པ་མེད་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། དེའི་ཚེ་ན་ཡང་མོས་པ་ལས་བྱུང་བའི་མི་དམིགས་པར་ནི་རྣམ་པར་གཞག་གོ། མཉམ་པར་བཞག་པའི་གནས་སྐབས་ན་ནི་ཤིན་ཏུ་དམིགས་པ་མེད་པ་ཁོ་ན་སྟེ། དེའི་ཚེ་ན་ནི་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པར་འཇུག་པར་ཁས་མི་ལེན་གྱི། དང་པོ་སྦྱོར་བའི་གནས་སྐབས་སམ། ལངས་པ་རྣམས་ལ་བྱ་བས་ཀླན་ཀར་མི་རུང་ངོ༎ འདིས་ནི་འབྲས་བུ་ཆེ་བའི་ཕྱིར་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བའི་རྒྱུ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་དངོས་པོ་ཉེ་བར་སྟོན་པས་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་པར་ཡང་གྱུར་ཏོ།།

རྣམ་པ་གསུམ་གྱིས་ན་བསོད་ནམས་ནམ་མཁའ་དང་མཚུངས་པ་ཡིན་ཏེ། ཐམས་ཅད་དུ་སོང་བ་དང་། རྒྱ་ཆེ་བ་དང་། མི་ཟད་པས་སོ།། འཇིག་རྟེན་པ་དང་འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་བསོད་ནམས་བསྐྱེད་པས་ཐམས་ཅད་དུ་སོང་བ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་པའི་བསོད་ནམས་ནི་མཉམ་པར་མ་གཞག་པའི་གནས་སྐབས་ན་བསྐྱེད་[༢]དོ།། འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པ་ནི་མཉམ་པར་བཞག་པའི་གནས་སྐབས་སོ།།[༣] ཁྱད་ཞུགས་པར་ཁྱད་པར་དུ་འགྲོ་བས་རྒྱ་ཆེ་བའོ།། འཁོར་བ་ཇི་སྲིད་

[༡] ཡང་དག་པའི་ལྟ་ལས་ པེ།

[༢] གནས་སྐབས་བསྐྱེད་ སྡེ།

[༣] གནས་སྐབས་ནའོ། པེ། སྣ།

ཀྱི་བར་དུ་ཡོངས་སུ་གདུགས་པར་མི་འགྱུར་བས་མི་ཟད་པའོ།། གལ་ཏེ་དེ་མེད་པའི་ཕྱིར་གཟུགས་ལ་མི་གནས་པ་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱ་ན་དེའི་ཚེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདོད་པས་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཇི་ལྟར་འཇུག་པར་བྱ་ཞེས་བསྙལ་དུ་དོགས་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་གནས་སྟོན་ཏེ། འདིར་དོན་གྱིས་ན་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་གྱི་མཚན་ཉིད་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སེལ་ཏོ།། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་མཚན་དང་དཔེ་བྱད་བཟང་པོས་བརྒྱན་པ་མཐའ་དག་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།།

དེ་ལ་མཚན་རྣམས་ནི་ཕྱག་དང་ཞབས་ལ་འཁོར་ལོ་མངའ་བ་ལ་སོགས་པ་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཏེ། ཚིག་མངས་ཀྱིས་དོགས་པས་མ་བྲིས་ཀྱི་མདོ་ལས་ཇི་སྐད་འབྱུང་བ་བཞིན་དུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་གྱིས་ཤིག དེ་དག་ཀུང་ཡུལ་ན་གནས་པ་དང་། གསལ་བ་དང་། རྫོགས་པས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའོ།། དཔེ་བྱད་བཟང་པོ་བརྒྱད་ཅུ[1]དག་ནི་སེན་མོ་ཟངས་ཀྱི་མདོག་འདྲ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། མདོ་ལས་འབྱུང་བ་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་གྱིས་ཤིག མཚན་ལ་སོགས་པ་དེ་དག་ཀུང་སྒྲུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་མཚན་བཞིན་དུ་བརྟུན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱའོ་ཞེས་སྟོན་ཏོ།།

འདི་ལྟར་[2]མཚན་དེ་དག་ཀུང་རྟུལ་ཕྲ་རབ་བསགས་པའི་ངོ་བོ་ཉིད་དུ་ངེས་བརྩམས་པ་ཡན་ལག་ཅན་གྱི་གཟུགས་ཤིག་ཏུ་གྱུར་གྲང་ན། རེ་ཞིག་ཕྱོགས་

---

[1] བརྒྱད་བཅུ་པོ་ པེ། སྣ།

[2] འདིར་ པེ། སྣ།

དང་པོ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་སྔར་བཞིག་ཟིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། གཉིས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། རྩོམ་པར་བྱེད་པ་མེད་ན་དེས་ན་[1]བརྩམས་པ་ཡན་ལག་ཅན་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་དང་། སྒྲིབ་པ་ལ་སོགས་པ་འགལ་བའི་ཆོས་སྔར་བཤད་པ་དག་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་སྨྲས་པ་ལས་དགོངས་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལ་བརྟགས་ནས་རབ་འབྱོར་གྱིས། དེ་ནི་མ་ལགས་ཏེ་ཞེས་གསོལ་ཏོ།།

གལ་ཏེ་མཚན་རྣམས་བརྟན་པ་ཉིད་ཡིན་ན་འོ་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མདོ་སྡེ་དེ་དང་དེ་དག་ལས་མཚན་རྣམས་གསུངས་སྙམ་དུ་བསམས་ཤིང་། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་དྲིས་པ་དང་། དེ་ཉིད་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བྱ་བ་སྨྲས་ཏེ། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་དོན་དམ་པར་གསུངས་པ་ནི་མ་ཡིན་གྱི། སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་བཞིན་དུ་དེས་བརྟན་པའི་ངོ་བོ་ཁོ་ནར་གསུངས་སོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་སྨྲས་པའི་དོན་དེ་ཉིད་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བསྐྱང་བའི་ཕྱིར་ཇི་ཙམ་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཇི་ཙམ་དུ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་ནི་ཇི་ཙམ་དུ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་ཙམ་དུ་ལོག་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། སྔར་ཇི་སྐད་བསྟན་པ་བཞིན་ནོ།། ཇི་ཙམ་དུ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཟློག་སྟེ་བཤད་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ།།

འདིས་ནི་འདི་ལ་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྙོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ལ་ཇི་ལྟར་མཐའ་གཉིས་སྤངས་ནས་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་སྟོན་ཏེ། དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་བཞིན་དུ་མཚན་གྱིས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བལྟ་བར་བྱའོ།། འདིས་ནི་སྐུར་

[1] དེས་ པ། སྣ།

བ་འདེབས་པའི་མཐའ་སེལ་ཏེ། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ལ་སྐུར་བ་མི་འདེབས་པའི་ཕྱིར་རོ།། མཚན་མེད་པ་ནི་དོན་དམ་པར་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། མཚན་གང་ཡང་གྲུབ་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་སྒྲོ་བཏགས་པའི་མཐའ་བསལ་ཏོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་སྨོན་ལམ་འདེབས་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།། དེ་མི་དམིགས་པས་ནི་ཟབ་པའོ།། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་གནས་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་དང་། རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུའོ།། རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡང་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་དང་། བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་ནོ།། དེ་ལ་མ་འོངས་པའི་སྐྱེ་བོ་སྙིགས་མ་ལྔ་ཤས་ཆེ་བའི་ཕྱིར་དང་། ཆོས་དཀོན་མཆོག་འདི་འདྲ་བ་ཡང་འབྲས་བུ་ཤིན་ཏུ་ཟབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེ་བའི་ཕྱིར་བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ལ་ཡིད་ཆེས་སུ་དོགས་ནས་མཆིས་ལགས་སམ་ཞེས་ཞུས་ཏེ། མཆིས་ལགས་སམ་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་ནི་ཅི་སེམས་ཅན་གང་ལ་ལ་དག་འདི་ལྟ་བུའི་མདོ་སྡེའི་ཚིག་བཤད་པ་ལ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པར་འགྱུར་བ་འབྱུང་བ་དག་ཅེས་བྱ་བའི་ཚིག་གི་དོན་དེ་དང་[1]སྦྱར་རོ།། ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔའི་ཚོགས་ནི་ལྔ་བརྒྱ་སྟེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལྔ་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔའི་བར་དུ་གནས་ཞེས་གྲགས་པས་དེའི་ཕྱིར་ཐ་མ་ཞེས་བྱི་སྨྲག་ཏུ་མཛད་དེ། དེའི་ཚེ་སྙིགས་མ་ལྔ་པོ་དག་ནི་ཤས་ཆེ་བའི་ཕྱིར་རོ།།

དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པ་ནི་མོས་པ་དང་། ཀློག་པ་དང་། ཁ་ཏོན་བྱེད་པ་དང་། ལུང་ནོད་པ་དང་། འཆད་པ་དང་། ཉན་པ་དང་།

---

[1] དེ་ཡང་ པེ། སྣ།

སེམས་པ་ལ་སོགས་པ་ཉམས་པའོ།།[1] འདི་ལྟ་བུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་ཟབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེ་བའོ།། མདོ་སྡེའི་ཚིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མདོ་སྡེ་བསྟན་པའི་ངག་རྣམས་ཏེ། འདི་དག་གིས་དོན་རྟོགས་པར་བྱེད། ཤེས་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། མཚན་མ་ཙམ་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པ་འདི་བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་མཐའ་[2]དག་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། ཡང་ན་མདོ་སྡེའི་ཚིག་དག་ནི་བརྗོད་པར་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། བཤད་པ་འདིར་ནི་འདི་ལྟ་བུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཟབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེ་བ་ཞེས་བྱ་བར་སྦྱར་རོ།། བཤད་པ་དག་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དང་པོ་ལྟར་ནི་བརྗོད་པ་རྣམས་ལ་ཞེས་བྱའོ།། གཉིས་པ་ལ་ནི་དོན་སྟོན་པ་རྣམས་ལ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དོན་ལ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ནི་འདིར་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ཡིན་གྱི། སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་ནས་འདི་ཡང་དག་པའོ་སྙམ་དུ་འདུ་ཤེས་པ་ལ་མི་བྱའོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱུབ་ན་[3]ཡང་དག་པ་མ་ཡིན་པའི་འདུ་ཤེས་སེལ་བར་བྱེད་དོ།།

ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་ཐོགས་པ་མེད་པར་མཁྱེན་པའི་ཕྱིར་འབྱུང་བར་འགྱུར་བ་དེ་དག་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མངོན་སུམ་དང་འདྲ་བར་གཟིགས་ནས་རབ་འབྱོར་གྱི་དོགས་པ་དེ་བསལ་བའི་ཕྱིར་འབྱུང་སྟེ་ཞེས་གསུངས་སོ།། སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེ་དག་གི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཡོན་ཏན་ཡང་དག་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གསུངས་སོ།། དེ་དག་ཀུང་བསླབ་པ་ཇི་ལྟ་བུ་དང་། རྒྱུ་ཇི་ལྟ་བུས་ཡང་དག་པར་བསྒྲུབ་པ་དང་། དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་གྱིས་ཡོངས་སུ་ཟིན་པ་ཇི་ལྟ་བུ་དང་ལྡན་པ་དང་། ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ཇི་ལྟ་བུས་འདུ་ཤེས་སུ་འགྱུར་བ་དེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏེ། ཚུལ་ཁྲིམས་

[1] མཉམ་པའོ་ ཅོ་ནེ།
[2] ཆོས་ཀྱི་མཐའ་དག པེ། སྣ།
[3] དོན་གྲིས་ན་ པེ། སྣ།

དང་ལྡན་པ་ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ་ཤེས་རབ་དང་ལྡན་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་ལྷག་པའི་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་། ལྷག་པའི་སེམས་དང་། ལྷག་པའི་ཤེས་རབ་དང་གོ་རིམས་བཞིན་ཏེ། བསླབ་པ་གསུམ་བསྒྲུབ་པ་དང་ལྡན་པར་སྟོན་ཏོ།། ཚུལ་ཁྲིམས་དང་ཤེས་རབ་ལོགས་ཤིག་ཏུ་སྨོས་པ་[1]ཡོན་ཏན་ནི་འདིར་བསམ་གཏན་ལས་བྱུང་བ་བཟུང་ངོ༌། བ་ལང་དང་གླང་ཞེས་བྱ་བའི་ཚུལ་དུའོ།།

ཕྱི་མའི་དུས་ཉོན་མོངས་པ་ཅན་དེ་ལྟ་བུ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་ལ་སོགས་པའི་ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ་ཇི་ལྟར་འབྱུང་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། བསྙེན་བཀུར་བྱས་པ་ནི་ན་བཟའ་དང་ཞལ་ཟས་ལ་སོགས་པས་བསྙེན་བཀུར་བྱས་པ་དང་། གདུགས་དང་རྒྱལ་མཚན་དང་བ་དན་ལ་སོགས་པས་མཆོད་པའོ།། དགེ་བའི་རྩ་བ་བསྐྱེད་པ་ནི་གདམས་ངག་དང་རྗེས་སུ་བསྟན་པ་སྤྱི་བོས་བླངས་ནས་ཚུལ་ཁྲིམས་ལ་སོགས་པ་ཡོན་ཏན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལ་ནན་ཏན་བྱེད་པའི་སྒོ་ནས་བལྟ་བར་བྱའོ།། དེ་བས་[2]ཀྱང་དེ་དག་ཆེས་དགེ་བ་མང་དུ་སྨོས་[3]པས་བརྗོད་པའི་ཕྱིར། སངས་རྒྱས་འབུམ་ཕྲག་དང་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། འདིས་ནི་དེ་དག་གི་རྒྱུ་[4]ཡང་དག་པར་འགྲུབ་པ་བསྟན་ཏོ།། དེ་དག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན་ཏོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསམ་པ་དང་མིང་ངོ་།། དེ་དག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གཟིགས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལུས་སོ།། འདིས་ནི་དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་གྱིས་ཡོངས་སུ་ཟིན་པ་སྟོན་ཏོ།། དེ་ཡང་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་སྤྲོ་བར་བྱ་བ་དང་། ལོག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ངོ་ཚ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་

---

[1] ཤེས་རབ་ལ་སོགས་པ་ཤིན་ཏུ་སྨོས་པས་ པེ། སྣ།

[2] དེ་ནས་ སྣ།

[3] སོགས་ སྣ།

[4] རྒྱུས་ པེ། སྣ།

གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པ་དང་ཁྱད་པར་ཅི་ཞིག་ཡོད་པར་བསྟན་པར་འགྱུར། ཡང་ན་དེ་ནི་དེ་དག་སྐལ་བ་ཡོད་པར་དེ་བསྟན་པ་གཙོ་བོར་མཛད་པར་བལྟ་སྟེ། སྐལ་པ་ཡོད་པར་མཁྱེན་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དེའི་ཕྱིར་དེ་དག་གི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ནི་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། སྐྱེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་བསོད་ནམས་འབྱུང་བའི་དུས་སོ།། ཡོངས་སུ་སྨིན་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དགག་པའི་དུས་ན་དེའི་བག་ཆགས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པའོ།།

འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་ཡང་དག་པ་མ་ཡིན་པའི་འདུ་ཤེས་བསལ་ནས་ཡང་དག་པའི་འདུ་ཤེས་བསྐྱེད་པ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གཉིས་ཀྱིས་གནས་པར་བྱ་བར་བསྟན་ལ། གནས་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་དག་སངས་རྒྱས་འབུམ་ཕྲག་དུ་མ་ལ་བསྙེན་བཀུར་བྱས་པར་འགྱུར་བ་ཇི་ལྟར་[༡]ཤེས་པར་བྱེད་པའི་གཏན་ཚིགས་ཡོངས་སུ་ཞུས་པ་དང་། འདིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ་དེ་དག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདིས་[༢]ནི་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྙོམས་པར་འཇུག་པའི་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།།

ངའོ་སྙམ་དུ་བདག་ཡོད་པར་འཛིན་པ་དེ་ནི་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པའོ།། བདག་གི་ཡོད་པར་འཛིན་པ་ནི་སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པའོ།། བདག་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཚེ་ཇི་སྲིད་གནས་པར་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་ནི་སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པའོ།། ཡང་དང་ཡང་འགྲོ་བ་དག་ཏུ་འགྲོ་བར་འཛིན་པ་ནི་གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པའོ།། གལ་ཏེ་

[༡] ཇི་ལྟར་ཤེས་ཞེས་ པ། སྣ།

[༢] འདི སྡེ།

བདག་ལ་སོགས་པ་འདུ་ཤེས་མེད་ན་ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་ཡོད་དམ་སྙམ་པ་ལ་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་མ་ཡིན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། དོན་དམ་པར་ཆོས་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་ རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

འོ་ན་མེད་པར་འདུ་ཤེས་ཏེ་ཅི་ཆད་པར་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱི་ལྟ་བུ་ཞིག་ཡོད་དམ་སྙམ་པ་ལ་ཆོས་མེད་པར་ཡང་འདུ་ཤེས་མི་འཇུག་ཅེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་མ་བཏགས ༡ དཔའ་བར་ཆོས་རྣམས་ཡོད་པའི་ཕྱིར་རེ་ཞིག་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ལམ་ལ་གནས་པ་རྣམས་ལ་ཆོས་མེད་པར་འདུ་ཤེས་པ་རིགས་པ་དང་ལྡན་པ་མ་ཡིན་ནོ།། དོན་དམ་པའི་ཡེ་ཤེས་ལ་གནས་པ་རྣམས་ལ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། དེའི་ཚེ་ན་གང་ཞིག་བཀག་པས་ཆོས་མེད་པའི་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་འགྱུར་པ་ཆོས་གང་ཡང་མི་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ནི་ཆོས་སུ་འཛིན་པ་མེད་ན་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡུལ་མེད་པར་དགག་པར་ནི་གང་ན་ཡང་མི་སྲིད་དོ།། དེ་ལ་དཔེར་ན་རྣམ་པར་རིག་པ་ཙམ་དུ་བདེན་ཀྱང་འདི་རྣམ་པར་རིག་བྱེད་ཙམ་ཉིད་དོ་སྙམ་དུ་རྣམ་པར་རྟོགས་ན་རྣམ་པར་རིག་པ་ཙམ་ཉིད་ལ་གནས་པ་མ་ཡིན་པ་[༡]དེ་བཞིན་དུ་ཆོས་མེད་པ་བདེན་ཡང་ཆོས་མེད་པར་རྟོགས་ན་དེ་ལ་གནས་མི་སྲིད་པས་ཐམས་ཅད་མཚུངས་སོ།།

གལ་ཏེ་བདག་ལ་སོགས་པ་མེད་ན་[༢]དེ་དག་དེར་འདུ་ཤེས་མི་འཇུག་ཀྱང་འདི་ནི་བདག་ཀྱང་གཟུགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་མིང་ཙམ་དུ་ཟད་དོ་སྙམ་དུ་དེ་དག་མིང་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་འདུ་ཤེས་སུ་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་ལ་འདུ་ཤེས་དང་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། མིང་ནི་གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོར་གཏོགས་པའི་ཕྱིར་གཟུགས་

---

༡ གནས་པ་ཡིན་པ་ སྣེ།

༢ མེད་པས་ པེ། སྣ།

ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་བརྟེན་པ་ཁོ་ན་ཡིན་ལ་ལྡན་པ་མ་ཡིན་པ་ཡང་བཏགས་པར་ཡོད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་འདུ་ཤེས་པ་ཡང་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཉིད་དོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།།

གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་དེའི་གནས་སྐབས་ན་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བས་ཤི་བ་དང་། འགོག་པའི་སྙོམས་པར་ཞུགས[1]པའི་མི་བཞིན་དུ་རྣལ་འབྱོར་པ་མེད་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་ལ། འདུ་ཤེས་མེད་པ་ཡང་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། དེའི་ཚེ་ན་གང་གིས་དེ་དག་རྣལ་འབྱོར་བར་འགྱུར་བའི་རྣལ་འབྱོར་བའི་ཡེ་ཤེས་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་ནི་ཡོད་དོ།། དེ་ལས་ལངས་པ་ན་དེ་ལས་དག་པ་འཇིག་རྟེན་པའི་ཡེ་ཤེས་འབྱུང་ངོ་།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་དེ་རྒྱུ་མེད་པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་རོ།། གལ་ཏེ་རྣལ་འབྱོར་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་དེ་སུས་ཁོང་དུ་ཆུད་ཅེས་ན[2]གདན་ཚིགས་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ཏེ། ཇི་ལྟར[3]གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པ་རང་རིག་པས་རང་ལ་ཡོད་པའི[4]གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པ་དེ་བཞིན་དུ་འདིར་ཡང་མཚུངས་སོ།། ཡེ་ཤེས་དང་རིག་པ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་ཁས་མི་སླང[5]པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། རྣལ་འབྱོར་པས་རང་གི་མཚན་ཉིད་སོ་སོར་མངོན་དུ་བྱས་ནས་དེ་ལ་ཡོད་པའི་བདག་མེད་པའི་དམིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེའི་ཚེ་འདས་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་མི་ཉེ་བ་དང་མཐའ་ཡས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

---

[1] འཇུག་ སྡེ།

[2] ཁོང་དུ་ཆུད་ཅེས་ སྡེ།

[3] ཅི་ལྟར་ སྡེ།

[4] རང་ལ་ཡོད་ པེ། སྣ།

[5] སླང་ པེ། སྣ།

འོ་ན་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། རང་བཞིན་མ་ཡིན་པ་རྣམ་པར་དཔྱད་པས་ཡུལ་དུ་འགྱུར་བའི་ཆོས་ཐམས་ཅད་སྒྲིར་བདག་མེད་པར་བསྡུས་ཏེ་རྣམ་པར་གཞག་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ལ་ཅིག་ཅར་དམིགས་སོ།། དེ་དག་གི་ཡེ་ཤེས་དེ་ཡང་དོན་དམ་པར་ཡུལ་མེད་པ་ཡིན་མོད་ཀྱི་བདེན་པའི་རྨི་ལམ་གྱི་ཤེས་པ་བཞིན་དུ་མི་སླུ་བས་ཚད་མར་རྣམ་པར་གཞག་གོ། སྒྲིར་[1]དེར་དེའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོ་ཡང་འདུས་པ་ཉིད་དེ་དེ་ལ་དེའི་དམིགས་པར་བྱེད་པ་གུད་ན་མེད་དོ།། དེའི་ཕྱིར་བདག་མེད་པར་གཉི་ག་རྟོགས་པ་ལས་ནི་[2]དེ་དག་སངས་རྒྱས་འབུམ་ཕྲག་དུ་མ་ལ་བསྙེན་བཀུར་བྱས་པར་མངོན་ནོ།། སངས་རྒྱས་རྣམས་ལ་བསྙེན་བཀུར་མ་བྱས་པས་[3]ནི་མུ་སྟེགས་ཅན་རྣམས་བཞིན་དུ་དེ་རྟོགས་མི་སྲིད་དོ།། དེ་ནི་འཁོར་བ་ན་འདྲིས་པ་མ་ཡིན་ནོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

འདྲིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་འདི་ལ་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ཅི་འདྲ་བས་དེའི་འདུ་ཤེས་སུ་འགྱུར་བ་དེ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ལ་ཟབ་པ་ཡང་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། བདག་ལ་སོགས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དེ་དག་བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པར་མ་གྱུར་དུ་[4]ཟིན་ཀྱང་ཚིག་གི་ཚོགས་ལ་སོགས་པའི་བདག་ཉིད་ལེགས་པར་གསུངས་པ་དང་། ཉེས་པར་བཤད་པའི་མཚན་ཉིད་ཆོས་དང་ཆོས་མ་ཡིན་པར་འདུ་ཤེས་པ་གོ་དེ་དག་ལ་ངེས་པར་འབྱུང་བ་མ་ཡིན་[5]ནམ། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ཏེ། གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་

---

༡ སྒྲི་ སྡེ།

༢ ན་ སྡེ།

༣ པ་ སྡེ།

༤ ལ་སོགས་པ་མ་གྱུར་དུ་ པེ། སྣ།

༥ ངེས་པར་འབྱུང་བ་ཡིན་ པེ།

སེམས་དཔའ་དག་དེར་འདུ་ཤེས་པར་མི་འགྱུར་ན་མི་རིགས་པས་བསྐྱེད་པ་མུ་སྟེགས་ཅན་གྱི་ཆོས་རྣམས་སྤངས་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་པའི་ཆོས་རྣམས་ཆུབ་པར་བྱ་བར་ཇི་ལྟར་འདུན་པ་བསྐྱེད་པར་བྱ་སྙམ་དུ་དོགས་པ་ལ། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།།

དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དུ་སོ་སོར་བརྟགས་ན་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་མེད་པ་རྣམས་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱང་དེ་བཞིན་ནོ།། གང་ལ་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་ཡོད་པ་དེ་ནི་བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པ་ཡང་ངེས་པར་མ་སྤངས་པ་ཡིན་ཏེ། དེའི་རྩ་བ་ཆོས་སུ་མངོན་པར་འཛིན་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆོས་སུ་མངོན་པར་འཛིན་པ་དང་ལྡན་པའི་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་ནི་དེ་ཁོ་ན་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་བྱམས་པ་ལ་སོགས་པ་དེ་ཁོ་ན་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་མ་ཡིན་པས་ནི་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་སྤོང་བ་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཐེག་པ་ནི་གཅིག་པུ་སྟེ། འདི་ལྟ་སྟེ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའོ་ཞེས་གསུངས་སོ།།

གཞན་ཡང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་དེ་ནི་ངེས་པར་མཐོང་བའི་ལམ་མ་སྐྱེས་པ་ཡིན་ན་དེ་ལྟ་བུ་གང་ཡིན་པ་དེས་ཇི་ལྟར་བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པ་སྤོང་བར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ནི་མཐོང་བའི་ལམ་གྱིས་སྤང་བར་བྱ་བ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་དེ་མཐའ་དག་ལ་བརྟགས་ནས། དེ་ཉིད་དེ་དག་གི་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར་ཞེས་གསུངས་སོ།། དེ་ནི་དེའི་རྒྱུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དང་། དེའི་བག་ལ་ཉལ་མ་སྤངས་པའི་ཕྱིར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དེ་གཉིས་[1]རྣམ་པ་ཐ་དད་པའི་ཕྱིར་ཇི་ལྟར་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་

---

[1] དེ་ཉིད་ སྡེ།

ཉིད་བདག་ཏུ་འཛིན་པར་འགྱུར། ཆོས་རྣམས་ནི་འདིར་རིགས་པས་བསྐྱེད་པའི་ལུང་གི་མཚན་ཉིད་དུ་འདོད་དོ།། དེ་ལས་བཟློག་པ་ནི་ཆོས་མ་ཡིན་པ་དག་གོ། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་མདོ་དེ་དང་དེ་ལས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལ་དམ་པའི་ཆོས་ཡོངས་སུ་གཟུང་བར་བསྟན་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་ལན་དུ། རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ལོག་པར་གཟུང་བར་མི་བྱ་སྟེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལམ་ལོག་པས་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་གཟུང་བར་མི་བྱ་སྟེ། བདེན་ནོ་སྙམ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པར་མི་བྱ་བའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དགོངས་པ་བསྒྲུབ་པའི་དོན་དུ་གཟིངས་ལྟ་བུར་གསུངས་པའི་མཚན་ཉིད་གཟུང་བ་དགག་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

དེ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་དོན་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཚིག་གཞན་དང་སྦྱོར་རོ།། གང་གི་ཕྱིར་ཆོས་དང་ཆོས་མ་ཡིན་པ་ཐམས་ཅད་ལ་བདེན་ནོ་སྙམ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་ལོག་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རིགས་པས་བསྐྱེད་པ་ལུང་གི་ཚོགས་གང་དག་འཁོར་བའི་རྒྱ་མཚོ་ལས་བསྒྲལ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་གཟིངས་ལྟ་བུ་དེ་དག་ཀྱང་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་ནས་མི་དགོས་པའི་ཕྱིར་སྤང་བར་བྱ་ན། མུ་སྟེགས་ཅན[༢]ལྟ་བུ་ཆོས་མ་ཡིན་པ་མི་རིགས་པས་བསྐྱེད་པ་དེ་དག་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་པ། དེ་དག་ལ་ནི་དགོས་པའི་ཕྱིར་བརྟེན་པ[༣]ཡང་ངས་མ་གནང་ངོ་ཞེས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེ་སྐད་གསུངས་སོ།། དེ་ལ་མ་ཡིན་ཏེ། གལ་ཏེ་ཆོས་དང་ཆོས་མ་ཡིན་པ་ལ་སོགས་པ་བདེན་པའི་ངོ་བོར་གྱུར་ན། དེའི་ཚེ་དེ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དོན་དམ་པར་ཡུལ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་འཁོར་བའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་

༢ མུ་སྟེགས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ པེ།

༣ བརྟེན་པར་ པེ། སྣ།

རྣམས་ལ་ཡང་རིགས་པའི་ངོ་བོ་ཁོ་ནར་འགྱུར་ན། ཅིའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེ་དག་དེ་འགོག་པར་[༡]མཛད་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྙུས་པའི་དོན་ཡིན་ནོ།། དེ་སྐད་དུ་**འཕགས་པ་དཀོན་མཆོག་ཟ་མ་ཏོག་གི་མདོ**་ལས་ཀྱང་།[༢] "བཙུན་པ་རབ་འབྱོར་ཆོས་ཀྱི་རྣམས་གྲངས་གཟིངས་ལྟ་བུར་ཤེས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་ཉིད་ཀྱང་སྤང་བར་བྱ་ན། ཆོས་མ་ཡིན་པ་རྣམས་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་ཏེ། ཆོས་གང་སྤོང་བར་བྱེད་པ་[༣]དེ་ནི་ཆོས་ཀྱང་མ་ཡིན་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།།" ཞེས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་སོ་ཞེས་བཤད་དོ།། མདོ་ལ་སོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་གང་ལ་གཟིངས་ལྟ་བུ་ཡོད་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ།། ཆོས་རྣམས་ཀྱང་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ནི་མཆོན་པ་སྟེ། དེས་ན་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལམ་གྱི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་གཟུང་ངོ་།། ཆོས་མ་ཡིན་པ་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ཡང་མཆོན་པ་ཁོ་ན་སྟེ། དེས་ནི་གང་དག་གྲགས་པ་དང་འགལ་བར་སྨྲོན་པ་ཆོས་མ་ཡིན་པའི་ངོ་བོ་བདག་ལ་སོགས་པ་གཞན་དག་གིས་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་དེ་དག་ཀྱང་གཟུང་ངོ་།། ཡང་ན་གང་བཟློད་པར་བྱ་བ་དང་བཅས་པ་ཆོས་དང་ཆོས་མ་ཡིན་པ་དག་སྨོས་པའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་བསྡུས་པ་[༤]དེ་ཉེས་པ་མེད་དོ།། འདིས་ནི་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་ནས་འདིར་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།།

---

[༡] དེ་དག་འགོག་པར་ པེ། སྣ།

[༢] བཙུན་པ་རབ་འབྱོར། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་གཟིངས་དང་འདྲ་བར་ཤེསཔ་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས་ཉིད་ཀྱང་སྤང་བར་བྱ་ན། ཆོས་མ་ཡིན་པ་ལྟ་ཅི་སྨོས་ཞེས་དེ་སྐད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་ཏེ། གང་སྤང་བར་བྱ་བ་དེ་ནི་ཆོས་དང་ཆོས་མ་ཡིན་པ་ཞེས་མི་བྱའོ།། སྡེ་བཀའ། ༡༡༧ མདོ་སྡེ། "ཛ" ཤོག ༢༥༢

[༣] ཆོས་གང་སྤང་བར་བྱ་བ ཅོ།

[༤] བསྡུས་པ་ཉིད་ པེ།

གལ་ཏེ་ཆོས་ལ་སོགས་པ་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་བརྟུན་པའི་རང་བཞིན་ཡིན་ན་དེའི་ཆེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་ཐམས་ཅད་བསྟན་ཏོ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ཡང་བརྟུན་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་[༡]ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་འདུན་པར་མི་བྱའོ་སྙམ་པ་དེ་ལ་བརྟགས་ནས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་དོན་དམ་པར་ནི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་བྱང་ཆུབ་པ་ལ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པར་འཛིན་པ་ཡང་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ལ་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་ཐོབ་པར་བྱ་བར་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཅེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས་ལ་སོགས་པའི་རྟོགས་པའི་བྱེ་བྲག་གིས་ཐ་དད་པ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་རྟོགས་པའི་སྐུ་ཡང་ཡོངས་སུ་སྟོན་པར་བྱེད་དེ། ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པའི་ཡོན་ཏན་དག་ཀྱང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་རྟོགས་པར་བྱ་བ་ཉིད་དོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་གོ་འཕང་འཐོབ་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར།

ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོར་ནི་འདི་ལྟ་སྟེ། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་དང་། རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྟན་པར་བྱ་བ་དང་། བསྟན་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་གྲངས་སུ་ཐམས་ཅད་ཡོད་དོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དགོངས་པ་གང་གིས་དོན་དམ་པ་ལ་དགོངས་ཏེ། ཐམས་ཅད་བརྟུན་པ་ཁོ་ནའོ་ཞེས་གསུངས་པ་དེས་ན། རྨས་པ་ལས་དགོངས་པ་བཟུང་ནས་གནས་བརྟན་འཕགས་

---

[༡] གཤེགས་པས་ པེ། སྣ།

པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་བདག་གིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་པའི་དོན་འཚལ་བ་ལྟར་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། བདག་གིས་འཚལ་བ་ལྟར་ན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དགོངས་པ་རྣམ་པར་འགྲེལ་པའོ།། ཅིའི་ཕྱིར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་ཡང་མེད་ལ། ཆོས་བསྟན་པ་ཡང་མེད་སྙམ་པ་ལ། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། གཟུང་དུ་མ་མཆིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་དུ་ཡང་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཏེ། སྔར་ཇི་སྐད་བཤད་པ་བཞིན་ནོ།། བརྗོད་དུ་མ་མཆིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྒྲའི་ཡུལ་ཡང་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཏེ། སྒྲ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་ནི་སྒྲོ་བཏགས་པ་སྤྱི་ཙམ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ལ། སྤྱི་ཡང་དངོས་པོ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་གཉིས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་མེད་པ་དང་། ཆོས་བསྟན་པ་མེད་པའི་གཏན་ཚིགས་སུ་གསུངས་པ་སྟེ་གོ་རིམས་བཞིན་ནོ།།

གལ་ཏེ་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་གཟུང་དུ་མེད་ཅིང་བརྗོད་དུ་མེད་པ་ཡིན་དུ་ཟིན་ཀྱང་། འོན་ཀྱང་རང་གི་མཚན་ཉིད་འཛིན་པའི་ཕྱིར་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཀྱི་[1] ངོ་བོ་ཉིད་གནས་པ་ཁོ་ནའོ་སྙམ་པ་ལ། དེ་ནི་ཆོས་ཀྱང་མ་ལགས་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་གྱིས་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་རང་གི་མཚན་ཉིད་འཛིན་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ།། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་གོ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མེད་པ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་ལྟ་སྙམ་པ་ལ། ཆོས་མ་མཆིས་པ་ཡང་མ་ལགས་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། དེ་ནི་མེད་པ་དགག་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་ནོ།། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྙོམས་པར་འཇུག་པ་དེ་བསྟན་ཏེ། སྒྲོ་བཏགས་པ་དང་། སྐུར་བའི་མཐའ་ཡང་བཀག་གོ། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་འདིར་འཐད་པ་ཡོངས་སུ་ཞུས་པ་དང་། འདིར་ལན་དུ་འདུས་མ་བྱས་ཀྱིས་

1 ཀྱིས་ པེ། སྣ།

རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། འདུས་མ་བྱས་ནི་ཆོས་རྣམས་ཀྱི་དོན་དམ་པའི་རང་བཞིན་ནོ།། དེ་ཡང་རིགས་པས་དཔྱད་ན་སྐྱེ་བ་མེད་པ་མཚན་ཉིད་ཁོ་ན་ལ་གནས་ཏེ། སྔར་ཇི་སྐད་དཔྱད་པ་བཞིན་ནོ།།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་**སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཡང་དག་པར་སྡུད་པ་**ལས་བཤད་པ།[1] "ཀུན་དགའ་བོ་ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་བ་མེད་པ་དང་། འཇིག་པ་མེད་པ་དང་། གནས་པ་མེད་པ་དང་། གཞན་དུ་འགྱུར་བ་མེད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་འཕགས་པའི་བདེན་པ་ཞེས་བྱའོ།། ཀུན་དགའ་བོ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་འདི་ལ་དགོངས་ནས་འཕགས་པ་ཉན་ཐོས་རྣམས་ནི་འདུས་མ་བྱས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའོ་ཞེས་སྟོན་ཏོ་ཞེས་ཇི་སྐད་གསུངས་པ་ལྟ་བུའོ།།"

འདི་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་བྱུང་ཡང་རུང་མ་བྱུང་ཡང་རུང་རྟག་པར་དེ་བཞིན་དུ་ཡོད་པ་དང་། འགྱུར་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་འདུས་མ་བྱས་སོ།། དེ་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་འཕགས་པའི་གང་ཟག་རྣམས་དེས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་སྟེ། འཕགས་པ་རྣམས་ནི་ཆོས་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་རྟོགས་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་རོ།། གཞན་དེ་ཁོ་ནའི་ངོ་བོར་མི་རིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདུས་མ་བྱས་དེ་ནི་མེད་པར་དགག་པའི་ངོ་བོར་མེད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་དངོས་པོའི་རང་བཞིན་གྱི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་འཕགས་པ་དག་གིས་དངོས་པོའི་རང་བཞིན་མ་རྟོགས་པར་འགྱུར། དེ་མ་ཡིན་པའི་ངོ་བོ་གཞན་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ནི་དངོས་པོར་འཛིན་པ་མེད་ན་མེད་པའི་[2]ཕྱིར་དངོས་པོར་འཛིན་པ་ཁོ་ནར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་**འཕགས་པ་དགོངས་པ་ངེས་པར་འགྲེལ་བ་**ལ་སོགས་པའི་མདོ་ལས།[3]

---

[1] སྡེ་བཀའ། ༣༣༨ མདོ་སྡེ། "ཞ" ཤོག

[2] འཛིན་པ་མེད་པའི་ པེ། སྣ།

[3] སྡེ་བཀའ། ༡༠༦ མདོ་སྡེ། "ཅ" ཤོག ༥༩

"དེ་ཁོ་ན་ཉི་དངོས་པོ་ལས་དོན་གཞན་མ་ཡིན་ནོ།།" ཞེས་གསུངས་ཏེ། ཇི་སྐད་ཉིས་པ་བརྗོད་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། དེ་ནི་དོན་དམ་པར་དངོས་པོའི་ངོ་བོར་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དངོས་པོའི་ངོ་བོ་ཉིད་གང་ཡང་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། དངོས་པོའི་ངོ་བོ་ཉིད་ལྟར་དེ་ཡང་འདུས་བྱས[༡]ཉིད་དུ་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་དེ་ནི་མེད་པ་ལས་ཆོས་རྣམས་ལ་ཡོད་པའི་ཕྱིར་དེ་ཁོ་ན་མ་ཡིན་པའི་ངོ་བོར་འགྱུར་རོ།། དེ་ནི་དངོས་པོའི་རང་གི[༢]ངོ་བོ་བཞིན་དུ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཀུང་རྟོགས་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པའི་རྒྱུ་ཉིད་དུ་ཐལ་བར་འགྱུར་བ་ཡང་བཟློག་པ་དཀའོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་**འཕགས་པ་དགོངས་པ་ངེས་པར་འགྲེལ་བ**་ལ་སོགས་པ་དེ་དག་ཉིད་ལས། "དེ་ཁོ་ནའི་དངོས་པོ་ལས་དོན་གཞན་མ་ཡིན་ནོ།།" ཞེས་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཀུང་མ་ལགས་ཆོས་མ་མཆིས་པ་ཡང་མ་ལགས་ཞེས་གསོལ་ཏོ།། འདིས་ནི་དངོས་པོ་དང་དངོས་པོ་མེད་པ་དང་། ཡོད་པ་དང་། མེད་པ་ལ་སོགས་པ་དགག[༣]པའི་ངོ་བོ་བསྟན་ཏོ།། འདིས་ནི་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་དེ་ཡང་བསྟན་ཏོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་གནས་པ་འདིའི་ཟབ་པ་ཉིད་ཀུང་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའམ། ཆོས་བསྟན་པའི་ཆོས་གང་ཡང་མེད་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་གྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདོད་པས་དམ་པའི་ཆོས་ཡོངས་སུ་གཟུང་བ་[༤]ལ་ཇི་ལྟར་འཇུག་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་གྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་

---

༡ ངོ་བོ་ཉིད་ལྟར་འདུས་བྱས་ སྣེ།

༢ དངོས་པོའི་རང་བཞིན་གྱི་ སྣེ།

༣ དག་ པེ།

༤ དམ་པའི་ཆོས་གཟུང་བ་ པེ། སྣ།

ཐོབ་པར་འདུན་པ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར།[1] རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། དེ་ལ་རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་ནི་གསེར་དང་། དངུལ་དང་། ཤེལ་དང་། བཻཌཱུརྻ་དང་། རྡོའི་སྙིང་པོ་དང་། སྤུག་དང་། མུ་ཏིག་དམར་པོའོ།། **འཕགས་པ་དམ་པའི་ཆོས་པདྨ་དཀར་པོ**[2]ལས་བྱུང་བ་རྣམས་སོ།། གླིང་བཞི་ལ་སོགས་པ་སྟོང་ལ་སྟོང་གི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་སོ།། དེ་སྟོང་ལ་སྟོང་གཉིས་སོ།། དེ་སྟོང་ལ་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་སོ།། གཞི་དེ་ལས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རིན་པོ་ཆེ་སྦྱིན་པའི་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་འདི་འབྱུང་བ་སྟེ། དེའི་རྒྱུ་ལས་བྱུང་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། བསོད་ནམས་ནི་སེམས་པ་དགེ་བ་ཐམས་ཅད་དང་། དེས་བསྐྱེད་པའི་བག་ཆགས་ཏེ། དེའི་ཕུང་པོ་ནི་ཚོགས་སོ།། འབྲས་བུ་མང་པའི་ཕྱིར་དེ་ཡང་མང་ངོ་།། མང་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བྱེ་བྲག་གོ། མང་ཞེས་ལན་གཉིས་བརྗོད་པས་ནི་རབ་ཏུ་མང་པོ་ཞེས་བསྟད་པའོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་ཐམས་ཅད་མ་སྐྱེས་ན། ཇི་ལྟར་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྐྱེས་[3]སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་གསོལ་ནས། བདག་ཉིད་ཀྱི་དགོངས་པ་རིག་སྟེ། ལན་དུ་ཕུང་པོ་མ་མཆིས་པའི་སླད་དུ་སྟེ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། དོན་དམ་པར་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལྷག་མའོ།། ཕུང་པོ་རྣམས་ནི་བཏགས་པར་ཡོད་པའི་ཕྱིར་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དངོས་པོར་གྱུར་པ་མེད་དོ།། བསོད་ནམས་ཀྱང་བག་ཆགས་ཀྱི་ངོ་བོ་གནས་སྐབས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་ལ་བཏགས་པའོ།། སེམས་དཔའ་ཡང་དངོས་པོ་རྣམས་ནི་གཡོ་བ་མེད་པས་མངོན་པར་འདུ་བྱེད་པའི་རྣམ་པས་མི་འཇུག་པའི་ཕྱིར་བཏགས་པའི་ཡོད་པ་ཁོ་ནའོ།།

---

༡ ཕྱིར་རོ་ སྣ།

༢ སྡེ་བཀའ། ༡༡༣ མདོ་སྡེ། "ཇ" ལེའུ་ ༢ ཤོག་ ༧༨

༣ སྐྱེད་ པེ། སྣ།

གཅིག་དང་དུ་མའི་ངོ་བོས་སོ་སོར་བརྟགས་ན་ཡང་བརྫུན་པའི་ངོ་བོ་ཁོ་ནའོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དོན་དམ་པར་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མེད་དོ།།

འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། སྒྲོ་བཏགས་པའི་མཐའ་ཡང་བཀག་གོ། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་གནས་པ་ཉིད་དེ། དེ་ལྟ་བས་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཞེས་བྱའོ་ཞེས་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ཏེ། གལ་ཏེ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དེ་དོན་དམ་པར་ཡོད་པར་གྱུར་ན་དོན་དམ་པ་ནི་ཚིག་གི་སྤྱོད་ཡུལ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དེ་བརྗོད་པར་མི་འགྱུར་རོ།། མ་གསུངས་ཀྱང་དེ་ལྟར་ཤེས་པས་བརྗོད་པ་དོན་མེད་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར་བ་ཞིག་ན་གང་གི་ཕྱིར་གསུངས་པ་དེའི་ཕྱིར་ཀུན་རྫོབ་ཁོ་ན་ཞེས་བྱ་བར་ཤེས་སོ།། འདིས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་པ་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་མཐའ་གཉིས་བཀག་སྟེ། དེའི་འོག་ཏུ་འཁོར་རྣམས་ཆོས་རྒྱ་ཆེན་པོ་ཉན་པའི་འོས་སུ་གྱུར་པ་དང་། དེས་ཀྱང་[༡] བསོད་ནམས་ཆེས་མང་བར་བརྗོད་པའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས། རབ་འབྱོར་གང་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་བཀའ་བསྩལ་ཏོ།། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་དེ་བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ལས་ངེས་པར་འབྱུང་བས་རེ་ཞིག་དེ་ལས། ཚིག་བཞི་པའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཙམ་བསྟན་ན་ཡང་དེ་ལྟར་བསོད་ནམས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་དུ་གྱུར་པ་ཡིན་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ[༢] བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་དེ་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། འདི་ནི་ཚིག་གི་དོན་མ་

---

༡ དེ་བས་ པེ། སྣ།

༢ དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་སྐུ་ པེ། སྣ།

མཆིས་[1]མོད་ཀྱི་ཤུགས་ཀྱིས་རྟོགས་པས་དོན་འདི་ཉེས་པ་མེད་དོ།། དེས་ན་དོན་དམ་པར་ཆོས་བསྟན་པའམ། མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་ཡང་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་བསོད་ནམས་ཀྱི་སྐུ་བསྟན་པ་ཡོད་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བསོད་ནམས་ཐོབ་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་འཇུག་པར་བྱའོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

བསོད་ནམས་ཁྱད་ཞུགས་པར་བསྟན་པ་འདིས་ནི་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། དེ་བསྐྱེད་པར་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་འདེབས་པ་[2]ཡང་བསྟན་ཏོ།། ཚིགས་སུ་བཅད་པ་རྩ་བ་དྲུག་པ་ཡང་ཡོད་པས་ཚིག་བཞི་པ་ཞེས་བྱེ་བྲག་ཏུ་མཛད་དོ།། ཚིགས་སུ་བཅད་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདི་བཙོན་པ་མ་ཡིན་གྱི་ཚིག་རྐང་པ་ལས་རྩ་བ་བཞིའི་ཚིགས་སུ་བཅད་པའི་ཚད་ཙམ་[3]ཡང་བཟུང་ངོ་།། བཟུང་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁ་ཏོན་དུ་བྱས་པའོ།། འཆད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཚིག་གོ། ཡང་དག་པར་སྟོན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་ཏོ།། གྲངས་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་རབ་ཏུ་མང་བའི་ཕྱིར་རོ།། དཔག་ཏུ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དཔེའི་ཡུལ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་བསོད་ནམས་མི་བསྐྱེད་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་རབ་ཏུ་སེལ་ཏོ།། བསོད་ནམས་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་[4]ཞིག་བརྗོད་པས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཚོགས་མཐའ་དག་སྟོན་ཏོ།།

འདི་ཅི་ཡིད་ཆེས་པར་བྱ་བར་ཟད་དམ། འོན་ཏེ་རིགས་པས་ཤེས་པར་བྱ་བ་ཡང་ཡིན་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། དེའི་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། འདིར་རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་

---

[1] དོན་མ་ཡིན་ པེ། སྣ།

[2] སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ པེ། སྣ།

[3] བཅད་པའི་ཚིག་ཙམ སྡེ།

[4] མཚན་ཙམ་ སྡེ།

སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་སྣ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི་འདི་ལས་བྱུང་སྟེ་ཞེས་རིགས་པ་བཀའ་སྩལ་ཏོ།། འདི་སྙམ་དུ་བསོད་ནམས་ཆེས་ཞེས་བྱ་བ་དེ་ཡང་འབྲས་བུ་ཆེ་བའི་ཕྱིར་བསོད་ནམས་ཆེ་བ་ཡིན་གྱི། དེ་ལ་ལུས་མེད་པའི་ཕྱིར་རང་གི་ངོ་བོས་ནི་མ་ཡིན་གྱི།[༡] རིན་པོ་ཆེ་ལས་བྱུང་བའི་བསོད་ནམས་དེ་ནི་ལོངས་སྤྱོད་ཆེན་པོ་ལ་སོགས་པ་འཁོར་བའི་འབྲས་བུ་ཕལ་པ་འཐོབ་སྟེ། ཤེས་རབ་ཀྱིས་ཟིན་ན་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོའི་འབྲས་བུ་འཐོབ་ཀྱི་དེ་དག་ཉི་ཚེས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། ཆོས་ཀྱི་སྦྱིན་པས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གོ་འཕང་དཔེ་མེད་ཅིང་ཟད་མི་ཤེས་པ་ཐོབ་པས་ཅིའི་ཕྱིར་ཆེན་པོ་ཉིད་དུ་མི་མངོན། ཇི་ལྟར་ཆོས་ཀྱིས་ཕན་བཏགས་པར་འགྱུར་བ་ལྟར་རིན་པོ་ཆེ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་གཞན་ལ་ཤིན་ཏུ་ཕན་འདོགས་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། འདི་ལྟར་གཞན་དག་ལ་རབ་ཏུ་བསྟན་པའི་རིམ་གྱིས་ཆོས་འདི་ལས་མྱུར་བ་ཁོ་ནར་སངས་རྒྱས་ཉིད་ཀྱི་གོ་འཕང་འཐོབ་པར་འགྱུར་གྱི་རིན་པོ་ཆེ་རྣམས་ལས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་གཞན་དག་ལ་ཕན་འདོགས་པའི་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པས་རིན་པོ་ཆེ་སྦྱིན་པ་ལས་ཆོས་ཀྱི་སྦྱིན་པ་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་སོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པ་ཡིན་ནོ།།

འདི་ལས་འབྱུང་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡང་དག་པར་གྲུབ་པ་སྟེ། སྤྱད་པ་བཅུ་རྣམས་ལ་བརྟེན་ནས་དེའི་འོག་ཏུ་གཅིག་ནས་གཅིག་ཏུ་བརྒྱུད་དེ་ཐོབ་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། སྤྱད་པ་བཅུ་པོ་དེ་དག་ནི་ཡི་གེར་འབྲི་བ་དང་། མཆོད་པ་དང་། སྦྱིན་པ་དང་། བསྒྲག་པ་དང་། མཉན་པ་དང་། གཟུང་བ་དང་། ལུང་ཕོག་པ་དང་། ཁ་ཏོན་དུ་བྱ་བ་[༢]དང་། བསམ་པ་དང་། བསྒོམ་པའོ།། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཀྱང་འདི་ལས་སྐྱེས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་སངས་རྒྱས་

---

༡ མ་ཡིན་ནོ་ པེ། སྣ།

༢ བྱས་པ་ པེ། སྣ།

རྣམས་དེ་ལ་བརྟེན་ནས་བཏགས་[༡]ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དོན་དམ་པར་ནི་བྱང་ཆུབ་དང་། སངས་རྒྱས་རྣམས་ཐ་དད་པ་མེད་དོ།། བསོད་ནམས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པར་བསྟན་པ་འདིས་ནི་དེ་བསྐྱེད་པར་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱང་མ་སྐྱེས་པ་[༢]ཁོ་ན་ཡིན་ན་དེའི་ཚེ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱང་མ་སྐྱེས་པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་ན་ཇི་ལྟར་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་འདི་ལས་འབྱུང་། སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་བྱང་ཆུབ་དང་ཐ་དད་པ་མེད་དོ་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། དེའི་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། འདིར་ལན་དུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། སངས་རྒྱས་སུ་གདགས་པའི་རྒྱུ་ཅན་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་སོ།། དེའི་ཕྱིར་སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་དོན་དམ་པར་བྱང་ཆུབ་དང་ཐ་དད་པ་མེད་མོད་ཀྱི། དེ་གདགས་པའི་རྒྱུར་གྱུར་པས་སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་འདི་ལས་སྐྱེས་པར་གསུངས་སོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།། དེ་དག་ཀྱང་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་མེད་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་བླ་ན་མེད་པར་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི་འདི་ལས་བྱུང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཏེ། དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གཞན་དེ་དང་དེ་ལས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་དམ་པར་ནི་བརྗོད་པར་མི་ནུས་ཏེ། དེ་སོ་

---

[༡] བརྟགས་སོ་ པེ། བཏགས་སོ་ སྣ།

[༢] ཆོས་ཐམས་ཅད་མ་སྐྱེས་པ་ པེ། སྣ།

སོ་རང་གིས་[1]རིག་པར་བྱ་བ་ཡིན་པས་བརྗོད་དུ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམ་པར་འཇུག་པ་དང་། རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་པ་བསྟན་ཏེ། ཟབ་པ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

འདིར་ལ་ལ་དག་ན་རེ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐ་དད་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་སྐུ་ཐ་དད་པ་རྣམ་པ་གསུམ་པོ་འདི་ཇི་ལྟར་འགྱུར། འོན་ཏེ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འགྱུར་བ་དང་། ཆོས་ཀྱི་སྐུའི་རྒྱུ་མཐུན་པ་ཡིན་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་རང་བཞིན་དང་། བཤད་པའི་རང་བཞིན་ནི་བརྟགས་པའི་སྒོ་ནས་ཆོས་ཀྱི་སྐུའོ་ཞེས་བྱའོ་ཞེ་ན། དེ་ལྟ་ན་ནི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡང་དེ་འཐོབ་པའི་རྒྱུ་མཐུན་པའི་ཕྱིར་དང་དེ་ཐོབ་པའི་རྒྱུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཀྱི་སྐུར་འགྱུར་རོ་ཞེས་ཟེར་རོ།། དེ་ནི་བདེན་པ་མ་ཡིན་ཏེ། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཀྱི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་ཡོངས་སུ་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་དང་། དེའི་སྤྱིའི་ཆོས་ཉིད་གང་ཡིན་པ་དེ་ལ་རྣམ་པར་གཞག་གོ། འདི་ནི་འདིའི་རྣམ་པར་སྨིན་པའི་དབྱེ་བ་[2]ཡང་མ་ཡིན་ལ་བཤད་པ་དང་བསོད་ནམས་དག་ལ་བརྟགས་ནས་འདིར་ཆོས་བསྟན་པ་ཡང་མ་ཡིན་ནོ།། འོ་ན་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། དངོས་པོ་ཁོ་ན་སྟེ། ཆོས་སྟོན་ཏོ།། ཆོས་སྟོགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་བདག་ཉིད་ཀྱིས་དེ་ལྟར་གྲགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། གང་ཡང་རང་དང་སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་འཛིན་པས་ཆོས་རྣམས་སོ་ཞེས་བསྟན་པ་དེ་ནི་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་དང་ཐུན་མོང་ཡིན་པས་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མ་བསྟན་ཏེ། ཤེས་པར་བྱེད་པ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། བརྟགས་ནས་བསྟན་དུ་ཟིན་ཀྱང་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུར་ཐལ་བར་མི་འགྱུར་ཏེ། དེ་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱིས་རྒྱུ་མཐུན་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།།

---

[1] གི་ སྣེ།

[2] རྣམ་པར་དབྱེ་བ་ པེ། སྣ།

དེ་སྐད་དུ།[1]

མདོར་ན་རྒྱལ་བའི་ཆོས་སྐུ་ནི། །
ཡེ་ཤེས་ཚོགས་ལས་བྱུང་བ་སྟེ། །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས་སྐུ་ནི། །
བསོད་ནམས་ཚོགས་ལས་བྱུང་བའོ། །

ཞེས་བཤད་དོ།། དེའི་ཕྱིར་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་ཁོ་ན་སྐུ་ཐོབ་པའི་རྒྱུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་གཟུགས་ཀྱི་སྐུས་ནི་དེ་ཐོབ་པར་འགྱུར་བ་མི་སྲིད་དེ། དེའི་བདགས་པའི་རྒྱུ་མེད་པས་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ལ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཞེས་མི་བྱའོ།།[2] བཤད་པའི་སྐུ་ནི་ཡང་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འབྲས་བུ་ཡིན་ལ། བསོད་ནམས་ཀྱི་སྐུ་ཚོགས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ཀྱང་དེ་འཐོབ་པའི་རྒྱུ་ཡིན་པས་བཏགས་ནས་ཆོས་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་བསྟན་པར་རིགས་པ་ཉིད་དེ་མང་དུ་ནི་མི་དགོས་སོ།། ཀླན་ཀ་ངན་པ་གཞན་ནི་ཤེས་རབ་ཅན་དག་གིས་རིགས་སམ་མི་རིགས་འབྱེད་པར་འགྱུར་གྲང་སྙམ་དུ་སྟེ[3] ཚིག་མངས་ཀྱིས་དོགས་ནས་མ་བྲིས་སོ།། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་འཐོབ་པར་འདུན་པའི་གནས་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

འདི་མན་ཆད་གནས་བཅུ་གཉིས་ནི་མི་མཐུན་པ་རྣམ་པ་བཅུ་གཉིས་ཀྱི་གཉེན་པོར་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་རིག་པར་བྱའོ།། མི་མཐུན་པ་རྣམ་པ་བཅུ་གཉིས་པོ་དེ་དག་ནི་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་དང་། མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་ཀྱང་ཐོས་པ་ཉུང་

༡ །སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས་སྐུ་ནི། །བསོད་ནམས་ཚོགས་ལས་བྱུང་བ་སྟེ། །ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་མདོར་བསྡུ་ན། རྒྱལ་པོ་ཡེ་ཤེས་ཚོགས་ལས་འཁྲུངས།
སྡེ་བསྟན། ༤༡༥༨ སྤྲིང་ཡིག "གེ" རིན་ཆེན་འཕྲེང་བ། ལེའུ་ ༣ ཤོག་ ༡༣

༢ གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཞེས་མི་བྱའོ་ སྣ།

༣ སྙམ་སྟེ་ པེ།

པ་དང་། ཐོས་པ་མང་བ་ཡང་དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་བསྒོམ་པ་དང་། དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་མ་ཡིན་པ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་བསྒོམས་ཀྱང་[༡]སེམས་ཅན་ཡལ་བར་འདོར་བ་དང་། དེ་ཡལ་བར་མི་འདོར་ཡང་ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་ཏེ་འཇུག་པ་དང་། དེར་མི་འཇུག་ཀྱང་དངོས་པོའི་མཚན་མ་ཟིལ་གྱིས་མནན་པ་ལ་ཐབས་མི་མཁས་པ་དང་། དེ་ལ་ཐབས་མཁས་ཀྱང་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཚོགས་མ་བསགས་པ་དང་། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཚོགས་བསགས་ཀྱང་ལེ་ལོ་དང་སྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟིས་བསོད་སྙོམས་ཉམས་སུ་མྱོང་བར་བྱེད་པ་དང་། དེ་ཉམས་སུ་མྱོང་བར་མི་བྱེད་ཀྱང་སྡུག་བསྔལ་མི་བཟོད་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་ལ་ཇི་མི་སྙམ་ཡང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་མ་བསགས་པ་དང་། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་བསགས་ཀྱང་བདག་ཏུ་རབ་ཏུ་འཛིན་པ་དང་། བདག་ཏུ་རབ་ཏུ་འཛིན་པ་མེད་ཀྱང་གདམས་ངག་དང་མི་ལྡན་པའོ།།

དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གང་ཟག་དང་ཆོས་རྣམས་ལ་བདག་མེད་པ་རྒྱ་ཆེར་བསྟན་ཀྱང་། གང་ཐོག་མ་མེད་པའི་དུས་ནས་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་བརྟན་པོར་བསགས་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་འདི་སྙམ་དུ་གལ་ཏེ་སུ་སེམས་ཅན་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་འཇུག་པ་དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་མི་བྱ་ན། དེ་ལྟ་ན་གོ་ཇི་ལྟར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདི་སྐད་དུ་ང་དེའི་ཚེ་དེའི་དུས་ན་རྒྱལ་པོ་དཔའ་བོས་བྱིན་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར་ཏོ།། ངས་ཁྱེད་རྣམས་ལ་ཆོས་བསྟན་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པར་འགྱུར། སེམས་ཅན་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པ་མེད་པ་ནི་དེ་སྐད་དུ་དགོངས་པར་མི་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་དེ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་གེགས་སུ[༢]

[༡] སྒོམ་ཡང་ ཕ།

[༢] ང་རྒྱལ་གདགས་སུ སྣ།

གྱུར་པ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་ལྔ་བའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

འདི་ལ་སྤྱིའི་[༡]དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ངའི་ཉན་ཐོས་ཐ་མ་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་རོ་མྱོང་བ་མ་ཐོབ་པ་གང་དག་ཡིན་པ་[༢]དེ་དག་ཀྱང་ང་དང་ང་ཡིར་མངོན་པར་ཞེན་པ་མེད་ན་བདག་མེད་པ་གཉི་ག་ཐུགས་སུ་ཆུད་པ་སྙིང་པ་མ་ལུས་པར་སྤྱངས་པ་ལྟ་སློས་ཀྱང་ཅི་དགོས་ཞེས་བྱའོ།། ང་དེའི་ཚེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཐ་སྙད་གདགས་པའི་དོན་དུ་ཤེས་པར་འདོད་པ་ལ་གཞན་གྱི་རྒྱུད་ལ་རྣམ་པར་བཅད་པ་ཙམ་སྟེ། དམག་དང་ནགས་ཚལ་ལ་སོགས་པའི་ཐ་སྙད་དང་མཚུངས་ཀྱི་གཅིག་པུ་དང་རྟག་པར་མངོན་པར་ཞེན་པས་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཁོ་ནའི་ཡེ་ཤེས་ལ་གནས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་འཇིག་རྟེན་དང་ལྷན་ཅིག་ཐ་སྙད་བརྗོད་པར་མི་ནུས་སོ།། དེ་བས་ན་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་གནས་སུ་[༣]གྱུར་པ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་ཁྱེད་ཀྱང་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པར་མི་བྱའོ་ཞེས་ཡང་དག་པར་འཛིན་དུ་གཞུག་པའོ།།

དེ་ལ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོར་འགྲོ་བ་མཐོང་བའི་[༤]ལམ་གྱི་མཚན་ཉིད་ནི་རྒྱུན་ཏོ། ཞུགས་ནི་ཐོབ་པ་སྟེ། མཐོང་བས་སྤང་བར་བྱ་བའི་ཉོན་མོངས་པ་མཐའ་དག་སྤངས་པ་ནི་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ཡང་བྱེད་པ་པོ་དང་ལས་དང་བྱེད་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་སྤངས་པ་འདིས་རྒྱུན་ཉིད་འདི

[༡] ཕྱིའི་ སྣེ།

[༢] གང་དག་ཕྱིན་པ་ སྣེ།

[༣] ང་རྒྱལ་གགས་སུ་ པེ།

[༤] འགྲོ་བ་མ་མཐོང་བའི་ སྣེ།

པ་ཙམ་[1]ཉིད་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་བདག་མེད་པ་རྟོགས་པར་སྟོན་ཏོ།། བདག་གི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བྱེད་པ་པོ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའོ།། འབྲས་བུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལས་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའོ།། ཐོབ་ཅེས་བྱ་བ་ནི་བྱེད་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་བདག་གིས་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། ཀུན་དུ་ཞུགས་པ་འདི་སྙམ་དུ་བདག་གིས་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་མི་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་ཐམས་ཅད་དོར་བར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། དེ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཀྱང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དགོངས་པ་ཉེ་བར་བརྗོད་པས་དོན་དམ་པར་གཞག་པ་དང་། དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ལ་གཟུད་པའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་ནི་ཅི་ལ་ཡང་ཞུགས་པ་མ་མཆིས་ཞེས་གསོལ་ཏོ།། ཅིའི་ཕྱིར་སྙམ་པ་ལ། གཟུགས་ལ་ཡང་མ་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།།

འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་འབྲས་བུ་རྣམ་པ་གཉིས་ཀ་ཡང་ཐོབ་པར་བྱ་བ་མེད་པར་སྟོན་ཏོ།། འདི་ལྟར་ཐོབ་པར་བྱ་བའི་ངོ་བོ་འབྲས་བུ་ཞིག་ཏུ་འགྱུར་ན་འདུས་བྱས་སམ་འདུས་མ་བྱས་སུ་འགྱུར་གྲང་ན། དེ་ལ་རེ་ཞིག་འདུས་མ་བྱས[2]་ནི་མ་སྐྱེས་པ་ཁོ་ན་སྟེ། མེད་པའི་ཕྱིར་རི་བོང་གི་རྭ་དང་འདྲ་བས་ཐོབ་པར་བར་མི་རིགས་ཏེ་མ་ཐོབ་པའི་གནས་སྐབས་དང་བྱེ་བྲག་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདུས་བྱས་ནི་སྐད་ཅིག་མ་ཡིན་གྱི་[3]སྐྱེས་མ་ཐག་ཏུ་འཇིག་སྟེ། གནས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་གང་གིས་ཀྱང་ཇི་ལྟར་ཡང་ཐོབ་པར་མི་འགྱུར་རོ།། རྒྱུད་གང་ལ་བདག་མེད་པའི་ལམ་གྱི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་བྱེད་རྒྱུ་ཉེ་བར་གྱུར་པས་ཉོན་མོངས་པ་འབྱུང་བ་

[1] འདི་ སྡེ།
[2] འདུས་བྱས་ སྡེ།
[3] སྐད་ཅིག་པ་ཡིན་གྱི་ ཅོ་ནེ། སྐད་ཅིག་པ་ཡིན་པས་ པེ། སྣ།

དང་ཤིན་ཏུ་མི་མཐུན་པའི་གནས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་འབྲས་བུ་བྱུང་བར་གྱུར་པ་ལ་དེས་འབྲས་བུ་འཐོབ་བོ་ཞེས་སྟོན་པ་འབའ་ཞིག་ཏུ་ཟད་ཀྱི་དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

འདི་ལྟར་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་དངོས་པོ་དུས་ཐ་དད་[1] པའམ། དུས་མཉམ་པ་ཞིག་ལས་འགྱུར་གྲང་ན། རེ་ཞིག་ཕྱོགས་དང་པོ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། གཉི་ག་གནས་དགོས་པས་དུས་ཐ་དད་པ་ནི་གཅིག་ཉེ་བར་གྱུར་པའི་དུས་ན་གཅིག་ཤོས་མེད་པས་དེ་གཉི་ག་གནས་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། དུས་མཉམ་པ་ལས་ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་གཉི་ག་གྲུབ་ནས་གཅིག་ལ་གཅིག་ཕན་འདོགས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཕན་འདོགས་པ་མེད་ན་ནི་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་དངོས་པོ་ངེས་པར་རིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།།

གཅིག་ལ་གཅིག་ཀུན་ནས་ལྡན་པ་བསྐྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་དུས་མཉམ་པར་འབྲེལ་བར་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། འདི་ལྟར་རེ་ཞིག་གང་དག་ལུས་མེད་པའི་དངོས་པོ་དེ་དག་ནི་ཡུལ་ན་མི་གནས་པ་ཉིད་ཡིན་པས་ཀུན་ནས་ལྡན་པ་མེད་དོ།། དེ་དག་དུས་མཉམ་པ་ཙམ་གྱིས་ཀྱང་འཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་། ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་དངོས་པོར་འགྱུར་བ་མ་ཡིན་པ་སྟེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། རྒྱུ་གཅིག་ཁོ་ན་ལས་[2]ཀྱང་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་གཉིས་ཀའི་ཐུན་མོང་ཡིན་པས། འདི་ནི་ཐོབ་པར་བྱ་བ་འདི་ནི་ཐོབ་པར་བྱེད་པ་ཞེས་བྱ་བར་ངེས་པར་མེད་པར་འགྱུར་རོ།། གང་དག་ལུས་ཡོད་པ་དེ་དག་ཀྱང་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཀུན་ནས་འབྱར་ན་ནི་གཅིག་ཏུ་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། ཕྱོགས་གཅིག་ན་ནི་ཡན་ལག་དང་བཅས་པར་ཐལ་བར་

---

[1] དུས་ཐམས་ཅད་ པེ། སྣ།

[2] རྒྱུ་གཅིག་ཁ་ན་ལས་པས་ པེ། སྣར།

འགྱུར་རོ།། བར་མེད་པར་གནས་པ་ལས་ཀྱང་ཐོབ་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་གཉི་ག་དང་ཐུན་མོང་སྤྲེ་བྲེ་བྲག་མེད་པས་ངེས་པ་མེད་དོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་འདི་ནི་རྟོགས་པས་སྒྲོ་བཏགས་པ་ཉིད་དོ།། འདིས་ནི་བྱེད་པ་པོ་དང་ལས་ལ་སོགས་པའི་ཐ་སྙད་མཐའ་དག་གསལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ།།

ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་དོ།། འདིས་ནི་འདུས་མ་བྱས་ཀྱང་བསྡུས་ཏེ། ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་ནི་རྫས་བདུན་གྱི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ལྷག་མ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དང་། ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད་ཀྱི་ཕྱོགས་གཅིག་གིས་ནི་འདུས་བྱས་བསྟན་ཏོ།། འདི་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། དེས་ན་མིག་ལ་སོགས་པ་ཡང་གཟུང་བར་[༡]བྱའོ།། གང་གི་ཕྱིར་འདི་ལྟར་དོན་དམ་[༢]པར་དེ་ཅི་ལ་ཡང་ཞུགས་པ་མེད་ལ། དེ་འདི་སྙམ་དུ་བདག་གིས་ཐོབ་པོ་སྙམ་དུ་ཡང་མི་སེམས་པ། དེའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པའི་ལམ་ལ་གནས་པས་དེས་ན་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱའོ།། གལ་ཏེ་བདག་གིས་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་དེ་ལྟར་མངོན་པར་ཞེན་པར་གྱུར་ན། དེའི་ཚེ་ཅིའི་ཕྱིར་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པ་ཞེས་མི་བྱ་སྙམ་པ་ལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།། སུ་ཞིག་བདག་གིས་ཞེས་ངའོ་སྙམ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པར་འགྱུར་ན་དེ་དག་བདག་ཏུ་[༣]ལྟ་བ་སྤངས་པ་མ་ཡིན་ནོ།། གང་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་མ་སྤངས་པ་དེ་འཕགས་པའི་ལམ་མ་སྐྱེས་པའོ།། གང་འཕགས་པའི་ལམ་མ་སྐྱེས་པ་དེ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་ཡིན་པས་[༤]རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། འདི་ལྟར་གང་ཞིག་དེ་བདག་གིས་ཞེས་མངོན་

---

[༡] བཟུང་བར་ སྡེ།

[༢] འདི་དོན་དམ་ སྡེ།

[༣] དེ་བདག་ཏུ་ པེ། སྣ།

[༤] པའི་ པེ། སྣ།

པར་ཞེན་པ་དེ་ནི་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་ཀུན་ཏུ་འབྱུང་ངོ་॥ འདིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ॥ འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་གནས་འདིའི་ཟབ་པ་བརྗོད་དོ॥

དཔེ་སྲོས་ཏེ་བསྟན་པས་དོན་འདི་ཉིད་བསྟན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། ལན་ཅིག་ཕྱིར་འོང་བ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་བཀའ་བསྩལ་ཏོ॥ འདིར་ཡང་ཚིག་གི་དོན་དང་མཚམས་སྦྱར་བ་ལ་སོགས་པ་ཐམས་ཅད་སྔ་མ་བཞིན་དུ་སྦྱར་བར་བྱའོ॥ འདོད་པ་ན་སྤྱོད་པའི་ཉོན་མོངས་པ་བསྒོམ་པས་སྤང་བར་བྱ་བ་རྣམ་པ་དྲུག་སྤངས་པ་དེ་ཉིད་འཕགས་པ་ལན་ཅིག་ཕྱིར་འོང་བ་སྟེ། འདོད་པའི་ཁམས་སུ་ལན་གཅིག་ཕྱིར་འོང་བའི་ཕྱིར་རོ॥ འདོད་པའི་ཁམས་ན་སྤྱོད་པའི་ཉོན་མོངས་པ་བསྒོམ་པས་སྤང་བར་བྱ་བ་མཐའ་དག་སྤངས་པ་དེ་ཉིད་ཕྱིར་མི་འོང་བ་ཞེས་བྱ་བ[1]སྟེ། འདོད་པའི་ཁམས་སུ་ཡང་མི་འོང་བའི་ཕྱིར་རོ॥ གང་གི་ཚེ་ཁམས་གསུམ་ན་སྤྱོད་པའི་ཉོན་མོངས་པའི་དྲི་མ་མཐའ་དག་སྤངས་པར་གྱུར་པ་དེའི་ཚེ་དེ་ཉིད་འཇིག་རྟེན་མཐའ་དག་གིས་མཆོད་པར་འོས་པས་དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བྱའོ॥ དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བགྱི་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཉོན་མོངས་པའི་སྒྲིབ་པ་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་སྤངས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུད་ལ་དེ་བཏགས་པའི་ཕྱིར་ལ། རྒྱུད་ཀྱང་བཏགས་པར་ཡོད་པའི་ཕྱིར[2]དོན་དམ་པར་དེ་གང་ཡང་མེད་དེ། དེ་ནི་སྒྲོ་བཏགས་པའི་ཕྱིར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ॥

ད་ནི་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་བདག་ཉིད་དབང་ཕྱིན་པས་བདག་གི་ཚིག་གཟུང་བར་འོས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་ཡོན་ཏན་ཁྱད་པར་ཅན་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་དང་། ཡོན་ཏན་ཐུན་མོང་བ་དགྲ་བཅོམ་པའི་སྒོ་ནས་བདག་ཉིད་བརྗོད་པར་བྱེད་ཅིང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་ཉིད་བསྟན་པའི་ཕྱིར། བདག་

---

[1] ཞེས་བྱ་ པ།

[2] ཡོད་པའི་ སྣེ།

ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།། ཉོན་མོངས་པ་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་བྱེ་བྲག་གོ། དེ་ཡང་གཉི་གའི་ཆ་ལས་རྣམ་པར་གྲོལ་བའི་དགྲ་བཅོམ་པ་ཀོ་ན་བདག་ལ་དམིགས་ནས་གཞན་དག་ཉོན་མོངས་པ་སྐྱེ་བར་མི་རུང་ངོ་སྙམ་ནས་རྣལ་འབྱོར་ལ་སྙོམས་པར་འཇུག་ཅིང་། དེ་ལས་ལངས་པ་དེ་དག་ལ་དམིགས་ནས་གཞན་དག་ཉོན་མོངས་པ་སྐྱེ་བར་མི་འགྱུར་བ་སྟེ། ཉོན་མོངས་པ་མེད་པ་དེས་གནས་པའི་ངང་ཚུལ་ཅན་གང་ཡིན་པ་དེ་དག་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ།། རྣམ་པར་དབྱེ་བ་འདི་ནི་དགའ་[༡]བའོ།།

བདག་ལ་ལུང་མི་བསྟན་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེའི་ཚེ་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་མ་སྤངས་པའི་ཕྱིར་བདག་གིས་རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་བུ་ཡང་རྟེད་པར་དཀའ་ན། གང་གཉི་གའི་ཆ་ལས་རྣམ་པར་གྲོལ་བའི་དགྲ་བཅོམ་པས་ཐོབ་པར་བྱ་བ་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་ཉིད་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། ཇི་ལྟར་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་ཅི་ལ་ཡང་མི་གནས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། བདག་གིས་འབྲས་བུ་འདུས་བྱས་སམ་འདུས་མ་བྱས་འགའ་ཞིག་ཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་[༢]དེ་ལྟར་མངོན་པར་ཞེན་པས་སུ་ཞིག་མི་གནས་པ་དེ་ཉིད་ཉོན་མོངས་པ་མེད་པར་གནས་པ་ཞེས་ཕྱོགས་དག་ཏུ་གསུངས་ཏེ། གཞན་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ད་ནི་བདག་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་ཉོན་མོངས་པ་མ་མཆིས་པར་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་ཏུ་ལུང་བསྟན་ཏོ།།[༣] བཅོམ་ལྡན་འདས་བདག་འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་དགྲ་བཅོམ་པ་ལགས་ཀྱང་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པས་མ་

༡ དགར་ པེ།

༢ སྐམ་པ་ པེ། སྣ།

༣ བསྟན་ཏེ་ པེ། སྣ།

ཡིན་གྱི། འོ་ན་ཇི་ལྟ་ཞེ་ན། ཐ་སྙད་ཙམ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པས་ཡིན་གྱི།[1] དེ་ནི་བདག་གིས་སྔར་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་། ཐོབ་པར་བྱེད་པ་ཅི་ཡང་མེད་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་བྱང་ཆུབ་སེམས་པར་གྱུར་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་ཆོས་ཇི་ལྟར་བླངས། འོན་ཏེ་མ་བླངས་ན་ནི་དེའི་ཚེ་བདག་ཅག་ཆོས་ལེན་པར་འདོད་པ་རྣམས་ཀྱིས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བྱུང་བ་ལ་ཅིའི་ཕྱིར་མཉེས་པར་བྱ་སྙམ་དུ་ཡང་དག་དེ་ལྟར་རྟོགས་པར་གྱུར་པ་དེ་དག་གི[2]ཐོས་པ་ཉུང་བ་གེགས་སུ་གྱུར་པ་དང་དབྲལ་[3]བའི་ཕྱིར་གནས་བརྟན་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་མར་མེ་མཛད་ལས་གང་བླངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་ཡོད་སྙམ་མམ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། རབ་འབྱོར་གྱིས་ཀྱང་དགོངས་པ་སྔ་མ་ཉིད་བཟུང་ནས། དེ་ནི་མ་མཆིས་ཞེས་གསོལ་ཏོ།། དོན་དམ་པར་ཐོབ་པར་བྱ་བ་དང་ཐོབ་པར་བྱེད་པའི་དངོས་པོས་ཆོས་གང་ཡང་བླངས་པ་མེད་པ་དེ་[4]ཇི་ལྟར་སྔར་བཤད་པ་བཞིན་ནོ།། ཆོས་ཐམས་ཅད་རང་བཞིན་གྱིས་ཞི་བའི་ཡང་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་མོད་ཀྱི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་དབང་གིས་ཚིག་གི་ཚོགས་སྣ་ཚོགས་པ་ལ་སོགས་པ་སྣང་བའི་ཤེས་པ་བྱུང་བ་ཙམ་ལ་བླངས་པ་ཞེས་གདགས་ཏེ། དེས་ན་ཐོས་པ་ཡོངས་སུ་བཅལ་བར་[5]འབྲས་བུ་དང་བཅས་པ་ཡིན་ནོ།།

---

[1] ཡིན་ཏེ་ པེ། སྣ།

[2] གིས་ སྡེ།

[3] དབྲལ་ སྡེ།

[4] བླངས་པ་མེད་དེ་ པེ། སྣ། ཅོ་ནེ།

[5] བཅལ་བ་ པེ། སྣ།

འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཐོས་པ་ཡོངས་སུ་ཆོལ་བའི་དུས་ན་སངས་རྒྱས་བྱུང་བ་མཉེས་པར་བྱའོ།། དེའི་འོག་ཏུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས་སྤང་[༡]བར་བྱའོ་སྙམ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ། དེ་སྤང་པ་ལ་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། མར་མི་མཛད་ལས་ཆོས་གང་ཡང་སྤངས་སམ་ཞེས་བྱ་བ་ཕྱོགས་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་ཆོས་སྤང་[༢]བའི་མཚན་མ་ཐམས་ཅད་ཟློག་པར་བྱེད་དོ།། སྤངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་ཆོས་རྣམས་ཀྱི་དོན་དམ་པ་གཟུང་དུ་མེད་པར་རྣམ་པར་འཇོག་པར་བྱེད་ཅིང་། དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། གནས་འདིའི་ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།།

གལ་ཏེ་ལས་དང་བྱེད་པ་པོ་ལ་སོགས་པ་དོན་དམ་པར་མེད་པ་ཉིད་ཡིན་ན་དེའི་ཚེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར། ཇི་ལྟར་སྨོན་ལམ་གདབ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེ་དག་དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་སློམ་པ་གེགས་སུ་གྱུར་པ་དང་ཐྲལ་[༣]བའི་ཕྱིར་གནས་བདུན་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ལ་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། མི་བདེན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བརྫུན་པའོ།། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་དང་དེར་ཇི་ལྟར་གསུངས་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། དེ་ཙེའི་སླད་དུ

---

[༡] སྤངས་ སྣ།

[༢] སྤངས་ སྣ།

[༣] དཔྲལ་ པེ། སྣ།

ཞེས་ཞུས་པ་དང་ལན་དུ། ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་[1]ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཞིང་མང་པོ་དག་ནི་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་སོ།། བཀོད་པ་དེ་དག་མེད་པར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་ཡན་ལག་ཅན་གྱི་ངོ་བོའམ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་བསགས་པར་བཀོད་པ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བཀོད་པ་དེ་དག་ནི་མེད་པ་ཁོ་ན་ཡིན་མོད་ཀྱི། འོན་ཀྱང་རྨི་ལམ་ན་དམིགས་པའི་ཞིང་བཀོད་པ་བཞིན་དུ་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ཙམ་དུ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་པར་གསུངས་ཏེ། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དོན་དམ་པའི་རང་བཞིན་ནི་བརྗོད་པར་མི་ནུས་པས་བརྗོད་པར་མི་འགྱུར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། མི་གནས་པ་གོང་དུ་ཡང་བཤད་མོད་ཀྱི། བརྗེད་ངེས་པའི་ཚུལ་ཅན་དག་[2]ལ་ཕན་གདགས་པའི་དོན་དུ། མདུག་བསྡུ་བའི་ཐབས་ཀྱིས་དྲན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དེ་ལྟ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཇི་སྐད་སྨོས་པའི་རྣམ་པས་དངོས་པོ་གང་ཡང་གྲུབ་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དེ་ལ་མི་གནས་པར་སེམས་བསྐྱེད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ལྷག་མ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་ནོ།།

དེ་ལ་མི་བདེན་པར་སྨྲ་བའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་དོན་དམ་པར་བདག་གིས་ཞིང་བཀོད་པ་བསྒྲུབ་བོ་སྙམ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏེ། ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་སྒོམ་པ་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་[3]བར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་སྒོམ་པ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། བཀོད་པ་དེ་དག་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་

[1] རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ པེ། སྣ།

[2] ཚུལ་འདི་དག་ སྡེ།

[3] དབྲལ་ པེ། སྣ།

གསུངས་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དོན་དམ་པ་རྣམ་པར་འཇོག་པས་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ལ་འཇུད་དེ་ཟབ་པ་སྟོན་ཏོ།།[༡] དེས་ན་ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་ནས་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་སྟོན་ཏེ། གནས་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།།

ཕུང་པོ་རྣམས་ལས་སེམས་ཅན་གང་ན་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཐ་མི་དད་པ་ཞིག་ཡོད་པ་ཁོ་ན་ཡིན་ནམ་གཞན་དུ་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་ཇི་ལྟར་འཇུག་སྙམ་དུ་གང་སེམས་པ་དེ་སེམས་ཅན་ཡལ་བར་འདོར་བའི་མཚན་ཉིད་གེགས་སུ་འགྱུར་པ་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བརྒྱད་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། སྐྱེས་བུ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ལྷ་མ་ཡིན་གྱི་དབང་པོ་དགྲ་གཅན་ཟིན་ཏེ། དེའི་ལུས་ནི་འདོད་པའི་ཁམས་ན་རི་རབ་ཀྱི་ཚད་ཙམ་མོ།། དེ་ཆེར་ཟིན་ཀྱང་དོན་མེད་པར་དེའི་ཆེན་པོ་སྟེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཅིའི་ཕྱིར་བསྟན་པའི་དགོངས་པ་བརྗོད་པར་འདོད་པས། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་དྲིས་པ་དང་། དགོངས་པ་དེ་ཉིད་བརྗོད་པའི་ཕྱིར། དངོས་པོ་མ་མཆིས་པ[༢]ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། དོན་དམ་པར་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་ངོ་བོ་ཉིད་མེད་པ་ཁོ་ན་སྟེ། རྨི་ལམ་དག་ན་རྨིས་པའི[༣] ལུས་བཞིན་དུ་དེ་ནི་ཀུན་རྫོབ་བཞིན[༤]དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཀྱི་དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེས་ན་ལུས་ཞེས་བགྱིའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིར་འཐད་པ་སྨྲས་པའོ།། འདི་ལྟར་འདི་ནི་ཀུན་རྫོབ་ཉིད་དེ་དེའི་ཕྱིར་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའི་དེ་ལྟ

---

[༡] ཟབ་པ་ཡང་བསྟན་ཏོ་ པེ།

[༢] པར་ པེ། སྣ།

[༣] རྨིག་པའི་ སྡེ།

[༤] ཀུན་རྫོབ་ཉིད་ སྣ།

མ་ཡིན་ན་དོན་དམ་པར་ཆོས་གང་ཡང་གྲུབ་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དེ་སྐད་མི་བརྗོད་དོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།།

རྒྱལ་དཔོག་པ་ལ་སོགས་པ་གང་དག་མེད་པ་ལ་དངོས་པོར་ཁས་ལེན་པ་དེ་དག་དགག་པའི་ཕྱིར། དེ་དངོས་པོ་མ་མཆིས་པས་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། དངོས་པོ་མེད་པ་ནི་དངོས་པོ་སྤྲངས་ཏེ་གནས་པའི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པས་ཇི་ལྟར་དེ་དང་མི་མཐུན་པའི་ངོ་བོར་མི་འགྱུར། དེའི་ཕྱིར་ལུས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དོན་དམ་པར་ལུས་གང་ཡང་གྲུབ་པ་མེད་པས་ལུས་ཞེས་བྱ་བ་འདིར་ཅི་ཞིག་བརྗོད་དེ་[༡]དེའི་ཕྱིར་དངོས་པོ་མེད་པར་བསྟན་པ་འདིས་ནི་འདི་ཡོངས་སུ་བསྟན་པ་ཡིན་ཏེ། ལུས་ཀྱི་ཚད་རི་རབ་ཙམ་གང་ཡིན་པ་ཡང་གང་གི་ཚེ་དོན་དམ་པར་ངོ་བོ་ཉིད་མེད་པས་བདག་ཉིད་ཀྱི་ལུས་མ་ཡིན་པ་དེའི་ཚེ་ཇི་ལྟར་གཞན་དག་གི་[༢]ལུས་ངོ་བོ་ཉིད་དང་བཅས་པའམ་བདག་དང་བཅས་པར་འགྱུར། འདི་ལ་དོན་གྱིས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་སྨིན་པར་བྱ་བ་ལ་བརྩོན་པ་དོན་དམ་པར་སེམས་ཅན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་སྟོན་ཏོ། དེ་སྤྲང་བར་བྱ་བའི་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་བསྟན་ཏོ།། སྐྱེས་བུ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་སྒྲོང་ལས་སྐྱེས་པ་ལ་སོགས་པ་ལུས་སོ་སོ་ཐ་དད་པ་ཐམས་ཅད་གཟུང་བར་བརྗོད་དོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་དངོས་པོ་མ་མཆིས་པ་གསུངས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་རྣམ་པར་འཛོག་ཅིང་དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པའི་གནས་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།། དེ་དངོས་པོ་མ་མཆིས་པས་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་སྟོན་ཏོ།།

---

༡ བརྗོད་དོ་ པེ། སྣ།

༢ གིས་ པེ། སྣ།

ད་ནི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདིས་[1]ཤིན་ཏུ་དོན་ཆེ་བར་བརྗོད་པས་ཕྱིའི་[2] བསྟན་བཅོས་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་རྣམས་དེ་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་རྣམ་པར་གཡེང་བ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་དགུ་བའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། འདིས་རྣམ་པ་བཞིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདིའི་ཁྱད་པར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ[3]།། བསོད་ནམས་ཡོངས་སུ་སྡུད་པ་དང་། ལྷ་ལ་སོགས་པ་རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་དང་། བྱ་དཀའ་བ་བྱེད་པ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་སོགས་པ་དང་མཚུངས་པར་བྱེད་པའོ།། དེ་ལ་བསོད་ནམས་ཡོངས་སུ་སྡུད་པ་ནི་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་མང་དུ་བསྐྱེད་ཅེས་གང་གསུངས་པའོ།། ལྷ་ལ་སོགས་པ་ལ་རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་ནི། ས་ཕྱོགས་དེ་ན་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་ཡིན་ཞེས་གང་གསུངས་པའོ།། བྱ་དཀའ་བ་བྱེད་པ་ནི་དེ་དག་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་གང་གསུངས་པའོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་སོགས་པ་དང་མཚུངས་པར་བྱེད་པ་ནི། ས་ཕྱོགས་དེ་ན་སྟོན་པའམ་བླ་མ་ལྟ་བུ་གང་ཡང་རུང་བ་གནས་སོ་ཞེས་གང་གསུངས་པའོ།།

དེ་ལ་རིན་པོ་ཆེའི་སྦྱིན་པའི་བསོད་ནམས་བརྗོད་པ་ཁྱད་པར་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པར་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། དངོས་པོའི་ཁྱད་པར་དང་ཞིང་གི་ཁྱད་པར་རོ།། དངོས་པོའི་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ཡང་རྒྱ་ཆེ་བ་དང་། གྱ་ནོམ་པའོ།། དེ་ལ་རྒྱ་ཆེ་བ་ནི་གཞིའི་བྱེ་བྲག་གིས་རབ་ཏུ་མང་བ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་དེ་སྙེད་ཅིག་[4]ཅེས་གང་གསུངས་པའོ།། གྱ་ནོམ་པ་ནི་འཇིག་རྟེན་

---

༡ འདི་ པ། སྣ།

༢ ཕྱི་ པ། སྣ།

༣ ཏེ་ སྣ།

༤ ཁམས་དེ་སྙེད་ པ། སྣ།

ན་ཤིན་ཏུ་དཀོན་པར་གྲགས་ཏེ། རིན་པོ་ཆེ་སྣ་བདུན་གྱིས་རབ་ཏུ་གང་བར་བྱས་ཏེ་ཞེས་གསུངས་པའོ།། ཞིང་ནི་བདག་དང་གཞན་གྱིས་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་ལྡན་པས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའོ།། དེ་ལ་གཞན་གྱི་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ནི་གླང་བར་བྱ་བ་དང་། བླང་བར་བྱ་བའི་དོན[1]་གཞན་དག་ལ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་སྟོན་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཞེས་གསུངས་པའོ།། དེ་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་དེ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ[2]་གསུངས་པས་ངེས་པའི་ཚིག་ཏུ་ན་དེ་བཞིན་དུ་གསུངས་པ་ཞེས་བྱའོ།།

བདག་གི་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ནི་ཡེ་ཤེས་དང་སྤངས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཐ་དད་པས་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། དེ་ལ་དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྤངས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྟན་ཏེ། ཉོན་མོངས་པའི་དགྲ་བཅོམ་པས་ངེས་པའི་ཚིག་ཏུ་ན་དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བྱའོ།། ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་ཡེ་ཤེས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྟན་ཏོ།། དེའི་ཕྱིར་ཚིག་གསུམ་སློས་པ་འབྲས་བུ་དང་བཅས་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས་སྦྱོར་བསྡུ་བའི་དོན་ཏོ།།

མོས་པར་བྱ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདོད་པ་སྟེ། མོས་པ་བསྐྱེད་པར་བྱའོ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྟོགས་པར་བྱ་བ་སྟེ་ཤེས་རབ་བསྐྱེད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདི་ལ་ སྔ་མ་ནི་ཕྱི་མའི་འབྲས་བུའོ།། ཡང་ན་ཕྱི་མ་ནི་སྔ་མའི་བཤད་པའོ།། བཤད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་སྨྲའོ།། ཡང་དག་པར་བསྟན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདོད་པ་སྟེ་མོས་པ་བསྐྱེད་པའི་དོན་ཏོ།། གྲངས་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གྲངས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བཅད་པར་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དཔག་ཏུ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མཐུ་དཔག་པར་མི་ནུས་པའམ་དཔེ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

---

[1] བྱ་བའི་དེ་ཁོ་ན་ པེ། སྣ།
[2] དེ་བཞིན་དུ་ པེ། སྣ།

འདོན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བདག་ཉིད་ཡི་གེ་ཁ་ཏོན་དུ་བྱེད་པའོ།། སྟོན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཞན་དག་ལ་ཚིག་གི་དོན་ཡང་དག་པར་སྟོན་པའོ།། ཡང་ན་འདོན་པ་ནི་ཚིག་གོ སྟོན་པ་ནི་དོན་ཏོ།། མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱག་བྱ་བར་འོས་པའོ།། མཆོད་རྟེན་ཉིད་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་སྟེ། དཔེར་ན་དབང་དུ་གྱུར་ཅེས་བྱ་བ་བཞིན་ནོ།། འདི་ལྟར་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་ཙམ་གྱི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་བསྟན་པས་ཀྱང་མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་ཡིན་ན་བདག་མེད་པ་གཉིས་ག་བསྟན་པ་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། ལེན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚིག་གོ། འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མི་བརྗེད་པའོ།། ཀློག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གླེགས་བམ་དུ་བྲིས་པའོ།། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དོན་ཏོ།། འདིས་ནི་ཐོས་པ་ལས་བྱུང་བའི་ཤེས་རབ་ཀྱིས་འཛིན་པར་བསྟན་ཏོ།། བསམ་པ་དང་བསྒོམ[1]པའི་ཤེས་རབ་ཀྱིས་ཀྱང་འཛིན་པའི་ཕྱིར་ཚུལ་བཞིན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། དོན་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། ཁ་ཅིག་ལས་ནི་འཛིན་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་གཅིག་པོ་[2]འབྱུང་སྟེ། དེ་ལ་འཛིན་པ་ནི་ཚིག་དང་དོན་གཉི་གར་བལྟ་བར་བྱའོ།། ངོ་མཚར་རབ་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་ཟབ་ཅིང་རྒྱ་ཆེ་བ་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པའི་ཕྱིར་རོ།།

སྟོན་པ་གནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་སྨྲ་བ་སྟེ། སྟོན་པའི་མཛད་པ་མཛད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། དེ་ཉིད་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་མངོན་སུམ་དུ་ཞུགས་པ་དང་འདྲའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། བླ་མ་ལྟ་བུ་གང་ཡང་རུང་བ་[3]ཞེས་བྱ་བ་ནི་འཕགས་པ་འཇམ་པའི་དབྱངས་ལ་སོགས་པ་གང་ཡང་རུང་བ་སྟེ། དེའི་མཛད་

---

[1] བསམ་པ་དང་བསམ་ སྡེ།

[2] གཅིག་པུ་ པེ། སྣ།

[3] བླ་མ་ལྟ་བུ་ཐམས་ཅད་ པེ། སྣ།

པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་ཆོས་སྒྲ་བ་དེ་གནས་པར་བལྟའོ།། ཁ་ཅིག་ལས་ནི་གཞན་དང་གཞན་དག་ཅེས་ཚིག་གཉིས་འབྱུང་སྟེ། དེ་ནི་བླ་མ་ལྟ་བུ་གང་ཡང་རུང་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་ཏེ། དེ་ན་གནས་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་གནས་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། དོན་གྱིས་ན་དམ་པའི་ཆོས་ཡོངས་སུ་བཟུང་བ་བཏང་ནས་ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། དེ་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་ཡོངས་སུ་བཏང་ལ་ཆོས་ལ་བརྩོན་པར་བྱ་བ་ལ་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་བཏབ་པ་བསྟན་ཏོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཞེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་སྨོས་པས་ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་སྤངས་ཏེ། དམ་པའི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ལ་བརྩོན་པར་བྱའོ་ཞེས་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།།

ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ནུས་པ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་དང་ལྡན་པས་གཞན་ལ་ཕན་གདགས་པའི་དོན་དུ་མིང་ཐོས་པ་ཙམ་གྱིས་ཀྱང་སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་[༡]སྐྱེ་བར་བརྗོད་པའི་ཕྱིར་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་འདིའི་མིང་ཅི་ལགས་ཞེས་ཞུས་སོ།། འདི་ལྟར་ཇི་ལྟར་གཟུང་བར་བགྱི་ཞེས་བྱ་བ་འདི་ནི་[༢] བཟུང་བས་ཀྱང་བསོད་ནམས་དཔག་ཏུ་མེད་པར་འགྱུར་བར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།།

ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་གི་མིང་དེ་ཡིན་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ།། འདིས་ཤེས་རབ་ཀྱང་ཡིན་ལ་[༣]ཕ་རོལ་རྟོགས་ཤིང་ཡོངས་སུ་གཅོད་པས་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའོ།། དེ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱང་ཡིན་ལ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཡང་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྡུ་བའོ།། ཡང་ན་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་

---

[༡] སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ པེ། སྣ།

[༢] འདི་ པེ། ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདི་ སྣ།

[༣] འདིས་ཤེས་བྱའི་ པེ། སྣ།

རོལ་ཏེ་དེ་འདྲིས་[1]རྟོགས་ཤིང་ཡོངས་སུ་གཅོད་པས་ན་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ།། དེ་ཡང་[2]ཤུགས་ཀྱིས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཤེས་རབ་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་མཆོག་དང་ལྡན་པ་སྟེ། ཤེས་རབ་གཞན་གྱིས་ན་ཕ་རོལ་གཞལ་བར་མི་ནུས་སོ།། ཡང་ན་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་སོན་ཏོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་འདི་ཉིད་དོ།། དེ་ནི་ཇི་སྐད་སྨོས་པའི་ཤེས་རབ་ཁོ་ན་སྟེ། གཞན་ནི་དེའི་ཕ་རོལ་ཏུ་འགྲོ་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདྲིས་སྦྱིན་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་ཡང་བཤད་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་བརྗོད་པར་འགྱུར་བས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལ་ཡང་དེ་སྐད་ཅེས་བྱ་སྟེ།[3] རོལ་རྟེན་མ་ཕྱོགས་པ་ལ་སོགས་པ་སྙན་དངགས་སྦྱར་བ་བཞིན་ནོ།། དེ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པར་བྱ་བ་ཉིད་ཡིན་པས་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དང་། དེ་དོན་དམ་པར་ཡང་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་དེ་སྒྲས་བརྗོད་མི་སྲིད་དོ་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་བསམ་པ་ལས་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་གསུངས་པ་དེ་ཞེས་བྱ་བ་བཀའ་བསྩལ་ཏོ།།

དེ་དོན་དམ་པར་[4]སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པར་བྱ་བ་ཡིན་པས་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དང་། དོན་དམ་པར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཤིན་ཏུ་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་སྒྲས་བརྗོད་དུ་མི་རུང་མོད་ཀྱི། འོན་ཀྱང་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་གཟུགས་བརྙན་གྱི་རང་གི་ངོ་བོ་ལ་ཕྱི་རོལ་ཏུ་སྒྲོ་བཏགས་ཏེ། རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་ཡང་རང་བཞིན་གྱིས་འཁྲུལ་བ་ཡིན་པས་དེས་སྒྲོ་བཏགས་པའི་རྣམ་པ་དེ་ཡང་བརྫུན་པ་ཉིད་དོ།།

---

[1] འདི་ པེ། སྣ།

[2] དེ་ལ་ པེ། སྣ།

[3] ཅེས་བྱའོ་ པེ། སྣ།

[4] པ་ སྡེ།

དེས་ན་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་གཟུགས་བརྙན་དུ་གྱུར་པ་གང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཤིང་སྒྲས་གོ་བར་བྱས་པ་དེ་ཉིད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་པ་ཡིན་གྱི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཤེས་རབ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་བདེན་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཤེས་བྱའི་ཕ་རོལ་ཏུ་སོན་པའི་ཕྱིར་རོ། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། རྟོགས་པར་བྱེད་པ་འཕྲུལ་པས་དེ་དང་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་གཟུགས་བརྙན་དུ་གྱུར་པ་ཐ་དད་པར་ཁོང་དུ་མི་ཆུད་པའི་ཕྱིར་རོ། དེས་ཤེས་པའི་ངོ་བོར་[1]དོན་དམ་པའི་ཤེས་རབ་དེ་ཉིད་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་བྱའོ། དེས་ན་དེ་ལྟར་བསྟན་པ་ལ་འགལ་བ་མེད་དོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ། ཡང་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཤེས་རབ་གང་ཡིན་པ་རྟོགས་པར་བྱེད་པའི་ངོ་བོར་[1]དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དེ་ཉིད་དོན་དམ་པར་མེད་པ་ཁོ་ན་སྟེ། དེ་དོན་དམ་པར་ན་ཕ་རོལ་ཏུ་འགྲོ་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། ཉིད་ཅེས་བྱ་བའི་སྒྲ་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་ཅེས་བྱ་བའི་འོག་ཏུ་གཞག་པར་བལྟའོ།

འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་[2]རྣམ་པར་འཛིན་ཅིང་དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ། ཇི་ལྟར་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་གཟུགས་བརྙན་གྱི་རང་གི་ངོ་བོ་ཁོ་ན་ལ་ཕ་རོལ་ཏུ་སྒྲོ་བཏགས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་ཀྱི། གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་པ་དེ་བཞིན་[3]ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པར་བསྟན་

[1] ངོར་ པ། སྣ།

[2] པ་ པ། སྣ།

[3] བཞིན་དུ་ པ། སྣ།

པའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་[༡]སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། དོན་དམ་པར་ཆོས་ཐམས་ཅད་གྲུབ་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། གྲུབ་ཏུ་ཆུག་[༢]ན་ཡང་རང་གི་མཚན་ཉིད་རྣམས་ནི་ཐུན་མོང་མ་ཡིན་པས་བརྡ་གདགས་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་རོ།། སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་ནི་བཏགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། རང་གི་མཚན་ཉིད་དང་སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་ལས་མ་གཏོགས་པར་བརྗོད་པར་[༣]བྱ་བ་གཞན་ནི་མེད་དེ། དེ་གཉིས་ཕན་ཚུན་སྤངས་ཏེ་གནས་པའི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་བས་ན་དོན་དམ་པར་གང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པར་དགོངས་པའི་གནས་བརྟན་རབ་འབྱོར་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མ་མཆིས་སོ་ཞེས་གསོལ་ཏོ།། འདིས་ནི་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་པ་དང་། ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་བདག་མེད་པར་རྒྱ་ཆེར་བསྟན་དུ་ཟིན་ཀྱང་ལས་དང་པོ་བ་གང་དག་འདི་སྙམ་དུ་ཇི་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་བདག་མེད་པར་བསྒོམ་སྙམ་སེམས་པ་དེ་དག་དངོས་པོའི་མཚན་མ་ཟིལ་གྱིས་གནོན་པ་ལ་ཐབས་མི་མཁས་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཅུ་བའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་ཐབས་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་པས་ཆོས་ཐམས་ཅད་བདག་མེད་པར་བསྒོམ་པར་བྱའོ་ཞེས་སྟོན་ཏོ།། དེ་ལ་ཐབས་རྣམ་གཉིས་ནི་བསྒྲུབ་པར་[༤]བྱ་བའི་ཐབས་དང་། སྣང་བ་མེད་པར་བྱ་བའི་ཐབས་སོ།།

---

[༡] ཅི་ སྡེ།

[༢] ཆུད་ སྡེ།

[༣] པ་ པེ། སྣ།

[༤] ཐསབ་པར་ སྡེ།

དེ་ལ་སའི་[༡]རྡུལ་ཇི་སྙེད་ཡོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གཅིག་པུའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་ན་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཐབས་ཡིན་པར་སྟོན་ཏོ། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་འདི་[༢]ནི་གཅིག་པུར་རིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ། བསྒྲིབས་པ་དང་མ་བསྒྲིབས་པ་ལ་སོགས་པ་གསལ་བའི་ཆོས་དང་ལྡན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེས་ན་དུ་མར་བཤིག་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་བཤིག་པར་ཁས་བླང་བར་བྱའོ།། དེའི་ཕྱིར་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཏུ་བསྒོམ་ན་གཅིག་པུ་ཉིད་དུ་སྤོང་བར་འགྱུར་རོ་[༣]ཞེས་སྟོན་ཏོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཕལ་ཆེར་དམིགས་པ་ཆུང་ངུ་མ་ཡིན་པ་ཡོད་ལ་བྱེད་པས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ལ་དམིགས་པའི་ཕྱིར་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོ་ཞེས་སྨོས་སོ།། འདིས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།

རྡུལ་ཕྲ་རབ་དེ་དག་ཀྱང་ཕྱོགས་ཆའི་དབྱེ་བྲག་གིས་ཐ་དད་པའི་[༤]ཕྱིར་གྲུབ་པ་མེད་པ་ཁོ་ན་ཡིན་ན། ཇི་ལྟར་རྡུལ་དེ་མང་བོར་འགྱུར་ཞེས་ཞུས་པའི་བསམ་པ་ལས་བརྟགས་ནས་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་གསོལ་ནས། འདིར་ལན་དུ་སའི་རྡུལ་གང་ལགས་པ་དེ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་གསོལ་ཏོ།། སའི་རྡུལ་[༥]གཅིག་པ་ཉིད་དུ་འཛིན་པ་བསལ་བའི་[༦]ཕྱིར་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ངོ་བོར་གསུངས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་རྡུལ་མེད་པ་ཁོ་ན་སྟེ། དོན་དམ་པར་ན་སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་ངོ་བོ་བཞིན་དུ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་མེད་པ་

---

༡ སྣའི་ སྡེ།

༢ དེ་ སྣ།

༣ གྱུར་ པེ། སྣ།

༤ ཐ་མི་དད་པའི་ སྡེ།

༥ སའི་རྡུལ་དེ་མང་པོ་ སྡེ།

༦ གསལ་བའི་ སྡེ།

ཁོ་ན་ལས་ཕྱོགས་རབ་ཏུ་བརྟགས་པའི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་[1]ནི་གཅིག་པུར་འཛིན་པའི་ཐབས་ཙམ་དུ་གསུངས་པར་ཟད་ཀྱི་དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེས་ན་སའི་རྡུལ་ཞེས་བགྱིའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རིགས་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དོན་དམ་པར་དེ་མེད་པའི་ཕྱིར་དང་། རང་གི་མཚན་ཉིད་ནི་བརྗོད་དུ་མི་རུང་བའི་ཕྱིར་བརྗོད་པར་མི་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་ཁོ་ནར་དགོངས་པའོ།། བརྗོད་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བསྟན་པར་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། དེའི་རང་གི་ངོ་བོ་ནི་གཞན་ཡང་མི་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་པའི་ཐབས་ནི་སྣང་བ་མེད་པར་བྱ་བ་ཡིན་པར་སྟོན་ཏོ།། འདི་ལྟར་མཐུག་ཏུ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཀྱང་རིགས་པས་སོ་སོར་བརྟགས་ནས་སྣང་བར་བྱེད་པས་[2]ན། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་རྣམས་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བར་རྟོགས་པར་འགྱུར་ཞིང་དེའི་འོག་ཏུ་རང་བཞིན་མེད་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་དོ།།

དེ་ལྟར་རེ་ཞིག་སྔོན་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བས་རང་བཞིན་[3]མེད་པ་ཁོ་ནར་བརྗོད་ནས་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ཡང་བརྗོད་པའི་ཕྱིར། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ནི་གང་ལགས་པ་དེ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ནི་འདིར་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་དགོངས་པ་སྟེ། གཞན་ནི་སྔར་བཤད་ཟིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ཁམས་མ་མཆིས་པར་ཞེས་བྱ་བ་དེ་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པ་སྟེ། འདི་ལྟར་རེ་ཞིག་དེ་ལས་གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་སྔོན་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ཉིད་ཀྱིས་བཤད་དོ།། ཕུང་པོ་ལྷག་མ་བཞི་ནི་ཇི་ལྟར་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་མི་

1 འདིས་ སྡེ།

2 པ་ པོ། སྣ།

3 རང་བཞིན་ནི་ སྡེ།

ལྡན་པར་སྦྱར་དཔྱད་པ་ཉིད་དོ།། དེ་ལྟ་བས་[1]ན་ཆོས་ཐམས་ཅད་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་མེད་པར་རྣལ་འབྱོར་པ་རྣམས་ཀྱིས་མཐོང་ངོ༎

འདིས་ནི་ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།། དོན་གྱིས་ན་དོན་དམ་པར་སྟོང་དང་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་དངོས་པོར་མངོན་པར་ཞེན་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། དེ་སྤྲང་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་བསྟན་ཏེ། སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་དངོས་པོ་མཐའ་དག་རང་བཞིན་མེད་པར་བསྒོམ་པར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། དེ་རྡུལ་མ་མཆིས་པར་ཞེས་བྱ་བ་དང་། ཁམས་མ་མཆིས་པར་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་རྣམ་པར་འཇོག་པ་འདིས་ནི་[2]རྣལ་འབྱོར་དུ་སྟོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། དེས་ན་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་བགྱིའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་ནས་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་དག་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཚོགས་བསྒྲུབས་[3]པའི་ཤིན་ཏུ་ཕན་འདོགས་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་མཆོད་པ་ན་དེའི་སྐུ་རྣམ་པར་མི་འཇིག་པ་དེ་དག་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཚོགས་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། ཡང་དག་པ་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་ལ་མ་ཞུགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་དེ་དག་ཚོགས་མ་བསགས་པ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཅུ་གཅིག་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདིར་སྦྱོར་བསྡུ་བའི་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་།

[1] དེ་ལྟ་མ་ཡིན་པས་ སྣ།

[2] རྣམ་པར་འཇོག་པས་ པེ། སྣ།

[3] བསྒྲུབ་ པེ། སྣ།

རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་ན་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མི་ལྟའོ།།[1]
འོ་ན་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། དོན་དམ་པ་ཆོས་ཉིད་དུ་ཞེས་བྱ་བའོ།།
ལྷག་མའི་བཤད་པ་ནི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་གནས་དང་
འདིར་མཐུན་ནོ།། འདི་ལ་ཅིག་ཤོས་པ་སྙམ་དུ་དོགས་པར་ཡང་མི་བྱ་སྟེ། སྔར་
ནི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དུས་ན་དེ་རྣམ་པར་གཞིག་པར་བསྟན། ད་
ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་རིམ་གྲོ་བྱ་བའི་དུས་ན་བསྟན་པས་ཐ་དད་
དོ།། འདིར་དོན་གྱིས་ན་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་མངོན་པར་
ཞེན་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། དེ་སྤང་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་
འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གདབ་པར་ཡང་བསྟན་ཏོ།། མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་
ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་མཐའ་དག་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།
མཚན་མ་མཆིས་པར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པ་རྣམ་པར་འཇོག་པའོ།། དེས་ན་
ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གཡེང་བ་ཆར་གཅོད་པ་བསྟན་ཏོ།།
དེ་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཐབས་
བསྟན་དུ་ཟིན་ཀྱང་ལུས་དང་སྲོག་ལ་ཆགས་ཤིང་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་ལ་གདུ་བ[2]
གང་དག་ལེ་ལོ་དང་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་དང་བསོད་སྙོམས་ལ་ཆགས་པར་གྱུར་པ་
དེ་དག་དེ་ལ་ཆགས་པ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཅུ་གཉིས་པའི་དབང་དུ་མཛད་
ནས། རབ་འབྱོར་སྐྱེས་པའམ་བུད་མེད་གང་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་
གསུངས་སོ།།
འདིས་ནི་སྙིང་པོ་མེད་པ་སྡུག་བསྔལ་བརྒྱ་སྟོང་དུ་མའི་གནས་ལུས་གཅིག་གི་
ཕྱིར་བྱེད་ལ་ཆགས་ནས་ལུས་འདི་སྙེད་ཡོངས་སུ་བཏང་བས་ཀྱང་མི་རྙེད་པའི་

[1] ལྟའི་ སྡེ།
[2] བསྟུ་བ་ སྣ།

བསོད་ནམས་གང་ཡིན་པ་དེའི་བར་ཆད་བྱེད་ཀྱིས། ལུས་དང་སྲོག་ལ་མི་ལྟ་བའི་སེམས་ཀྱིས་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་འདི་ལ་བརྩོན་པར་བྱ་བའི་རིགས་སོ་ཞེས་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་ལེ་ལོ་ལ་སོགས་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ[1]།། དེ་སྲུང་པའི་ཕྱིར་དམ་པའི་ཆོས་ཡོངས་སུ་བཟུང་བ་ལ་སོགས་པའི་དོན་དུ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་ནི་ཐེག་པ་ཆེན་པོ་མཐའ་དག་ལ་ཉན་པ་ལ་སོགས་པར་མཛད་པའོ།། བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།།

ཆོས་ཀྱི་ཤུགས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་ལ་དད་པའི་[2]ཤུགས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་མཆི་མ་བྱུང་བ་དེ་ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བྱིན་གྱིས་རླབས་ཀྱིས་ལེ་ལོ་ཅན་གཞན་དག་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་རྨད་དུ་བྱུང་བ་བརྗོད་པས་ཤིན་ཏུ་དད་པ་བསྐྱེད་པའི་དོན་དུ་བལྟ་བར་བྱའོ།། དེའི་ཕྱིར་ལག་པས་མཆི་མ་ཕྱིས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་འདི་སྐད་ཅེས་གསོལ་ཏོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་[3]ཛེ་སྙེད་པས་གསུངས་པ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ངོ་མཚར་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། ཛེ་སྙེད་པས་ཞེས་བྱ་བ

---

[1] ཏེ་ པ། སྣ།

[2] ཆོས་ལ་དད་པའི་ པ། སྣ།

[3] པ་ སྣེ།

ནི་[༡]བྱེད་པའི་བྱེ་བྲག་སྟེ། བཤད་པར་བྱ་བར་འོས་པའི་[༢]རྣམ་པ་ཇི་སྙེད་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལ་གསུངས་ཤིག་ཅེས་[༣]བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

ཅིའི་ཕྱིར་[༤]སྙམ་པ་ལ། བདག་གི་ཡེ་ཤེས་སྐྱེས་ཚུན་ཆད་ཅེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། ཚུན་ཆད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་འཕགས་པའི་བདེན་པའི་སྤྱོད་ཡུལ་གྱི་[༥]ཡེ་ཤེས་སྐྱེས་པ་ནས་བཟུང་སྟེ། དེའི་བར་གྱི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་བསོད་ནམས་ཀྱི་འབྲས་བུ་མཆོག་ཏུ་ཇི་སྐད་བསྟན་པ་ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་མ་ཡིན་པ་འདི་ལྟ་བུ་ཐོན་ཆད་མ་ཐོས་སོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་རྙེད་དཀའ་བར་བརྗོད་དོ།། དེ་ལྟར་བསོད་ནམས་ཁྱད་ཞུགས་པ་དེ་ཐོས་ནས་བརྟོན་འགྲུས་བརྩམས་ཏེ་འཇུག་པ་གང་དག་ཆོས་འདི་ལ་སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་འདུ་ཤེས་པར་འགྱུར་བ་དེ་དག་གི་ཉེས་པ་དེ་ཡོངས་སུ་སྤང་བའི་ཕྱིར་ངོ་མཚར་རབ་ཅེས་བྱ་བ་འདི་གསོལ་ཏེ། བསོད་ནམས་རྒྱ་ཆེན་པོ་བསྐྱེད་པ་སྐྱེ་བོ་མ་རབས་ཀྱིས་དད་པར་དཀའ་བ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་མོས་པའི་ཕྱིར་དང་། གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་ཤིན་ཏུ་ཟབ་པ་ལ་མོས་པའི་ཕྱིར་བདག་ལྟ་བུ་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་ཙམ་རྟོགས་པ་དག་པས་དེ་དག་[༦]ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་རོ།། ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དོན་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ལ་བྱའི་སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་ནས་འདི་ནི་ཡང་དག་པའོ་སྙམ་དུ་འདུ་ཤེས་པ་ལ་ནི་མི་

---

[༡] ཞེས་བྱ་བ་ནི་མི་ སྡེ།

[༢] འོས་པའི་ཆོས་ པེ། སྣ།

[༣] གསུངས་ཞེས་ པེ། སྣ།

[༤] ཅིའི་ པེ། སྣ།

[༥] སྤྱོད་ཡུལ་བའི་ པེ། སྣ།

[༦] དེ་དེ་དག་ སྡེ།

བྱའོ།། འདི་ལྟར་འདིར་ཆོས་ཐམས་ཅད་རང་བཞིན་མེད་པ་དོན་དམ་པ་ལ་དགོངས་ནས་བསྟན་གྱི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་རང་བཞིན་མེད་པ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེས་ན་མཐོང་བ་ལ་སོགས་པ་དང་འགལ་བ་མ་ཡིན་ནོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

གལ་ཏེ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་ཡོད་པ་ན་[1]འདུ་ཤེས་ཡོད་པར་བྱ་བ་ཡང་དོན་དམ་པར་ཡོད་པར་འགྱུར་ཏེ། འདུ་ཤེས་པར་བྱ་བ་མེད་ན་འདུ་ཤེས་ཀྱང་མེད་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་ཆོས་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་མེད་པར་ཇི་ལྟར་འགྲུབ་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་ཀླན་ཀ་ལ་བརྟགས་ནས། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏེ། ལན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་གང་ལགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། འདུ་ཤེས་པར་བྱ་བ་དང་། གང་ཡང་མེད་པ་དང་། གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་དོན་དམ་པར་དེ་ཉིད་འདུ་ཤེས་མེད་པ་སྟེ། དེའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པ་དེ་ལ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་པར་མི་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་ཏོ།། གང་གི་ཕྱིར་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ཙམ་དུ་ཡོད་པ་དེའི་ཕྱིར་དེ་ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས་ཞེས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གསུང་ངོ་།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་མེད་པའི་ཕྱིར་གསུང་བར་མི་འགྱུར་རོ།། འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་རྣམ་པར་འཇོག་ཅིང་ཇི་ལྟར་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམ་པར་འཇུག་པས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་གཅད་པར་བྱ་བ་དེ་གཉི་ག་བསྟན་ཏོ།། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།། སྒྲོ་འདོགས་པ་དང་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་ཡང་སྤངས་སོ།།

ལེ་ལོ་ཅན་དེ་དག་ཉིད་ངོ་མཚར་བ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་བདག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་བཤད་པ་ལ་རྟོག་ཅིང་མོས་པ་ནི་བདག་ལ་ངོ་མཚར་མ་ལགས་ཀྱི། བཅོམ་ལྡན་འདས་སླད་མའི་ཚེ་སླད་མའི་དུས་ལྔ་བརྒྱ་པ་ཐ་མ་ལ་སེམས་ཅན་གང་

---

1 ཡོད་ན་ པ། སྣ།

དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལེན་པ་དང་། འཛིན་པ་དང་། ཀུན་ཆུབ་པར་བགྱིད་པ་དེ་དག་ནི་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།།

འདིར་སྐྱེར་[1]བསྟུ་བའི་དོན་འདི་ཡིན་ཏེ་མ་འོངས་པ་ན་དམ་པའི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འཇིག་པར་འགྱུར་བའི་དུས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་དག་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་འཛིན་པར་འགྱུར་ལ། དེ་དག་གང་ཟག་ལ་སོགས་པར་འཛིན་པར་མི་འགྱུར་བ་དེ་ལྟ་བུ་དག་ཀྱང་འབྱུང་བར་འགྱུར་ན། ཁྱེད་ཅག་དམ་པའི་ཆོས་ཀྱི་དགའ་སྟོན་དང་བཅས་པའི་དུས་ན་ཡང་སྐྱབ་པ་དེ་འདྲ་བ་མེད་པས་ན་འདི་ནི་ཁྱེད་ཀྱི་ཤིན་ཏུ་ངོ་ཚ་བའི་གནས་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའོ།། དེ་ལ་བདག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའོ།། འདི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པར་ཡོངས་སུ་སྟོན་པའོ།། བཤད་པ་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མངོན་སུམ་དུ་གསལ་བར་མཛད་པའོ།།[2] རྟོག་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དང་བའི་རྣམ་པ་སྣེ་དང་བར་སྟོན་ཏོ།། མོས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཡིད་ཆེས་པའི་རྣམ་པའོ།། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་བསྐལ་པ་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་འབྱུང་བ་དག་གོ། འདིར་ལེན་པ་ལ་སོགས་པའི་ཚིག་སྨོས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་སྔར་བཤད་པར་ཟད་དོ།།

དེ་ནི་འདི་སྐད་དུ་བསྟན་པར་འགྱུར་ཏེ། གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་ཙམ་རྟོགས་པ་བདག་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལས་མངོན་སུམ་དུ་ཐོས་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་བདག་མེད་པ་གཉིས་ཀྱི་ཚུལ་སྟོན་པར་བྱེད་པའི་ཆོས་འདི་ལྟ་བུ་ལ་དད་ཅིང་ཡིད་ཆེས་པ་ཙམ་དུ་གྱུར་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ངོ་མཚར་མ་ཡིན་གྱི། གང་བཅོམ་ལྡན་འདས

[1] འདིའི་ཕྱིར་ སྣེ།
[2] མཛད་པ་ལའོ་ པེ། སྣ།

བསྐལ་པ་ན་འདི་ལ་འཛིན་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་གྱིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལྟ་བུ་རྟོགས་ནས་ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་དེ་དག་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་དང་བསྐལ་པ་ཐེག་པ་ཆེན་པོ་སྤྱོད་པ་མང་བ་ན་དེ་ལ་དད་པ་སྐྱེས་པ་ནི་ཤིན་ཏུ་དཀོན་པའི་ཕྱིར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

འདིས་ནི་ལེ་ལོ་སྤངས་ཏེ་དམ་པའི་ཆོས་གཟུང་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་དག་ལུང་འབབ་ཞིག་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་བ་མ་ཟད་ཀྱི་རྟོགས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་ཡང་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། བདག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྨོས་པ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། དེས་[1]ན་དེ་དག་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། བདག་མེད་པ་གཉིས་ག་ཅིག་ཅར་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

གལ་ཏེ་བདག་མེད་པ་ལ་སོགས་པ་ཡོད་ན་ནི་དེའི་ཚེ་ངེས་པར་དེར་[2]འདུ་ཤེས་པ་ཡང་འཇུག་གོ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་གསོལ་ནས། ལན་དུ་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། འདིས་ནི་བདག་ལ་སོགས་པ་ཇི་སྐད་སྨོས་པ་ལྟར་རེ་ཞིག་ཞོག་གི་གང་[3]འདི་ནི་ངའོ་སྙམ་དུ་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ་སྐྱེ་བོ་ཐམས་ཅད་ལ་གྲགས་ལ་དེ་ཡང་བརྟགས་པའི་ཁུར་མི་བཟོད་པས་ཅི་ཡང་མ་ཡིན་ན་བདག་ལ་སོགས་པ་སྟོང་བ་མེད་པ་དངོས་པོ་ཡོད་པར་མི་འགྱུར་བ་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏེ། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་བསྟན་ཏོ།།

---

[1] དེ་ སྣེ།

[2] དེ་ སྣེ།

[3] ཞོག་གང་ སྣེ།

གལ་ཏེ་བདག་ལ་སོགས་པ་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་དེ་དག་ཏུ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་གྱུར་ནས། བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་འཇུག་པར་མི་འགྱུར་རོ་ཞེས་བྱ་བ་ཅི་མངོན་སུམ་དུ་སེམས་པའི་དྲི་བ་ནང་དུ་བརྗོད་པ་བཞག་པ་ལ་བརྟགས་ནས། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་གསོལ་ཏེ། ལན་དུ་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ནི་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བའི་སླད་དུའོ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། འདི་ལ་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། དངོས་པོ་མ་ལུས་པར་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཞེས་བྱའོ།། དོན་དམ་པར་འདུ་ཤེས་པར་བྱ་བ་གང་ཡང་མེད་པས་དེ་དག་གང་དུ་ཡང་འདུ་ཤེས་མི་འཇུག་གོ། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་འགྱུར་རོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་རྗེས་སུ་སློབ་པས་འཇུག་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དེའི་གོ་འཕང་ཇི་ལྟར་ཐོབ་པར་འགྱུར། དེས་ན་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་རྣམས་ཀྱིས་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བ་ལ་ཇི་ལྟར་བསླབ་[༡]པ་དེ་བཞིན་དུ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་བསླབ་པར་བྱའོ།། དེའི་ཕྱིར་[༢]བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་དག་དེའི་རྗེས་སུ་སློབ་པ་དེ་དག་བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་མི་འཇུག་པར་ངེས་སོ།། དེ་དེ་བཞིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདུལ་བ་རྣམས་ངེས་པའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཞལ་གྱིས་བཞེས་ནས་ལན་གཉིས་སུ་གསུངས་སོ།། འདི་ཡན་ཆད་ནི་བརྗོན་འགྲུས་ལས་ལོག་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་[༣]གསུངས་སོ།།

ད་ནི་གང་ཟག་ཆོས་ཟབ་མོ་འདི་ཐོས་ནས་ཡིད་སྐྲག་སྟེ། ཐོག་མ་ཁོ་ནར་བརྩོན་འགྲུས་མི་རྩོམ་པ་དེ་དག་བརྩོན་འགྲུས་མི་རྩོམ་པ་དེ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར

༡ བསླབས་ པེ། སྣ།

༢ དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ པེ། སྣ།

༣ མཛད་དེ་ པེ།

སེམས་ཅན་གང་དག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ༎ སྐྲག་ན་བརྗོད་འགྲུས་མི་རྩོམ་སྟེ། ཉན་ཐོས་ཀྱི་ཐེག་པར་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདི་ནི་ཆོས་ཙམ་དུ་ཟད་དེ་འདི་ལ་གང་ཟག་ནི་མེད་པ་ཁོ་ནའོ་ཞེས་བསྟན་ལ། ཐེག་པ་ཆེན་པོར་ནི་ཆོས་ཙམ་པོ་དེ་[1]ཡང་བརྟེན་པའོ་ཞེས་བསྟན་པས་དེ་ལ་ཐོག་མ་མེད་པའི་[2]དུས་ན་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་དང་འབྲེལ་བའི་སྙིང་ཅན་ལུས་མ་བསྒོམས་པ་དག་གང་ཟག་བདག་མེད་པ་ཐོས་ནས་ང་མེད་དོ་ཞེས་སྐྲག་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་དགག་པའི་ཕྱིར་མི་སྐྲག་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ༎ གང་དག་ཆོས་ཙམ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་དག་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་བསྟན་པ་ཐོས་པའི་དུས་ན་ཀུན་ཏུ་སྐྲག་པར་འགྱུར་ཏེ། ཆོས་ཙམ་པོ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་མེད་པས་ཀྱི་མའོ་བདག་ནི་མ་རུང་ངོ་སྙམ་དུ་སེམས་ཏེ། ཕྱོགས་བཅུར་བལྟས་ཀྱང་སྐྱབས་མེད་པས་ཀུན་ཏུ་སྐྲག་པར་འགྱུར་བས་དེ་དགག་པའི་ཕྱིར་ཀུན་ཏུ་མི་དངང་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ༎ སེམས་པའི་དུས་ན་གཉི་ག་མེད་པར་སྤྱོར་མི་ནུས་པས་ཀུན་ཏུ་དངང་བར་འགྱུར་རོ༎[3] བདག་ཅག་གིས་ཇི་ལྟར་བདག་མེད་པ་གཉི་ག་ཡོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་ཞེས་ཐོག་མ་ཁོ་ནར་ཀུན་ཏུ་སྐྲག་པར་འགྱུར་བ་[4]དེ་དགག་པའི་ཕྱིར་ཀུན་ཏུ་དངང་བར་མི་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ༎

གཞན་དག་ན་རེ་བདག་མེད་པ་རྣམ་གཉིས་ཡོང་དུ་མ་ཆུད་པས་སྐྲག་པ་གང་ཡིན་པ་དེའི་ཆེ་ཆུང་ངུ་དང་འབྲིང་དང་ཆེན་པོ་རྣམས་ཚིག་གསུམ་པོ་དག་གིས་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་བསྟན་ཏེ་ཞེའོ༎ གཞན་དག་ན་རེ་སྐྲག་པ་རྣམ་པ་གསུམ་ནི་ཐོས་

༡ དེ་དག་ སྡེ།

༢ ཐོག་མ་ཐོས་པའི་ སྣ།

༣ གྱུར་ཏེ་ པེ། སྣ།

༤ བས་ པེ། སྣ།

པ་དང་། སེམས་པ་དང་། བསྒོམ་པའི་དུས་ནའོ་ཞེའོ།། ད་ནི་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་ལ་ཆགས་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་[1]དེ་དག་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ཞེས་ཐོས་པར་འདོད་པ་ལ་ཕན་གདགས་པའི་ཕྱིར་བདག་ཉིད་ཀྱིས་དྲི་བ་སྔོན་དུ་བཏང་ནས་དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དམ་པ་འདི་ནི་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ནི་བྱང་ཆུབ་དང་ཉེ་བའི་རྒྱུ་ཡིན་པ་དང་། འདི་དང་བྲལ་བའི་སྦྱིན་པ་ལ་སོགས་པ་པ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་མཆོག་ཡིན་ནོ།། ང་ཉག་གཅིག་གིས་འདི་དམ་པར་གསུངས་པ་མ་ཡིན་གྱི། སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཀྱང་འདི་དམ་པར་གསུངས་སོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དམ་པ་གང་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།།

འདིས་ནི་སངས་རྒྱས་གཅིག་གིས་གསུངས་པ་ཡང་དོན་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པས་དེ་བཞིན་ཉིད་དུ་གཟུང་ན་གང་སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་གཅིག་ཏུ་དགོངས་པ་ལྟ་སྨོས་ཀྱང་ཅི་དགོས་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། དེས་ན་དམ་པ་ལ་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་བསྒྲུབ་ན་ཇི་ལྟར་ངོ་མཚར་རབ་དང་ལྡན་པར་མི་འགྱུར། དམ་པར་བསྟན་པ་འདིས་[2]ནི་ངོ་ཚ་བའི་གནས་གཉིས་པ་བསྟན་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལྟར་[3]ཆོས་འདི་མཆོག་ཡིན་ན་ཁྱོད་འདི་ལྟར་རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་ལ་ཆགས་ཏེ་བག་མེད་པར་གནས་པ་དེ་ནི་ཤིན་ཏུ་ངོ་ཚ་བར་བྱེད་པའོ་ཞེས་བྱའོ།། འདིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།།

---

[1] ཆགས་པ་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་ སྡེ། ཆགས་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་ཅིའི་ཕྱིར་ སྣར།

[2] འདི་ སྡེ།

[3] དེ་འདི་ལྟར་ པེ།

དེ་ལྟར་ངོ་ཚ་བའི་གནས་བཤད་དུ་ཟིན་ཀྱང་གང་དག་སྡུག་བསྔལ་མི་བཟོད་པས་ཤིན་ཏུ་བརྩོན་འགྲུས་རྩོམ་པར་མི་སྤྲོ་བ་དེ་དག་སྡུག་བསྔལ་མི་བཟོད་པ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཅུ་གསུམ་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་ཡང་རབ་འབྱོར་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་ཇི་ལྟར་བཟོད་པ་དང་། བཟོད་པ་དེ་དག་རྟགས་གང་གིས་ཤེས་པ་དང་། རྣམ་པ་གང་ཡིན་པ་དང་། དེ་རྣམ་པ་ཇི་ལྟ་བུ་དང་། མི་བཟོད་པའི་གཞིའི་གཉེན་པོ་གང་ཡིན་པ་དེ་གནས་འདིས་[༡]སྟོན་ཏེ། ཇི་ལྟར་བཟོད་ཅེ་ན། ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རང་བཞིན་མི་དམིགས་པ་སྟེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་དོ་ཞེས་གསུངས་པ་གང་ཡིན་པ་སྟེ། དོན་དམ་པར་སུ་[༢]བཟོད་པ་དང་། གང་གིས་བཟོད་པ་དང་། གང་ལ་བཟོད་པ་དང་། གང་བཟོད་པར་བྱ་བ་དང་། བཟོད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཐམས་ཅད་མི་དམིགས་པས་དེ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་མེད་པ་ཉིད་དོ།། དོན་དམ་པར་དེ་ལྟར་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་དེ་ཕ་རོལ་ཏུ་འགྲོ་བ་མེད་དོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། འདིས་ནི་བཟོད་པ་དེ་ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱིས་སྐྱེ་བ་མེད་པར་བསྟན་ཏེ། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།།

དེ་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་མི་དམིགས་པར་ཡིད་ལ་བྱེད་པར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་བཟོད་པར་ཅི་མངོན་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཤེས་པར་བྱེད་པའི་གཏན་ཚིགས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་གང་གི་ཚེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཡན་ལག་རྣམས་ནི་ལག་པ་དང་རྐང་པ་[༣]ལ་སོགས་པ་དག་གོ། ཉིང་ལག་རྣམས་ནི་སོར་མོ་ལ་སོགས་པ་དག་གོ།

---

༡ འདི་ སྡེ།

༢ དུ་ སྡེ།

༣ ཡན་ལག་རྣམས་ནི་རྐང་པ་ པེ། སྣར།

ང་ལ་འདུ་ཤེས་ཅི་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གཞན་གྱི་លུས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། མཚོན་ཆར་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གཅོད་པར་འདུ་ཤེས་པ་དང་། གཞན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་དང་། བཟོད་པར་འདུ་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། འདིས་ནི་ཆོས་ཐམས་ཅད་མི་དམིགས་པར་བརྗོད་དོ།།

གལ་ཏེ་འདུ་ཤེས་ཅི་ཡང་མེད་ན་བརྒྱལ་[1]བའི་གནས་སྐབས་བཞིན་དུ་སེམས་པ་མེད་པར་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་ལ། འདུ་ཤེས་མེད་པར་གྱུར་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། དེའི་དུས་ན་རྣལ་འབྱོར་བའི་ཤེས་པ་ཆོས་ཐམས་ཅད་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པ་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་ཡོད་[2]པར་དགོངས་པའོ།། དེའི་ཡང་ཅི་མངོན་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་འདྲི་བ་ལ་བརྟགས་ནས་བདག་ཉིད་ཀྱིས་དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན་ཞེས་བྱ་བ་བཀའ་བསྩལ་ནས། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། གནོད་སེམས་ཀྱི་འདུ་ཤེས་ཀྱང་ཞེས་བྱ་བའི་དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། གང་ལ་བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་ཡོད་པ་དེ་ལ་དེ་ཙམ་གྱིས་ན་ངེས་པར་བདག་ལ་ཆགས་པ་འབྱུང་ངོ་།། དེ་ལྟར་བདག་ལ་ཆགས་པ་དང་ལྡན་ན། གདོན་མི་ཟ་བར་བདག་གི་དང་གཞན་དུ་རྟོག་པ་འབྱུང་སྟེ། འདི་ལྟར་དེས་གང་ཞིག་བདག་ལ་ཕན་འདོགས་པར་བསྩུས་པ་དེ་ལ་ནི་བདག་གིར་རྣམ་པར་རྟོག་ལ། གཞན་ལ་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་རྣམ་པར་རྟོག་གོ། དེའི་ཕྱིར་བདག་གི་དང་མཐུན་པར་འཇུག་གོ། དེའི་ཕྱིར་བདག་དང་བདག་གི་དང་མཐུན་པར་འཇུག་པ་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་དེ་དང་འགལ་བ་ལ་ཞེ་སྡང་སྟེ། དེ་དང་འབྲེལ་བ་ཉེས་པའི་ཚོགས་མཐའ་དག་ཀྱང་འབྱུང་ངོ་།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར།[3]

---

[1] རྒྱལ་ སྡེ།

[2] ངོ་བོ་ཉིད་ཡོད་ པ། སྣ།

[3] སྡེ་བསྟན། ༤༢༡༠ ཚད་མ། "ཅེ" ཚད་མ་གྲུབ་པའི་ལེའུ། ཤོག་ ༢༢༡

བདག་ཡོད་གཞན་དུ་འདུ་ཤེས་ཏེ། །
བདག་གཞན་བྱེད་པས་ཡོངས་[༡]འཛིན་སྤང་། །
འདི་དག་དང་ནི་འབྲེལ་བ་ཡིས། །
ཉེས་པ་ཐམས་ཅད་རབ་ཏུ་འཕེལ། །

ཞེས་བཤད་དོ།། གང་ལ་གནོད་སེམས་ལ་སོགས་པ་ཉེས་པའི་ཚོགས་འབྱུང་བ་དེ་ལ་ང་ཇི་ལྟར་བཟོད་པར་སླ་བར་གྲགས་པར་འགྱུར་ཏེ། གང་གིས་ན་བཟོད་པའི་མཐུས་ཀ་ལིང་ཀའི་རྒྱལ་པོ་དེའི་ཚེ་དེ་ཁོ་ན་སེམས་ཅན་དམྱལ་བར་འགྲོ་བར་འགྱུར་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། འདིས་ནི་གནོད་པ་བྱས་པ་ན་འགྱུར་བ་མེད་པས་གནོད་སེམས་ལ་སོགས་པ་ངེས་པར་འབྱུང་བ་རྣམས་མེད་པའི་ཕྱིར་བདག་ལ་སོགས་པའི་འདུ་ཤེས་དང་བྲལ་བའི་རྟགས་ཀྱིས་བཟོད་པ་དེ་འདྲ་བ་དེ་ཤེས་པར་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

འདི་ཉིད་ཀྱིས་བཟོད་པ་རྣམ་པ་གསུམ་ཡང་བསྟན་ཏེ། འདིར་ཀ་ལིང་ཀའི་རྒྱལ་པོས་[༢]ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གནོད་པར་བྱེད་པ་ལ་མི་བཟོད་[༣]པའི་བཟོད་པ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། ཡན་ལག་དང་ཉིང་ལག་ཅེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྡུག་བསྔལ་དང་དུ་ལེན་པའི་བཟོད་པའོ།། དེའི་ཚེ་ང་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་ཆོས་ལ་ངེས་པར་རྟོག་པའི་བཟོད་པའོ།། འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་ཆོས་དང་གང་ཟག་ཏུ་རྣམ་པར་རྟོག་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཅིང་། འདུལ་བ་རྣམས་དེ་སྤྱང་[༤]བ་དང་། ཇི་སྐད་སྨོས་པའི་བཟོད་པ་བསྐྱེད་པར་ཡང་དག་པར་འཛིན་དུ་

༡ ཡང་ སྡེ།
༢ རྒྱལ་པོ་ སྣ།
༣ མི་མཛེད་ པེ། སྣ།
༤ སྤྱངས་ པེ། སྣ།

འཇུག་པ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་འདིས་ནི་གདུལ་བའི་[1]སྐྱེ་བོ་དག་འདི་སྙམ་དུ་གང་གི་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཉིད་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱིར་བཟོད་པ་མཆོག་འདི་ལྟ་བུ་བསྒོམས་པ་དེ་ནི་[2]བདག་ཅག་གིས་འདི་ཅིའི་ཕྱིར་མི་བསྒོམ་སྙམ། བྱ་དཀའ་བའི་ལས་མ་བྱས་ན་སྙིང་དཀའ་བའི་གོ་འཕང་མི་འཐོབ་བོ་སྙམ་དུ་སེམས་སོ།། དེའི་ཕྱིར་གདུལ་བ་དེ་དག་དེ་ལ་སློབ་པ་བསྐྱེད་པ་ཡིན་ནོ།། ཡན་ལག་དང་ཉིང་ལག་རྣམས་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་སྡུག་བསྔལ་དང་དུ་ལེན་པའི་བཟོད་པ་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་བཟོད་པ་དེ་རྣམ་པ་ཇི་ལྟ་བུ་ཡིན་པ་དེ་བཞིན་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་ངས་མངོན་པར་ཤེས་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། དེ་ཡང་ཀ་ལིང་ཀའི་རྒྱལ་པོས་ངའི་ཡན་ལག་དང་ཉིང་ལག་བཅད་པར་གྱུར་པ་ཞེས་བྱ་བའི་སྐབས་ཡིན་ཏེ། མངོན་པས་མ་གསུངས་སོ།། བཟོད་པ་དེ་ཡང་རྣམ་པ་གཉིས་སུ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ[3]། གཞན་གནོད་པ་བྱེད་པ་རྒྱུན་དུ་སྡུག་བསྔལ་བའི་ཡུལ་ཅན་དང་གཞན་གནོད་པ་བྱེད་པ་མི་བཟོད་པའི་སྡུག་བསྔལ་གྱི་ཡུལ་ཅན་ནོ།། དེ་ལ་རྒྱུན་དུ་སྡུག་བསྔལ་ལ་སོགས་པའི་ཡུལ་ནི་ཚེ་རབས་ལྔ་བརྒྱར་ཞེས་བྱ་བ་[4]གང་ཡིན་པ་སྟེ། འདིས་ནི་འདིའི་རྒྱུ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།། མི་བཟོད་པའི་སྡུག་བསྔལ་ལ་སོགས་པ་ཡུལ་ནི་ཡན་ལག་དང་ཉིང་ལག་རྣམས་ཞེས་གང་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ།།

མི་བཟོད་པའི་གཞི་ནི་སྡུག་བསྔལ་རྣམ་པ་གསུམ་འདི་ལྟ་སྟེ་འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ་དང་སེམས་ཅན་ལོག་པར་འཇུག་པའི་སྡུག་བསྔལ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་དང་

[1] གདུལ་བྱའི་ པེ། སྣ།

[2] དེའི་ཚེ་ པེ། སྣ།

[3] ཏོ་ སྡེ།

[4] ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་པ་ པེ། སྣ།

མི་ལྡན་པའི་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། དེ་ལ་མི་བཟོད་པའི་གཞི་དང་པོའི་གཉེན་པོར་དེ་ལྟ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་མི་བཟོད་པ་སྤངས་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་པ་ཡིན་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ཏུ་སེམས་བསྐྱེད་ན་སུ་ཡང་འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་རེག་པར་མི་འགྱུར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། བརྒྱ་ལ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ལན་འགའ་ཞིག་བསྐྱེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་སྒོ་ནས་སྡུག་བསྔལ་རྣམ་པ་གསུམ་གྱི་འདུ་ཤེས་ཀྱིས་སྐྲག་ནས་ཡང་སྐྱེད་པར་མི་བྱེད་པས་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་སྤངས་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་རྣམ་པ་གསུམ་གྱི་འདུ་ཤེས་ནི་འདིར་འདུ་ཤེས་ཐམས་ཅད་དོ།། གཟུགས་ལ་སོགས་པ་མངོན་པར་ཞེན་པ་ནི་ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་འཁོར་བ་ཡོངས་སུ་བརྟགས་ནས་སྡུག་བསྔལ་དེས་ཡིད་གདུངས་ནས་བརྒྱ་ལམ་ན་ཡང་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་མི་བསྐྱེད་པས་གཟུགས་ལ་མི་གནས་པར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ལ་ཡོད་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་ནི་དེ་ལ་གནས་པ་སྟེ། འདིར་ཡང་སྔ་མ་བཞིན་དུ་བཤད་དོ།། འདིར་ཚིག་ལྷག་པར་ཡང་མི་འགྱུར་ཏེ། འདིས་ནི་མི་བཟོད་པའི་གཞིའི་གཉེན་པོ་བརྗོད་དོ།། སྔ་མས་ནི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བའོ།། འདིར་གདུལ་བ་རྣམས་ཆོས་མེད་པ་ལ་ཡང་མི་གནས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལྷག་མ་ཡིན་ཏེ། འདིས་ནི་མེད་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དགག་[1]གོ། ཅི་ལ་ཡང་མི་གནས་པར་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དག་ལ་མིང་ཙམ་དུ་

---

༡ དག་ པེ། སྣ།

ཡོད་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་དགག[1]སྟེ། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་བསྟན་ཏོ།།

ཅི་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ཡོད་བཞིན་དུ་དེ་ལ་གནས་པ་ལ་ཞེ་སྣང་[2]བའི་ཕྱིར་རམ། འོན་ཏེ་མེད་པ་ཁོ་ན་ལ་ལོག་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡོངས་སུ་སྤང་བའི་དོན་དུ་དགག་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་འདྲི་བ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་གནས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་མི་གནས་པའི་ཕྱིར་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ཁྱོད་ཀྱི་སེམས་ཐོག་མ་མེད་པའི་དུས་ནས་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ལ་དངོས་པོར་མངོན་པར་ཞེན་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ལ་གནས་ཏེ། བདེན་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དངོས་པོ་གང་ཡིན་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དོན་དམ་པར་མི་གནས་པའོ།། དེ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་མཇུག་བསྡུ་བ་འདིས་ནི་འདིར་ཕྱོགས་གཉིས་པ་ལ་གནས་པར་[3]སྟོན་ཏེ། སྦྱིན་པའི་སྐབས་སུ་མ་བཞིན་དུ་འདིར་ཡང་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་དྲུག་ཅར་དུ་བཞེད་དོ།།

མི་བཟོད་པའི་གཞི་གཉིས་པའི་གཉེན་པོར་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་[4]གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་སྲུའི་དོན་དུ་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཤིན་ཏུ་བྱ་དཀའ་བ་[5]ལ་སྦྱོར་བ་རྩོམ་པར་སྤྲོ་ཡང་སེམས་ཅན་དེ་དག་ཀྱང་དོན་དམ་པར་མེད་ལ་སེམས་ཅན་དུ་འདུ་ཤེས་པ་ཡང་

[1] ཞེན་པ་དེ་དག་ པེ། སྣ།

[2] སྣང་ སྡེ།

[3] གནས་པ་ པེ། སྣ།

[4] ཅི་ སྡེ།

[5] ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བྱ་དཀའ་བ་ པེ། སྣ།

དོན་དམ་པར་མེད་ན་དེ་དག་ཇི་ལྟར་སེམས་ཅན་དེ་ལྟ་བུ་དག་ལོག་པར་འཇུག་པས་སྐྱོ་བར་འགྱུར་ཞེས་དེ་སྐད་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། སེམས་ཅན་དང་དེར་འདུ་ཤེས་པ་བཀག་པས་ནི་བདག་མེད་པ་གཉིས་ཀ་བརྗོད་དོ།། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་གྱི་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་འདིར་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། ལྷག་མ་མཐའ་དག་གིས་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་རེ་ཞིག་རིགས་པས་བཟོད་པར་རིགས་སོ་ཞེས་བསྟན་ནས། ད་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཡིད་ཆེས་པས་ཀྱང་རིགས་སོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པར་གསུངས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དང་པོ་ནི་བསྟན་པའོ།། ལྷག་མ་ནི་བཤད་པའོ།། ཡང་ན་བདེན་པ་བཞི་བསྟན་པའོ།།[༡] གོ་རིམས་བཞིན་དུ་སྦྱར་རོ།། ཡང་ན་ཡང་དག་པ་གསུངས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་བསྟན་ཏོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཏན་ཚིགས་བསྟན་པ་སྟེ། འདི་ལྟར་[༢]སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་གཞན་དག་[༣]ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་སྤངས་ཏེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེ་བཞིན་དུ་འདི་ཡང་གཤེགས་ཏེ་བྱོན་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའོ།། དེ་བས་ན་ཡང་དག་པ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་གསུང་བ་སྟེ། ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་སྟོན་པའི་རྒྱུ་སྒྲིབ་པ་མི་མངའ་བས་རྒྱུ་མི་དམིགས་པར་སྒྲུབ་བོ།།

འདི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཁོ་ན་ཡིན་པར་ཇི་ལྟར་འགྲུབ་སྙམ་པ་དང་། བདེན་པ་གསུངས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། བདེན་པ་སྟེ་འཕགས་པའི་བདེན་པ་བཞིའི་མཚན་ཉིད་གསུངས་པའི་ངང་ཚུལ་ཅན་གང་ཡིན་པ་སྟེ། དེས་ན་དེ་

---

༡ བསྟན་པ་སྟེ་ པེ། སྣ།

༢ འདིར་ པེ། སྣ།

༣ བཅོམ་ལྡན་འདས་དག་ སྡེ།

བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བར་ངེས་སོ།། ཤིན་ཏུ་རློལ་བའི་དོན་ནི་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་དག་པར་སྟོན་མི་སྲིད་དེ། ཇི་སྐད་དུ།[༡]

ཐབས་ལས་བྱུང་དང་དེ་ཡི་རྒྱུ། །
ལྐོག་གྱུར་དེ་བཤད་ཤིན་ཏུ་དཀའ། །

ཞེས་བཤད་པ་ལྟ་བུའོ།། འདི་བདེན་པ་གསུང་བ་བདེན་པར་ཇི་ལྟར་ཤེས་སྙམ་པ་ལ་དེ་བཞིན་ཉིད་གསུང་བ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། དེ་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་གསུང་བས་དེ་བཞིན་ཉིད་གསུང་བའོ།། དེ་སྤང་བར་བྱ་བ་དང་བླང་བར་བྱ་བའི་དེ་ཁོ་ན་ཐབས་བཅས་པར་ཇི་ལྟར་གནས་པ་བཞིན་དུ་གསུང་བ་སྟེ། དེ་ཇི་ལྟར་བདེན་པ་གསུང་བར་མི་འགྱུར། དེ་ལྟར་གྱུར་དུ་[༢] ཟིན་ཀྱང་ངེས་བསྟན་པའི་བདེན་པ་བཞི་པོ་དེ་བཞིན་དུ་གནས་པར་ཅི་མངོན་སྙམ་པ་ལ། ལོག་པར་གསུང་བ་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་པའོ།།[༣] གང་གི་ཕྱིར་མ་ལོག་པ་ཚད་མ་དང་ལྡན་པར་གསུང་གི་ཚད་མས་གནོད་པ་མི་གསུང་བ་དེའི་ཕྱིར་བདེན་པའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་འབྲས་བུའི་གཏན་ཚིགས་ཀྱིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཚད་མར་བསྒྲུབས་སོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར།[༤]

སྐྱོབ་ལས་ཡང་དག་བསྟན་མ་ལུས། །
ཁྱད་པར་ཅན་གྱི་མཁྱེན་པ་བསྒྲུབ། །

---

༡ སྡེ་བསྟན། ༤༢༡༠ ཚད་མ། "ཅེ" མངོན་སུམ་གྲུབ་པའི་ལེའུ། ཤོག ༡༣༤

༢ དེ་ལྟར་དུ་ པེ།

༣ གསུངས་སོ། པེ། སྣ།

༤ སྡེ་བསྟན། ༤༢༡༠ ཚད་མ། "ཅེ" ཚད་མ་གྲུབ་པའི་ལེའུ། ཤོག ༢༤༢

ཅེས་བཤད་དོ།། དོན་དམ་པར་དངོས་པོའི་རང་བཞིན་གཅིག་ཀྱང་གྲུབ་པ་མེད་པས། བདེན་པ་གཅིག་ཀྱང་བསྒྲུབ་པར་དཀའ་ན་བདེན་པ་བཞིར་ལྟ་ག་ལ་འགྱུར་ཏེ། བདེན་པ་བཞི་བརྗོད་པས་ཡང་དག་པར་གསུང་བར་འགྱུར།

འདི་ལྟར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཤུང་པོ་ལྔ་ནི་སྒྱུ་མ་ལྟ་བུའོ་ཞེས་གསུངས་ན་དེའི་བདག་ཉིད་སྡུག་བསྔལ་གྱི་བདེན་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། སྡུག་བསྔལ་ཡང་དོན་དམ་པར་བརྟེན་པའི་ཕྱིར་དེ་ཀུན་ཏུ་འབྱུང་[1]བ་དག་འགོག་པ་དག་ཀྱང་མེད་པ་ཁོ་ན་སྟེ། རི་བོང་གི་རྭ་ལ་སོགས་པ་ཤིན་ཏུ་མེད་པ་ལ་ནི་དེ་གཉིས་མི་སྲིད་དོ།། འགོག་པ་མེད་པས་དེར་འགྲོ་བའི་ལམ་ཡང་དོན་དམ་པར་མེད་པ་ཉིད་དེ། བགྲོད་པར་བྱ་བ་མེད་ན་འགྲོ་བ་ཡང་མེད་དོ།། **འདི་སྐད་དུ།** "བྱང་ཆུབ་བཞུགས་[2]ནས་བདེན་པ་གཅིག་གྲུབ་པར་གཟིགས་པ་མེད་ན་བཞིར་ལྟ་ག་ལ་འགྱུར།" ཞེས་བསྟན་པ་ལྟ་བུའོ།།

དེ་ལ་བརྟགས་ནས་གང་དག་ཡང་དག་པར་གསུང་བ་ལ་སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་དག་གི་སྒྲོ་འདོགས་པའི་མཐའ་སྤང་པའི་ཕྱིར་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། བདེན་པ་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་གང་ཡང་གྲུབ་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བརྫུན་པ་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ལ། བརྫུན་པ་ནི་བདེན་པ་རྣམ་པར་གཅོད་པར་གནས་པས་རྣམ་པར་གཅད་པར་བྱ་བ་དེ་མེད་པའི་ཕྱིར་གང་གིས་དེ་བརྫུན་པར་འགྱུར། ཡང་ན་བདེན་པ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཇི་ལྟར་ཤེས་པའི་ངོ་བོ་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་བརྫུན་པའི་ཕྱིར་རོ།། བརྫུན་པ་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་ཙམ་དུ་གནས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

---

[1] ཀུན་བྱུང་ པ། སྣ།

[2] བཞུགས་ པ། སྣ།

མཐའ་གཉིས་བཀག་པ་འདིས་ནི་དབུ་མའི་ལམ་ཉིད་དུ་སྟོན་ཏོ།། ཉན་ཐོས་རྣམས་ཀྱི[༡]་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་སྤང་བའི་ཕྱིར་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་ཙམ་གྱི་ཆ་ཤས་ཀྱིས་བདེན་པ་བཞི་པོ་དག་བསྟན་གྱི། ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཆེད་དུ་མ་ཡིན་པས་འགལ་བ་མེད་དོ།།

ཡང་གང་ལུས་ལ་སོགས་པ[༢]་དམིགས་ཤིང་དེ་དོན་དུ་གཉེར་བའི་ཕྱིར། སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱེད་པ་དང་། གང་ཡང་མི་དམིགས་པས་དོན་དུ་མི་གཉེར་བ་དེ་གཉིས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ཅི་འདྲ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་མི་བཟོད་པའི་གཞི་གསུམ་པའི་གཉེན་པོ་འདི་ལྟ་སྟེ། དཔེར་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། གང་ལུས་དང་སྲིད་པ་དང་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཀྱི་དངོས་པོ་ལ་བདེ་བ[༣]་ཁོ་ནར་མངོན་པར་ཞེན་ཏེ། དེ་དོན་དུ་གཉེར་བ་དེར་ལྷུང་བའི་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་སྐྱེས་བུ་མུན་པར་ཞུགས་པ་བཞིན་ཏེ། མིག་ཡོད་དུ་ཟིན་ཀྱང་དངོས་པོའི་དོན་མི་དམིགས་པས་སྤང་བར་བྱ་བ་དང་བླང་བར་བྱ་བའི་དོན་མི་ཤེས་པས། ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་དངོས་པོ་སྡུག་བསྔལ་མཐའ་དག་གི་གནས་སུ་ལྷུང་ངོ་།། དེས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ལོངས་སྤྱོད་ཆེན་པོའི་བདེ་བ་ལས་ཡོངས་སུ་ཉམས་པར་འགྱུར་རོ།། དེ་དང་མི་ལྡན་པས་ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་ཉེན་པས་བྱང་ཆུབ་ལས་ལོག་གོ།

གང་དངོས་པོར་མ་ལྷུང་བར་སྦྱིན་པ་སྦྱིན་པར་བྱེད་དོ།། ལུས་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་ལ་མི་དམིགས་ཤིང་དེ་དོན་དུ་མི་གཉེར་བར་སྦྱིན་པར་བྱེད་པ[༤]་དེ་ནི་

༡ ཀྱིས་ པེ། སྣ།

༢ པར་ པེ། སྣ།

༣ དངོས་པོ་ལ་བདེན་པ་ པེ། སྣ།

༤ སྦྱིན་པར་མི་བྱེད་པ་ སྣེ།

དཔེར་ན་སྐྱེས་བུ་མིག་དང་ལྡན་པས་གཟུགས་སྣ་ཚོགས་དག་ཡོད་པའི་ཕྱིར་མཐོང་ལ།
མཐོང་ནས་ཀྱང་སྤང་བར་བྱ་བ་ནི་ཡོངས་སུ་སྤོང་། སླང་བར་བྱ་བ་ནི་ལེན་པ་
བཞིན་ནོ།། དེ་ཡང་ཉི་མ་མ་ཤར་ན་[༡]བརྒྱ་ལ་མི་མཐོང་བར་འགྱུར་རོ་སྙམ་པ་ལ་
ཉི་མ་ཤར་ནས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཉི་མ་ཤར་དུ་ཟིན་ཀྱང་གལ་ཏེ་ན་ཕྲིམ་
ལ་སོགས་པ་ཀུན་མུན་པ་ཅན་དག་ན་མི་མཐོང་ངོ་སྙམ་པ་ལ་ནམ་ལངས་ཏེ་ཞེས་བྱ་
བ་གསུངས་སོ།། ནམ་ལངས་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲ་ནི་མུན་པར་བསྟན་ཏེ། དེས་ན་
མུན་པ་མེད་པའི་ཕྱོགས་ན་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

དེ་དག་ཚོགས་ཟིན་ཀྱང་ལོང་བ་གང་ཡིན་པ་དེས་བརྒྱ་ལམ་ན་ཡང་མི་
མཐོང་ངོ་སྙམ་དུ་དོགས་ནས་མིག་དང་ལྡན་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལྟ་བུར་
ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དངོས་པོར་མ་ལྷུང་བར་བལྟ་བར་བྱའོ།། དེ་ནི་མ་རིག་
པའི་མུན་པ་ནམ་ལངས་ཤིང་། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཉི་མ་ཤར་ནས་ཤེས་བྱ་རྣམ་པ་སྣ་
ཚོགས་ཡང་དག་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་མཐོང་སྟེ། ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་དངོས་པོ་སྡུག་
བསྔལ་མཐའ་དག་གི་གནས་སྡུག་བསྔལ་སྤང་བར་བྱ་བ་ཡང་བརྟེན་པ་ཡིན་པས་
ཡོངས་སུ་སྤོང་། བདེ་བ་མཐའ་དག་གི་གནས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་
པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ཡང་དག་པའི་གོ་འཕང་སླང་བར་བྱ་བ་ཡང་འདོད་པ་དེ་
དེ་ལ་འཇུག་པར་རྩོམ་མོ།།

དེས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ལོངས་སྤྱོད་ཆེ་བ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་
པ་རྙེད་ནས། བླ་ན་མེད་པའི་བདེ་བས་ལུས་བརྟན་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ལས་ཕྱིར་
མི་ལྡོག་པར་དགོངས་པའོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ལྡོག་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། སྔར་ནི་
དམིགས་པ་ཙམ་གྱིས་དེ་ལ་གནས་པ་ཞེས་བསྟན། འདིར་ནི་དམིགས་པ་སྟོན་དུ་

---

[༡] ཉི་མ་ཤར་ན་ སྡེ།

བཏང་[༡]བས་དེ་ལ་ཆགས་པའི་མཚན་ཉིད་དུ་ལྷུང་བའོ།། དེའི་ཕྱིར་འདིར་ནི་ལྷུང་བ་སྨོས་སོ།། སྦྲ་མར་ནི་གནས་པ་སྨོས་སོ།། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་རྣམ་པ་འདིས་བཟློད་པ་ལ་བཙུད་ཀྱང་གང་དག་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱོང་བར་བྱེད་ཅིང་། དེ་ཉིད་ལ་ཆགས་ནས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་ཡོངས་སུ་བཀང་[༢]བའི་རྒྱུ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་ལ་མི་བརྩོན་པ་དེ་དག་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་དང་མི་ལྡན་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཙུ་བཞི་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། གནས་འདིས་ནི་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར། རྣམ་པ་ལྷུས་དམ་པའི་ཆོས་ལ་བརྩོན་པར་བྱ་བའི་ཡོན་ཏན་གྱི་ཁྱད་པར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དགོངས་པ་དང་བསོད་ནམས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ཡོངས་སུ་སྨྲུད་པ་དང་། ཆོས་དང་། དེ་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལ་བསྙོད་པ་[༣]དང་། ལྷ་ལ་སོགས་པས་རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་དང་། སྡིག་པ་ཡོངས་སུ་བྱང་བར་འགྱུར་བའོ།།

དེ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དགོངས་པ་ནི་དེ་དག་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མཁྱེན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་གང་ཡིན་པའོ།། ལེན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཚིག་རྣམས་ཀྱི་བཤད་པ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་ནོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ཡིན་པའི་[༤]ཕྱིར་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་དང་། གཟིགས་པ་ཡིན། དེ་ལ་དེ་དག་ལ་ཡ་མཚན་ཆེ་བ་ཅི་ཡོད་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་བསོད

---

༡ གཏོང་ པེ། སྣ།

༢ བསྐང་ པེ། སྣ།

༣ སྟོན་པ་ སྡེ།

༤ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་ པེ། སྣ།

ནམས་ཡོངས་སུ་སྡུད་པའི་ཁྱད་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་པས་དེ་དག་བསྐལ་བ་ཡོད་པར་མཁྱེན་ཏོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

དེའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོའི་ཁྱད་པར་ཅི་ཞིག་ཡོད་པ་[1]གང་གིས་ན་ཚད་མེད་པར་འགྱུར་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས། བསོད་ནམས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ཡོངས་སུ་སྡུད་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་རབ་འབྱོར་སྐྱེས་པའམ་བུད་མེད་གང་ཞིག་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

ཉི་མ་དང་། འོད་དང་། ས་དང་ཆུ་ལ་སོགས་པའི་གནས་སྐབས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་ནི་སྔ་དྲོ་སྟེ། དེ་ལྟར་གྱུར་པའི་གནས་སྐབས་[2]ཀྱི་བྱེ་བྲག་གི་ན་ལ་དུས་ཞེས་བརྟགས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་ཅན་ལ་སོགས་པས་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་ལྟ་བུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། དུས་ཀྱི་སྒྲ་དང་དེ་ནི་གཞི་མཐུན་པས་བྱེ་བྲག་ཏུ་བྱས་སོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དེ་གཅིག་པུའི་ངོ་བོ་ཡིན་པས་འདི་ནི་སྔ་དྲོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་པར་དབྱེ་བ་མེད་པར་འགྱུར་རོ།། གཞན་གྱི་བྱེ་བྲག་གིས་རྣམ་པར་དབྱེ་བར་ཁས་ལེན་ན་བྱེ་བྲག་དེ་ཉིད་ཉི་མ་ལ་སོགས་པའི་གནས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་སྔ་དྲོ་ལ་སོགས་པར་ཐ་སྙད་གདགས་པའི་རྒྱུ་ཡིན་ན། ཅུང་ཟད་ཀྱང་མི་བྱེད་ལ་མཐུ་མ་མཐོང་བའི་དུས་བརྟགས་ཏེ་ཅི་ཞིག་བྱ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། དེ་བློ་བུལ་བ་དང་། སྨྱུར་བ་ལ་སོགས་པའི་རྟགས་ཅན་དུ་ཡང་རིགས་པ་མ་ཡིན་ཏེ། བློ་བུལ་བ་ལ་སོགས་པ་དེ་དག་དེའི་རྒྱུ་ལས་བྱུང་དུས་[3]རིམ་གྱིས་འབྱུང་བ་དང་འགལ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ནི་

---

1 ཡོད་ན་ པ། སྣ།

2 གནས་རྣམས་ སྣ།

3 དུས། ཞེས་ཡིན་དགོས་པ་འདྲ་འོན་ཀྱང་སྡེ་དགེ་དཔར་མར་ "དུ" ཞེས་འདུག

སྔར་བསྟན་པ་ཉིད་དོ།། གནོད་པ་ཅན་གྱི་ཚད་མ་ནི་བདག་སྲུན་དབྱུང་བའི་སྐབས་སུ་སྔར་བསྟན་པས་མང་དུ་མི་དགོས་སོ།།

དེ་ལ་རང་དགའ་བས་བསྐྱེད་པའི་བརྡའི་དབང་གིས་སྲོག་ཆགས་ལ་སོགས་པའི་གནས་སྐབས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་དུས་ཞེས་ཐ་སྙད་བཏགས་ཀྱི་སྒྲ་དང་དོན་དུ་འབྲེལ་བ་བརྟགས་པའི་དབང་གིས་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཚེ་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲས་བྱེ་བྲག་ཏུ་བྱས་སོ།། གང་ཡང་རུང་བ་ཞིག་སྨོས་ན་ནི་ཇི་སྐད་བསྟན་པའི་འདོད་པ་བསྟན་པར་མི་འགྱུར་བས་ཚིག་གསུམ་ཆར་སྨོས་སོ།། བརྡའི་ཡུལ་ཡིན་པའི་ཕྱིར། བརྡའི་སྒྲར་སྒྲ་བཏགས་ནས་གཞི་མཐུན་པར་བྱས་སོ།། འདིར་ནི་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་འདི་བརྗོད་ལ། སྔ་མ་ལ་ནི་སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དང་། དུས་ཀྱི་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་མ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཟློས་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

དེ་ཉིད་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་གྲངས[༡]མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་ཅེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་རྒྱུ་ཆེ་བ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། གྲངས་དང་རྫས་དང་དུས་ཀྱི་བྱེ་བྲག[༣]ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་སྦྱིན་པ་ལས་བྱུང་བའི་བསོད་ནམས་ཟིལ་གྱིས་གནོན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་ལྟར་གང་གཱའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གྲངས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་བསྟན་པའོ།། ལུང་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཏིང་དཔག་དཀའ་བ་སྟེ་རྫས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་གོ། བསྐལ་པ་བྱེ་བ་ཁྲག་ཁྲིག་འབུམ་ཕྲག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དུས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་གོ། བསྐལ་པ་བྱེ་བ་དེ་ཡང་ཁྲག་ཁྲིག་གོ། དེ་ཡང་འབུམ་ཞེས་ཚིག་སྦྱར་རོ།།

དེ་ཇི་ལྟར་ཤེས་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ། ཆོས་ལ་བསྔོད་པའི་ཁྱད་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་

---

༡ གྲང་ སྣེ།

༣ བྱེ་བྲག་གིས་ པེ། སྣ།

གྲངས་འདི་ནི་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་ཅེས་བྱ་བ་ཤིན་ཏུ་ཟབ་པ་ཆོས་ཐམས་ཅད་རང་བཞིན་མེད་པའི་མཚན་ཉིད། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པར་བྱ་བ་ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པ་གཞན་དག་གིས་བསམ་པར་མི་ནུས་པ་འདིར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ།། མཚུངས་པ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་གཞན་དུ་ནི་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་མ་བསྟན་པས། འདི་དང་མཚུངས་པའམ། ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་མཉམ་པ་དང་ལྷག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར། རྒྱུ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་ལས་འབྲས་བུ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་ཉིད་འབྱུང་ངོ་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། ཇི་ལྟར་མཚུངས་པ་མེད་སྙམ་པ་ལ་ཐེག་པ་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཤིན་ཏུ་ཕ་རོལ་ཏུ་[༡]ཕྱིན་པ་ནི་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་སྟེ། ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཐེག་པ་མཆོག་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མཆོག་རྣམས་ཀྱི་ཐེག་པ་ཡིན་ནམ།[༢] དེ་ཐེག་པ་ཡང་ཡིན་ལ་མཆོག་ཀྱང་ཡིན་ནོ་ཞེས་ཚིག་རྣམ་པར་སྦྱར་ཏེ། གང་དག་དེར་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་དེ་དག་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱ་བའོ།། དེ་བཞིན་དུ་ཐེག་པ་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཡང་མཐུན་[༣]ཏེ། དེ་གཉིས་ནི་རྣམ་གྲངས་སུ་གཏོགས་པའོ།། རྣམ་གྲངས་བསྟན་པའི་དགོངས་པ་ནི་གདུལ་བའི་སྐྱེ་བོ་ལ་ཕན་གདགས་པ་སྟེ། ལ་ལ་གང་གིས་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།།

གཞན་དག་ན་རེ་འདི་ལས་གཞན་པའི་ཐེག་པ་ལ་ལྷོས་ནས་མཆོག་གོ། ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་[༤]དག་པས་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་

[༡] ཤིན་ཏུ་རབ་ཏུ་ པེ།

[༢] ཐེག་པ་མཆོག་རྣམས་ཀྱི་ཐེག་པ་ཡིན་པའམ་ པེ། སྣ།

[༣] ཞེས་བྱ་བ་དོན་མཐུན་ སྣ།

[༤] སྒྲིབ་པ་རྣམ་པར་ པེ།

པའོ་ཞེའོ།། ཡང་ན་མཆོག་ནི་དམ་པའོ།། རང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་[1]ཉན་ཐོས་ཀྱི་ཐེག་པ་ལ་ལྟོས་ནས་དམ་པ་ཡོད་སྟམ་པ་ལ་ཐེག་པ་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཤིན་ཏུ་རབ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ནི་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་བ[2]སྟེ། ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པའི་ཐེག་པ་མང་པོ་དག་གི་ནང་ན་འདི་ཤིན་ཏུ་རབ་ཏུ་ཕྱིན་པས་འདིར་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲ་སྦྱོར་ཏེ། དེ་ནི་ཐེག་པ་ཆེན་པོ་ཉིད་དོ།། ཉན་ཐོས་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ནི་ཆོས་བསྟན་པ་འདི་ལྟ་བུའི་སྣོད་མ་ཡིན་པ་དེའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་ཆེད་དུ་གསུངས་སོ།། དེས་ན་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལ་མཚུངས་པ་མེད་ཅེས་བསྔགས་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཞན་གྱི་ཡུལ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་ཇི་སྐད་བཤད་པའི་དོན་རྣམས་རབ་ཏུ་བསྔགས་ནས་མཇུག་བསྡུ་བར་བྱེད་ཅིང་དེ་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ལ་བསྐྱེད་པའི་ཁྱད་པར་སྟོན་ཏོ།།

གང་གི་ཕྱིར་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་ཅིང་གཞལ་དུ་མེད་པ་དེའི་ཕྱིར། དེའི་རྣམ་པར་སྨིན་པ་ཡང་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་སྟེ། དེས་ན་གང་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གྲུབ་པ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དཔག་ཏུ་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྟན་པའོ།། ལྷག་མ་ནི་བཤད་པའོ།། དེ་ལ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསམ་པའི་ཡུལ་ལས་འདས་པའི་ཕྱིར། རྗེས་སུ་དཔག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་སྟོན་ཏོ།། མཚུངས་པ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཟླ་མེད་པའོ།། གཞལ་དུ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་བསྒོམས་ཀྱང་གཞལ་དུ་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཚད་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཡུལ་

---

[1] ཐེག་པ་ཡང་ པེ།

[2] ཞེས་བྱ་ པེ། སྣ།

ཆེན་པོ་ལ་སོགས་པས་ཀྱང་ཚད་དུ་མི་རུང་བས་ནམ་མཁའ་བས་ཀྱང་ལྷག་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཡང་ན་འདི་དང་ཐམས་ཅད་ནི་རྣམ་གྲངས་སུ་གདགས་པའོ།། སེམས་ཅན་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ངའི་བྱང་ཆུབ་ཕྲག་པར་ཐོགས་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཁུར་ཁྲིར་བས་ཕྲག་ལ་ཁྲིར་བ[༡]དང་འདྲའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་བསམ་གཏན་གྱི་བདེ་བའི་རོ་མྱང་བ་ཡོངས་སུ་བཏང་སྟེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་བསྐྱང་བའི་རྒྱུ་ཆོས་ཡོངས་སུ་གཟུང་བ་ལ་སོགས་པ་འདི་ཉིད་[༢]ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

ཅིའི་ཕྱིར་ཐེག་པ་མཆོག་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་ཀྱི་གཞན་དག་ལ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།[༣] ཅི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་ཡང་ཞེ་སྡང་དང་འདོད་པ་མངའ་འམ་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་དམན་པ་ལ་མོས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་བུ་གཅིག་པ་བཞིན་དུ་བྱམས་པའི་ཕྱིར་ཞེ་སྡང་དང་འདོད་པ་མི་མངའ་མོད་ཀྱི་འོན་ཀྱང་གང་དག་གི་[༤]ཚེ་སྣོད་དུ་གྱུར་པ་དེ་དག་ལ་དེའི་ཚེ་སྟོན་ཏེ་གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟར་མ་ཡིན་ན་ཐབས་མི་མཁྱེན་པས་[༥]བཅོམ་ལྡན་འདས་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་མ་ཡིན་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར་རོ་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། དམན་པ་ལ་མོས་པ་[༦]རྣམས་

---

༡ ཁྲུར་བ་ སྣེ།

༢ སོགས་པ་ཉིད་ སྣེ།

༣ མ་ཡིན་ པེ། སྣར།

༤ གང་དག་གང་གི་ པེ།

༥ དེ་ལྟར་མ་ཡིན་ན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ སྣེ།

༦ དམན་པ་ལ་སོགས་པ་ སྣེ།

ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱིས་སོ།། བདག་ལ་སོགས་པར་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཕྱི་རོལ་པ་རྣམས་ཀྱིས་སོ།། དེ་ནི་གནས་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དེ་གོ་སྐབས་མེད་ཅེས་བྱ་བའོ།།

གང་ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་མཉན་པར་མི་ནུས་པ་དེ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས་ནུས་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། གང་དེ་དག་གི་མཉན་པར་མི་ནུས་པ་དེ་ སླང་བ་དང་ཀུན་ཆུབ་པར་བྱ་བར་ཇི་ལྟར་ནུས་ཏེ་མི་སྲིད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ལ་འཛུད་དོ།།

གལ་ཏེ་དེ་ལྟར་ན་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ཇི་ལྟར་མཉན་པར་ནུས་ཤེ་[1]ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་[2]བྱིན་གྱི་རླབས་ཀྱིས་ཏེ་ཉེས་པ་མེད་དོ།། ས་ཐམས་ཅད་ལས་གང་དུ་མདོ་འདི་བཤད་པའི་ས་ཕྱོགས་གཅིག་པུ་[3]བསྡུགས་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་བསྟན་པར་ལྟ་ལ་སོགས་པ་རིམ་གྲོ་བྱེད་པའི་ཁྱད་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

སྔར་ནི་ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་ལ། ད་ནི་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པས་ཚིག་ཟློས་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། ཐམས་ཅད་[4]བསྡུས་པའི་དོན་བརྗོད་པ་ཁོ་ནས་སྐབས་ཐ་དད་པར་བརྗོད་པའི་ཕྱིར་ཟློས་པར་མི་འགྱུར་བར་ཤེས་པར་བྱའོ།། མཆོད་པར་འོས་པར་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གདུགས་དང་། རྒྱལ་མཚན་དང་། བ་དན་ལ་སོགས་པས་སོ།། ཕྱག་བྱ་བར་འོས་པ་ནི་འདུད་པར་བྱ་བའོ།། བསྐོར་

---

[1] ཞེ་ པེ། སྣ།

[2] ཀྱིས་ པེ། སྣ།

[3] གཅིག་དུ་ པེ། སྣ།

[4] ཐམས་ཅད་དུ་ པེ། སྣ།

བ་བྱ་བར་འོས་པ་ནི་བསྐོར་བར་བྱ་བའོ།། དེའི་ཕྱིར་མཆོད་པར་འོས་པ་ལ་སོགས་པའི་ཆོས་དང་ལྡན་པས་མཆོད་རྟེན་ནོ།།

གལ་ཏེ་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་འདྲ་བ་འདི་ལ་རབ་ཏུ་བརྩོན་པ་དག་ལས་ཀྱང་ལ་ལ་མནར་བར་འགྱུར་བར་ཇི་ལྟར་སྣང་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་སྡིག་པ་ཡོངས་སུ་འབྱུང་བའི་ཁྱད་པར་བསྟན[༡]པའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་དག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། མནར་བར་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྨྲོ་བ་དང་། མཚང་[༢]འབྲུ་བ་ལ་སོགས་པས་གནོད་པར་བྱེད་པའོ།།[༣] ཡོངས་སུ་མནར་བར་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གསད་པ་དང་བཅིང་བ་ལ་སོགས་པས་གནོད་པར་བྱེད་པའོ།།

བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་དེ་ལྟ་བུ་དག་ལ་ཇི་ལྟར་མནར་བར་འགྱུར་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་འདི་ལྟར་སེམས་ཅན་དེ་དག་གི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཚེ་རབས་སྔ་མའི་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚེ་རབས་སྔ་མ་ལ་བྱས་པ་དག་གོ། ཚེ་འདི་ཉིད་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ད་ལྟར་བྱུང་བའི་ཚེ་ལའོ།། སངས་རྒྱས་ཀྱི་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྡིག་པ་ཡོངས་སུ་བྱང་ནས་དུས་གཞན་ན་བསྒོམ་པ་ལ་བརྩོན་པ་དག་མྱུར་དུ་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱ་བར་འགྱུར་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

དེ་ཉིད་གཞི་དེ་ལས་བསོད་ནམས་ཆེས་མང་དུ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་བསྐྱེད་དོ་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ་ལ། རྣམ་པ་གང་གིས་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ

༡ བརྟེན་ སྡེ།

༢ འཚང་ སྣ།

༣ བྱས་པའོ་ པེ། སྣ།

མེད་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་[༡]རབ་འབྱོར་ངས་མངོན་པར་ཤེས་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདིར་ནི་མཐུ་[༢]དང་། མང་བས་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པར་བསྟན་ཏེ། དེ་ལ་རབ་འབྱོར་མངོན་པར་ཤེས་ཏེ་འདས་པའི་དུས་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པའི་ཡང་ཆེས་གྲངས་མེད་པ་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་མཐུ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ནི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དེའི་མཐུ་སྟེ། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཆེས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པ་འདི་སྟེད་ཀྱང་ཟིལ་གྱིས་གནོན་པའི་ཕྱིར་རོ།། མར་མེ་མཛད་ནས་བཟུང་སྟེ་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པའི་བར་དུ་སྟེ། བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པ་ནི་གྲངས་ཟད་པའི་ཕྱིར་རོ།། མར་མེ་མཛད་ཀྱི་ཕ་རོལ་གྱི་ཡང་ཆེས་ཕ་རོལ་ན་[༣]སངས་རྒྱས་བྱེ་བ་ཁྲག་ཁྲིག་འབུམ་ཕྲག་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་གང་དག་བྱུང་བ་ངས་མཉེས་པར་བྱས་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྙེན་པས་མཆོད་པས་མཆོད་པའོ།། ཐུགས་བྱུང་བར་མ་བྱས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བར་སྐབས་སུ་ཡང་བསྙེན་པ་[༤]དེ་མ་བཏང་བའི་ཕྱིར་རོ།། གང་ཡིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བྱེད་པའི་བྱེ་བྲག་གོ།

དེས་ན་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། མཉེས་པར་བྱེད་པ་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པ་དང་། ལེན་པ་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དད་པ་ལ་སོགས་པ་དང་། དེས་བསྐྱེད་པའི་བག་ཆགས་ཀྱི་ངོ་བོའི་ཕུང་པོ་འདི་གཉིས་ལས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྔ་མས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཕྱི་མ་འདིའི་བརྒྱའི་ཆར་

---

[༡] སྙམ་མམ་ སྡེ།

[༢] འདིར་མཐུ་ པེ། སྣ།

[༣] འགྲེལ་པར་''སྔ་རོལ་གྱི་ཡང་ཆེས་སྔ་རོལ་ན་''ཞེས་སྣང་ཡང་གོང་དུ་མདོར་གསལ་བ་ལྟར་བཀོད།

[༤] སྙེན་པ་ པེ། སྣ།

ཡང་མི་ཕོད་ཅེས་བྱ་བའོ།། འདི་སྟེད་པས་ཀྱང་ཉུང་བ་[༡]བསྟན་པའི་ཕྱིར་སྟོང་གི་ཆ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། གྲངས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཚུངས་པ་དེ་དག་ཁོ་ན་ལ་རིགས་པ་སྟེ།[༢] དཔེར་ན་གངས་ཅན་དང་གཉིས་པ་ནི་འབིགས་བྱེད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཡུངས་དཀར་ནི་མ་ཡིན་པ་བཞིན་ནོ།། ཆ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཆ་ཤས་སོ།། དེ་ཡང་རིགས་འདྲ་བའི་ངོ་བོ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་རི་རབ་རྣམས་ཀྱི་ཆ་ནི་རིའི་རྡུལ་ཕྲ་མོ་ཡིན་གྱི་རྫའི་རྡུལ་ཕྲ་མོ་ནི་མ་ཡིན་པ་བཞིན་ནོ།། བགྲང་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེ་ཡང་མཚུངས་པ་དག་ཁོ་ན་ལ་ཡིན་ཏེ། དཔེར་ན་ལྷུན་པོ་ཡང་རི་ཡིན་ལ། གངས་ཅན་ཡང་རི་ཡིན་ནོ་ཞེས་བའི་ཡུངས་ཀར་ཡིན་ཞེས་མི་བྱ་བ་བཞིན་ནོ།། དཔེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔེ་ཡང་འདྲ་བ་ཁོ་ན་ཡིན་[༣]ཏེ། དཔེར་ན་བ་མིན་ལ་བ་ལང་དང་འདྲའོ་ཞེས་བྱའི་སྦྲང་མ་ལ་ནི་མི་བྱ་བ་བཞིན་ནོ།། རྒྱུ་ཡང་ཡོངས་སུ་སྦྱོང་བ་[༤]བྱས་པའི་དབང་གིས་ན་དེའི་བྱ་བ་བྱེད་པར་འགྱུར་ཏེ། དཔེར་ན་ཟེར་བ་རྣོན་པོར་བྱས་ན་རལ་གྲི་ལ་བྱ་བ་བྱེད་པ་བཞིན་ནོ་སྙམ་པ་ལ། རྒྱུ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། གླིབ་ཅིང་ཞིང་ཆེར་བྱ་བའི་ཐབས་ཉིད་དོ།། རྣོན་པོར་བྱས་ཀྱང་ཏ་ཅང་ཆུང་བས་མི་བཟོད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྒྱུར་ཡང་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་ཏེ། དེའི་རྒྱུའི་དངོས་པོ་ཡང་མི་བཟོད་པའོ།།

འདི་དག་ནི་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་བཀའ་ཁོ་ན་ལས་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། དབང་པོའི་ཡུལ་ལས་འདས་པའི་དོན་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་ལ་ནི། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་བཀའ་ཁོ་ན་ཚད་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། གཞན་ཡང་ཡོངས་སུ་དག་

---

[༡] བར་ པེ། སྣ།

[༢] མཚུངས་པ་དག་ཁོ་ན་ལ་རིགས་སྟེ་ པེ། སྣ།

[༣] ཡིན་ པེ། སྣ།

[༤] ཡོངས་སུ་སྦྱད་པ་ སྡེ། ཡོངས་སུ་སྦྱང་བ་ པེ།

པའི་དུས་ན་ནི། དེའི་ཆེ་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀུང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཡིན་པས་ངོ་མཚར་མི་ཆེའི་ཡོངས་སུ་མ་དག་པའི་དུས་ན་སེམས་ཅན་དག་སྐད་ཅིག་ཙམ་བསམ་པ་ཡོངས་སུ་དག་པར་གྱུར་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ངོ་མཚར་ཏོ།། དེ་ལྟར་རེ་ཞིག་མཐུའི་སྒོ་ནས་དཔག་ཏུ་མེད་པར་བསྟན་ཏོ།། གྲངས་ཀྱིས་ཇི་ལྟར་གྲངས་མེད་སྙམ་པ་ལ་[༡]རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་དེའི་ཆེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེས་ནི་རབ་ཏུ་མང་བར་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། བསོད་ནམས་དེ་བགྲང་བས་ཀུང་སྨྲིད་ལུག་ནས་མགོ་རྨོངས་པར་འགྱུར་བའི་སེམས་ཀྱི་ནད་ཀྱི་བྲེ་བྲག་སྨྱོ་སྨྱོ་པོར་འགྱུར་རོ།། དེའི་འོག་ཏུ་སྨྲོ་བ་ལས་བྱུང་བ་སེམས་འཁྲུགས་པར་འགྱུར་རོ།། འདིས་ནི་ཟབ་པ་དང་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།།

འདི་ལྟར་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ལས་གྲངས་དང་མཐུར་ལྡན་པའི་འབྲས་བུ་འདི་ལྟ་བུར་འགྱུར་བ་ཇི་ལྟར་ཤེས་སྙམ་པ་ལ་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཐམས་ཅད་དུ་ཡང་འབྲས་བུ་ནི་རྒྱུ་དང་མཐུན་པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་རོ།། ཤིང་ནྱགྲོདྷ་ལ་སོགས་པ་ཆུང་ཡང་ཤིན་ཏུ་སྙིང་པོ་དང་ལྡན་པས་ཡལ་ག་དང་ལོ་མ་དང་ཤིང་ཞེས་བྱ་བའི་འབྲས་བུ་ཆེན་པོར་གྱུར་པ་ཡང་མི་དམིགས་སོ།། ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་འདི་ཡང་ལེའུ་ཉུང་དུ་ཟིན་ཀུང་ཤིན་ཏུ་ཟབ་སྟེ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པའི་ཆོས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པོ།། དེས་ན་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ་འདི་ལས་རྒྱུ་དང་རྐྱེན་མཐུན་པའི་[༢]འབྲས་བུ་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པར་འགྱུར་ཏེ། རྒྱུ་རྐྱེན་རྣམས་ཀྱི་མཐུ་ནི་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ཉིད་[༣]ཡིན་པས་བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིར་རྣམ་པར་སྨིན་པའི་སྒྲ་ནི་

---

༡ སྙམ་པ་ཡིན་པ་ལ་ སྡེ།

༢ རྒྱུ་དང་མཐུན་པའི་ པེ། སྣ།

༣ ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ པེ། སྣ།

འབྲས་བུ་ཙམ་ལ་བྱ་སྟེ། དེས་ན་རྒྱུ་མཐུན་པའི་འབྲས་བུ་ལ་སོགས་པ་ཡང་བསྡུ་བར་འགྱུར་རོ།། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བསྟན་ཏོ།།

དེ་ལྟར་བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་བསལ་དུ་ཟིན་ཀྱང་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་དང་[༡]ཉེ་བ་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་དག་བདག་ཉིད་ཁྱད་པར་མཐོང་[༢]ནས་བདག་ནི་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ལམ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་ཀྱིས་བདག་གིས་སེམས་ཅན་རྣམས་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་བཟླ་བར་བྱའོ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེ་དག་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་དབྲལ་ཞིང་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་དེ་ན་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དང་། བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གནས་བཅོ་ལྔ་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་[༣]ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།། གནས་པ་ལ་སོགས་པ་གསུམ་བསྟན་པ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྔར་གསུངས་པ་ཉིད་དོ།། རབ་འབྱོར་གང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིར་ལྷག་པ་འདིས་ནི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་དང་བྲལ་བར་བྱེད་དོ།། ལྷག་མ་རྣམས་ཀྱི་བཤད་པ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་ནོ།།

ཇི་སྐད་དུ་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་འདི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྔར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་བཤད་ན། དེ་བཤད་ཟིན་བཞིན་དུ་[༤]ཡང་ཕྱིས་མངོན་

---

༡ མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དང་ པེ། སྣ།

༢ ཁྱད་པར་ཐོབ་པར་ པེ། སྣ།

༣ ཇི་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ པེ། སྣ།

༤ དེབཤད་ཟིན་དུ་ པེ།

པར་རྟོགས་པའི་དུས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་འབྱུང་བར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། གང་གི་ཕྱིར་དེ་བསལ་[༡]བའི་ཕྱིར་བསྟན་ཟིན་པ་ཡང་ཡང་སྟོན་པར་བྱེད། འོན་ཏེ་དེ་ལྟར་བསྟན་ཀྱང་ཀུན་ཏུ་རྨོངས་པར་འགྱུར་ན་ནི་དེ་ལྟ་ན་གོང་དུ་[༢]བཤད་པ་ཐུག་པ་མེད་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་སྨྲས་པ། དེ་ལྟར་བསྟན་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཐོག་མ་མེད་པའི་དུས་ནས་ཤིན་ཏུ་བརྟན་པོར་བདག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་ཁ་ཅིག་གི་ཀུན་ཏུ་རྨོངས་པ་འཕྲལ་དུ་མི་ལྡོག་པས་བསྟན་ཟིན་པའི་དོན་ཀྱང་ཡང་སྟོན་ཏོ།[༣] ཡང་བསྟན་པ་ཉིད་ཀྱིས། དེའི་དུས་ན་འཁོར་རྣམས་ཀྱི་ཀུན་ཏུ་རྨོངས་པ་ལྡོག་པའི་ཕྱིར་ཐུག་པ་མེད་པར་མི་འགྱུར་རོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་སྟོན་པར་མཛད་པའི་འབྲས་བུ་[༤]གདུལ་བའི་སྐྱེ་བོ་ཀུན་ཏུ་རྨོངས་པ་ལས་བཟློག་པ་སྟེ། འབྲས་བུ་མེད་པ་མ་ཡིན་ནོ།། དེས་ན་ཀུན་ཏུ་རྨོངས་པ་ལོག་ན་འབྲས་བུ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཡང་མི་འཇུག་པས་འདི་ནི་ཕྱི་ནའོ།།

གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དུ་ཟིན་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཇི་ལྟར་སྟོན་པ་མར་མེ་མཛད་ལས་གདམས་ངག་བརྙེས་ནས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་འོན་ཏེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་མེད་ན་ནི་མངོན་པར་རྟོགས་པར་འདོད་པས་གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བར་བྱ་མི་དགོས་སོ་སྙམ་དུ་གང་དག་སེམས་པ་དེ་དག་གི་ཆེད་དུ་གདམས་ངག་དང་མི་ལྡན་པ་དང་དབྲལ་བའི་ཕྱིར་གནས་བཅུ་དྲུག་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་

---

[༡] གསལ་ སྡེ།

[༢] དེ་ལྟ་ན་གོ་ པེ། སྣ།

[༣] སྟོན་ཏོ། སྣ།

[༤] འབྲས་བུ་ནི་ པེ། སྣ།

འགྱུར་འདི་ཇི་སྐད་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། སྔར་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དུས་ན་བཤད་པའི་ཆོས་འཛིན་པ་བཀག ད་ནི་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་[1]དུས་ན་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་བཀག་སྟེ། བློས་པ་མ་ཡིན་ནོ།། དོན་དམ་པར་ཤེས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དེ་ཇི་ལྟར་སྔར་དཔྱད་པ་བཞིན་ནོ།། དེའི་དབང་གིས་མ་བརྟགས་[2]ན་དགའ་བ་ཙམ་དུ་ཐོས་པ་ལས་བྱུང་བ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཤེས་རབ་སྐྱེ་བའི་རིམ་གྱིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པའི་ཡེ་ཤེས་རང་བྱུང་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱིས་བསྡུས་པ་བདག་ཉིད་ཀྱིས་འབྱུང་བར་ཟད་དོ།།

དེ་ཡང་[3]གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་མར་མེ་མཛད་ཀྱི་དབང་ཙམ་ཡིན་པར་ཟད་དམ་ཞེ་ན། དེ་ལྟ་ཡིན་ན་ཡང་བླ་མོད་ཀྱི་འོན་ཀྱང་དེ་ལ་ནི་སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དབང་ཐུན་མོང་སྟེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་མར་མེ་མཛད་འབའ་ཞིག་གི་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། གལ་ཏེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་མེད་ན་དེས་ཇི་ལྟར་བཅོམ་ལྡན་འདས་མངོན་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་ལུང་བསྟན་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པའི་ཆོས་ཇི་ལྟ་བ་དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་དེའི་ཚེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་གྱུར་ཏམ། གལ་ཏེ་ཡང་བདག་གིས་ཆོས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་སྙམ་དུ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་དུ་གྱུར་ན་དེའི་ཚེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་ཟིན་པ་དང་། ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་

1 མངོན་པར་རྫོགས་པའི་ སྡེ།
2 རྟགས་ སྡེ།
3 དེ་ལ་ཡང་ པེ། སྣ།

ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་[1]ལུང་བསྟན་པར་མི་འགྱུར་བ་ཞིག་ན་གང་གི་ཕྱིར། དེའི་ཚེ་ངས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་མེད་ལ་ཆོས་ལ་སོགས་པ་ལ་ཡང་མངོན་པར་ཞེན་པ་མེད་པ་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། ང་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མ་གྱུར་པའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ལམ་ལ་གནས་པར་ལུང་བསྟན་ཏོ།།

མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་མར་མི་མཛད་ལས་གདམས་ངག་གླངས་པར་རྣམ་པར་རྟོག་པ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཅིང་། རྣམ་པར་རྟོག་པ་[2]དེ་སྤྲང་པའི་ཕྱིར། འདུན་པ་དང་། སློན་ལམ་གདབ་པ་ཡང་སྟོན་ཏོ།། མར་མི་མཛད་ཅེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་བརྗོད་པས་ཆོས་ལེན་པར་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཐམས་ཅད་ཟློག་གོ། མེད་དོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་དེའི་ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།། ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱིར་གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བར་བསྟན་པས་ནི་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།། ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདམས་ངག་ལས་ཤིན་ཏུ་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་གང་ཡིན་པ་དེ་མེད་ན་དེའི་ཚེ་ཇི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་འགྱུར། འདི་ལྟར་ཇི་ལྟར་སངས་རྒྱས་སྔ་མ་དག་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་ཏུ་གཤེགས་པ་དེ་བཞིན་དུ་འདིར་[3]ཡང་གཤེགས་ཤིང་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་ན། མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་པས་དེ་ལ་ཇི་

[1] དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ང་ པེ།

[2] རྣམ་རྟོག་ པེ།

[3] འདི་ པེ། སྣ།

ལྟར་འགྱུར་སྙམ་དུ་སེམས་པ་[2]དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ལན་དུ་རབ་འབྱོར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་བཞིན་ཉིད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཆོས་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་མ་ནོར་བ་ལ་བྱ་སྟེ། དེ་ནི་གཟོད་མ་ནས་ཞི་བ་ལ་སོགས་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཡང་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཐུན་མོང་ཡིན་པས་ཡང་དག་པ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་པས་ནི་བྱེ་བྲག་ཏུ་བྱས་ཏེ། ཡང་དག་པ་ནི་མ་ནོར་བའི་དོན་གྱིས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ལ་བྱའོ།། དེའི་དེ་བཞིན་ཉིད་དོན་དམ་པར་སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ཆོས་ཉིད་གང་ཡིན་པ་དེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་སྟེ། **ཇི་སྐད་དུ།** "རྟག་ཏུ་སྐྱེ་མེད་ཆོས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས།།" ཞེས་གསུངས་པ་ལྟ་བུ་སྟེ། ཆོས་ཉིད་ཀྱང་དོན་དམ་པར་ན་ཆོས་ཅན་ལས་གཞན་པར་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ཆོས་ཉིད་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་མ་བརྟགས་གཅིག་པུ་ན་དགའ་བ་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པ་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་རབ་ཏུ་བརྟགས་ཏེ་ཡོད་པའི་ཡེ་ཤེས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ཉིད་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དེ་ཡང་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་གཟུང་བའམ་འཛིན་པ་ཅི་ཡང་མེད་པས་དོན་དམ་པར་དེས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་ཀྱང་ཅི་ཡང་མེད་ཀྱི། ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་ཡེ་ཤེས་ཁྱད་པར་ཅན་དེས་ཇི་ལྟར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་[3]དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བར་ཟད་དོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།།

དོན་དམ་པ་ལ་བརྟེན་ནས་དེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་སོ་ཞེས་དེ་སྐད་ཅིའི་ཕྱིར་མི་བྱ་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་གང་ལ་ལ་ཞིག་ཅེས་བ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མི་བདེན་པ་ཞེས་བྱ་བ

---

[2] སེམས་པ་ལ་ པེ། སྣ།

[3] པས་ སྣ།

དང་སྦྱར་རོ།། ལྷག་མ་ནི་གོ་སླ་བས་མ་བཤད་དོ།། འོ་ན་གང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་སོ་ཞེས་རྣམ་པར་བཞག་[༡]པ་དེའི་དེ་ཁོ་ན་ཅི་འདྲ་བ་ཞིག་རྣམ་པར་གཞག་[༢]སྐམ་པ་ལ་ཆོས་གང་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། གང་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་སོ།། དེ་ལ་བདེན་པ་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཇི་ལྟར་སྣང་བའི་རྣམ་པ་སྒྱུ་མ་དང་འདྲ་བར་བརྟགས་ན་ཤིན་ཏུ་སྟོང་པས་[༣]མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་རོ།། རི་བོང་གི་རྭ་བཞིན་དུ་ཤིན་ཏུ་མེད་པའི་ཕྱིར། བརྫུན་པ་ཡང་མེད་དེ་མ་བརྟགས་པའི་ངོ་བོར་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཡང་ན་དོན་དམ་པར་ཆོས་གང་ཡང་[༤]མི་འགྲུབ་པས་བདེན་པ་ཡང་མེད་དོ།། རྣམ་པར་སྤྱད་པར་བྱ་བ་བདེན་པ་གང་ཡང་མ་གྲུབ་པ་དང་། ཆོས་ཐམས་ཅད་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་བརྫུན་པ་ཡང་མེད་དོ།།

འདིས་ནི་སྒྲོ་འདོགས་པ་དང་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་ནས་དབུ་མའི་ལམ་དུ་རྣམ་པར་འཇོག་ཅིང་། དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ལ་འཇུད་དོ།། དེ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདི་ལྟར་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཐམས་ཅད་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་བདེན་པ་ཡང་མེད་བརྫུན་པ་ཡང་མེད་པས་ན་འོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཡང་སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ཆོས་ཉིད་ཡོངས་སུ་དག་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་སྟེ། དེས་ན་སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ཆོས་ཉིད་ཐུན་མོང་བའི་ཕྱིར།

རྟག་ཏུ་སྐྱེ་མེད་[༥]ཆོས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས།

---

༡ གཞག་ ཅོ། སྡེ།

༢ བཞག་ པེ། སྣ།

༣ ཤིན་ཏུ་སྟོབས་ སྡེ།

༤ གང་ཡིན་པ་ པེ། སྣ།

༥ སྐྱེ་མཆེད་ སྡེ།

ཆོས་རྣམས་ཀུན་ཀྱང་བདེ་བར་གཤེགས་དང་འདྲ། །
བྱིས་པའི་བློ་ཅན་མཚན་མར་འཛིན་པ་ཡིས། །
འཇིག་རྟེན་དག་ན་མེད་པའི་ཆོས་ལ་སྤྱོད།[༡] །

ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་སོ།།

གལ་ཏེ་ཆོས་འདི་དག་མ་སྐྱེས་པ་ཁོ་ན་ཡིན། འོ་ན་ཇི་ལྟར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་[༢]སྐམ་པ་ལ་རབ་འབྱོར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། འདི་ནི་[༣]དོན་དམ་པར་ཡོད་པའི་ཕྱིར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་ནི་མ་ཡིན་གྱི། གཟུགས་ལ་སོགས་པ་དག་དོན་དམ་པར་ཆོས་མེད་མོད་ཀྱི། དོན་དམ་པ་མ་ཡིན་པ་མ་བརྟགས་པ་ལ་བརྟེན་ནས་གང་གི་ཕྱིར་རང་དང་སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་འཛིན་པ་དེའི་ཕྱིར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱའོ།། དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལ་གནས་པ་ཐམས་ཅད་མཐོང་ཡང་ཐམས་ཅད་[༤]མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་གཅད་པར་བསྟན་ཏོ།།

---

[༡] ལུང་འདི་ཚིག་གསལ་རབ་བྱེད་ཉེར་གཉིས་ནང་གླང་པོའི་རྩལ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ་ལས་དྲངས་པར་འཁོད་ཀྱང་ད་ལྟ་བཀའ་འགྱུར་ནང་བཞུགས་པའི་མདོ་དེར་''སྡེ་བཀའ། ༣༠༧ མདོ་སྡེ། ཚ ཤོག ༨༥'' ཚིག་བཅད་དེ་བཞུགས་པས་དཔེ་གཞན་ཞིག་ཏུ་ཡོད་པར་ངེས།

[༢] ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་ སྡེ།

[༣] འདི་ པེ། སྣ།

[༤] ཡང་ཐ་སྙད་ཐམས་ཅད་ སྡེ།

གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས[༡]མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་ན། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་ཇི་ལྟར་གདམས་ངག་ བླང་པ་མངོན་དུ་བྱས་ཏེ་ཆོས་དང་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་དེ་རྟོགས་པར་འགྱུར་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་མངོན་པར་རྟོགས་པ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ནི་ཡེ་ཤེས་ཐོབ་པ་དང་། མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་པས་མངོན་པར་རྟོགས་པ་སྟོན་ཏེ། ཡེ་ཤེས་ཐོབ་པས་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། ཡེ་ཤེས་རྣམ་པ་གཉིས་ལ་བརྟེན་ཏེ་རིགས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པའི་ཡེ་ཤེས་དང་། མཉམ་པ་ཉིད་[༢]ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སོ།། དེ་ལ་ཡེ་ཤེས་གང་ཐོབ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རིགས་སུ་སྐྱེས་པ་ཡིན་ཞིང་། སངས་རྒྱས་ཀྱི་རིགས་སུ་ངེས་པ་དེ་ནི་རིགས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པའི་ཡེ་ཤེས་སོ།། དེ་སྐྱེས་པས་ལུས་དང་ལྡན་པའོ།། ལྡན་པ་ནི་བདག་གིར་བྱས་པ་ལུས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུ་སྟེ། གང་གིས་དེ་ཐོབ་པ་དེ་ལུས་དང་ལྡན་པའོ།། ཡེ་ཤེས་དེ་ཐོབ་པར་ཇི་ལྟར་ཤེས་སྙམ་པ་ལ་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།།

འདིས་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི[༣]ཡེ་ཤེས་ཐོབ་ནས་མངོན་པར་རྟོགས་པར་སྟོན་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་རིགས་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སོ[༤]ཞེས་སྟོན་ཏོ།། མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་དེས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་ནས་བདག་ཁོ[illegible]ར་སྡུད་དོ།། དེ་ན་དེ་སེམས་ཅན་མཐའ་དག་གི་ལུས་བདག་ཏུ་སྡུད་པས་ལུས་ཆེན་པོ་ཡིན་ནོ།། འདི་ནི་སླའི་དོན་

---

༡ ཀྱི་ སྣེ།

༢ མཉམ་པ་ཐམས་ཅད་ པེ། སྣ།

༣ མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱིས་མཉམ་ཉིད་ཀྱི་ སྣེ།

༤ ཡེ་ཤེས་ཐོབ་པར་ཤེས་སོ་ པེ། སྣ།

མ་ཡིན་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་བདག་ཏུ་བསྡུས་པས་དེ་ལུས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་དག་ཀྱང་ཤིན་ཏུ་མང་བའི་ཕྱིར་ལུས་ཆེན་པོ་ཡིན་པས་སྒྲའི་དོན་མ་ཡིན་ནོ།། འདིས་ནི་གནས་འདིའི་རྒྱ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།།

དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་མངོན་པར་རྟོགས་པ་འདི་ཡང་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་ཡེ་ཤེས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་འབྱུང་བ་ཙམ་གྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་ཡིན་ནོ།། དོན་དམ་པར་ནི་མངོན་པར་རྟོགས་པར་བྱེད་པ་དང་། མངོན་པར་རྟོགས་པར་བྱ་བ་གང་ཡང་མེད་དོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་མི་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།།

འདིས་ནི་དོན་གྱིས་ན་ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་[༡]མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། དེ་སྐད་པའི་ཕྱིར་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་སྟོན་ཏོ།། ལུས་དང་ལྡན་ཞིང་ལུས་ཆེན་པོ་ཞེས་མཚན་མ་ཙམ་ཞིག་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆོས་ཐམས་ཅད་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་གློག་[༢]པར་བྱེད་དོ།། དོན་དམ་པར་ཡང་རྣམ་པར་འཇོག་ཅིང་། དེ་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་ལ་ཡང་འཇུད་དོ།། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།། སྒྲོ་འདོགས་པའི་མཐའ་ཡང་སྤོང་ངོ་།། སྔ་མས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་གོ།

གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ལུས་དེ་ཉིད་མེད་པར་གསུངས་ན། དེའི་ཚེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་མངོན་པར་རྟོགས་པ་ཐོབ་པ་དག་འདི་སྙམ་དུ་བདག་གིས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་མངོན་པར་རྟོགས་པ་ཐོབ་ཀྱིས་ད་ནི་བདག་གིས་སེམས་

---

[༡] མངོན་པར་ཞེན་པ་ པེ། སྣ།

[༢] གློགས་ སྡེ།

ཅན་རྣམས་དགྲོལ་བར་བྱའོ་སྙམ་དུ་ཇི་ལྟར་སེམས་ཞེས་གཞན་གྱི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་པས། མངོན་པར་རྟོགས་པ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ༎ འདིས་ནི་གང་འདི་སྙམ་དུ་བདག་གིས་སེམས་ཅན་རྣམས་ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་ལས་བཟླའོ༎ བདག་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའོ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་ཅན་དེ་ཡང་དག་པའི་དོན་དུ་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་མ་ཡིན་པར་སྟོན་ཏོ༎ དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིར་ཤེས་པར་བྱེད་པའི་གཏན་ཚིགས་ཡོངས་སུ་འདྲི་བའོ༎ ཆོས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་བདག་ཉིད་དམ་གང་ཟག་ལ་སོགས་པའི་བདག་ཉིད་དོ༎ འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཀྱང་ཆོས་དེ་རིགས་པས་དཔྱད་ན་མ་མཐོང་བས་དེ་ནི་མ་མཆིས་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏེ། རིགས་པ་དེ་ཐམས་ཅད་དུ་ཐུན་མོང་བས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བདག་མེད་པ་གཉི་ག་ལ་གཟུད་པའི་ཕྱིར་དེ་བས་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ༎ སེམས་ཅན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། རང་བཞིན་མེད་པར་ཡང་བལྟ་བར་བྱའོ༎ འདིས་ནི་རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཆར་བཅད་[༡]པ་བསྟན་ཏོ༎ མངོན་པར་རྟོགས་པ་བཤད་ཟིན་ཏོ༎

འདི་མན་ཆད་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་[༣]ཡོངས་སུ་བཙལ་བ་ཡིན་ཏེ། སངས་རྒྱས་ཀྱི་དེ་ཡང་ཞུན་སུམ་ཚོགས་པ་བདུན་གྱིས་ཡོངས་སུ་བསྡུས་པ་ཡིན་ཏེ། ཞུན་སུམ་ཚོགས་པ་བདུན་ནི། ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཞུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། གཟིགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཞུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། མཁྱེན་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཞུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཞུང་

---

༡ བཅད་པ་ པེ། སྣ།

༣ སྡེ་དགེ་དཔར་མར་"ས" མེད།

པོ་ལ་མངའ་བརྙེས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའོ།།

དེ་ལ་གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་ན་སུ་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ཡོངས་སུ་འགྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་འབད་པར་བྱེད་སྙམ་དུ་དོགས་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེ་ཡང་དེ་བཞིན་དུ་བརྗོད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་ཅན་གྱི་ཕྱིར་དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའོ་ཞེས་མི་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་སྟེ། གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་མ་རྟོགས་པར་རྟོགས་སོ་སྙམ་དུ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་ལྟར་དེས་ངའོ་སྙམ་དུ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་བྱེད་པས་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ་མ་རྟོགས་སོ།། ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་མེད་པར་དེ་ལ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་བྱེད་པས་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་མ་རྟོགས་སོ།། འདིས་ནི་ཞིང་བཀོད་པ་སྒྱུ་མ་ལྟ་བུར་མོས་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་ཞིང་བཀོད་པ་དེ་དག་མེད་དུ་ཟིན་ན། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཇི་ལྟར་གསུངས་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་ཏེ། འདིའི་བཤད་པ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་ནོ།། འདི་ཚིག་ཟློས་པར་ཡང་མི་འགྱུར་ཏེ། སྔ་མ་ནི་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་ལ་གནས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པར་སྨོན་པའི་གནས་སྐབས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་སེལ་བའི་ཕྱིར་རོ།། ད་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་འཇུག་པ་ན་དེ་ལྟར་མངོན་པར་ཞེན་པས་འཇུག་གོ་སྙམ་དུ་གང་དག་དེ་ལྟར་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་དག་གི་རྣམ་པར་རྟོག་

པ་དེ་བསལ་བར་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཚེ་ཁ་གཅིག་གི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་ལྟ་བུ་གཞན་མི་འབྱུང་བས་ཐུག་པ་མེད་པར་ཡང་མི་འགྱུར་རོ།།

འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་འདི་ལ་ཇི་ལྟར་བསླབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། ཅི་འདྲ་བ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གང་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཆོས་རྣམས་ནི་བདག་མེད་པ་ཞེས་ལན་གཉིས་བརྗོད་པ་ནི་བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་ཆོས་རྣམས་བདག་མེད་པར་སྟོན་ཏོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་[1]ཞེས་ལན་གཉིས་བརྗོད་པས་ནི་བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་པོ་དེ་ཉིད་རྟོགས་པར་སྟོན་ཏོ།། ཡང་ན་དེ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བ་གཅིག་ནི་བཟླས་པའོ།། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བརྗོད་དོ་ཞེས་བྱ་བ་འོག་མ་ནི་ཚུལ་ལོ།།[2]

དེས་ན་ཇི་སྐད་བསྟན་པར་འགྱུར་ཞེ་ན། སུ་དག་གིས་བསླབ་པོ་སྙམ་དུ་གང་ཟག་ལ་སོགས་པར་འཛིན་པ་མེད་པ་དང་། ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས་ཞེས་ཆོས་སུ་འཛིན་པ་ཡང་མེད་པ་དེ་དག་མེད་པ་གཉི་ག་ཁོང་དུ་ཆུད་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བརྗོད་དོ་ཞེས་བསྟན་པར་[3]འགྱུར་ཏེ། འདིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་སྒྱུ་མ་ལྟ་བུ་དེ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དག་དེ་ལ་མོས་པས་འཇུག་པར་བསྟན་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་བརྗོད་དོ།།

---

1 གོང་དུ་མདོའི་ཚིག་ཇི་བཞིན་བཀོད་པ་ཡིན། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ སྣ།

2 ཡུལ་ པེ། སྣ།

3 ཞེས་པར་ སྣ།

གལ་ཏེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་ན་དེའི་ཚེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གཟིགས་པ་རྣམ་པར་དག་པ་དང་། མཁྱེན་པ་རྣམ་པར་དག་པ་དང་ལྡན་པ་མེད་པ་ཁོ་ནར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ལས་སྐྱེས་པའི་དེ་མེད་ན་དེ་ཇི་ལྟར་རུང་བར་འགྱུར། རྒྱུ་མེད་པ་ནི་རྟག་ཏུ་ཡོད་པ་ལ་སོགས་པའི་སྐྱོན་[༡]དུ་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་འཁོར་འདས་པ་གང་དེ་སྐམ་དུ་རྣམ་པར་རྟོག་པར་འགྱུར་བ་དེའི་ཚེད་དུ་གཟིགས་པ་དང་མཁྱེན་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་བླ་ན་མེད་པ་གཉིས་ཀྱིས་དབང་དུ་མཛད་ནས་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྐམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཀྱང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དགོངས་པ་ཐུར་བཟུང་ནས་མངའོ་ཞེས་གསོལ་ཏོ།།

འདིས་ནི་དོན་དམ་པར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་དེ་གང་ཡང་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་གང་བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་ཡོངས་སུ་བསྐངས་ནས་མཁྱེན་པ་དང་གཟིགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་འགྱུར་བ་མ་བརྟགས་གཅིག་པུ་ན་དགའ་བ་ཕུང་པོ་ཙམ་གྱི་རང་བཞིན་གྱི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཡོད་པ་ཉིད་དོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ཏེ། གལ་ཏེ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་དེ་མེད་དུ་ཟིན་ན་དེའི་ཚེ་སུ་ཞིག་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་འགྱུར་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། དེ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤེས་རབ་ཀྱི་སྤྱན་མངའོ་ཞེས་མི་བྱ་བ་ནི་གཟིགས་པ་རྣམ་པར་དག་པ་ཁྱད་ཞུགས་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་སྤྱན་མངའ་བར་སྟོན་ཏོ།།

མདོར་བསྡུ་ན་སྤྱན་རྣམ་པ་བཞི་སྟེ། གཟུགས་འཛིན་པ་དང་། དོན་དམ་པའི་བདེན་པ་འཛིན་པ་དང་། ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་བདེན་པ་འཛིན་པ་དང་། རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་ཤེས་བྱ་འཛིན་པའོ།། གཟུགས་འཛིན་པ་ཡང་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ།

---

༡ དོན་ སྐྱི།

ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་དང་། བསྒོམས་པའི་འབྲས་བུའོ།། སྤྲིན་རྣམ་པ་ལྔ་དང་གོ་རིམས་བཞིན་ནོ།། དེ་ལ་ཡུལ་རགས་པའི་ཕྱིར་དང་པོར་གཟུགས་འཛིན་པ་བསྟན་ཏོ།། དོན་དམ་པའི་དབང་གིས་ཀུན་རྫོབ་ཤེས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པར་འགྱུར་ཏེ། དེས་ན་དོན་དམ་པའི་བདེན་པ་འཛིན་པ་ནི་སྔར་བསྟན་ལ། ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་བདེན་པ་འཛིན་པ་ནི་ཕྱིས་བཤད་དོ་ཞེས་གོ་རིམས་བསྟན་པའི་མཚམས་སྦྱར་བའོ།། གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པའི་ཡུལ་ལ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་སྤྲིན་མངའོ།།[༢] ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཆོས་ཅན་དུ་སྣང་བ་ཉིད་དེ་གང་ཟག་ནི་མ་ཡིན་ན་ཞེས་གང་ཟག་སྟོང་སྟེ། ཆོས་ཅན་གྱི་ཡུལ་ལ་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྤྲིན་ནོ།། ཤེས་བྱ་ཐམས་ཅད་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་མཁྱེན་པ་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་སྤྲིན་ཞེས་བྱ་སྟེ། འདིས་ནི་ད་ལྟར་མངོན་སུམ་དུ་མཛད་པར་བཞུགས་པའི་ཕྱིར་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་སྤྲིན་ལྔ་བསྟན་པས་ནི་གང་[༣]གཟིགས་པ་རྣམ་པར་དག་པ་བརྗོད་དོ།།

མཁྱེན་པ་རྣམ་པར་དག་པ་བརྗོད་པའི་ཕྱིར། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དུས་གསུམ་གྱི་སེམས་དང་སེམས་ལས་བྱུང་བ་རྣམས་ནི་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་ནོ།། དེ་བས་ན་དུས་གསུམ་ཡུལ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཡུལ་དེ་ཤེས་པ་ནི་མཁྱེན་པ་ཞེས་བྱའི་གཟིགས་པ་ཞེས་མི་བྱའོ།། དེ་ཡང་འདོད་ཆགས་དང་བཅས་པའི་སེམས་དང་འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བའི་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་། རྣམ་པར་བྱང་བའི་ངོ་བོ་སྣ་ཚོགས་སུ་རིག་པར་བྱའོ།།

---

༢ སྤྲིན་ནོ་ པེ། སྣ།

༣ བསྟན་པས་ནི་ པེ། སྣ།

དེ་སྙེད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་མཐའ་ཡས་པར་གཏོགས་པའི་སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་[༡] ཡོངས་སུ་མཁྱེན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདི་ལྟར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤའི་སྤྱན་ལ་སོགས་པ་མང་འ་སྟེ། དེས་ན་དེ་[༢]བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་[༣]འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་[༤]གནས་པར་བྱའོ།།[༥] གཞུང་འདིས་ནི་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་གཉིས་པ་ཡང་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

ཤའི་སྤྱན་ལ་སོགས་པ་ཡང་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་གྱིས་དཔྱད་ན་མི་དམིགས་པ་ཉིད་ལ། དོན་གཞན་ཤེས་པས་འཛིན་པར་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། ཇི་ལྟར་སྣང་དཔྱད་པ་ལྟ་བུ་ཡིན་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་ཤའི་སྤྱན་ལ་སོགས་པ་མང་འ་བ་དང་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་རབ་ཏུ་མཁྱེན་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་བསམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམ་པར་དག་པ་འདི་གཉིས་ལ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། རྒྱུན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་རོ།། རང་བཞིན་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་གསུངས་ཏེ། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་ཞེས་བྱའོ་ཞེས་གསུངས་སོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་པ་དོན་དམ་པར་ནི་བརྗོད་པའི་སྤྱོད་ཡུལ་ཐམས་ཅད་ལས་འདས་པའི་ཕྱིར་བརྗོད་པར་མི་འགྱུར་རོ་སྙམ

---

[༡] སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་རྒྱུན་ སྡེ།

[༢] དེས་ སྡེ།

[༣] བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ སྡེ།

[༤] གྱི་ སྡེ།

[༥] བྱ་བའོ་ སྡེ།

ན་དགོངས་པའོ།། སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་ཞེས་སྨོས་པ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། ཤའི་སྤྱན་ལ་སོགས་པ་ཡང་སྤྱན་གྱི་རང་བཞིན་མེད་པ་ཉིད་དུ་གསུངས་སོ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་བའི་སྐབས་ཡིན་ཏེ། མངོན་པས་མ་གསུངས་སོ།།[1]

འདི་ལ་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ཞུས་ཏེ། རྒྱུན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་དང་སྦྱར་རོ།། འདས་པ་ལ་སོགས་པའི་སེམས་ནི་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་མི་དམིགས་ཀྱི། ཡོད་ཀྱང་འཛིན་པར་མི་འཐད་པས་མི་དམིགས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟ་ན་ནི་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་མེད་པར་བསྟན་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། མི་དམིགས་པ་ཙམ་གྱིས་ནི་དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་མེད་པར་མི་འགྱུར་རོ།། ཇི་ལྟར་དུས་གསུམ་གྱི་སེམས་དོན་དམ་པར་མེད་པ་དེ་ལྟར་ནི་སྔར་ཡང་བཤད་དེ། སྟོན་པར་ཡང་འགྱུར་རོ།། སེམས་སྨོས་པ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། དེས་ན་ཤའི་མིག་ལ་སོགས་པ་འདས་པ་ལ་སོགས་པ་ཡང་མི་དམིགས་པ་ཉིད་དོ།། འདི་ལ་རྒྱུན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་ཚིག་གིས་ནི་ཟབ་པ་བརྗོད་དོ།། ལྷག་མ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བའོ།།

གལ་ཏེ་དུས་གསུམ་གྱི་སེམས་མེད་ན་དེའི་ཚེ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡང་མེད་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ནི་སེམས་ལ་བརྟེན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་མངའ་བ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་འབད་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ཏེ། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་མངའ་བ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདིས་ནི་རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་ཐ་ན་གང་ཕྱིའི་དངོས་པོ་ནི་རིན་པོ་ཆེ་ལ་སོགས་པ་གཏོང་བར་བྱེད་པ་དེ་ཡང་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཆེན་པོ་དང་ལྡན་པར་འགྱུར་ན།

---

1 མངོན་སུམ་གསུངས་སོ། སྣེ།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་དཔག་ཏུ་མེད་པར་བྱ་དཀའ་བ་བརྒྱ་ཕྲག་ཏུ་མ་གོམས་པར་མཛད་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་མངའ་བར་ཅིའི་ཕྱིར་མི་འགྱུར་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།།

དེས་ན་དོན་དམ་པར་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་པས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དེ་ལ་དབང་བ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་ཏེ། འདིས་[1]ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བརྗོད་དོ།། བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དོན་དམ་པར་ཡོད་པར་ཅིའི་ཕྱིར་རྣམ་པར་མི་གཞག་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདི་ལ་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དང་། གཉི་ག་བསྟན་པའི་ཕྱིར། རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཇི་སྟེ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་[2]མི་གསུང་ངོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་བརྗོད་པ་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་ཏེ། མ་བསྟན་པར་ཡང་དེ་ལྟར་གྲགས་པར་འགྱུར་རོ་སྙམ་དུ་དགོངས་པའོ།། ཇི་ལྟར་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དོན་དམ་པར་མེད་པ་དེ་ལྟར་སྔར་བསྟན་ཟིན་ཏོ།། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མངའ་བ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་ཞུགས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དོན་དམ་པར་དེ་མི་དམིགས་པར་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། དོན་དམ་པར་དེ་དམིགས་པ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་སྤོང་བས་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་གཉི་ག་བསྟན་ཏེ། ཟབ་པ་ཡང་བརྗོད་དོ།།

---

[1] འདི་ སྡེ།

[2] མདོ་བཞིན་ནོ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ སྡེ།

གལ་ཏེ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མེད་པ་ཉིད་ཡིན་ན། དེའི་ཚེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་རྣམ་པ་གཉིས་པོ་དཔེ་བྱད་བཟང་པོའི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དང་། མཚན་གྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསོད་ནམས་བླ་ན་མེད་པ་ལས་སྐྱེས་པར་འདོད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་རྒྱུ་མེད་པའི་ཕྱིར་མེད་པར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་རྣམ་པ་གཉིས་ཡོངས་སུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་ཇི་ལྟར་འབད་པར་བྱ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེའི་ཆེད་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

གཟུགས་ཀྱི་ལུས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དཔེ་བྱད་བཟང་པོའི་སྐུ་ཡིན་པར་བལྟ་བར་བྱའོ།། མཚན་གྱི་སྐུ་ནི་འོག་ནས་འཆད་དེ་བ་ལང་དང་གླང་ཞེས་བྱ་བའི་ཚུལ་དུ། འདི་ལས་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱི་བསམ་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ཇི་ལྟར་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དོན་དམ་པར་ཕུང་པོ་མེད་པ་ཁོ་ན་ཡིན་པ་དེ་བཞིན་དུ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡང་མ་སྐྱེས་པ་ཁོ་ན་སྟེ། དེ་བས་ན་དོན་དམ་པར་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟ་བར་མི་བགྱི་ལགས་སོ་ཞེས་བྱའོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་བཞིན་དུ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོད་པ་ཉིད་དེ། དེ་བས་ན་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལས་བྱུང་བར་རུང་བ་ཉིད་དོ།།

དེ་བས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་གཟུགས་ལ་མོས་པ་དེ་ལྟ་བུས་དེ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། འདིར་ཚིག་ཟློས་པར་ཡང་མི་འགྱུར་ཏེ། སྔར་[1]མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་ན་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པའི་དུས་དང་།

---

[1] སྔར་ནི་ པ།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་རིམ་གྲོ་བྱ་བའི་དུས་ན་དེ་ལྟར་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡོངས་སུ་སྤོང་བ་ཡིན་ལ། ད་ནི་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་ས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་ཞུགས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གཟུགས་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ་ཡོད་དོ་ཞེས་གྲག་ཅེས་འཁོར་གང་དག་གི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ངན་པ་དེ་བསལ་བར་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

འོ་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཇི་ལྟར་བསྟན་སྙམ་དུ་སེམས་ཤིང་། དེ་ཅིའི་ལྟད་དུ་ཞེས་དྲིས་ཏེ། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་བལྟ་བར་མི་བྱ་ཞེས་བྱ་བ་དང་སྦྱར་རོ།། འདི་ནི་གྲུབ་པ་མེད་དེ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡན་ལག་ཅན་གྱི་རང་བཞིན་ནམ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་བསགས་པའི་རང་བཞིན་དུ་མ་གྲུབ་པར་ཇི་ལྟར་སྔར་དཔྱད་པ་བཞིན་ནོ།། འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། དེས་ན་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདི་ལྟར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་དོ།། རི་བོང་གི་རྭ་བཞིན་དུ་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་དུ་མེད་པ་ནི་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་ནས་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱིས་འབད་པར་བྱ་བ་བསྟན་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བསྟན་ཏོ།། མཚན་གྱི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ།། འདིར་བཤད་པ་ཐམས་ཅད་ནི་སྔ་མ་དང་འདྲའོ།།

གལ་ཏེ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གྲུབ་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟ་བར་མི་བྱ་ན། དེའི་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་[1]བསྟན་པ་ཡང་མེད་པར་འགྱུར་ཏེ།

[1] བཅོམ་ལྡན་འདས་ཆོས་ པེ། སྣ།

དེ་ནི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུས་བསྡུས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་བས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་ཇི་ལྟར་འབད་པར་བྱ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེའི་ཆེད་དུ་གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དོན་དམ་པར་འཆད་པ་པོ་དང་། བཤད་པར་བྱ་བ་དང་། བཤད་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འདི་སྙམ་དུ་ངས་ཆོས་བསྟན་ཏོ་སྙམ་དུ་མི་དགོངས་སོ།། དེ་ལྟར་མ་ཡིན་ན་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པར་མི་འགྱུར་རོ།། ཇི་ལྟར་འཆད་པ་པོ་སྐྱེ་བདག་ལ་སོགས་པ་དང་། བཤད་པར་བྱ་བ་སྐྱེ་ཕྱི་ནང་གི་དངོས་པོ་དང་། བཤད་པ་སྐྱེ། བྱེད་པ་གཟུགས་སམ་སྒྲའི་བདག་ཉིད་མེད་པ་དེ་ལྟར་ནི་སྔར་རྒྱས་པར་བསྟན་ཟིན་ཏེ། དངོས་པོ་མཐའ་དག་ལ་སྟོང་པ་ཉིད་ཀྱིས་ཁྱབ་པར་སྔར་བསྒྲུབས་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་འཆད་པ་པོ་དང་། བཤད་པར་བྱ་བ་དང་། བཤད་པ་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བས་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་འབའ་ཞིག་ཏུ་ཟད་ཀྱི་དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།།

གལ་ཏེ་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད[1]དེ་ལྟ་བུ་བསྟན་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཁ་ཅིག་མགོ་རྨོངས་ཏེ་དོན་དམ་པར་གསུམ་པོ་ཡོད་པར་སེམས་ན་དེའི་ཚེ་ཅིར་འགྱུར་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་སུ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། སྐུར་བ་ནི་དོན་དམ་པར་གླིང་[2]བའི་ཕྱིར་རོ།། ཇི་ལྟར་མེད་པ་དེས་གླིང་བར་ནུས་སྙམ་པ་ལ། ལོག་པར་འཛིན་པས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པས་ལོག་པར་ཟིན་པའི་ཕྱིར་དེ་མེད་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལ་འཇུག་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་ཐག་

---

1 དེ་ཁོ་ན་ པེ། སྣ།
2 གླིངས་ པེ། སྣ།

ཙ་ལ་སོགས་པ་ལྟ་བུར་ཤེས་པས་འཇུག་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་བཤད་པ་ལ་སོགས་པ་གསུམ་པོ་དེ་མེད་ན་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་ལ་སོགས་པ་སྟོན་པར་བྱེད་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་བསྟན་པ་ཅིག་དང་ངག་གི་ངོ་བོ་སྒྲ་ཚོགས་འདི་ཇི་ལྟར་གྲགས། དེ་ཡོད་ན་ནི་གང་དེས་བསྟན་པར་བྱ་བ་སྟེ། བཤད་པར་བྱ་བ་ཡང་ཡོད་པ་ཉིད་ལ། གང་དེ་སྟོན་པར་བྱེད་པ་འཆད་པ་པོ་དེ་ཡང་ཡོད་པ་ཉིད་དེ་ཤུགས་ཀྱིས་ན་གསུམ་ཀར་ཡོད་དོ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། འདིར་ལན་དུ་ཆོས་བསྟན་པ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།།

འདི་སྙམ་དུ་དགོངས་ཏེ། ཆོས་བསྟན་པ་དོན་དམ་པར་ཡོད་ན་རང་གི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོའམ། སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོ་ཞིག་ཏུ་འགྱུར་གྲང་ན། རེ་ཞིག་ཕྱོགས་དང་པོ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། རང་གི་མཚན་ཉིད་དོན་དམ་པ་ཐམས་ཅད་ནི་སྔར་རྒྱ་ཆེ་བར་བསལ་[༢]བའི་ཕྱིར་རོ།། གཉིས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། རང་གི་མཚན་ཉིད་མེད་ན་གནས་མེད་པས་ཅི་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། སྤྱི་དངོས་པོར་ཁས་ལེན་ན་ནི་རང་གི་མཚན་ཉིད་ཁོ་ནར་འདུས་པའི་ཕྱིར་དེ་བསལ་[༣]བས་དེ་ཡང་བསལ་[༤]བ་ཉིད་དོ།། གཞན་རྣམ་པར་གཅོད་པས་སྤྱིའི་མཚན་ཉིད་ནི་སྒྲོ་བཏགས་པའི་ངོ་བོ་ཞེས་རྟོག་ན་ནི་ཆོས་བསྟན་པ་དོན་མེད་པས་གྲུབ་པ་སྒྲུབ་པར་འགྱུར་ཏོ།།

དེ་དོན་དམ་པར་རང་གི་མཚན་ཉིད་ཡོད་དུ་ཆུག་ན་ཡང་དེས་ཆོས་བསྟན་པར་མི་རིགས་ཏེ། སྒྲ་གསལ་བ་ལ་སོགས་པ་བརྟག་པའི་ངོ་བོ་ལ་གཞན་དག

[༢] གསལ་ སྡེ།

[༣] གསལ་ སྡེ།

[༤] གསལ་ སྡེ།

གིས་ཆིག་ཏུ་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་ནི་རིམ་དང་རིམ་མ་ཡིན་པས་དོན་བྱེད་པར་འགལ་ཏེ། ནུས་པ་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བས་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པ་གང་ལ་ཡང་སྐྱོར་བ་མེད་དེ། ཅི་ཡང་མི་བྱེད་པར་ཇི་ལྟར་ཆིག་ཏུ་འགྱུར། རང་གི་མཚན་ཉིད་མི་རྟག་པ་ཡང་བརྡར་འདོགས་པའི་ཆེ་ན་མཐོང་བ་ཐ་སྙད་འདོགས་པའི་ཆེ་ན་རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མེད་པས་ཆིག་ཏུ་མི་རིགས་སོ།། བརྡར་འདོགས་པ་ཡང་གཞན་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་ཡང་གཞན་པར་ནི་མི་རིགས་ཏེ། ཧ་ཅང་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་རྗེས་སུ་འགྲོ་བ་མེད་པས་རང་གི་མཚན་ཉིད་ཀྱང་བརྗོད་པར་མི་རིགས་སོ།། སྤྱིའི་དངོས་པོ་ཡང་བརྗོད་པར་བྱ་བར་ཁས་ལེན་ན་ནི་དེ་བརྗོད་པར་བྱ་བའི་ངོ་བོར་གྱུར་པས་རང་གི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཡུལ་གཞན་དུ་འགྲོ་བ་མེད་པ་ཉིད་དོ།།

གཅིག་བུ་ནི་ཡུལ་དང་དུས་ལ་སོགས་པ་སོ་སོ་ཐ་དད་པ་གསལ་བ་དུ་མ་ལ་ཁྱབ་པ་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། འདི་ལྟར་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་གསལ་བ་གཅིག་ལ་རྫོགས་ན་ནི་དེའི་ཆེ་གཅིག་ཁོ་ན་ལ་དེའི་རང་བཞིན་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པ་[2]གང་གིས་ནི་གཞན་ལ་ཡང་ཁྱབ་པར་འགྱུར་བ་གསལ་བ་གཞན་དང་འབྲེལ་བའི་རང་བཞིན་གཞན་ནི་དེ་ལ་མེད་དེ། གཅིག་པུ་ཉམས་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། ཕྱོགས་གཅིག་གིས་ཁྱབ་ན་ནི་ཡན་ལག་དང་བཅས་པ་དང་མ་ཟིན་པའི་སྐྱོན་དུ་འགྱུར་ཏེ། དེ་ལྟར་གསལ་བ་ཐ་དད་པ་ཇི་སྙེད་ལ་དེའི་ཕྱོགས་གཅིག་གིས་ཁྱབ་པར་རྣམ་པར་གཞག་པར་དེ་སྙེད་འཛིན་ན་ནི་གསལ་བ་གཅིག་ལ་འཛིན་པ་ནི་ཕྱོགས་གཅིག་འཛིན་པས་དེ་ལ་འཛིན་པར་རུང་[3]གྲང་ན། གསལ་བ་ཐ་དད་པ་ན་ཚོད་དང་ཡུལ་དང་།

---

[2] པས་ ཕ། སྣ།

[3] ཕྱོགས་གཅིག་འཛིན་པས་རང་ ཕ།

དུས་ལ་སོགས་པ་སོ་སོ་ཐ་དད་པ་དེ་དག་ལ་གསལ་བ་གཅིག་ལས་[1]འཛིན་པ་ནི་ཕྱོགས་གཅིག་འཛིན་པས་ཅིག་ཅར་འཛིན་པ་མེད་པ་[2]ཉིད་དུ་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་བརྗོད་པར་བྱ་བ་དང་། རྗོད་པ་ནི་སྒྲ་བཏགས་པའི་རྣམ་པའི་ངོ་བོ་ཁོ་ནར་རིགས་ཀྱི་ཡང་དག་པར་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གཞན་དག་ཏུ།[3]

མིང་ནི་གང་དང་གང་དག་གིས། །
ཆོས་རྣམས་གང་དང་གང་བརྗོད་པ། །
དེ་ལ་དེ་ནི་མེད་པ་སྟེ། །
དེ་ནི་ཆོས་རྣམས་ཆོས་ཉིད་དོ། །

ཞེས་གསུངས་སོ།། བཤད་པ་ཡང་བརྟེན་པས་སྒོ་དེ་ནས་བཤད་པར་བྱ་བ་དང་། འཆད་པ་པོ་ཡོད་པར་བསྟན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་སྒོ་དེ་ནས་འོངས་པས་གསལ་བ་ཉིད་དེ། དེ་གཉིས་ཀ་མེད་པར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ལོགས་ཤིག་ཏུ་མ་གསུངས་སོ།། འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།།

---

༡ ལ་ པ། སྣ།

༢ ཅིག་ཅར་འཛིན་པ་མེདཔས་རྟོག་པ་མེད་པ་ སྡེ།

༣ འཕགས་པ་སྲིད་པ་འཕོ་བ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ་ལས། སྡེ་བཀའ། ༢༢༨ མདོ་སྡེ། "ཛ" ཤོག ༡༧༨
།མིང་ནི་གང་དང་གང་གིས་སུ། །ཆོས་རྣམས་གང་དང་གང་བརྗོད་པ།
།དེ་ལ་དེ་ནི་ཡོད་མ་ཡིན། །འདི་ནི་ཆོས་རྣམས་ཆོས་ཉིད་དོ།

ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ནི་རྣམ་པ་ཐ་དད་པ་བདུན་ཏེ། དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་དང་། མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པ་དང་། ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ་དང་། གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ་དང་། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་དང་། མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་དང་འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་པ་དང་། བཞུགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པའོ།།

དེ་ལ་ད་ནི་ཆོས་ཟབ་མོ་འདི་ལྟ་བུ་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་ལྟ་བ་ངན་པའི་དྲ་བས་ཐིབས་པོར་གྱུར་པ་ལ་ཇི་ག་འབྲས་བུ་དང་བཅས་པར་འགྱུར་སྙམ་དུ་འཁོར་ཡིད་མི་ཆེས་ཏེ། གང་དག་དེ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེ་དག་གི་ཡིད་མི་ཆེས་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཀྱང་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་ལྡན་པ། ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ་དག་འབྱུང་ངོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྔར་མ་གསུངས་སམ། ད་ནི་དེ་དག་གཅིག་ཏུ་ཡོད་པ་ཉིད་དང་། མེད་པ་ཉིད་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པར་མི་བྱ་བར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡོད་ཅེས་མ་གསུངས་ཀྱི། མཐའ་གཉིས་དགག་པའི་ཕྱིར། རབ་འབྱོར་དེ་དག་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

དོན་དམ་པར་ཕུང་པོ་དང་གང་ཟག་ལ་སོགས་པའི་ངོ་བོ་ཡོད་པར་མི་དམིགས་པའི་ཕྱིར་སེམས་ཅན་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ་འདིས་ནི་སྒྲོ་བཏགས་པའི་མཐའ་བཀག་གོ། མ་བརྟགས་ན་དགའ་བར་ཀུན་ཏུ་གནས་པའི་ཕྱིར་སེམས་ཅན་མེད་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ་འདིས་ནི་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་བཀག་གོ། འདིས་ནི་འབྱུང་ངོ་ཞེས་སྟོན་པས་སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པ་ཅི་འདྲ་སྟེ་དེ་སྟོན་ཅིང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲན་པ་ཉེ་བར་

གཞག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་དག་ནི་སེམས་ཅན་ཡང་མ་ཡིན་ནོ་དེ་དག་སེམས་ཅན་མེད་པ་ཡང་མ་ཡིན་[2]ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་དེ་དག་སེམས་ཅན་མ་ཡིན་ན་དེའི་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མ་འོངས་པའི་དུས་ན་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་ལྡན་པ། ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ་དེ་དག་འབྱུང་ངོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཇི་ལྟར་གསུངས་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ཞུས་སོ།། དེ་དག་སེམས་ཅན་མེད་པར་གསུངས་པའི་ཕྱིར་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་སེམས་ཅན་མེད་པ་ཉིད་དོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་རྣམ་པར་གནས་པའི་ཕུང་པོའི་ངོ་བོ་ཡོད་པ་ལ་བརྟེན་ནས་དེ་དག་གསུངས་ཏེ། དེ་བས་ན་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡོད་པས་སེམས་ཅན་རྣམས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ཏེ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་མེད་ན་ནི་གསུང་བར་མི་འགྱུར་རོ།། འདིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་བཟུང་[3]བ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་ཟབ་པ་བརྗོད་དོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་ཐོགས་པ་མེད་པར་བསྟན་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་བསྟན་པ་གང་ཡང་མེད་ན་དེའི་ཚེ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་ཡང་མི་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་འབད་པ་དོན་མེད་པར་འགྱུར་རོ།། ཇི་སྐྱེད་ཆོས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པར་འདོད་ན་དེའི་ཚེ་བསྟན་པ་ཡང་ཡོད་དོ་སྙམ་དུ་གང་དག

---

[2] གོང་གི་དཔར་མ་འདི་ནི་མདོ་བཞིན་ནོ། དེ་དག་ནི་སེམས་ཅན་ཡང་མ་ཡིན་ སྣེ།
[3] གཟུང་ པེ། སྣ།

[༡]སེམས་པ་དེ་དག་གི་ཆེད་དུ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་དགོངས་པ་སྤྲོ་མ་བཟུང་ནས་དེ་ནི་མ་མཆིས་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།། དེ་འདི་སྙམ་[༢]དུ་སེམས་ཏེ། དོན་དམ་པ་ལ་དགོངས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བསྟན་པ་བཀག་གོ་སྙམ་མོ།། ཇི་ལྟར་དོན་དམ་པར་ཆོས་བསྟན་པ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ་ཡང་མེད་དེ་དེ་ནི་སྟོར་བསྟན་ཏོ།།

ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་བསྟན་པ་དང་། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་དང་། དེའི་རྒྱུའི་ལམ་ཡང་ཡོད་པ་ཉིད་དོ།། དེ་བས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་འབད་པར་བྱ་སྟེ། འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་[༣]ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། སྟོར་ནི་གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བའི་དུས་ན་མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་ལ་དོན་དམ་པའོ་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་སེལ་ལོ། ད་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བའི་དུས་ན་གཞན་དག་གི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་ལྟ་བུ་སེལ་བས་ཚིག་ཀློས་པའི་ཉེས་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་རྣམ་པར་གཞག་པ་དེ་ཅི་འདྲ་བ་སྙམ་པ་ལ་ཙུང་ཟད་ཀྱང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཡེ་ཤེས་གང་ལ་བཞུགས་པ་ན་བཅོམ་ལྡན་

---

[༡] གང་དག་དེ་སྙམ་ པེ། སྣ།

[༢] སྙམས་ སྡེ།

[༣] དཔའ་ སྡེ།

འདས་ཀྱིས་རང་གི་མཚན་ཉིད་འཛིན་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཆོས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཕྲ་མོ་ཡང་མི་དམིགས་ཤིང་མ་ལུས་པར་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་དེ་ནི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བོ།། ཕྱི་རོལ་པ་དང་སློབ་པ་དང་མི་སློབ་པའི་ཤེས་པ་གང་དག་ལས་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པས་བླ་ན་མེད་པའོ།། དངོས་པོ་མཐའ་དག་གི་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་པས་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཅེས་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། དེ་ལ་ཆོས་རྣམས་མི་དམིགས་པའི་གཏན་ཚིགས་སུ་མེད་ཅེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། གང་གི་ཕྱིར་མེད་པ་དེའི་ཕྱིར་མི་དམིགས་ཀྱི་ཡོད་བཞིན་དུ་མི་དམིགས་པ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། ཆོས་ཐམས་ཅད་ཡོད་ན་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་[2]དམིགས་པའི་རིག་བྱེད་ཉིད་དུ་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཆོས་དེ་ནི་མཉམ་པ་སྟེ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དེས་རྟོགས་པའི་ཆོས་ཐམས་ཅད་དུ་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་མཚུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།། མི་མཉམ་པ་གང་ཡང་མེད་ཅེས་བྱ་བ་ནི་ཐམས་ཅད་དུ་དེ་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པའི་ཕྱིར་ཏེ། བདག་ཏུ་འཛིན་པའི་རྒྱུ་[3]དངོས་པོར་མངོན་པར་ཞེན་པ་སྤངས་པའི་ཕྱིར་རོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་བག་ཆགས་དང་བཅས་པ་སྤངས་པ་སྟེ། དེའི་ཕྱིར་དེ་ཉིད་ཀྱི་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང

[2] ཀྱིས་ པ། སྣ།

[3] རྒྱུད་ སྟེ།

ཆུབ་ཅེས་བྱ་སྟེ། གཞན་དག་གི་[༡]ནི་མ་ཡིན་ནོ།། ཚུལ་གང་གིས་ཆོས་དེ་མཉམ་སྙམ་པ་ལ། སེམས་ཅན་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་ཇི་ལྟར་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། དེ་ཇི་ལྟར་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱ་སྙམ་པ་ལ། དགེ་བའི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་ཀྱི་བདག་ཉིད་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཀྱིས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ།

གལ་ཏེ་མེད་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཅུང་ཟད་ཀྱང་མི་དམིགས་ན་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཡོད་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར་ཏེ། གང་གི་ཕྱིར་དེ་དག་གིས་[༢]མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱ་སྙམ་པ་ལ། དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། དོན་དམ་པར་ནི་ཆོས་རྣམས་མེད་པ་ཉིད་དོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་ཡོད་པས་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཞེས་གསུངས་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཀྱིས་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་ཉེས་པ་མེད་དོ།། འདིས་ནི་སྒྲོ་འདོགས་པ་དང་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་འཛིན་པ་རྣམ་པར་གཡེང་བ་སེལ་བས་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། མ་ལུས་པས་གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་[༣]བདག་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ངོ་བོ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རང་གི་ངོ་བོ་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

---

༡ གིས་ པེ། སྣ།

༢ གི་ པེ། སྣ།

༣ ལས་ སྣ།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་དེ་ཇི་ལྟར་རིག་པར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པས་དེ་ཡོད་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཡང་རབ་འབྱོར་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། རིའི་རྒྱལ་པོ་རི་རབ་ཅེས་བྱ་བ་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་མཐའ་ཡས་པ་དག་རིན་པོ་ཆེས་ཡོངས་སུ་བཀང་སྟེ་བྱིན་པའི་བསོད་ནམས་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་དཔེར་མི་བཟོད་པ་ཉིད་དོ།། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་འདི་ལས་ཞེས་བྱ་བ་མཚན་མ་ཙམ་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པས་[2]ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་ཆོས་མཐའ་དག་མཚོན་ཏོ།། བར་དུ་ཞེས་བྱ་བའི་སྒྲས་ནི་སྟོང་གི་ཆ་དང་། འབུམ་གྱི་ཆ་དང་། དཔེ་དང་རྒྱུར་ཡང་ཞེས་བྱ་བ་དེ་དག་སྡུད་དོ།། དེ་ལྟར་ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པའི་རྒྱུས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་བླ་ན་མེད་པར་ཤེས་ཏེ། ཡང་དག་པར་བྱང་ཆུབ་པ་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུ་མེད་པར་ཆོས་འདི་ལྟ་བུ་བཤད་པར་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེའི་ཕྱིར་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་གནས་པར་བྱ་སྟེ། འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་ཏེ། འདི་ཉིད་ཀྱིས་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བརྗོད་དོ།། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་དེ་ཡང་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོར་བལྟ་བར་བྱའི་དོན་དམ་པར་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། སྔར་བཤད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དངོས་སུ་མ་གསུངས་ཀྱང་ཤུགས་ཀྱིས་ན་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་དང་། ཟབ་པ་[3]ཡང་བསྟན་ཏོ།།

---

[2] ཡོངས་སུ་མི་བརྗོད་པས་ སྡེ།

[3] ཟག་པ་ སྡེ།

བཅོམ་ལྡན་འདས་འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་ཡེ་ཤེས་ལ་བཞུགས་པའི་ཚེ་ནི་ཤིན་ཏུ་མཉམ་པར་གཞག་པས་སེམས་ཅན་ལ་སོགས་པའི་འདུ་ཤེས་ཀུན་ཏུ་མི་འབྱུང་བ་དེ་ངོ་མཚར་མི་ཆེའི། སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་ཕིགས་པར་ཐར་པའི་ལུང་དཔོག་པའི་ཚེ་མཉམ་པར་མ་བཞག་པའི་དུས་དག་པ་འཇིག་རྟེན་པའི་ཡེ་ཤེས་ལ་བཞུགས་པ་ན་ཡང་སེམས་ཅན་ལ་སོགས་པའི་འདུ་ཤེས་ཀུན་ཏུ་མི་འབྱུང་ངོ་ཞེས་དེ་སྟོན་ཅིང་གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པའི་རྒྱུས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཤེས་པར་འགྱུར་བར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོ་གདམས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྐམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དྲིས་ནས་ལན་ལ་མ་བཞིས་[༡]ཏེ། རིངས་པར་བྱ་བ་དང་ལྡན་པ་ལྟར་ཉིད་ཀྱིས། རབ་འབྱོར་དེ་ལྟར་མི་བལྟའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དེའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོའི་རྒྱུ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

ཅི་སེམས་ཅན་ནི་ཡོད་པ་ཉིད་ཡིན་ན་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པའི་རྒྱུར་འགྱུར་བས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེ་སྐམ་དུ་མི་དགོངས་སམ། འོན་ཏེ་སེམས་ཅན་མེད་པའི་ཕྱིར་རམ་སྐམ་དུ་སེམས་པའི་བསམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེས་ཞུས་པ་དང་། ཕུང་པོ་དང་གང་ཟག་གི་བདག་ཉིད་ཀྱི་སེམས་ཅན་དོན་དམ་པར་གང་ཡང་མེད་པས་དེ་ལྟར་མི་དམིགས་སོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བསྒྲལ་བའི་སེམས་ཅན་དེ་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བྱ་

---

༡ བཞིངས་ ཞྲེ།

བ་གསུངས་སོ།། འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་འདི་ལ་ཇི་ལྟར་[1]རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་བསླབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།།

མེད་པར་ཇི་ལྟར་ཤེས་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ཤེས་བྱ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་འཇུག་[2]གོ། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་སྒྲིབ་པ་མ་སྤྱངས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། དེའི་ཕྱིར་གལ་ཏེ་སེམས་ཅན་ཡོད་ན་དེའི་ཚེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་དག་ཤིན་ཏུ་གཟིགས་པར་འགྱུར་ཏེ། བདག་མངོན་སུམ་དུ་དམིགས་པས་ཐེ་ཚོམ་མི་མངའ་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ཉིད་དེའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་དམ་པོར་འགྱུར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་དེའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པའི་རྒྱུ་ལས་བྱུང་བ་ཉོན་མོངས་པའི་དྲ་བ་མ་ལུས་པའི་འཆིང་བ་ཡང་དམ་པོ་[3]རབ་ཏུ་འགྱུར་བས་དེའི་ཚེ་འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་¬འི་འཆིང་བ་ཤིན་ཏུ་དམ་པོའི་སྒྲིབ་པ་མ་སྤྱངས་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གོ་འཕང་མི་བརྙེས་པ་ཞིག་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གོ་འཕང་དེ་བརྙེས་པས་དེའི་ཕྱིར་དེ་ནི་སྒྲིབ་པ་མཐའ་དག་སྤྱངས་པའོ།། སྒྲིབ་པ་སྤྱངས་པས་བདག་ཏུ་འཛིན་པའི་རི་མཐའ་དག་བཤིག་གོ། དེའི་ཕྱིར་སེམས་ཅན་མེད་པར་མི་ཤེས་སོ།།

བདག་མེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་སྟེ། བདག་ཏུ་ལྟ་བའི་མཚན་ཉིད་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ནམ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཇི་ལྟར་བདག་ལ་སོགས་པར་འདུ་ཤེས་པར་མི་བྱ་སྙམ་པ་ལ། རབ་འབྱོར་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཞེས་བྱ

---

[1] ཅི་ལྟར་ སྣེ།

[2] འདུག་ པེ།

[3] ཡང་བའམ་ སྣེ།

བ་[༡]ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། གལ་ཏེ་དེས་བདག་ལ་སོགས་པའི་དངོས་པོ་འགའ་ཞིག་བཟུང་ན་ནི་དེའི་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་སྒྲིབ་པ་སྤངས་པ་དེའི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ཀུན་ཏུ་འབྱུང་བར་འགྱུར་བ་ཞིག་ན་བདག་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་གང་ཡང་མེད་པས་འཛིན་པ་མེད་པ་ཉིད་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་སོ།།

འོ་ན་ཇི་ལྟ་བུ་ལ་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་སྙམ་པ་ལ། དེ་ཡང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཐོས་པ་ལ་སོགས་པ་དང་མི་ལྡན་པའི་སྤང་བར་བྱ་བ་དང་བླང་བར་བྱ་བ་མངོན་པར་མི་ཤེས་པའི་ཕྱིར་བྱིས་པ་རྣམས་སོ།། རྟོག་པ་དང་མི་ལྡན་པའི་ཕྱིར་འཕགས་པ་རྣམས་ལས་ཐ་དད་དུ་གྱུར་པས་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་སོ།། སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀུང་ཁ་ཅིག་ཡང་དག་པའི་བསྟན་བཅོས་མཉན་ནས་ཚུལ་བཞིན་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་ལ་གནས་པ་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་ལ་མོས་པ་ན་བདེན་པར་མངོན་པར་ཞེན་ནས་བདག་ཏུ་མི་འཛིན་པ་དེ་དག་རྣམ་པར་གཅད་པའི་ཕྱིར་བྱིས་པ་སྨོས་སོ།། བྱིས་པ་འབའ་ཞིག་སྨོས་ན་ནི་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་དེ་ལྟ་བུ་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་ལ་མཁས་པ་དག་ཀུང་འཕགས་པའི་ལམ་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་བྱིས་པ་དག་ཡིན་པས་བྱིས་པའི་བྱེ་བྲག་བསྟན་པའི་ཕྱིར། དེ་[༢]ནི་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ལོག་པ་ཡིན་དུ་ཟིན་ཀུང་བྱིས་པར་གྱུར་པས་དེ་དག་ལ་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ལྟ་བུར་སྣང་སྟེ། དེས་ན་དེའི་བསམ་པའི་དབང་གིས་བདག་ཏུ་འཛིན་པ་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།།

དེ་ཙམ་གྱིས་བདེན་པར་མི་འགྱུར་གྱི་ཐལ་བར་འགྱུར་ཏེ། བདག་མེད་པ་ལ་སོགས་པའི་སྒྲའི་སྒྲོར་བས་ཀུང་བདག་ལ་སོགས་པ་བདེན་པར་ཅིའི་ཕྱིར་མི་འཛིན། གལ་ཏེ་བདག་མེད་ན་སུ་ལ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཞེས་བྱ་སྙམ་པ་ལ། བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དོན་དམ་

---

[༡] རབ་འབྱོར་བདག་ཏུ་རབ་ཏུ་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ སྣ།

[༢] དེས་ པེ། སྣ།

པར་ནི་སྐྱེ་བོ་མེད་པ་ཉིད་དེ་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་གསུངས་པས་ཉེས་པ་མེད་དོ།། འདི་མཐའ་དག་གིས་[1]ནི་སློབ་འདོགས་པ་དང་སྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ་སེལ་བས་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། འདི་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ནི་དངོས་སུ་ཟབ་པ་ཉིད་བརྗོད་དེ།[2] སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་མ་ལུས་པ་ལ་གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོ་གདགས་པའི་རྒྱུར་བསྟན་པས་[3]ནི་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་མེད་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མཚན་དང་དཔེ་བྱད་བཟང་པོས་བརྒྱན་པའི་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་གྱུར་པ་རྣམས་ག་ལ་ཡོད་དེ། སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་བདག་ཉིད་སྙིང་རྗེའི་[4]རྩ་བ་ལས་བྱུང་བ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་བསྐྱེད་ནས། ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམས་ལ་སྦྱོར་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུ་མཚན་ལ་སོགས་པས་བརྒྱན་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་རྣམས་སུ་འགྱུར་ན་དེ་དག་མེད་ན་རྩ་བ་མེད་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ལྟ་བུ་དག་ཏུ་ཇི་ལྟར་འགྱུར་སྙམ་དུ་འཁོར་འདུག་པ་གང་དག་རྟོགས་པ་མི་ཉུང་བར་བསགས་པ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ལ་དངོས་པོར་མངོན་པར་ཞེན་པས་དེ་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེ་དག་གི་ཆེད་དུ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་གཟུང་བའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཐུར་ནི་

---

[1] གི་ སྣ།

[2] བརྗོད། པེ། སྣ།

[3] བསྟན་པ་ སྡེ།

[4] སྙིང་རྗེ་བའི་ པེ།

ཆོས་ཀྱི་སྐུ་རྣམ་པར་བཞག[1]པ་མ་མཛད་ཀྱི། དེ་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་རྣམ་པར་གཞག་པའི་ཕྱིར་འདི་གསུངས་པས་ཅིག་ཤོས་པའི་ཉེས་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ནི་དོན་དམ་པར་བརྟགས་ན་ཡན་ལག་ཅན་ནམ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་བསགས་པའི་ངོ་བོར་འཐད་པ་མེད་པར་རིག་ནས་དགོངས་པ་སྟེ་མ་ཉིད་བཟུང་སྟེ། འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་དེ་ནི་མ་ལགས་ཞེས་གསོལ་ཏོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་འདི་ཉིད་དུ་འཐད་པ་གཞན། རབ་འབྱོར་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ཙམ་གྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་ཡིན་ན་ནི་བརྗོད་པའི་རྒྱུ་མཚུངས་པའི་ཕྱིར་དེའི་ཚེ་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའི་རྒྱལ་པོ་ཡང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་ཅིའི་ཕྱིར་མི་འགྱུར། རྗེ་སྟེ་ཡུལ་ན་གནས་པ་དང་། གསལ་བ་དང་། རྫོགས་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བྱེ་བྲག་ཅན་ཡིན་གྱི། འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེས་ན་དེ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་མི་བྱའོ་ཞེ་ན་དེ་ཡང་མི་རིགས་ཏེ། ཡུལ་ན་གནས་པ་ལ་སོགས་པའི་བྱེ་བྲག་ཀྱང་བེམ་པོའི་ངོ་བོར་བྱེ་བྲག་གང་ཡང་མེད་དོ།། དེས་ན་གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་སེམས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་མཚན་ལ་སོགས་པའི་ཆོས་ཀྱིས[2]རབ་ཏུ་ཕྱེ་བར་འགྱུར་ན་ནི་དེའི་ཚེ་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བ་ཡང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་འགྱུར་བ་ཞིག་ན་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ནི་དངོས་པོ་མ་ལུས་པའི་རང་བཞིན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པ་ཙམ་གྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བར་དགོངས་པའོ།། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་སྐུ་རྣམ་པ་དེ་

[1] གཞག་ སྡེ། ཅོ།
[2] ཀྱི་ པེ།

ལྷ་བུ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

ད་ནི་དོན་དམ་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་དེ་ལ་ཡང་མངོན་པར་ཞེན་པར་མི་བྱའོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་རྣམ་པར་འཇོག་ཅིང་། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཇི་ལྟར་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པས་བསླབ་པར་བྱ་བ་དེ་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་གཉིས་ཀྱིས་སྟོན་ཏོ།།

དེ་ལ་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་གོང་མས་ནི་ཇི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་བལྟ་བར་མི་བྱ་བ་དང་། སུ་དག་གིས་མི་མཐོང་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། ཇི་ལྟར་བལྟ་བར་མི་བྱ་ཞེ་ན། མཐོང་བ་ལ་སོགས་པས་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་དག་ཏུའོ།། སུ་དག་གིས་མི་མཐོང་ཞེ་ན། ལོག་པས་སྤྱོང་བར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་སོ།། གཟུགས་སུ་མཐོང་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གང་ཟག་གཟུགས་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པ། དོན་དམ་པར་མཚན་ལ་སོགས་པས་བརྒྱན་པ་ཆོས་དང་གང་ཟག་གི་གཟུགས་ཅན་དུ་མཐོང་བར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་བསྟན་ཏོ།། སྒྲར་ཤེས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བདག་གིས་སྒྲ་ལས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེ་ནི་འདི་ལྟ་བུ་འདི་འདྲ་བ་ཞིག་གོ་ཞེས་དེ་ལྟར་ཤེས་སོ་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་ཐོས་པར་ཐ་སྙད་འདོགས་པ་བསྟན་ཏོ།། ཐ་སྙད་འདོགས་པ་འདི་གཉིས་ནི་མཚོན་པ་སྟེ། དེས་ནི་བྲེ་བྲག་ཕྱེད་པ་དང་། རྣམ་པར་ཤེས་པ་ཡང་བསྡུའོ།།

སྐྱེ་བོ་ལོག་པས་སྤྱོང་བར་ཞུགས་པ་དེ་དག་ནི་ལམ་ལོག་པར་ཞུགས་པས་ང་ཡང་དག་པར་མི་མཐོང་ངོ་།། འདིས་སྤྱོང་བས་ན་སྤྱོང་བར་བྱེད་པ་སྟེ་ལམ་ལ་བྱའོ།། དེ་ནི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་གྱུར་པས་ལོག་པ་སྟེ། དེ་ཡང་མི་མཐོང་བའི་རྒྱུ་ཡིན་ནོ།།

འོ་ན་སངས་རྒྱས་ཇི་ལྟར་བལྟ་བར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་ཆོས་ཉིད་བལྟ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཆོས་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་གཤིའ་མ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཆོས་ཉིད་ཅེས་བྱ་སྟེ། དེ་ཡང་རིགས་པ་དང་ལུང་གིས་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་གཟོད་མ་ནས་ཞི་བ་ལ་སོགས་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་ནོ།། དེ་ཉིད་དེ་བཞིན་ཉིད་དང་། ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་དང་། ཡང་དག་པའི་མཐའ་དང་། མཚན་མ་མེད་པ་དང་། དོན་དམ་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་གྲངས་སུ་བརྗོད་པའོ།།

དུས་ཐམས་ཅད་ན་དེ་བཞིན་དུ་ཡོད་པས་དེ་བཞིན་ཉིད་དོ།། དེ་ལ་དམིགས་ནས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་ཐམས་ཅད་འབྱུང་སྟེ། དེ་དག་གི་རྒྱུར་གྱུར་པས་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་སོ།། ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པས་ཡང་དག་པ་སྟེ། དེའི་མཐར་གྱུར་པས་ཡང་དག་པའི་མཐའ་འོ།། དེ་ལ་སྔོན་པོ་ལ་སོགས་པ་དངོས་པོའི་མཚན་མ་ཐམས་ཅད་མེད་པས་མཚན་མ་མེད་པའོ།། ཡེ་ཤེས་དམ་པའི་སྤྱོད་ཡུལ་ཡིན་པས་དོན་དམ་པའོ།། ཅིའི་ཕྱིར་དེ་ཆོས་ཉིད་དུ་བལྟ་བར་བྱ་སྙམ་པ་ལ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། སྐུའི་སྒྲ་ནི་རང་བཞིན་ལ་བྱའོ།། དེས་ན་དོན་འདིར་འགྱུར་ཏེ། གང་དག་ཡང་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན་གྱི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་རྣམ་པར་གཞག་པ་དེ་དག་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཏེ། གང་དག་གང་གི་རང་བཞིན་ཡིན་པ་དེ་དག་དེའི་ངོ་བོར་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། གཞན་ལ་གཞན་གྱི་ངོ་བོར་བལྟ་བ་མ་ཡིན་ནོ།། གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་ཆོས་ཉིད་ནི་སྣང་བའི་རང་བཞིན་དུ་འགྱུར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་དེས་མཚོན་པ་དེ་དག་ཇི་ལྟར་མཐོང་བར་ནུས་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས། ཆོས་ཉིད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་གསུངས་སོ།།

ཅི་མི་ནུས་པའི་ཕྱིར་མི་རིག་གམ། འོན་ཏེ་ཡོངས་སུ་ཤེས་ན་ཉེས་པ་དང་བཅས་པར་འགྱུར་བའི་ཕྱིར་རམ་སྙམ་པ་ལ་མི་ནུས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། ཆོས་ཅན་གྱི་རང་བཞིན་དུ་གྲུབ་ན་ནི་དེའི་ཆོས་ཉིད་རྣམ་པར

ཤེས་པར་ནུས་པ་ཞིག་ན་གང་གི་ཚེ་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཅན་རང་གི་ངོ་བོར་གྲུབ་པ་གང་ཡང་མེད་པ་དེའི་ཚེ་ཆོས་ཉིད་དེ་རང་གི་རྒྱུད་[1]འབའ་ཞིག་རྣམ་པར་ཤེས་པར་ཇི་ལྟར་ནུས་ཏེ། དེ་འབའ་ཞིག་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཞེས་དགོངས་པའོ།།

གལ་ཏེ་དེ་ལྟ་ན་ཡང་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ངོ་བོ་ཆོས་ཅན་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱང་དོན་དམ་པར་མ་གྲུབ་པས་མཐོང་བ་མེད་ན་ཇི་ལྟར་ཆོས་ཉིད་དུ་བལྟ་ངར་བྱ་ཞེ་ན། དེ་ཉེས་པ་མེད་དེ། གང་དག་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཅན་ཐམས་ཅད་མི་མཐོང་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ཆོས་ཉིད་མཐོང་བའོ།། ཆོས་ཉིད་ནི་སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ངོ་བོ་ཡིན་པས་དེ་ནི་དེ་དང་མི་འདྲ་བ་སྐྱེ་བ་འཛིན་པས་ཇི་ལྟར་གཟུང་། བྱམས་པ་འཛིན་པས་ནི་དེའི་སྐྱེ་བ་མེད་པ་འཛིན་[2]པར་མི་འགྱུར་རོ།། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གཟུགས་ཀྱི་སྐུར་བལྟ་བར་མི་བྱའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུར་བལྟ་བར་བྱའོ་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་རང་བཞིན་མ་ཡིན་དུ་ཟིན་ཀྱང་། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ནི་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་རྒྱུ་ལས་བྱུང་བར་རིགས་པ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔར་གྱུར་པ་ནི་མཚན་མཁན་རྣམས་ཀྱིས་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་མཐོང་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་འཚང་བསྟན་ཏོ་སྙམ་དུ་གང་གི་[3]དོགས་པ་དེ་སྤོང་བའི་ཕྱིར་རབ་འབྱོར་འདི་ཇི་སྙམ་དུ་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

གལ་ཏེ་མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ [illegible]

[1] རང་རྒྱུད་ [illegible] པ།

[2] ཟིན་ [illegible]

[3] [illegible]

ཀྱི་རྒྱུར་འགྱུར་ན་ནི་དེའི་ཚེ་འཁོར་ལོས་[1]སྐྱུར་བ་ཡང་འགྱུར་རོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།། མཚན་མཁན་རྣམས་ཀྱིས་རྣམ་པ་དེ་ལྟ་བུའི་མཚན་མ་ཞིག་མཐོང་ནས་ལུང་བསྟན་གྱི་རྒྱུ་ནི་མ་ཡིན་དེ་ཉེས་པ་མེད་དོ།།

འདིས་ནི་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་མཐའ་དག་དག་གིས་ནི་ཟབ་པ་ཉིད་བསྟན་ཏོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ཡེ་ཤེས་དངོས་པོ་མ་ལུས་པའི་རང་བཞིན་ཐུགས་སུ་ཆུད་པའི་མཚན་ཉིད་བསྟན་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་དོན་དམ་པར་ཆོས་ཐམས་ཅད་མེད་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཉིད་དེ་རྣམ་པར་ཤེས་པར་མི་ནུས་ན་དེ་ལྟ་ན་ནི་ཁྱད་ཆད་པར་སྨྲ་བར་འགྱུར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཡང་མེད་པས་མི་གནས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ཡང་མི་འགྲུབ་པོ་སྙམ་དུ་གང་དོགས་པ་དེའི་ཆེད་དུ་འཁོར་བ་དང་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ལ་མི་གནས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། རབ་འབྱོར་ཁྱེད་འདི་སྙམ་དུ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་[2]ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། བྱང་བ་རྣམ་པར་བཤིག་པར་བརྟགས་པ་ཡང་མེད་དེ། ཆོས་ཉིད་ཇི་ལྟར་གནས་པ་བཞིན་དུ་རྟོགས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེ་བས་ན།[3]

འདི་ལ་བསལ་བྱ་ཅི་ཡང་མེད། །
གཞག་པར་བྱ་བའང་ཅི་ཡང་མེད། །[4]

---

[1] འཁོར་ལོ་ པེ།

[2] མདོར་བྱེད་སྣ་གསལ།

[3] སྡེ་བསྟན། ༣༧༨༧ ཤེར་ཕྱིན། "ཀ" ཕ།༣

[4] གཞག་པར་བྱ་བ་ཅུང་ཟད་མེད། མདོ་ ཀ

ཡང་དག་ཉིད་ལ་ཡང་དག་བལྟ། །
ཡང་དག་མཐོང་བ་རྣམ་པར་གྲོལ། །

ཞེས་བཤད་དོ།། མ་འོངས་པའི་ཆོས་འབྱུང་བའི་གེགས་བྱེད་པས་ཆད་པར་བརྟགས་པ་ཡང་མེད་དེ། ཆོས་ཉིད་ཇི་ལྟར་གནས་པ་བཞིན་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི་མ་བརྟགས་ན་དགའ་བར་རྐྱེན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་སྐྱེ་བར་ཁས་བླངས་པས་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཐུགས་རྗེ་ཆེན་པོའི་དབང་གིས་སྤྲུལ་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་མངའ་བརྙེས་པ་ཡང་འདུལ་བ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ཐབས་སྟོན་པས་འཁོར་བར་འཇུག་པའི་རྒྱུན་མི་གཅོད་པར་ཁས་བླངས་པའི་ཕྱིར་འདིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ལ་མི་གནས་པ་བསྟན་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྐུ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་འཁོར་བར་འཇུག་པར་ཁས་བླངས་པས་འཁོར་བ་དེ་ཉིད་དུ་འགྱུར་བ་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་པ་ཉིད་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། བདག་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་གཞན་གྱི་དབང་གི་ཕྱིར་རོ།། རང་གིས་བདག་གི་རང་བཞིན་མ་ཡིན་ཏེ། རྟག་པ་ནི་རིམ་དང་རིམ་མ་ཡིན་པས་རྒྱུར་འགལ་བའི་ཕྱིར་ལ། རྒྱུ་མ་ཡིན་པ་ནི་ཅི་ཡང་མི་བྱེད་པས་བྱིན་གྱིས་རློབ་པ་པོར་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བདག་གཞན་གྱིས་བྱིན་གྱིས་བརླབས་པ་ཡང་མེད་དེ། དེའི་ཕྱིར་རྣམ་པ་གཉིས་ཀར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི་བདག་མེད་པ་དེ་དག་སྟེ།

ཇི་སྐད་དུ། ¨དགེ་སློང་དག་བྱིས་པ་ཐོས་པ་དང་མི་ལྡན་པ་རྣམས་ལ་བདག་དང་བདག་གི¨ཞེས་འདོགས་ཤིང་འཇུག་གི[1]འདི་ལ་ནི་བདག་དང་བདག་གི

[1] གིས་ སྡེ།

མེད་དེ་ཞེས་གསུངས་པ་ལྟ་བུའོ།། འདིས་ནི་ཆོས་ཐམས་ཅད་ལ་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པའི་བཟོད་པ་བསྟན་ཏོ།། སྐྱེ་བ་མེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པའི་བཟོད་པ་བསྟན་ཏོ།།

འདི་ལྟར་དངོས་པོ་རྣམས་སྐྱེ་བར་འགྱུར་ན་ནི་རྒྱུ་མེད་པའམ་རྒྱུ་དང་བཅས་པ་ལས་འགྱུར་གྲང་། རྒྱུ་དང་བཅས་པ་ཡང་རྒྱུ་རྟག་པའམ། རྒྱུ་མི་རྟག་པ་ལས་འགྱུར་བར་རྣམ་པར་རྟོག་གྲང་ན། དེ་ལ་དངོས་པོ་རྣམས་རིམ་འགའ་སྣང་བས་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་པོ་ལྟར་ནི་མི་རུང་སྟེ། ལྟོས་པ[1]མེད་པ་ནི་ཐམས་ཅད་དུ་བྱེ་བྲག་མེད་པས་ཡོད་པ་དང་མེད་པའི་དུས་བཞིན་དུ་རྟག་པར་ཡོད་པའམ་མེད་པ་ཞིག་ཏུ་འགྱུར་རོ།།

དེ་བས་ན་རིམ་འགའ་འབྱུང་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གཉིས་པ་ལྟར་ཡང་མི་རུང་སྟེ། རྟག་པ་དག་གི་ནུས་པ་གྲོགས་བྱེད་པ་གཞན་དག་གིས་བྱེ་བྲག་ཏུ་བྱར་མེད་པ་ན་སུ་ལ་ཡང་ལྟོས་པ[2]མེད་ན་གང་གིས་འབྲས་བུ་རིམ་གྱིས་སྐྱེད་པ[3]ཅིག་ཅར་མ་ཡིན། རྒྱུ་མ་ཚང་བ་མེད་པའི་འབྲས་བུ་ནི་རིམ་འགའ་མི་སྣང་བ་མི་རིགས་ཏེ། གང་གིས་ན་རིམ་གྱིས་འབྱུང་བར་འགྱུར།

གང་དག་ངོ་བོ་ཉིད་དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་རྒྱུར་སྨྲ་བ་དེ་དག་ཀྱང་དོན་དུ་ན་མེད་པ་ཉིད་ཁས་བླངས་པ་ཡིན་ཏེ། འདི་ལྟར་ངོ་བོ་ཉིད་གྲུབ་པ་ནི་རྒྱུར་འགྱུར་གྱི། མ་གྲུབ་པ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་ནུས་པ་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ།། དངོས་པོའི་ངོ་བོ་ཉིད་དེ་གྲུབ་པ་ན་རྒྱུ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱིས་གྲུབ་པར་ཁས་བླངས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་དང་ཐ་དད་པ་གཞན་རྒྱུ་གཞན་ནི་མི་འདོད་ན་གང་གིས་རྒྱུ

---

[1] བལྟོས་པ་ པེ། སྣ།
[2] བལྟོས་པ་ པེ། སྣ།
[3] སྐྱེས་ལ་ པེ།

མེད་པར་མི་འགྱུར། དངོས་པོ་ནི་ངོ་བོ་ཉིད་ལས་གཞན་མ་ཡིན་པས་དེ་འགྲུབ་པ་ན་འགྲུབ་སྟེ། རྒྱུ་མེད་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་དེ་གྲུབ་པ་ན་མ་གྲུབ་པས་དེ་དང་ཐ་མི་དད་པའི་ངོ་བོར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། དེ་བས་ན་རྒྱུ་མེད་པར་སྨྲ་བའི་ཕྱོགས་བཤིག་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་འདིར་ཡང་མཚུངས་སོ།།

དུས་མཉམ་པ་དང་མི་མཉམ་པ་ལས་རྒྱུར་འགལ་བའི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གསུམ་པ་ལྟར་ཡང་མི་རུང་སྟེ། འདི་ལྟར་དེ་རྒྱུར་འགྱུར་ན་ནི་འབྲས་བུ་དང་དུས་མཉམ་པའམ་དུས་ཐ་དད་པར་འགྱུར་གྲང་ན། དུས་མཉམ་པ་ལས་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། བདག་གི་དེ་ཁོ་ན་རང་གི་མ་ཐོབ་པ་ནི་ནུས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་སྟོང་བས་འབྲས་བུ་ལ་ཡང་སྦྱོར་བ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། བདག་གི་དེ་ཁོ་ན་ནི་དེའི་རང་བཞིན་ལྟར་འབྲས་བུ་ཡང་དེ་དང་དུས་མཉམ་པར་ཐོབ་པའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོ་ཁོ་ན་སྟེ། འབྲས་བུ་དེ་ལ་དེ་སྦྱོར་བ་མེད་དོ།།

དུས་ཐ་དད་ན་ཡང་དེ་དུས་གཞན་གྱིས་ཆོད་ནས་འགྱུར་ཏེ། དཔེར་ན་བྱེ་བྲག་ཏུ་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱིས་རྣམ་པར་སྨིན་པའི་རྒྱུ་ལ་རྒྱུར་འདོད་པ་ལྟ་བུར་འགྱུར་བའམ། མ་ཆོད་པ་ལས་འགྱུར་ཏེ། དཔེར་ན་མདོ་སྡེ་པ་དག་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་འཛིག་པ་དང་སྐྱེ་བ་ནི་སྲང་མདའི་མཐོན་དམན་ལྟར་མཉམ་མོ་ཞེས་ཟེར་བ་ལྟར་འགྱུར་གྲང་ན། དེ་ལ་དུས་གཞན་གྱིས་ཆོད་ནས་འབྲས་བུ་སྐྱེ་ན་ནི་རྣམ་པར་ཞིག་པ་ཉིད་ལས་སྐྱེས་པར་ཁས་བླངས་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ནི་ནུས་པ་ཐམས་ཅད་དང་བྲལ་བས་རྣམ་པར་ཞིག་པ་ནི་རྒྱུའི་དངོས་པོར་མི་རིགས་སོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་བྱེད་པ་མ་ཡིན་པ་ཞིག་པའི་དངོས་པོ་རྣམ་པར་ཞིག་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར།

མ་ཆོད་པའི་ཕྱོགས་ཀྱང་གལ་ཏེ་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་དང་མ་ཆོད་པ་ནི་དེའི་ཚེ་དེ་ཉིད་དུ་དུས་མཉམ་པར་འགྱུར་ཏེ། དངོས་པོ་ཆ་མེད་པ་གཉིས་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་མ་ཆོད་ན་དུས་གཅིག་ཏུ་འགྱུར་བ་མ་གཏོགས་པར་འགྲོ་བ

གཞན་མེད་དོ།། དེའི་ཕྱིར་ཇི་ལྟར་རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་བདག་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཆོད་ན་གོང་དུ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཙམ་དུ་འགྱུར་བ་དེ་བཞིན་དུ་བསྐལ་པ་ཡང་སྐད་ཅིག་ཙམ་དུ་འགྱུར་བ་བཟློག་པར་དཀའོ།། ཕྱོགས་གཅིག་གིས་མ་ཆོད་ན་ནི་ཡན་ལག་དང་བཅས་པར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པ་ཉིད་དེ། མ་བརྟགས་ན་དགའ་བ་བརྟེན་པ་ཉིད་ཀྱིས་སྐྱེ་བ་ལྟ་བུར་སྣང་བར་ཟད་དེ། འཁྲུལ་བའི་ཤེས་པ་ལ་སྣང་བའི་ངོ་བོ་དང་འདྲའོ།། གྲགས་པ་ཙམ་ནི་ཚད་མ་མ་ཡིན་ན་དངོས་པོའི་རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་བ་ལང་རྫི་[1]ཡན་ཆད་ལ་གྲགས་པའི་ཕྱིར་གཞིག་པ་མི་རིགས་སོ་ཞེས་སྨྲ་བ་གང་གིས་རིགས་པར་འགྱུར། གྲགས་པ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ནི་ཚད་མས་ཤིགས་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་**ལྷ་བའི་སྤྲིན་མེའི་མདོ་**ལས།[2] མིག་ལ་སོགས་པའི་ཚད་མ་རྣམས་བཀག་སྟེ།

མིག་དང་རྣ་བ་སྣ་ཡང་ཚད་མ་མིན། །
ལྕེ་དང་ལུས་དང་སེམས་ཀྱང་ཚད་མ་མིན། །
གལ་ཏེ་དབང་པོ་འདི་དག་ཚད་ཡིན་ན། །
འཕགས་པའི་ལམ་གྱིས་སུ་ལ་ཅི་ཞིག་བྱ། །

འདི་ལྟར་དབང་པོ་འདི་དག་ཚད་མིན་ཏེ། །
ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱིས་བེམས་པོ་ལུང་མ་བསྟན། །
དེ་ཕྱིར་མྱ་ངན་འདས་པའི་ལམ་འདོད་གང་། །
དེས་ནི་འཕགས་པའི་ལམ་གྱིས་བྱ་བ་བྱེས།[3] །

---

[1] འབྲས་བུ་གང་རྫི་ ཕོ། སྣ།
[2] སྡེ་བཀའ། ༡༢༧ མདོ་སྡེ། "ད" ལེའུ ༦ ཤོག ༢༣–༣༨ ཤོག ༢༤
[3] མདོ་ལས། ༡༢༧ མདོ་སྡེ། "ད" ཤོག ༢༤

ཞེས་གསུངས་སོ།། སློབ་དཔོན་དག་གིས་མངོན་སུམ་གྱི་མཚན་ཉིད་གསུངས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་མངོན་སུམ་སྟེ། དོན་དམ་པ་ལ་འཇུག་པར་བལྟ་བར་བྱའོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ནི་མཐུན་པར་བརྐྱལ་ཞིང་བརྟག་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན་དེ་ནི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་བརྟག་མི་བཟོད་པའོ།། དེ་བས་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་**སཱ་ལུ་ལྗང་པ**་ལ་སོགས་པ་ལ་བདག་དང་གཞན་ལས་དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་སྐྱེ་བ་བཀག་གོ།

དེ་སྐད་དུ་**འཕགས་པ་ལང་ཀར་གཤེགས་པ**་ལས་ཀྱང་།[2] "བློ་གྲོས་ཆེན་པོ་ཡོད་པ་དང་མེད་པ་ལས་མི་སྐྱེ་པའི་ཕྱིར་ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི་མ་སྐྱེས་པའོ" ཞེས་གསུངས་སོ།། ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ཆེན་པོ་ལས་གསུངས་པ། རབ་འབྱོར་ཆོས་ཅུང་ཟད་ཀྱང་མ་སྐྱེས་པ་དེ་ནི་སྐྱེ་བ་མེད་པའོ་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ལ་ཤེས་རབ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་མི་སྐྱེ་བའི་ཆོས་ལ་བཟོད་པ་ཞེས་བྱའོ།། དེ་སྐད་དུ། **དཀོན་མཆོག་འབྱུང་གནས་ཀྱི་མདོ**་ལས་ཀྱང་།[3]

གང་ལ་རང་བཞིན་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། །
རང་བཞིན་མེད་པས་གཞན་རྐྱེན་ཇི་ལྟར་འགྱུར། །
རང་བཞིན་མེད་པས་གཞན་ནི་ཇི་ལྟར་བསྐྱེད། །
རྒྱུ་དེ་བདེ་བར་གཤེགས་པས་རབ་ཏུ་བསྟན། །

།འདི་ལྟར་ཕུང་པོ་འདི་དག་ཚད་མེད་ཞིང་། །ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱིས་བེམས་པོ་ལུང་མ་བསྟན།
།དེ་ཕྱིར་མྱ་ངན་འདའ་བའི་ལམ་འདོད་པ། །དེ་ནི་འཕགས་པའི་ལམ་གྱིས་བྱ་བ་བྱོས།

[2] སྡེ་བཀའ། ༡༠༧ མདོ་སྡེ། "ཅ" ཤོག ༡༠༨

[3] སྡེ་བཀའ། ༡༣༨ མདོ་སྡེ། "ཐ" ཤོག ༣༤༥
།གང་གི་ངོ་བོ་ཉིད་ནི་མི་རྙེད་པར། རང་བཞིན་དེ་མེད་ཇི་ལྟར་གཞན་གྱི་རྐྱེན།
།རང་བཞིན་མེད་པ་གཞན་གྱིས་ཅི་ཞིག་སྐྱེད། །རྒྱུ་དེ་བདེ་བར་གཤེགས་པས་བསྟན་པའོ།

ཞེས་གསུངས་སོ།། ཡང་།[2]

དངོས་པོ་སྐྱེ་བ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ། །
དམ་པའི་དོན་དུ་རང་བཞིན་མེད། །

ཅེས་ཀྱང་གསུངས་སོ།། གལ་ཏེ་འདི་ཐམས་ཅད་ནི་ཀུན་བརྟགས་པའི་ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱི་དབང་དུ་མཛད་ནས་གསུངས་སོ་ཞེ་ན། མ་ཡིན་ཏེ། ངོ་བོ་ཉིད་ཐམས་ཅད་ནི་ཚད་མས་བསལ་ཟིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་དགེ་བའི་རྩ་བ་ཆུང་ངུ་དང་ལྡན་པ་གཞན་ཡང་འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ་མི་མྱོང་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་མི་སྐྱེ་བའི་ཆོས་ལ་བཟོད་པ་ཐོབ་པའི་ཕྱིར་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྣང་བ་ཆེན་པོ་སྐྱེས་པ་བླ་ན་མེད་པའི་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྐྱེད་པ་བརྙེས་པ་ལྟ་ཅིའི་ཕྱིར་འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ་མྱོང་བར་འགྱུར་ཞེས་དེ་སྐད་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

འདི་ལྟར་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་འཁོར་བ་ན་སྡུག་བསྔལ་མྱོང་བར་འགྱུར་ཏེ། ལུས་དང་[3]ཡིད་མི་བདེ་བའི་མཚན་ཉིད་དོ།། དེ་ལ་ཐ་མ་ནི་སྡིག་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུའོ།། ཅིག་ཤོས་ནི་གདི་མུག་ལས་སྐྱེས་པ་སྟེ། ལོག་པར་རྟོགས་པ་ལས་སྐྱེས་པའོ།། དེ་ལ་མི་སྐྱེས་པའི་ཆོས་ལ་བཟོད་པ་ཐོབ་པས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ལ་ནི་སྡུག་བསྔལ་གྱི་རྒྱུ་སྡིག་པ་དང་། གདི་མུག་གཉི་ག་མེད་དོ།། རྒྱུ་མེད་པས་སྡུག་བསྔལ་གྱི་བག་གིས་རེག་མི་སྲིད་དོ།། འདིས་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།།

[2] སྡེ་བཀའ། ༡༠༧ མདོ་སྡེ། "ཙ" ཤོག ༡༧༥
།དངོས་པོ་སྐྱེ་བ་ཀུན་རྫོབ་ཏུ། །དམ་པའི་དོན་དུ་རང་བཞིན་མེད།
།རང་བཞིན་མེད་ལ་འཁྲུལ་པ་གང་། །དེ་ནི་ཡང་དག་ཀུན་རྫོབ་འདོད།

[3] ལུས་ཀྱི་དང་ པེ། སྣ།

བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཤིན་ཏུ་མང་བ་བསྐྱེད་ཟིན་ཀྱང་གཟུགས་ན་སྤྱོད་པ་ལ་སོགས་པའི་སེམས་ཅན་རྣམས་ལྟར་འཁོར་བ་ཉིད་དུ་མི་འགྱུར་རམ། ཇི་ལྟར་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་མང་དུ་བསྐྱེད་པ་ཙམ་གྱིས་འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་པ་ཉིད་དུ་བསྟན་སྟམ་དུ་དོགས་པ་ལ་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

འདིས་ནི་གང་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་བསྐྱེད་དུ་ཟིན་ཀྱང་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་ཡོད་པ་དེའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྩ་བ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་མ་སྤངས་པས་འགྲོ་བ་ཁྲུད་པར་ཅན་ཐོབ་ཀྱང་འཁོར་བ་པར་རྣམ་པར་གཞག་གོ།[༡] བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ནི་མི་སྐྱེ་བའི་ཆོས་ལ་བཟོད་པ་ཐོབ་པས་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་བདེན་པ་ཉིད་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་མེད་དེ། དེས་ན་དེའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྩ་བ་ཤིན་ཏུ་རྨོངས་པ་སྤངས་པའི་[༢]ཕྱིར་འཁོར་བ་ལ་མི་གནས་སོ་ཞེས་དེ་སྐད་སྟོན་ཏོ།། གཞན་དག་གི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར་འཕགས་པ་རབ་འབྱོར་གྱིས་དགོངས་པ་མ་བཟུང་བ་ལྟར་ཡོངས་སུ་གཟུང་[༣]བར་མི་བགྱི་ལགས་སམ་ཞེས་འགལ་བ་བརྗོད་དོ།།

དེའི་བསམ་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མདོ་དེ་དང་དེ་དག་ཏུ་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་ཡོངས་སུ་གཟུང་ངོ་ཞེས་གསུངས། འདིར་ནི་ཡོངས་སུ་གཟུང་བར་མི་བྱའོ་[༤]ཞེས་གསུངས་ན་ཇི་ལྟར་

---

༡ བཞག་གོ་ པེ། སྣ།

༢ སྤང་པའི་ པེ། སྣ།

༣ བཟུང་ པེ། སྣ།

༤ བཟུང་བར་བྱའོ་ པེ། སྣ།

འགལ་བར་མི་འགྱུར་སྙམ་མོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཀྱང་དགོངས་པ་གང་གིས་གཉི་ག་གསུངས་པ་དེ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡོངས་སུ་གཟུང་མོད་ཀྱི་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཡོངས་སུ་གཟུང་ཞེས་གང་གསུངས་པ་དེ་ནི་ཉེ་བར་བསྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད་ཡོངས་སུ་གཟུང་བའི་ཚུལ་ལོ།།

འདིར་ནི་ལོག་པར་འཛིན་པའི་མཚན་ཉིད་སེལ་ཏེ་འགལ་བ་མེད་དོ།། ལོག་པར་འཛིན་པ་ནི་ལམ་ལོག་པར་འཛིན་པའོ།། འདིས་ནི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དེ་སྤོང་བས་སེམས་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་བསྟན་ཏོ།། ཡང་རབ་འབྱོར་རིགས་ཀྱི་བུའམ་རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་གང་གིས་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། ལྷག་མ་སྔ་མ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་རྟག་པ་དང་ཆད་པའི་མཐའ་བཀག་ནས་དབུ་མའི་ལམ་བརྗོད་དོ།། འཁོར་བ་དང་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ལ་མི་གནས་པ་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

བཞུགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་བརྗོད་པར་བྱའོ།། དེ་ཡང་རྣམ་པ་གསུམ་དུ་དབྱེ་སྟེ། སྤྱོད་ལམ་གྱིས་བཞུགས་པ་དང་། སྣོད་དང་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ལ་མངའ་བས་བཞུགས་པ་དང་། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པའོ།། དེ་ལ་གལ་ཏེ་སངས་རྒྱས་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུར་བལྟའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུར་མ་ཡིན་ན་དེའི་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྤྱོད་ལམ་བཞི་དང་། བལྟམས་པ་དང་། མངོན་པར་འབྱུང་བ་ལ་སོགས་པ་ལུང་ལས་གྲགས་པ་དང་ཇི་ལྟར་འགལ་བར་མི་འགྱུར་ཞེས་གང་དེ་སྙམ་སེམས་པ་དེའི་ཆེད་དུ་ཞུགས་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་སྤྱོད་ལམ་གྱིས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། ཡང་རབ་འབྱོར་གང་ལ་ལ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

བཞུད་དམ་བྱོན་ཞེས་བྱ་བ་གཉིས་ཀྱིས་ནི་འཆག་པ་བསྟན་ཏོ།། ལྷག་མ་རྣམས་ནི་བཞེངས་པ་ལ་སོགས་པའི་སྤྱོད་ལམ་རྣམས་དང་རིམ་པ་བཞིན་དུ་བསྟན་

ཏོ།། སྤྱོད་ལམ་བསྟན་པ་ནི་མཚོན་པ་ཙམ་སྟེ། དེས་ན་བལྟམས་པ་ལ་སོགས་པ་དག་ཀྱང་འདིར་བསྟན་པར་བལྟའོ།། གང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྤྱོད་ལམ་ལ་སོགས་པ་ལུང་ལས་ཡོངས་སུ་བརྗོད་པ་རྣམས་ཡང་[༢]དག་པར་སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དེ་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་ཕྱིར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པའི་དོན་མི་ཤེས་སོ།།

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུས་[༣]རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ནི་ཡེ་ཤེས་ཡོངས་སུ་དག་པའོ།། ཡེ་ཤེས་དེ་ལ་ནི་ལུས་མེད་པའི་ཕྱིར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་བཞུད་པ་ལ་སོགས་པ་མི་སྲིད་དོ།། འགྲོ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་གཟུགས་ཀྱིས་ཕུང་པོའི་གནས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་གིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་དེ་དག་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ལ་བརྟེན་ནས་གསུངས་པ་དག་སྟེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྐུ་ལ་ནི་བརྟེན་པ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལ་ནི་ཀུན་རྫོབ་དང་དོན་དམ་པར་བཞུད་པ་ལ་སོགས་པ་མི་སྲིད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེའི་ཕྱིར་སྤྱོད་ལམ་གྱིས་བཞུགས་པ་འཁོར་བ་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་བུ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

གལ་ཏེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་བཞུད་པ་ལ་སོགས་པ་མི་མངའ་ན་ཇི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་གཤེགས་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་ལྟར་བསྟན་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་བསམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཞེ་ན་ཞེས་གསུངས་ཏེ། དེ་ངས་བཤད་པའི་དོན་མི་ཤེས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་དང་སྦྱར་རོ།། འདིར་ལན་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

---

༢ ཡོང་ སྡེ།

༣ སྐུའི་ པེ། སྣ།

འདི་སྐབས་སུ་དགོངས་ཏེ་བརྗོད་པ་འདི་ནི་བཤད་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་མ་ཡིན་གྱི་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་སྟེ་འགྲོ་བ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྟོགས་པའི་དོན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ།། དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟར་གནས་པ་དེ་བཞིན་དུ་རྟོགས་ཏེ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའོ།། ཡང་ན་སྔོན་གྱི་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱིས་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟར་ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པར་ཐུགས་སུ་ཆུད་པར་གྱུར་པ་དེ་བཞིན་དུ་འདིས་ཀྱང་མཁྱེན་ཏེ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའོ།། དེ་ཡང་ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྐུ་ཉིད་དུ་རིགས་ཀྱི་གཞན་ལ་ནི་རྟོག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ཡང་ལུས་མེད་པའི་ཕྱིར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་གར་ཡང་བཤད་པ་ལ་སོགས་པ་མི་སྲིད་དོ།། དོན་དམ་པར་ནི་མ་སྐྱེས་པའི་ཕྱིར་རབ་ཏུ་མི་སྲིད་དོ།། དེ་བས་ན་དེ་དངོས་པོའི་རང་བཞིན་དུ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་འཇིག་རྟེན་མཐའ་དག་གི་གཙོ་བོར་འགྱུར་ཏེ་མཆོད་པར་འོས་པས་དགྲ་བཅོམ་པ་ཞེས་བྱའོ།། ཡང་དག་པར་རྫོགས་པར་ཐུགས་སུ་ཆུད་པར་གྱུར་པས་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་གཟུགས་ཀྱིས་སྐུ་ནི་བེམས་པོའི་རང་བཞིན་ཡིན་པས་དེ་སྐད་མི་བྱའོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།།

འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། ཀུན་རྫོབ་ཏུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ལ་བརྟེན་པར་བཤད་པ་ལ་སོགས་པ་དག་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་མཐའ་ཡས་པ་རྣམས་སུ་ཐོགས་པ་མེད་པར་བསྟན་པས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྤྲུལ་པའི་[1]གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་གང་ཡིན་པ་དང་། ཡིད་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་སྐུ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཡང་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་

---

[1] སྤྲུལ་པ་ པེ། སྣ།

བས་སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས་ལྟར་བརྟེན་པ་ཉིད་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་སྟོད་དང་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་རྣམ་པར་གཞིག་པས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་མཛད་ནས། ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། སྔར་ནི་མོས་པས་སྤྱོད་པའི་ས་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་དེ་རྣམ་པར་གཞིག་པར་བསྟན་ལ་ད་ནི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བཞུགས་པ་བསྟན་པས་ཚིག་ཟློས་པར་མི་འགྱུར་རོ།།

འདིར་ཡང་ཐབས་རྣམ་པ་གཉིས་ཀྱིས་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་ཐལ་བར་རྟོགས་པས་བདག་མེད་པར་སྟོན་ཏོ།། འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་བཞིན་དུ་ཕྱེ་མར་བྱས་ན་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གཅིག་པུའི་རང་བཞིན་དང་ཐལ་བར་རྟོགས་ནས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཐབས་བསྟན་ཏེ། འདིར་ཡང་བཤད་པ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་ནོ།། རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཕྱོགས་ཆ་ཐ་དད་པའི་ཕྱིར་གྲུབ་པ་མ་ཡིན་[༡]ནམ། དེ་དག་ཚོགས་སུ་ཇི་ལྟར་འགྱུར་སྙམ་དུ་སེམས་པ་ལ་དེ་ཅིའི་[༢]སླད་དུ་ཞེས་དྲིས་པ་དང་། ལན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་སྨོས་སོ།། འདི་སྙམ་དུ་སེམས་ཏེ། གཅིག་པུར་འཛིན་པ་བཟློག་པའི་ཐབས་ཙམ་དུ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་དབྱེ་བར་ཚོགས་པ་དེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་ཀྱི་དོན་དམ་པར་མི་གནས་པའི་ཕྱིར་[༣]མ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ཐམས་ཅད་ལ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་མངོན་སུམ་དུ་གྲགས་པར་གྱུར་པས་དེའི་ཕྱིར་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་བཀའ་མི་སྩོལ་ཏེ། མ་གསུངས་ཀྱང་དེ་ལྟར་གྲགས་

---

༡ སྒྲུབ་པ་མེད་པ་མ་ཡིན་ སྣེ།

༢ དེའི་ སྣེ།

༣ མི་གནས་པའི་ སྣེ།

པའི་ཕྱིར་རོ།། འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་རྣམ་པར་གཞིག་པར་བཞུགས་པ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་ཚོགས་མེད་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་དེ་མང་ངམ་ཞེས་ཅིའི་ཕྱིར་བཀའ་སྩལ་སྙམ་དུ་སེམས་པའི་བསམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་བྱ་བ་གསོལ་ཏོ།།[༡] དེ་ཚོགས་མ་མཆིས་པར་ཞེས་བྱ་བ་ནི་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཤར་དང་བྱང་ལ་སོགས་པའི་ཕྱོགས་ཀྱི་རྣམ་པར་དབྱེ་བས་གནས་པ་དེ་དག་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་མེད་པས་ཡང་དག་པར་ན་ཚོགས་སུ་མི་རིགས་སོ།། གཅིག་པུར་འཛིན་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་ཙམ་དུ་ཟད་དེ། དེ་བས་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་ཞེས་བྱའོ།།

ཕྱོགས་ཆ་ཐ་དད་པ་མེད་ན་ནི་རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ལ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་གཞན་དག་གིས་ཕ་རོལ་དང་ཚུ་རོལ་དང་། སྟེང་དང་འོག་དང་། ཕྱོགས་ཆ་ཐ་དད་པ་ནས་བསྐོར་བར་མི་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་རྒྱས་པར་མི་འགྱུར་ཏེ། སེམས་དང་སེམས་ལས་བྱུང་བ་ལ་སོགས་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ནོ།། ཆ་ཉིད་རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་སུ་འགྱུར་རོ་ཞེས་བརྗོད་དུ་ནི་མི་རིགས་ཏེ། དེར་ཡང་དཔྱད་པ་མཐུན་པའི་ཕྱིར་རོ།། གལ་ཏེ་གྱུར་ཀྱང་ཐུགས་པ་མེད་དོ་ཞེ་ན། མི་རུང་སྟེ། རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཐུག་པ་མེད་པའི་ངོ་བོར་གྱུར་ན་ཁྱོད་ཀྱིས་ཅི་ཞིག་གྲུབ། ཐུག་པ་མེད་པའི་ངོ་བོ་ནི་དངོས་པོར་མི་འགྲུབ་སྟེ། དེ་བས་ན་ངེད་ཀྱི་འདོད་པ་ཉིད་གྲུབ་བོ།། ངེད་ནི་འདོད་རྒྱལ་དུ་རྡུལ་རྣམ་པ་དུ་མའི་རང་བཞིན་དུ་སྨྲ་བ་མ་ཡིན་ན་རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཀྱི་ཐུག་པ་མེད་ན་གང་གིས་གྲུབ་ཅེས་བརྗོད། ཁྱོད་ཀྱིས་རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས་ཆ་མེད་པའི་ངོ་བོར་རྣམ་པར་གཞག་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཤར་དང་བྱང་ལ་སོགས་པ་ཕྱོགས་ཐ་དད་པ་ན་གནས་པར་ཁས་བླངས་པས་ཕྱོགས་ཆ་ཐ་དད་པར་

---

༡ གསལ་ཏེ་ སྣ།

ཁས་བླངས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན་ཡན་ལག་དང་བཅས་པར་ཐལ་བར་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་ཐལ་བར་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་གཏན་ཚིགས་ཀྱི་གཞི་མ་གྲུབ་པ་ཡིན་ནོ།། སེམས་དང་སེམས་ལས་བྱུང་བ་དག་གིས་གཅིག་ཏུ་མ་ངེས་པ་ཡང་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་དག་ལུས་མེད་པས་ཕྱོགས་ན་མི་གནས་པའི་ཕྱིར། ཤར་དང་བྱང་ལ་སོགས་པའི་ཕྱོགས་ཀྱིས་གནས་པ་མེད་དོ།། དེ་བས་ན།

དེ་ནི་མིག་མིན་གཟུགས་ལ་མིན། །
དེ་གཉིས་བར་ན་མི་གནས་ཏེ། །
དེ་ནི་གང་ན་གནས་གྱུར་པ། །
དེ་ནི་ཡོད་མིན་མེད་པ་མིན། །

ཞེས་བསྟན་ཏེ་ཐལ་བས་ནི་ཆོག་གོ། འདིས་ནི་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་ནས་སྣང་བ་མེད་པར་བྱ་བའི་ཐབས་བསྟན་པས་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས་དེ་མང་བ་ལགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བ་བསྟན་ཏོ།། ལྷག་མས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་རྣམ་པར་གཞིག་པས་བཞུགས་པའི་དབང་དུ་བྱས་ནས་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་པ་དེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསོལ་ཏོ།། སྣོད་ཀྱི་འཇིག་རྟེན་ནི་སྔར་བཤད་ཟིན་པས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་ནི་འདིར་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་དུ་འདོད་དོ།། གཅིག་ག་ལ་སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོའི་ཞེས་སྨོས་པ་ནི་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་མཐའ་ཡས་པར་མཚོན་ཏོ།། དེ་བས་ན་དེ་ཁམས་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ཕུང་པོའི་ལྔའི་བདག་ཉིད་དེ་ཡང་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་བྲལ་བས་སྒྱུ་མ་བཞིན་དུ་བཤད་དོ།།

འདིས་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་རྣམ་པར་གཞིག་པས་བཞུགས་པ་དེ་ལྟ་བུ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་བསྟན་ཏོ།། སྣང་བ་མེད་པར་བྱས་པས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་འདི་ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དེ་ཡང་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་དེ་ཅིའི་སླད་དུ་ཞེ་ན་ཞེས་དྲིས་ཏེ། དེ་ཁམས་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་བྱ་བ་དང་སྦྱར་རོ།། ལན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་གལ་ཏེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྨྲས་སོ།། གལ་ཏེ་སེམས་ཅན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ཇི་ལྟར་གྲགས་པ་བཞིན་དུ་དོན་དམ་པར་རགས་པ་གཅིག་པའི་ངོ་བོར་གྱུར་ན་ནི་དེའི་ཚེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དངོས་པོའི་དེ་ཁོ་ན་ཇི་ལྟར་གནས་པ་བཞིན་དུ་ཐུགས་སུ་ཆུད་པས་དེ་ཉིད་རིལ་པོར་འཛིན་པར་འགྱུར་རོ།།

དེ་བས་ན་བདག་ཏུ་འཛིན་པའི་རྒྱུ་ནི་ཕུང་པོའི་ངོ་བོ་ལ་རིལ་པོར་འཛིན་པ་ཙམ་དུ་ཟད་པས་དེ་ཉིད་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རིལ་པོར་འཛིན་པ་དམ་པོར་འགྱུར་ཏེ། དེ་མ་སྤངས་པར་དགོངས་པའོ།། དེ་ལྟ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་བས་ན་གང་སྐྱེ་བོ་བྱིས་པ་རྣམས་ལ་ཕྱོགས་གཞན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རིལ་པོར་འཛིན་པ་ནི་བདག་ཏུ་འཛིན་པའི་རྒྱུ[1]གསུངས་པ་དེ་དོན་དམ་པར་འཛིན་པ་མེད་པ་ཉིད་དེ་གཟུང་བ་རིལ་པོ་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་གང་ཡང་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། སྐྱེ་བོ་བྱིས་པ་རྣམས་ལ་གྲགས་པའི་ངོ་བོར་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་གསུངས་པར་ཟད་དེ་དེས་ན་རིལ་པོར་འཛིན་པ་ཞེས་བྱའོ།། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དོན་དེ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར་རིལ་པོར་འཛིན་པའི་དོན་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། ཅི་སྟོན་ཅེ་ན། ཐ་སྙད་དུ་

---

[1] རྒྱུར་ པ། སྣ།

རིལ་པོ་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་དམ་པར་ནི་མེད་པས་ཆོས་དེ་ནི་བརྗོད་དུ་མེད་པ་ཡིན་ཞེས་བསྟན་ཏོ།།

གལ་ཏེ་དེ་ལྟར་བཟུང་བ་རིལ་པོ་མེད་ན་དེའི་ཆེ་དེར་འཛིན་པ་ཡང་མེད་པས་ཇི་ལྟར་ཐ་སྙད་ཀྱིས་རིལ་པོར་འཛིན་པ་ཞེས་བྱ་སྙམ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་དེ་ཡང་བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས་བཟུང་ངོ་ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་སོ།། བྱིས་པ་རྣམས་ནི་འཕྲུལ་པའི་དབང་གིས་མེད་པ་ལ་ཡང་ཡོད་པ་ལྟར་འཛིན་པས་དེའི་བསམ་པའི་དབང་གི་ཐ་སྙད་བཏགས་པ་སྟེ། འགལ་བ་མེད་དོ་ཞེས་དགོངས་པའོ།། དེའི་ཕྱིར་དེ་དག་ནི་བྱིས་པ་རྣམས་ཞེས་བྱའི་དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་དངོས་པོ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ཐ་སྙད་འདོགས་པའི་ཕྱིར་དེ་དག་བྱིས་པ་རྣམས་སུ་ཇི་ལྟར་འགྱུར།

འདིར་ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ་ནི་བསྟན་ཟིན་ཏོ།། རྒྱ་ཆེ་བ་དང་ཟབ་པ་ཡང་སྔ་མ་བཞིན་དུ་སྦྱར་རོ།། འདིས་ནི་གང་གི་ཆེ་དངོས་པོ་མཐའ་ཐག་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་གྱིས་སྟོང་པ་དེའི་ཆེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྐུ་དོན་དམ་པར་རང་བཞིན་དང་བཅས་[༡]པར་ག་ལ་འགྱུར་ཏེ། རྒྱ་བ་སེམས་ཅན་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།།

ད་ནི་རབ་འབྱོར་གང་ལ་ལ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་གནས་ཐམས་ཅད་དུ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་[༢]པར་གྱུར་པས་ཐབས་གང་གིས་ཐམས་ཅད་དུ་མཉམ་པར་གཞག་པར་བྱ་བ་དེ་སྟོན་ཏོ།། མཚམས་ནི་འདི་ལྟར་སྦྱར་ཏེ། གལ་ཏེ་རིལ་པོར་འཛིན་པ་མེད་ན་དེའི་ཆེ་རྒྱ་བ་ལས་བྱུང་བ་འཇིག་ཚོགས་ལ་བལྟ་བ་མེད་པ་ཉིད་ཡིན་པས་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ལྟ་བ་ལྔ་པོ་དག་ལས་འཇིག

[༡] བསམ་ སྟེ།

[༢] འཇུག་པ་ཅེས་ ཡེ། སྣ།

ཚོགས་ལ་ལྟ་བ་ཇི་ལྟར་གསུངས་སྙམ་པ་དེའི་ཆེད་དུ་རབ་འབྱོར་[༡]གང་ལ་ལ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། འདི་ལ་ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་བ་དང་། སུ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱེད་པ་དང་། གང་ལ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་བ་དང་། གང་གིས་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱེད་པ་དང་། རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་བསྟན་པས་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པའི་ཐབས་ཡང་དག་པར་སྟོན་ཏོ།།

དེ་ལ་རབ་འབྱོར་ལ་ལ་ཞིག་ཅེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། དེས་ན་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་ཞེས་བགྱིའོ་ཞེས་བྱ་བའི་བར་འདིས་ནི་ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། ཇི་ལྟ་ཞེ་ན་གཞན་མུ་སྟེགས་ཅན་རྣམས་ཀྱིས་ནི་བདག་ཏུ་བཤད་དེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ནི་གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པར་འཛོག་པས་བདག་དགག་པའི་ཕྱིར། བདག་ཏུ་ལྟ་བ་གསུངས་སོ།། བདག་ཏུ་ལྟ་བ་དེ་རྣམ་པར་བཤིག་པས་ཆོས་ལ་བདག་མེད་པར་འཛོག་སྟེ། དེ་ལྟ་བ་མ་མཆིས་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་གང་གསོལ་ཏོ།། གལ་ཏེ་བདག་ཏུ་ལྟ་བ་དེ་ལ་བདེན་པ་ཉིད་དུ་མི་འཛིན་ན་ནི། དེ་ལྟར་སྦྱོར་བ་ན་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་འཇུག་པར་འགྱུར་ཏེ། གང་གི་ཕྱིར་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ[༢]དེའི་ཕྱིར་དེ་ནི་དེར་འཇུག་པའི་ཐབས་ཡིན་ནོ།།

རབ་འབྱོར་འདི་ལྟར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སུ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱེད་པ་དེ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། ཆོས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གང་ལ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་བ་དེ་བསྟན་ཏོ།། ཤེས་པར་བྱ་བལྟ་བར་བྱ་མོས་པར་བྱ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་གང་གིས་རྣམ་

[༡] ཆེད་དུ་འབྱོར་ སྡེ།

[༢] རྣམ་པར་རྟོག་པ་ པེ། སྣ།

པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་བ་དེ་བརྗོད་དོ།།[༢] གང་གིས་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་བྱ་ཞེ་ན་ཤེས་པ་དང་། ལྟ་བ་དང་། མོས་པས་སོ།། དེ་ལ་ཤེས་པ་ནི་ཐོས་པའི་ཤེས་རབ་བོ།། ལྟ་བ་ནི་བསམ་པའི་ཤེས་རབ་བོ།། དེ་ནི་རྟོགས་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ།། མོས་པ་ནི་བསྒོམས་པའི་ཤེས་རབ་སྟེ། ལྷག་པར་འདོད་པ་ནི་འདིར་མོས་པའི་སྒྲར་བརྗོད་པར་འདོད་པའོ།། དེ་ནི་བསྒོམས་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་འགྲུབ་སྟེ། དེ་བས་ན་བསྒོམས་པ་ལས་བྱུང་བའི་ཤེས་རབ་ནི་ངེས་པར་འབྱེད་པའི་ཆ་དང་མཐུན་པའི་གནས་སྐབས་ན་མོས་པའི་སྒྲར་གསུངས་སོ།།

ཅི་ནས་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ་ལ་ཡང་མི་གནས་པ་དེ་ལྟར་མོས་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་སྟོན་ཏོ།། དེ་འདུ་ཤེས་མེད་པར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་འདིར་གཏན་ཚིགས་སུ་གསུངས་སོ།། འདུ་ཤེས་པར་བྱ་བ་གང་ཡང་མེད་པ་ཉིད་ཀྱང་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་གྱིས་སྟོང་བའི་ཕྱིར་དོན་དམ་པར་དེ་འདུ་ཤེས་མེད་པའོ།། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་ཀུན་རྫོབ་ལ་བརྟེན་ནས་ཕྱོགས་གཞན་དུ་གསུངས་སོ།། དེ་ཡང་བརྟན་པའི་དོན་དུ་ཤེས་ཤིང་གནས་ན་ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་རྟོག་པར་མི་འགྱུར་[༣]ཞེས་དགོངས་པའོ།། གནས་ཐམས་ཅད་དུ་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པའི་ཐབས་ནི་བཤད་ཟིན་ཏོ།།

ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ་ཡང་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། འཆད་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ་དང་། འཁོར་བའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བའོ།། དེ་ལ་གལ་ཏེ་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་མེད་ན་དེའི་ཚེ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་ཆོས་སྟོན་པ་ན་འདུ་ཤེས་དེ་ཀུན་ཏུ་འབྱུང་ན།

[༢] མི་རྟོག་པར་བྱ་ཞེ་ན་ པེ། སྣ།

[༣] རྣམ་པར་མི་རྟོག་པར་འགྱུར་ པེ། སྣ།

ཇི་ལྟར་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པར་མི་འགྱུར། ཐུགས་རྗེས་སེམས་ཅན་གྱི་དོན་དུ་ཇི་སྲིད་འཁོར་གྱི་བར་དུ་བཞུགས་ན་ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པས་ཇི་ལྟར་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པར་མི་འགྱུར་སྒྱུ་མ་པ་ལ་བརྟགས་ནས་ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་འཆད་པ་ན་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ་དང་། ཚིགས་སུ་བཅད་པས་འཁོར་བའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཡང་རབ་འབྱོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།།

སྔར་སྐབས་གཞན་ནས་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་རྣམས་ཀྱི་བསྔགས་པ་རྣམས་རབ་ཏུ་བསྟན་པས་ནི་ཕན་ཡོན་བསྔགས་ཀྱི། ད་ནི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བའི་སྐབས་སུ་འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས་མཐའ་ཡས་པ་སྟོན་པས་ཕན་ཡོན་མི་བརྗོད་དེ། ཚིག་[༡]ཉྙིས་པར་མི་འགྱུར་རོ།། འདིར་ཡང་རིགས་པ་ནི་སྔ་མ་བཞིན་དུ་བརྗོད་པར་བྱའོ།། སླངས་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁ་ཏོན་དུ་བསླབས་པའོ།།[༢] འཛིན་ཏམ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚིག་གོ། ཀློག་གམ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་གླེགས་བམ་ལ་སོགས་པ་ཀློག་པའོ།། ཀུན་ཆུབ་པར་བྱེད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་དོན་འཛིན་ཅེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ། འདིས་ནི་གང་གི་ཕྱིར་ཆོས་འདི་དོན་ཆེ་བ་དེའི་ཕྱིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔས་ཆོས་བསྟན་པ་དོན་ཆེན་པོ་འདི་ལྟ་བུ་ལ་འདུན་པ་དང་སློན་ལམ་གྱིས་གདོན་མི་ཟ་བར་གནས་པར་བྱ་བ་དེ་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།།

བཤད་མོད་ཀྱི་ཇི་ལྟར་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པར་མི་འགྱུར་བ་དེ་ལྟར་བཤད་པ་བསྟན་པའི་ཕྱིར་ཇི་ལྟར་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་སྟོན་ཞེ་ན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་སོ།། དགོངས་པ་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། ཆོས་ཐམས་ཅད་དོན་དམ་པར་མ་སྐྱེས་པ་བརྗོད་དུ་མེད་པར་བསྟན་པ་བཤད་ཀྱང་ཆོས་དེ་དག་བརྗོད་དུ

---

༡ ཚིགས་ པེ། སྣ།

༢ བསླབས་པའོ་ པེ། སྣ།

མེད་པའི་བདག་ཉིད་ཀྱིས་མ་བཤད་དོ།། དེ་ནི་འདི་སྐད་དུ། ཇི་ལྟར་འདུལ་བའི་སྐྱེ་བོ་འདི་སྙམ་དུ་ཆོས་ཐམས་ཅད་གཟོད་མ་ནས་མ་སྐྱེས་པས་བརྗོད་དུ་མེད་དེ། དེ་བས་ན་དེ་དག་ནི་གང་གིས་ཀྱང་བསྟན་པར་བྱ་བ་མ་ཡིན་སྙམ་དུ་སེམས་པ་དེ་ལྟར་སྟོན་ཏེ་ཞེས་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ།། དེ་ལྟར་ན་ཉོན་མོངས་པ་ཅན་མ་ཡིན་པས་སྟོན་པ་ཡིན་ཏེ། ཕྱིན་ཅི་མ་ལོག་པའི་དོན་གྱི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལྟ་མ་ཡིན་ན་ནི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཏུ་སྟོན་པས་ཉོན་མོངས་པ་ཅན་དུ་འགྱུར་རོ།། དེ་བས་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཆོས་སྟོན་པའི་དུས་ན་དག་པ་འཇིག་རྟེན་པའི་ཡེ་ཤེས་ལ་ཞུགས་པ་ལ། ཆོས་སུ་སྣང་བའི་འདུ་ཤེས་ཀུན་ཏུ་འབྱུང་ཡང་དེ་ལ་ཡང་དག་པ་ཁོ་ནར་མངོན་པར་ཞེན་པ་མེད་པས་ཉོན་མོངས་པ་ཅན་གྱི་སྐྱོན་དུ་མི་འགྱུར་རོ།། འདིས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་དང་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།། སྔ་མས་ནི་རྒྱ་ཆེ་བསྟན་ཏོ།།

ད་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་ལུས་མཐའ་དག་རྣམ་པར་འཇོག་ཅིང་། ཚིགས་སུ་བཅད་པས་འཁོར་བའི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ་བསྟན་ཏོ།། ཚིགས་སུ་བཅད་པ་འདིས་ནི་འདུས་བྱས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་རྣམ་པ་བཞི་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། རང་བཞིན་གྱི་མཚན་ཉིད་དང་། རོ་མྱང་བའི་ཡུལ་གྱི་མཚན་ཉིད་དང་། ཉེས་དམིགས་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད་དང་། ངེས་པར་འབྱུང་བ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད་དོ།།

དེ་ལ་ཕུང་པོ་ལྔའི་བདག་ཉིད་དངོས་པོ་ཇི་ལྟར་སྣང་བ་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་བར་འབྱུང་བ་ནི། རྒྱུ་དང་རྐྱེན་རྣམས་ཚོགས་པས་བྱས་པའི་ཕྱིར་འདུས་བྱས་ཞེས་བྱའོ།། དེ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རང་བཞིན་ནི་སྐར་མ་ལྟར་བལྟ་བར་བྱ་སྟེ། ཇི་ལྟར་སྐར་མ་རྣམས་མཚན་མོ་སྣང་བར་འགྱུར་གྱི། ཉིན་མོ་མི་སྣང་བ་བཞིན་དུ་འདུས་བྱས་རྣམས་ཀྱང་མ་རིག་པའི་ཉིས་པའི་མུན་པ་ཡོད་ན་སྣང་གི། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཉི་

མའི་སྣང་བ་བྱུང་བ་ན་མི་སྣང་བས། སྐར་མ་ལྟ་བུའི་རང་བཞིན་དུ་བལྟ་བར་བྱའོ།། གང་ཟག་དང་ཆོས་ལ་ལྟ་བ་ལ་མངོན་པར་ཞེན་པའི་རང་བཞིན་གྱི་འདུས་བྱས་ནི་དོན་མེད་པ་སྣང་བའི་རྒྱུས་རབ་རིབ་ལྟ་བུར་བལྟ་བར་བྱའོ།།

རྣམ་པར་ཤེས་པའི་མཚན་ཉིད་ནི་ལས་ཀྱི་རས་དང་སྲིད་པའི་སྣམ་ལ་བརྟེན་ཏེ་འབར་བས་མར་མེ་ལྟ་བུར་བལྟ་བར་བྱའོ།། དེ་ལྟར་དཔེ་དེ་དག་གིས་ནི་འདུས་བྱས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་མཚན་ཉིད་ཡོངས་སུ་སྟོན་ཏོ།། སྒྱུ་མའི་དཔེས་ནི་རོ་མྱང་བའི་ཡུལ་གྱི་མཚན་ཉིད་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏེ། ནོར་བའི་རྣམ་པར་སྣང་བའི་ཕྱིར་རོ།། དེ་ལ་ཉེས་དམིགས་རྗེས་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད་རྣམ་པ་གཉིས་ནི་འདུས་བྱས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཏེ།[2] མི་རྟག་པར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་བར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའོ།། ཟིལ་བའི་དཔེས་ནི་མི་རྟག་པར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་བསྟན་ཏེ། ཡུན་རིང་དུ་མི་གནས་པའི་ཕྱིར་རོ།། ཆུ་བུར་གྱི་དཔེས་ནི་སྡུག་བསྔལ་བར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་བསྟན་ཏེ། ཚོར་བ་ནི་ཆུའི་ཆུ་བུར་ལྟ་བུ་སྟེ། ཚོར་བ་གང་ཅི་ཡང་རུང་བ་དེ་ནི་འདིར་སྡུག་བསྔལ་ལོ་ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

སྡུག་བསྔལ་རྣམ་པ་གསུམ་གྱིས་ཚོར་བ་ཐམས་ཅད་སྡུག་བསྔལ་དུ་རིག་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ལ་སྡུག་བསྔལ་གྱི་ཚོར་བ་ནི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། གང་དག་དེ་དང་མཐུན་པའི་འདུ་བྱེད་དེ་དག་ཀྱང་དེ་དང་མཐུནཔ་ཉིད་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། བདེ་བའི་ཚོར་བ་ནི་འགྱུར་བའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། གང་དག་དེ་དང་མཐུན་པའི་ཆོས་དེ་དག་ཀྱང་དེ་དང་མཐུན་པ་[3]ཉིད་ཀྱིས་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། སྡུག་བསྔལ་ཡང་མ་ཡིན་བདེ་བ་ཡང་མ་ཡིན་པའི་ཚོར་བ་དང་། དེ་དང་མཐུན་པའི་དངོས་པོ་དེ་དག་ནི་འདུ་བྱེད་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་སྐྱེ་བ་དང་འཇིག་པའི་མཚན་ཉིད་

---

[2] མཚན་ཉིད་ནི་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། པ། སྣ།

[3] ཀྱང་མཐུན་པ་ པ། སྣ།

ཀྱིས་སྡུག་བསྔལ་ལོ།། དེ་ལྟར་ན་འདུས་བྱས་ཐམས་ཅད་སྡུག་བསྔལ་དང་ལྡན་པར་བལྟའོ།།

དེ་ལ་ངེས་པར་འབྱུང་བ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད་ནི་གང་ཟག་དང་ཆོས་སྟོང་པར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའོ།། དམིགས་པ་དེས་ངེས་པར་འབྱུང་བས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ངེས་པར་འབྱུང་བའི་དམིགས་པ་རྣམ་པ་གཉིས་གསུངས་སོ།། དེ་སྐད་དུ་**འཕགས་པ་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་རྒྱལ་པོ་**ལས་ཀྱང་།[?]

གལ་ཏེ་ཆོས་ལ་བདག་མེད་སོ་སོར་རྟོག །
དེ་དག་བརྟགས་ནས་གལ་ཏེ་སྒོམ་བྱེད་པ། །
དེ་ནི་འབྲས་བུ་མྱ་ངན་འདས་འཐོབ་རྒྱུ། །
རྒྱུ་གཞན་གང་ཡིན་དེས་ནི་ཞི་མི་འགྱུར། །

ཞེས་བསྟན་ཏོ།། འདུས་བྱས་ཐམས་ཅད་ནི་བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་དང་ལྡན་ཏེ། འདི་ལྟར་འདས་པ་དང་། ད་ལྟར་བྱུང་བ་དང་། མ་འོངས་པའི་བྱེ་བྲག་གིས་འདུས་བྱས་ནི་རྣམ་པ་གསུམ་མོ།། དེ་ལ་གང་དག་འདས་པ་དེ་དག་ནི་དྲན་པ་ཙམ་དུ་གནས་ཏེ། རང་བཞིན་མེད་པས་ཆོ་ ་དང་གང་ཟག་ཉིད་ཀྱིས་སྟོང་སྟེ། བདག་གིས་བྱིན་གྱིས་བརླབས་པ་མེད་དོ།། དེ་བས་ན་སྐྱི་ལམ་གྱི་དཔེས་ནི་དེ་དག་བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་བསྟན་ཏོ།། གློག་གི་དཔེས་ནི། ད་ལྟར་བྱུང་བ་ཟྫས་གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་དང་མི་ལྡན་པས། རང་བཞིན་གཟུང་དུ་མེད་པའི་ཕྱིར་དེ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་བསྟན་ཏོ།། མ་འོངས་པ་ནི་མ་ཕྱིན་པའི་བདག་ཉིད་དེ། སྤྲིན་གྱི་དཔེས་ནི་དེའི་ས་བོན་གནས་ངན་ལེན་གྱིས་ནམ་མཁའ་ལྟ་བུའི་སེམས་ལ་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར། བདག་མེད་པ་རྣམ་པ་གཉིས་བསྟན་ཏོ།།

[?] སྡེ་བཀའ། ༡༣༧ མདོ་སྡེ། ''ད'' ལེའུ་ ༩ ཤོག་ ༣༧

དེ་བས་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི། འདི་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྟག་ཏུ་འདུས་བྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་རང་བཞིན་ལ་དེ་ལྟར་བརྟག་པར་[༢]འདུན་པ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱིས་གནས་པར་བྱ་བ་ཡོངས་སུ་བསྟན་ཏོ།། ངེས་པར་འབྱུང་བ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ་བསྟན་པས་ནི་རྣལ་འབྱོར་དུ་སྒོམས་པར་འཇུག་པ་དང་། སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བ་བསྟན་ཏོ།། གནས་འདི་མཐའ་དག་གིས་ནི་ཟབ་པ་བསྟན་ཏོ།།

ཚིགས་སུ་བཅད་པ་[༣]འདིར་ནི་འདི་ཡོངས་སུ་བསྟན་པ་ཡིན་ཏེ། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པའི་རྩ་བ་ནི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཡིན་པས་འདུས་བྱས་ཀྱི་རང་བཞིན་ལ་ལན་མང་དུ་རྟོག་པ་དང་ལྡན་པའི་ཡིད་ལ་བྱེད་པ་ཅན་གཞན་ཡང་དེ་ལྟར་འདུ་བྱེད་ལ་རབ་ཏུ་རྟོགས་པས་ཕྱིན་ཅི་ལོག་མེད་པའི་ཕྱིར། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པར་མི་འགྱུར་ན། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དངོས་པོ་མཐའ་དག་གི་རང་བཞིན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་བསྒོམས་པ། ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་དྲི་བ་མཐའ་དག་དང་བྲལ་བ། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པར་ཇི་ལྟར་འགྱུར། དེ་བས་ན་འདུས་བྱས་ཀྱི་སྐྱོན་མཐའ་དག་ཀྱང་ཐུགས་སུ་ཆུད་པ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་པདྨ་དང་འདྲ་བར་འཁོར་བའི་ཉེས་པའི་ཆུས་མི་གོས་པའི་ཐུགས་མངའ་བ། འགྲོ་བ་མཐའ་དག་མངོན་པར་དྲང་བར་ཐུགས་དམ་བཅས་པ་། འབྲས་བུ་དང་བཅས་པར་མཛད་པ། ཐུགས་རྗེ་ཆེན་པོ་དང་ལྡན་པའི་ཐུགས་ཅན། དུས་མེད་པར་འགྲོ་བ་ལ་ཕན་པ་དང་བདེ་བ་བསྒྲུབ་པའི་དགོངས་པས་འཁོར་བའི་འཁོར་ལོ་འཁོར་བ་ཇི་སྲིད་བར་བཞུགས་པར་ཤེས་པར་བྱའོ།། ཇི་སྐད་དུ།

འཇིག་རྟེན་སྲིད་པར་མཛད་སྲིད་དུ། །
འཁོར་དང་མྱ་ངན་འདས་མི་གནས། །

[༢] བརྟགས་པར་ པེ། སྣ།

[༣] གཅད་པ་ སྡེ།

ཞེས་བཤད་དོ།། ཡང་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་གཟིགས་པའི་ས་ལ་ཞུགས་པ་ཞེས་ཀྱང་གསུངས་སོ།།

དུས་གསུམ་བཞུགས་པའི་ཐུབ་པ་རྣམས་བསྐྱེད་པ། །
འདི་ལྟར་བདག་གིས་ཅི་ནུས་བཤད་པ་ཡི། །
བསོད་ནམས་རྒྱ་ཆེན་མཁའ་འདྲ་ཐོབ་པ་དེས། །
འཇིག་རྟེན་མུན་སེལ་སངས་རྒྱས་ཉིད་གྱུར་ཅིག །

འཕགས་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་དབུ་མའི་ཚུལ་དུ་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་སློབ་དཔོན་ཀམལ་ཤཱི་ལས་མཛད་པ་རྫོགས་སོ།། རྒྱ་གར་གྱི་མཁན་པོ་མཉྫུ་ཤྲཱི་དང་། ཛི་ན་མི་ཏྲ་དང་། ཞུ་ཆེན་གྱི་ལོ་ཙྪ་བ་བནྡེ་ཡེ་ཤེས་སྡེས་བསྒྱུར་ཅིང་ཞུས་ཏེ་གཏན་ལ་ཕབ་པའོ།། ༎

****

परिशिष्टानि

प्रथमपरिशिष्टम्
अकारादिक्रमेण सहायकग्रन्थानुक्रमणी

Toh: 1395	अमृतकणिकानाम आर्यनामसंगीतिटिप्पणी, तिब्बती संस्थान संस्करण । འཕགས་པ་མཚན་ཡང་དག་པར་བརྗོད་པའི་མདོར་བཤད་བདུད་རྩིའི་ཐིགས་པ་ཞེས་བྱ་བ།
Toh: 4299	अमरकोशः, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी । འཆི་བ་མེད་པའི་མཛོད་ཅེས་བྱ་བ།
पालि	अंगुतरनिकायो, नालन्दा संस्करण, भिक्षु जगदीश काश्यप ।
Toh: 12	आर्य–अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, मिथिला इन्सटीटच्यूट, १९६0, पी. एल. वैद्य । འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བརྒྱད་སྟོང་པ།
Toh: 317	अर्थविनिश्चयो नाम धर्मपर्यायः, के.पी.जायसवाल रिसर्च इन्सटीटच्यूट, पटना, १९७१, एन. एच. सम्तानी । དོན་རྣམ་པར་ངེས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས།
Toh: 4365	अर्थविनिश्चयटीका, के. पी. जायसवाल संस्करण, १९७१, सम्पादक, एन. एच. सम्तानी । དོན་རྣམ་པར་གཏོན་མི་ཟ་བའི་འགྲེལ་པ།
Toh: 3786	अभिसमयालंकारो नाम प्रज्ञापारमितोपदेशशास्त्रकारिका, ति. सं. संस्करण, १९७७, प्रो. रामशंकर त्रिपाठी । ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་མན་ངག་གི་བསྟན་བཅོས་མངོན་པར་རྟོགས་པའི་རྒྱན་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh 4089 अभिधर्मकोशकारिका, के. पी. जायसवाल संस्करण, १९७५, सम्पादक, प्रो. प्रह्लाद प्रधान ।
ཆོས་མངོན་པའི་མཛོད་ཀྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 3791 अष्टसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिताव्याख्याभिसमयालंकारालोकः, मि. इन्सटीटच्यूट, सम्पादक, १९६०, पी. एल. वैद्य ।
འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བརྒྱད་སྟོང་པའི་བཤད་པ།
མངོན་པར་རྟོགས་པའི་རྒྱན་གྱི་སྣང་བ་ཞེས་བྱ་བ།

Toh: 117 आर्यरत्नकरण्डनाम महायानसूत्रम्, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण ।
འཕགས་པ་དཀོན་མཆོག་གི་ཟ་མ་ཏོག་ཅེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 4301 काव्यादर्शः, कलकत्ता विश्वविद्यालय संस्करण, १९३९, अनुकूलचन्द्र बनर्जी ।
སྙན་ངག་མེ་ལོང་།

Toh: 44 गण्डव्यूहसूत्रम्, मिथिला इन्सटीटच्यूट, १९६०, वैद्य ।
སྡོང་པོ་བཀོད་པའི་མདོ། (སངས་རྒྱས་ཕལ་པོ་ཆེ་ཞེས་བྱ་བ་ཤིན་ཏུ་རྒྱས་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།)

Toh: 1119 निरौपम्यस्तवः, नेपाल संस्करण ।
དཔེ་མེད་པར་བསྟོད་པ།

Toh: 4266 तत्त्वसंग्रहः, बौद्ध भारती वाराणसी, १९८२, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ।
དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 4267 तत्त्वसंग्रहपञ्जिका, बौद्ध भारती वाराणसी, १९८२, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री ।
དེ་ཁོ་ན་ཉིད་བསྡུས་པའི་དཀའ་འགྲེལ།

Toh: 5070 त्रिशतिकाप्रज्ञापारमिताकारिकासप्ततिः, तिब्बती संस्थान संस्करण, १९७८, प्रो. एल. एम. जोशी ।
ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་བཤད་པ་བཤད་སྦྱར་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 4064 त्रिंशिकाविज्ञप्तिमात्रतासिद्धिः, सं. वि. संस्करण, १९७२,
श्री थुबतेन छोगडुब एवं पं. रामशंकर त्रिपाठी ।
སུམ་ཅུ་པའི་བཤད་པ།

Toh: 238 धर्मसंगीतिनाम महायानसूत्रम्, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण ।
འཕགས་པ་ཆོས་ཡང་དག་པར་སྡུད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།
धर्मसंग्रहः (महायानसूत्रसंग्रहः), मिथिला इन्सटीटच्यूट,
१९६१, पी. एल. वैद्य ।

Toh: 4212 न्यायबिन्दुनाम प्रकरणम्, चौखम्बा संस्कृत संस्थान,
वाराणसी, १९८२, सम्पादक, चन्द्रशेखर शास्त्री ।
རིགས་པའི་ཐིགས་པ་ཞེས་བྱ་བའི་རབ་ཏུ་བྱེད་པ།

Toh: 3804 प्रज्ञापारमितापिण्डार्थः, मि. इन्सटीटच्यूट, १९६०, वैद्य ।
ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་དོན་བསྡུས་སྒྲོན་མ།

Toh: 4210 प्रमाणवार्तिककारिका, बौद्ध भारती वाराणसी, १९६८, स्वामी
द्वारिकादास शास्त्री ।
ཚད་མ་རྣམ་འགྲེལ་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 3871 बोधिसत्त्वचर्यावतारः, मि. इन्सटीटच्यूट, १९६०, वैद्य ।
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་སྤྱོད་པ་ལ་འཇུག་པ།

Toh: 3872 बोधिसत्त्वचर्यावतारपञ्जिका, मि. इन्सटीटच्यूट, १९६०, वैद्य ।
བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སྤྱོད་པ་ལ་འཇུག་པའི་དཀའ་འགྲེལ།

Toh: 3915–17 भावनाक्रमः, ति. सं. संस्करण, १९८५,
आचार्य ज्ञलछेन नमडोल ।
བསྒོམ་པའི་རིམ་པ།   ཐོག་མཐའ་བར་གསུམ།

Toh: 3884 मध्यमकालंकारकारिका, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण ।
དབུ་མ་རྒྱན་གྱི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

पालि मज्झिमनिकायो, नालन्दा संस्करण, विहार, सम्पादक,
भिक्षु जगदीश काश्यप ।

Toh: 4021 मध्यान्तविभागकारिका, के. पी. जायसवाल रिसर्च
इन्सटीटच्यूट १९६७, पटना डॉ० नथमल टाटिया ।

དབུས་དང་མཐའ་རྣམ་པར་འབྱེད་པའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 4032 मध्यान्तविभागभाष्यम्, के. पी. जायसवाल रिसर्च इन्सटीटच्यूट, १९६७, पटना, डॉ० नथमल टाटिया ।
དབུས་དང་མཐའ་རྣམ་པར་འབྱེད་པའི་འགྲེལ་བཤད།

Toh: 3824 मध्यमकशास्त्रकारिका, बौद्ध भारती वाराणसी, १९८३ ।
དབུ་མ་རྩ་བའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ་ཤེས་རབ་ཅེས་བྱ་བ།

Toh: 3860 मध्यमकशास्त्रवृत्तिः, बौद्ध भारती वाराणसी, १९८३ ।
དབུ་མའི་རྩ་བའི་འགྲེལ་པ་ཚིག་གསལ་བ་ཞེས་བྱ་བ།

Toh: महायानसूत्रसंग्रहः, मिथिली इन्सटीटच्यूट, १९६१, सम्पादक, पी. एल. वैद्य ।

Toh: 231 आर्यरत्नमेघो नाम महायानसूत्रम्, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण ।
འཕགས་པ་དཀོན་མཆོག་སྤྲིན་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 4158 राजपरिकथारत्नमाला, तिब्बती संस्थान संस्करण, सम्पादक, आचार्य ङवङ् समतेन ।
རྒྱལ་པོ་ལ་གཏམ་ཞེས་བྱ་བ་རིན་པོ་ཆེའི་ཕྲེང་བ།

Toh: 107 आर्यलंकावतारनाम महायानसूत्रम्, मिथिला इन्सटीटच्यूट, १९६३, पी. एल. वैद्य ।
འཕགས་པ་ལང་ཀར་གཤེགས་པའི་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 3817 वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमिताटीका, तिब्बती संस्थान संस्करण, पुनरुद्धार, १९९४, आचार्य पेमा तेनजिन ।
འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ།

Toh: 16 वज्रच्छेदिकाप्रज्ञापारमितासूत्रम्, तिब्बती संस्थान संस्करण, १९७८, प्रो. एल. एम. जोशी ।
འཕགས་པ་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྡོ་རྗེ་གཅོད་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

पालि — विशुद्धिमग्गो, महाबोधिसभा संस्करणम्, १९५७, सम्पादक, भिक्षु धर्मरक्षित ।

Toh: — विज्ञप्तिमात्रतासिद्धिप्रकरणद्वयम्, सं. वि. संस्करण, १९७२, श्री थुबतेन छोगडुब एवं प्रो. रामशंकर त्रिपाठी ।

Toh: 3825 — व्याख्यायुक्तिः, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण ।
རིགས་པ་དྲུག་ཅུ་པའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ་ཞེས་བྱ་བ།

Toh: 3940 — शिक्षासमुच्चयः, मिथिला इन्सटीटचूट्, १९६०, सम्पादक, पी. एल. वैद्य ।
བསླབ་པ་ཀུན་ལས་བཏུས་པ།

Toh: 210 — आर्यशालिस्तम्बनाम महायानसूत्रम्, मि. इन्सटीटचूट, १९६१, पी. एल. वैद्य ।
འཕགས་པ་སཱ་ལུའི་ལྗང་པ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 113 — सद्धर्मपुण्डरीकनाम महायानसूत्रम्, मि. इन्सटीटचूट, १९६०, पी. एल. वैद्य ।
དམ་པའི་ཆོས་པད་མ་དཀར་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 127 — आर्यसमाधिराजनाम महायानसूत्रम्, मि. इन्सटीटचूट, १९६१, पी. एल. वैद्य ।
འཕགས་པ་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་རྒྱལ་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

Toh: 4020 — महायानसूत्रालंकारनाम कारिका, मि. इन्सटीटचूट, १९७०, सम्पादक, पीः एल. वैद्य ।
ཐེག་པ་ཆེན་པོ་མདོ་སྡེའི་རྒྱན་ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་ལེའུར་བྱས་པ།

Toh: 207 — हस्तिकक्ष्यनाम महायानसूत्रम्, तिब्बती 'दे–गे' संस्करण
གླང་པོའི་རྩལ་ཞེས་བྱ་བ་ཐེག་པ་ཆེན་པོའི་མདོ།

द्वितीयपरिशिष्टम्
अकारादिक्रमेण ग्रन्थागतगद्य–पद्योद्धरणानामनुक्रमणी

གཞུང་འདིའི་ནང་གསལ་ལུང་འདྲེན་ཁག་ཀ་ཁྲིད་ལྟར་བཀོད་པ།

तृतीयपरिशिष्टम्

अकारादिक्रमेण ग्रन्थप्रयुक्तविशिष्टसंस्कृत–भोटशब्दानुक्रमणी

अकृताभ्यागमः	མ་བྱས་པ་དང་ཕྲད་པ།
अक्षणोत्पन्नेभ्यः	མི་ཁོམ་པར་སྐྱེས་པ་རྣམས་ལ།
अग्रयानम्	ཐེག་པ་མཆོག
अग्राह्यः	གཟུང་དུ་མེད་པ།
अचिन्त्यम्	བསམ་གྱིས་མི་ཁྱབ་པ།
अणुः	ཅུང་ཟད།
अण्डजाः	སྒོ་ང་ལས་སྐྱེས་པ།
अतीत–प्रत्युत्पन्न–अनागतभेदेन	འདས་པ་དང་ད་ལྟར་བྱུང་བ་དང་མ་འོངས་པའི་བྱེ་བྲག་གིས།
अतुल्यम्	མཚུངས་པ་མེད་པ།
अत्यन्तपरोक्षार्थः	ཤིན་ཏུ་སྐོལ་བའི་དོན།
अर्थक्रियासामर्थ्यरहितत्वात्	དོན་བྱེད་ནུས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར།
अद्वैतस्वभावतायाः	གཉིས་སུ་མེད་པའི་བདག་ཉིད།
अधिगमधर्मकायः	རྟོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ།
अधिमुक्तिचर्याभूमिः	མོས་པའི་སྤྱོད་པའི་ས།
अधिमुक्तिसमुत्पादाय	མོས་པ་བསྐྱེད་པ།
अध्यारोपान्तः	སྒྲོ་བཏགས་པའི་མཐའ།
अननुमेयत्वात्	རྗེས་སུ་དཔག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར།
अनभिलाप्याः	བརྗོད་དུ་མེད་པའི་ཕྱིར།
अनवमर्दनीयत्वात्	བརྫི་བ་མེད་པ་ཡིན་པས།
अनागामिनः	ཕྱིར་མི་འོང་བ།

अनाथपिण्डदस्यारामे	ཁྱིམ་བདག་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱི་ཀུན་དགའ་ར་བ།
अनित्यान्वयः	མི་རྟག་པར་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ།
अनुत्तरज्ञानपरिशुद्धिसम्पद्	མཁྱེན་པ་བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
अनुत्तरदृष्टिपरिशुद्धिसम्पद्	བླ་ན་མེད་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
अनुत्तरपदम्	བླ་ན་མེད་པའི་གོ་འཕང་།
अनुत्तरा सम्यक्संबोधिः	བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ།
अनुत्पत्तिकधर्मक्षान्तिः	མི་སྐྱེ་བའི་ཆོས་ལ་བཟོད་པ།
अनुत्पन्नधर्मता	སྐྱེ་བ་མེད་པའི་ཆོས་ཉིད།
अनुत्पन्नार्यमार्गः	འཕགས་པ་ལམ་མ་སྐྱེས་པ།
अनुत्पादधर्मः	སྐྱེ་མེད་ཆོས།
अनेकबुद्धशतसहस्रः	སངས་རྒྱས་འབུམ་ཕྲག
अनैकान्तिकत्वम्	མ་ངེས་པ།
अन्तद्वयपरिहारः	མཐའ་གཉིས་བཀག་པ།
अन्याकारः	གཞན་གྱི་རྣམ་པ།
अपकारमर्षणक्षान्तिः	གནོད་པར་བྱེད་པ་ལ་མི་བཟོད་པའི་བཟོད་པ།
अपरिमाणम्	ཚད་མེད་པ།
अपरिमितपुण्यज्ञानसम्भरणात्	བསོད་ནམས་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཚོགས་དཔག་ཏུ་མེད་པའི་ཕྱིར།
अपरिमितविनेयानाम्	གདུལ་བྱ་དཔག་ཏུ་མེད་པ།
अपवादान्तः	བསྐུར་བ་འདེབས་པའི་མཐའ།

अप्रतिष्ठितनिर्वाणम्	མི་གནས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ།
अप्रतिष्ठितनिर्वाणधातौ	མི་གནས་པའི་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དབྱིངས།
अप्रमेयम्	དཔག་ཏུ་མེད།
अभयदानेन	མི་འཇིགས་པ་སྦྱིན་པས།
अभिसमयकालेऽहमिति विकल्पवियोग·	མངོན་པར་རྟོགས་པའི་དུས་ན་བདག་གོ་སྙམ་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་དང་བྲལ་བ།
अभिसम्बुद्धः	མངོན་པར་རྫོགས་པར་སངས་རྒྱས་པ།
अभिसम्बोधिः	མངོན་པར་རྫོགས་པར་བྱང་ཆུབ་པ།
अभ्रौपम्येन	སྤྲིན་གྱི་དཔེས།
अमाप्यम्	གཞལ་དུ་མེད་པ།
अरणाः	ཉོན་མོངས་པ་མེད་པ།
अर्हन्	དགྲ་བཅོམ་པ།
अवरोपितकुशलमूलाः	དགེ་བའི་རྩ་བ་བསྐྱེད་པ།
अववादपर्येषणम्	གདམས་ངག་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ།
अवश्यायोपमया	ཟིལ་པའི་དཔེས།
अवाङ्मुख–अशुचि–सच्छिद्रभाण्डानाम्	སྣོད་ཁས་སྦུབ་པ་དང་མི་གཙང་བ་དང་རྫོལ་བ་ལྟ་བུ།
अविकले हेतौ	རྒྱུ་མ་ཚང་བ་མེད་པ་ཅན་གྱི།
अविचाररमणीयतया	མ་བརྟགས་ན་དགའ་བར།
अविद्याज्ञानान्धकारे	མ་རིག་པའི་ཤེས་པའི་སྣང་བ།
अविनिवर्तनाय	མི་ལྡོག་པར་བྱ་བ།
अव्याकृतः	ལུང་མ་བསྟན།
अशीतिरनुव्यञ्जनानि	དཔེ་བྱད་བཟང་པོ་བརྒྱད་ཅུ།
अश्रूणि प्रामुञ्चत्	མཆི་མ་བྱུང་བ།

असमाहितावस्थायाम्	མཉམ་པར་མ་གཞག་པའི་གནས་སྐབས།
असुरेन्द्रो राहुः	ལྷ་མ་ཡིན་གྱི་དབང་པོ་དགྲ་གཅན་ཟིན།
असंक्लेशेन प्रस्थितिः	ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བས་བཞུགས་པ།
असंख्येयम्	གྲངས་མེད།
असंख्येयकल्पः	བསྐལ་པ་གྲངས་མེད།
असंविदितत्वात्	སོ་སོར་རིག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར།
असंस्कृतप्रभाविताः	འདུས་མ་བྱས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ།
अहेतुवादी	རྒྱུ་མེད་པར་སྨྲ་བའི་ཕྱོགས།
आत्मग्राहः	བདག་ཏུ་འཛིན་པ།
आत्मपरिग्रहः	བདག་ཏུ་རབ་ཏུ་འཛིན་པ།
आत्मप्रामाण्यप्रतिपादनात्	བདག་ལ་ཡིད་ཆེས་པར་བྱ་བ།
आत्मभावः	ལུས།
आत्मसंज्ञा	བདག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ།
आत्मा आत्मेति	བདག་དང་བདག་གི
आत्मादिदृष्टिकैः	བདག་ལ་སོགས་པར་ལྟ་བ་རྣམས་ཀྱིས།
आदितोऽनुत्पन्नत्वात्	གཟོད་མ་ནས་མ་སྐྱེས་པ།
आदीनवान्वयलक्षणम्	ཉེས་དམིགས་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད།
आधाराधेयलक्षणम्	གཞི་དང་གནས་པའི་མཚན་ཉིད།
आमिषदानेन	ཟང་ཟིང་སྦྱིན་པས།
आर्यपुद्गलाः	འཕགས་པའི་གང་ཟག
आर्यसत्यम्	འཕགས་པའི་བདེན་པ།
आर्यसुभूतिः	འཕགས་པ་རབ་འབྱོར།

आवरणद्वयप्रहाणम्	སྒྲིབ་པ་གཉིས་སྤོང་བ།
आवृतानावृतयोः	བསྒྲིབས་པ་དང་མ་བསྒྲིབས་པ།
आश्रमः	བསྟི་གནས།
ईर्यापथेन प्रस्थितिः	སྤྱོད་ལམ་གྱིས་བཞུགས་པ།
उत्खातमूलानि	རྩ་ནས་ཟད་བྱེད་པ།
उत्तमां समाधिम्	ཏིང་ངེ་འཛིན་མཆོག
उच्छेदवादिनामिव	ཆད་པར་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱི་ལྟ་བུ།
उपचितहेतुः	རྒྱས་པའི་རྒྱུ།
उपदेशः	ལུང་ནོད་པ།
उपवसताम्	བསྙེན་གནས་པ།
उपालम्भावकाशः	ཀླན་ཀ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྐབས།
उपेतकायः	ལུས་དང་ལྡན་པ།
उपोद्घातः	གླེང་བསླང་བ།
एकानेकस्वभावशून्या	གཅིག་དང་དུ་མའི་རང་བཞིན་གྱིས་སྟོང་པ།
एवंविधधर्मरत्नश्रवणम् दुर्लभम्	ཆོས་དཀོན་མཆོག་འདི་ལྟ་བུ་དག་ཐོས་དཀའ་བ།
ऐश्वर्यस्य	དབང་།
कथं चित्तं प्रग्रहीतव्यम्	ཇི་ལྟར་སེམས་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་བྱ་བ།
कथं प्रतिपत्तव्यम्	ཇི་ལྟར་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ།
कथं स्थातव्यम्	ཇི་ལྟར་གནས་པར་བྱ་བ།
कपिलपरिकल्पितस्य	སེར་སྐྱ་པས་ཡོངས་སུ་བརྟགས་པའི།
करनखामृतेन	ཕྱག་གི་སེན་མོ་བདུད་རྩི་ཅན།

कर्त्ता भोक्ता स्मर्ता	བྱེད་པ་པོ་དང་ཟ་བ་པོ་དང་དྲན་པ་པོ།
कर्मफलम्	ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ།
कर्मवर्तिकम्	ལས་ཀྱི་རས།
कर्मावरणम्	ལས་ཀྱི་སྒྲིབ་པ།
कलिङ्गराजा	ཀ་ལིང་ཀའི་རྒྱལ་པོ།
कल्याणमित्रेषु	དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་དག་ལ།
कामधातौ	འདོད་པའི་ཁམས།
कायचित्तपरिश्रान्तौ	ལུས་དང་སེམས་དུབ་ནས།
कायसम्पद्	སྐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
कार्यकारणभावमात्रेण	རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་ཙམ་གྱིས།
कार्यकारणलक्षणम्	རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་མཚན་ཉིད།
कार्यकारणसम्बन्धः	རྒྱུ་དང་འབྲས་བུའི་འབྲེལ་བ།
कारणशक्तेः प्रतिनियतत्वात्	རྒྱུའི་ནུས་པ་སོ་སོར་ངེས་པའི་ཕྱིར།
कारणेऽविकले	རྒྱུ་མ་ཚང་བ་མེད་པའི་འབྲས་བུ།
कुचोद्यम्	ཀླན་ཀ་ངན་པ།
कुदृष्टिजाले	ལྟ་བ་ངན་པའི་དྲྭ་བས།
कुशलैर्धर्मैः	དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་ཀྱིས།
कृतविप्रणाशः	བྱས་པ་ཆུད་ཟ་ཞིང་།
कोलोपमः	གཟུངས་ལྟ་བུར།
कौसीद्यम्	ལེ་ལོ།
क्रमोत्पत्त्या	རིམ་གྱིས་འབྱུང་བ།
क्रियातन्त्रम्	བྱ་བའི་རྒྱུད།
क्लेशः	ཉོན་མོངས་པ།
क्षुत्पिपासावर्जितः	བསྒྲིབས་པ་དང་སྐྲིམས་པ་མི་མངའ་བ།
क्षेत्रपरिशुद्धिसम्पद्	ཞིང་ཡོངས་སུ་དག་པ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།

क्षेत्रविशुद्धिप्रणिधानम्	ཞིང་རྣམ་པར་དག་པ་སྨོན་པ།
क्षेत्रव्यूहाः	ཞིང་བཀོད་པ་རྣམས།
गगनारविन्दवत्	ནམ་མཁའི་པདྨ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན།
गङ्गानदीवालुकासमान्	གངྒའི་ཀླུང་གི་བྱེ་མ་སྙེད།
गणकैः	མཆན་མཁན་རྣམས་ཀྱིས།
गम्भीरेष्वर्थेष्ववतारणाय	དོན་ཟབ་མོ་ལ་འཇུག་པར་བྱ་བ།
गाम्भीर्यम्	ཟབ་པ།
गुणवन्तः	ཡོན་ཏན་དང་ལྡན་པ།
गोत्रसम्परिग्रहज्ञानम्	རིགས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པའི་ཡེ་ཤེས།
गोवलीवर्दन्यायेन	བ་ལང་དང་གླང་ཞེས་བྱ་བའི་ཚུལ་དུ།
गोसदृशो गवयः	བ་མིན་ལ་བ་ལང་དང་འདྲའོ།
ग्राह्यो ग्राहको वा	གཟུང་བའམ་འཛིན་པ།
घोषेण चान्वयुः	སྒྲར་ཤེས་པ།
चक्राङ्कहस्तपादतादीनि	ཕྱག་དང་ཞབས་ལ་འཁོར་ལོ་མངའ་བ།
चक्षुष्मान्	མིག་དང་ལྡན་པ།
चतुर्दीपादीनाम्	གླིང་བཞི་ལ་སོགས་པ།
चतुर्भिरीर्यापथैः	སྤྱོད་ལམ་བཞི་པོ་དག་གིས།
चतुरार्यसत्यलक्षणम्	འཕགས་པའི་བདེན་པ་བཞིའི་མཚན་ཉིད།
चित्तचैत्तादि	སེམས་དང་སེམས་ལས་བྱུང་བ་ལ་སོགས་པ།
चित्तधारा चित्तधारा	སེམས་ཀྱི་རྒྱུན་སེམས་ཀྱི་རྒྱུན།
चित्तसम्पद्	ཐུགས་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
चित्तोत्पादः	སེམས་བསྐྱེད་པ་དང་།
चिन्तामयी प्रज्ञा	བསམ་པའི་ཤེས་རབ།
चीवर–पिण्डपातादिभिः	ན་བཟའ་དང་ཞལ་ཟས་ལ་སོགས་པས།

चीवरमादाय	ཆོས་གོས་མནབས།
चैत्यः	མཆོད་རྟེན།
चैत्यभूतः	མཆོད་རྟེན་དུ་གྱུར་པ།
चोदकं प्रति समाधानम्	ཕྱིར་རྒོལ་བའི་ལན།
छत्रध्वजपताकादिभिः	གདུགས་དང་རྒྱལ་མཚན་དང་བ་དན་ལ་སོགས་པས།
छन्द–प्रणिधानाभ्याम्	འདུན་པ་དང་སྨོན་ལམ་གྱིས།
जगद्धितसुखसाधना	འགྲོ་བ་ལ་ཕན་པ་དང་བདེ་བ་བསྒྲུབ་པ།
जिनैः	རྒྱལ་བ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས།
जीवसंज्ञा	སྲོག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ།
जेतवने	རྒྱལ་བུ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི་ཚལ།
जैमिन्यादीनाम्	རྒྱལ་དཔོག་པ་ལ་སོགས་པ།
ज्ञानकायः	ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྐུ།
ज्ञानगोचरः	ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ།
ज्ञानज्ञेयात्मकः	ཤེས་པ་དང་ཤེས་བྱའི་བདག་ཉིད།
ज्ञानपरिशुद्धः	ཡེ་ཤེས་ཡོངས་སུ་དག་པ།
ज्ञानसूर्यालोके	ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ཉི་མའི་སྣང་བ།
ज्ञानहेतुकः	ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན།
ज्ञापकहेतौ	ཤེས་པར་བྱ་བའི་གཏན་ཚིགས།
तद्बीजदौष्ठुल्यम्	དེའི་ས་བོན་གནས་ངན་ལེན་གྱིས།
तथागतः	དེ་བཞིན་གཤེགས་པ།
तथागतानुभावः	དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དགོངས་པ།
तथागतपूजासत्कारः	དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལ་མཆོད་པ་དང་རིམ་གྲོ་བྱ་བ།

तथावादी	དེ་བཞིན་ཉིད་གསུངས་པ།
तथ्यसंवृतिस्वभावम्	ཡང་དག་པའི་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད།
तद्यथापि नाम	འདི་ལྟ་སྟེ་དཔེར་ན།
तनूकरणोपायः	བསྲབ་པར་བྱ་བའི་ཐབས།
तर्कसाम्यात्	དཔྱད་པ་མཐུན་པའི་ཕྱིར།
ताम्रवर्णनखादीनि	སེན་མོ་ཟངས་ཀྱི་མདོག་འདྲ་བ།
तारकाः	སྐར་མ།
तिमिरवत्	རབ་རིབ་ལྟ་བུར།
त्रिभिरसंख्येयकल्पैः	བསྐལ་པ་ཆེན་པོ་གྲངས་མེད་པ་གསུམ་གྱིས།
त्रिसाहस्रमहासाहस्रः	སྟོང་གསུམ་གྱི་སྟོང་ཆེན་པོ།
तृष्णाशिखरः	རྩའི་རྩེ་མོ།
तृष्णास्नेहः	སྲེད་པའི་སྣུམ།
तैर्थिककुञ्जरवृन्दानाम्	མུ་སྟེགས་བྱེད་གླང་པོའི་ཁྱུ།
तैर्थिकः	ཕྱི་རོལ་པ་རྣམས་ཀྱིས།
त्रैकालिकं चित्तम्	དུས་གསུམ་གྱི་སེམས།
त्रैयध्विकसर्वबुद्धप्रसूम्	དུས་གསུམ་བཞུགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀུན་བསྐྱེད།
दशचरितानि	སྤྱོད་པ་བཅུ།
दशभिः पारमिताभिः	ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་བཅུས།
दानपारमिता	སྦྱིན་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ།
दीपंकरः	མར་མེ་མཛད།
दुःखदुःखम्	སྡུག་བསྔལ་གྱིས་སྡུག་བསྔལ།
दुःखाधिवासनम्	སྡུག་བསྔལ་ཇི་མི་སྙམ་པ།
दुःखाधिवासनक्षान्तिः	སྡུག་བསྔལ་དང་དུ་ལེན་པའི་བཟོད་པ།

दुःखान्वयः	སྡུག་བསྔལ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པ།
दुःखसत्यम्	སྡུག་བསྔལ་གྱི་བདེན་པ།
दुःखोत्पादहेतुत्वाद्	སྡུག་བསྔལ་སྐྱེད་པའི་རྒྱུ་ཡིན་པས།
दुरवगाहः	གཏིང་དཔག་དཀའ་བ།
दुर्लभपदम्	རྙེད་དཀའ་བའི་གོ་འཕང་།
दुष्करकृत्यविधानम्	བྱ་དཀའ་བ་བྱེད་པ།
दृष्ट एव धर्मे	ཚེ་འདི་ཉིད་ལ།
दृष्टान्तस्यापि	དཔེ་ཡང་།
देय–दायक–प्रतिग्राहकः	སྦྱིན་པར་བྱ་བ་དང་སྦྱིན་པ་པོ་དང་ལེན་པ་པོ་ལ་སོགས་པ།
देवदत्तः	ལྷ་སྦྱིན།
देवपुत्रः	ལྷའི་བུ།
देवादिभिः सत्कारः	ལྷ་ལ་སོགས་པ་རིམ་གྲོ་བྱེད་པ།
देशनाऽसंक्लेशः	འཆད་པ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་མི་མངའ་བ།
दौर्मनस्यम्	ཡིད་མི་བདེ་བ།
दौर्मनस्यलक्षणम्	ཡིད་མི་བདེ་བའི་མཚན་ཉིད།
धर्मकायः	ཆོས་ཀྱི་སྐུ།
धर्मकायपरिग्रहणम्	ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ།
धर्मकायाप्तिकामता	ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ།
धर्मचक्रप्रवर्तनाकाले	ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བསྐོར་བའི་དུས་ན།
धर्मदानेन	ཆོས་ཀྱི་སྦྱིན་པས།
धर्मधातुः	ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས།
धर्मनिध्यानक्षान्तिः	ཆོས་ལ་ངེས་པར་རྟོག་པའི་བཟོད་པ།

धर्मनैरात्म्यक्षान्तिः	ཆོས་ལ་བདག་མེད་པའི་བཟོད་པ།
धर्मनैरात्म्यानधिगमाद्	ཆོས་ལ་བདག་མེད་པ་རྟོགས་པའི་ཕྱིར།
धर्मपर्यायम्	ཆོས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས།
धर्मवेगेन	ཆོས་ཀྱི་ཤུགས་ཀྱིས།
धर्मवृष्टिः	ཆོས་ཀྱི་ཆར།
धर्मसंगीतौ	ཆོས་ཡང་དག་པར་སྡུད་པ།
धर्मसंज्ञा	ཆོས་སུ་འདུ་ཤེས་པ།
धर्मस्तुतिवैशिष्ट्यम्	ཆོས་ལ་བསྟོད་པའི་ཁྱད་པར།
धर्मायतनम्	ཆོས་ཀྱི་སྐྱེ་མཆེད།
धूतगुणेष्ववतारणाय	སྦྱངས་པའི་ཡོན་ཏན་ལ་གཞུད་པའི་ཕྱིར།
ध्यानरसास्वादविरतिः	བསམ་གཏན་གྱི་རོ་མྱང་བ་དང་བྲལ་བ།
न रूपप्रतिष्ठितम्	གཟུགས་ལ་མི་གནས་པར་
न वितथवादी	ལོག་པར་གསུང་བ་མ་ཡིན།
नातिनम्रं नातिस्तब्धम्	ཧ་ཅང་ཡང་མི་དགུ་ཧ་ཅང་ཡང་མི་དགྱེ་བར་མཛད།
निखिलक्लेशजालः	ཉོན་མོངས་པའི་དྲྭ་བ་མ་ལུས་པ།
निदानम्	གླེང་གཞི།
निरवयवानाममूर्तानाम्	ཆ་ཤས་མེད་པ་དང་ལུས་མེད་པ་རྣམས།
निराकारेण	རྣམ་པ་མེད་པས།
निराभासकरणोपायः	སྣང་བ་མེད་པར་བྱ་བའི་ཐབས།
निर्याणान्वयलक्षणम्	ངེས་པར་འབྱུང་བ་རྗེས་སུ་རྟོགས་པའི་མཚན་ཉིད།
निर्वाणकायः	སྤྲུལ་པའི་སྐུ།
निर्वाणपथः	མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་ལམ།

निर्वाणमहानगरम्	མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་གྲོང་ཁྱེར་ཆེན་པོ།
निर्वेधभागीयः	ངེས་པར་འབྱེད་པའི་ཆ་དང་མཐུན་པ།
निवास्य	ཤམ་ཐབས།
निष्यन्दादिफलानि	རྒྱུ་མཐུན་པའི་འབྲས་བུ།
नैरात्म्यद्वयमार्गेण	བདག་མེད་པ་གཉིས་ཀྱི་ལམ་ནས།
नैरात्म्यवादिनाम्	བདག་མེད་པར་སྨྲ་བ།
नैव संज्ञिनो नासंज्ञिनो वा	འདུ་ཤེས་མེད་འདུ་ཤེས་མེད་མིན་ནོ།
न्यग्रोधवृक्षम्	ཤིང་ནྱགྲོདྷ།
पञ्चकषायाणामाधिक्याद्	སྙིགས་མ་ལྔ་ཤས་ཆེ་བའི་ཕྱིར།
पञ्चजातिशतानि	ཚེ་རབས་ལྔ་བརྒྱར།
पञ्चशतवर्षाणि स्थास्यतीति	ལྔ་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔའི་བར་དུ་གནས་པ།
पदानामनुसन्धिः	ཚིག་རྣམས་ཀྱི་མཚམས་སྦྱོར་བ།
परमप्रमोदसञ्जननाय	མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་བསྐྱེད་པ།
परमविचक्षणैर्बौद्धैरिति	མཁས་པ་ཆེན་པོ་སངས་རྒྱས་པ་དག
परमाणवः	རྡུལ་ཕྲ་རབ་རྣམས།
परमाणुसञ्चयः	རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཀྱི་ཚོགས།
परमार्थसत्यग्राहकः	དོན་དམ་པའི་བདེན་པ་འཛིན་པ།
परस्परपरिहारस्थितलक्षणत्वात्	ཕན་ཚུན་སྤངས་ཏེ་གནས་པའི་མཚན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར།
परमार्थसम्पद्	གཞན་གྱི་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
परिनिर्वाणप्रदर्शनम्	མྱ་ངན་ལས་འདས་པར་བསྟན་པ།
परिभाषणभण्डनादि	སྤྱོ་བ་དང་ཚང་འབྲུ་བ།
परिभूताः	མནར་བར་འགྱུར།
परिभोगवैकल्यदुःखम्	ལོངས་སྤྱོད་དང་མི་ལྡན་པའི་སྡུག་བསྔལ།

पर्वतशिखरः	རིའི་རྩེ་མོ།
पश्चाद्भक्तम्	ཕྱི་དྲོའི་ཟས།
पशिचमायां पञ्चशत्याम्	ལྔ་བརྒྱ་ཐ་མ།
पापकर्म	སྡིག་པའི་ལས།
पापपरिशोधनम्	སྡིག་པ་ཡོངས་སུ་སྦྱོང་བ།
पारमितायोगः	ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་ལ་སྦྱོར་བ།
पिण्डकालः	ཟས་ཀྱི་དུས།
पिण्डग्राहः	རིལ་པོར་འཛིན་པ།
पिण्डपरिकर्म	བསོད་སྙོམས་ཡོངས་སུ་སྦྱོང་བ།
पिण्डार्थः	བསྡུས་པའི་དོན།
पुण्यपरिग्रहः	བསོད་ནམས་ཡོངས་སུ་སྡུད་པ།
पुण्यस्कन्धः	བསོད་ནམས་ཀྱི་ཕུང་པོ།
पुण्यहेतुकः	བསོད་ནམས་ཀྱི་རྒྱུ་ཅན།
पुद्गलनैरात्म्यम्	གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པ།
पुद्गलनैरात्म्यक्षान्तिः	གང་ཟག་ལ་བདག་མེད་པའི་བཟོད་པ།
पुद्गलसंज्ञा	གང་ཟག་ཏུ་འདུ་ཤེས་པ།
पूजनीयः	མཆོད་པར་འོས་པར།
पूर्वापरोर्ध्वाधोदिग्भागभेदेन	ཕ་རོལ་དང་ཚུ་རོལ་དང་སྟེང་དང་འོག་ དང་ཕྱོགས་ཐ་དད་པ་ནས།
पूर्वाह्णकालसमये	སྔ་དྲོའི་དུས་ཀྱི་ཚེ།
पृथग्जनैः	སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས།
पृथिवीप्रदेशे	ས་ཕྱོགས།
पृथिवीरजः	སའི་རྡུལ།
पौर्वजन्मिकानि	ཚེ་རབས་སྔ་མ།
पौर्वापर्यावस्थितेरयुक्तत्वात्	ཚུ་རོལ་དང་ཕ་རོལ་ན་གནས་པ་མི་

	རིགས་པའི་ཕྱིར།
प्रज्ञप्त एवासने	གདན་བཤམས་པ་ལ།
प्रज्ञाचक्षुः	ཤེས་རབ་ཀྱི་སྤྱན།
प्रज्ञापारमिता	ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ།
प्रज्ञापारमिताकायम्	ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པའི་ལུས།
प्रज्ञावन्तः	ཤེས་རབ་དང་ལྡན་པ།
प्रणिधाय	སྐུ་དྲུང་པོར་བསྲུང་སྟེ།
प्रणिधि–प्रस्थानचित्ताभ्याम्	སྨོན་པ་དང་འཇུག་པའི་སེམས་ཀྱིས།
प्रणीतफले	འབྲས་བུ་རྒྱ་ནོམ་པ།
प्रतिपत्तिलक्षणम्	སྒྲུབ་པའི་མཚན་ཉིད།
प्रत्तिपत्त्यर्चया	སྒྲུབ་པས་མཆོད་པས།
प्रतिश्रुत्कादिवत्	བྲག་ཅ་ལ་སོགས་པ་ལྟ་བུར།
प्रतीत्यसमुत्पादवादिषु	རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་བར་འབྱུང་བར་སྨྲ་བ་ལ།
प्रत्यङ्गानि	ཉིང་ལག
प्रत्यक्षमनुमानम्	མངོན་སུམ་དང་རྗེས་སུ་དཔག་པ།
प्रत्यात्मवेदनीयत्वेन	སོ་སོ་རང་གིས་རིག་པར་བྱ་བ་ཡིན་པས།
प्रदक्षणीयः	བསྐོར་བ་བྱ་བར་འོས་པ།
प्रभातायाम्	ནམ་ལངས་ཏེ།
प्रभावितत्वात्	རབ་ཏུ་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་རོ།
प्रवचनधर्मकायः	བཤད་པའི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ།
प्रव्रजितानाम्	རབ་ཏུ་བྱུང་བ།
प्रस्थितिपरिशुद्धिः	བཞུགས་པ་ཡོངས་སུ་དག་པ།
प्रेक्षावान्	རྟོག་པ་དང་ལྡན་པ།
बन्धमोक्षौ	བཅིངས་པ་དང་ཐར་པ།

बाधकप्रमाणम्	གནོད་པ་ཅན་གྱི་ཚད་མ།
बालपृथग्जनाः	བྱིས་པ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
बालबुद्धयः	བྱིས་པའི་བློ་ཅན།
बालोऽश्रुतवान्	བྱིས་པ་ཐོས་པ་དང་མི་ལྡན་པ།
बाह्यशास्त्रेषु व्यपगतरागता	ཕྱིའི་བསྟན་བཅོས་ལ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དང་བྲལ་བ།
बाह्यार्थः	ཕྱི་རོལ་གྱི་དོན།
बुद्धक्षेत्रम्	སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་།
बुद्धधर्माः	སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཆོས་རྣམས།
बुद्धभूमिपर्येषणम्	སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས་ཡོངས་སུ་བཙལ་བ།
बुद्धभूमिम्	སངས་རྒྱས་ཀྱི་ས།
बुद्बुदोपमया	ཆུ་བུར་གྱི་དཔེས།
बुद्धा भगवन्तः	སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་འདས།
बुद्धोत्पादः	སངས་རྒྱས་བྱུང་བ།
बुद्धोत्पादारागणता	སངས་རྒྱས་འབྱུང་བ་མཉེས་པར་བྱ་བ།
बुद्धवंशानुपच्छेदः	སངས་རྒྱས་ཀྱི་གདུང་རྒྱུན་མི་འཆད་པར་བྱ་བ།
बोधिभारोद्वहनम्	བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཁུར་ཁྱེར་བས།
बोधिसत्त्वक्षेत्रम्	བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཞིང་།
बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन	བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ཐེག་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པས།
बोधिसत्त्वाभिसमयः	བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་མངོན་པར་རྟོགས་པ།
भगवतः सिंहनादः	བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སེངྒེའི་སྒྲ།

भदन्त सुभूते	བཙུན་པ་རབ་འབྱོར།
भवाग्रजाः	སྲིད་པའི་རྩེ་མོར།
भाग्यवन्तः	བསྐལ་པ་ཡོད་པ།
भावनाफलम्	བསྒོམས་པའི་འབྲས་བུ།
भावनामयी प्रज्ञा	བསྒོམས་པའི་ཤེས་རབ།
भावनाविशेषलाभेऽनभिमानः	བསྒོམས་པའི་ཁྱད་པར་འདུན་པ་ལ་མངོན་པའི་ང་རྒྱལ་མེད་པ།
भूतकोटिः	ཡང་དག་པའི་མཐའ།
भूतदर्शी	ཡང་དག་མཐོང་བ།
भूतवादी	ཡང་དག་པར་གསུངས་པ།
भूतसंज्ञा	ཡང་དག་པར་འདུ་ཤེས།
मध्यममार्गम्	དབུ་མའི་ལམ།
मनोमयकायः	ཡིད་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་སྐུ།
मयारागिता	ངས་མཉེས་པར་བྱ་བ།
मरीचिकासु उदकोपलम्भवत्	སྨིག་རྒྱུ་ལ་ཆུར་དམིགས་པ་བཞིན།
मषिं कुर्यात्	སྨྱེ་མར་བྱས་ན།
मस्तुलुङ्गलाक्षादि	མ་དུ་ལུང་ག་ལ་སོགས་རྒྱ་སྐྱེགས་ལ་སོགས་པ།
महताभिक्षुसंघेन	དགེ་སློང་གི་དགེ་འདུན་ཆེན་པོ།
महाकरुणान्वितचित्तः	ཐུགས་རྗེ་ཆེན་པོ་དང་ལྡན་པའི་ཐུགས་ཅན།
महाकायः	ལུས་ཆེན་པོ།
महाकारुणिकः	ཐུགས་བརྩེ་བ་ཆེན་པོ།
महाधर्मार्थप्रज्ञप्तिः	ཆོས་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ།
महायानम्	ཐེག་པ་ཆེན་པོ།

महाववादार्थप्रज्ञप्तिः	གདམས་ངག་དོན་ཆེན་པོར་གདགས་པ།
महासत्त्वाः	སེམས་དཔའ་ཆེན་པོ།
महौजस्का यक्षादयः	གནོད་སྦྱིན་གཟི་སྟོབས་ཅན།
मायानिर्मितबुद्धः	སྒྱུ་མས་སྤྲུལ་པའི་སངས་རྒྱས།
मायोपमया	སྒྱུ་མའི་དཔེས།
मिथ्याप्रहाणप्रसृताः	ལོག་པས་སྤོང་བར་ཞུགས་པ།
मूत्रपुरीषविरहितः	བཤང་གཅི་མི་མཛད།
मृत्युः	འཆི་བདག
मोहजः	གཏི་མུག་ལས་སྐྱེས་པ།
यज्ञदत्तः	མཆོད་སྦྱིན།
यथा यथार्थांश्चिन्त्यन्ते	དངོས་པོ་རྣམས་ཇི་ལྟར་ཇི་ལྟར་རྣམ་པར་བརྟགས་པ།
युगपद्	ཅིག་ཅར།
योगसमापत्त्या	རྣལ་འབྱོར་སྙོམས་པར་འཇུག་པས།
योगिज्ञानम्	རྣལ་འབྱོར་པའི་ཡེ་ཤེས།
योनिभेदेन	སྐྱེ་གནས་ཀྱི་དབྱེ་བ་ལས།
राजापि चक्रवर्ती	འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའི་རྒྱལ་པོ།
रूपकायाप्तिकामता	གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་ཐོབ་པར་འདུན་པ་དང་།
रूपग्राहकः	གཟུགས་འཛིན་པ།
रूपिणामरूपिणाम्	གཟུགས་ཅན་དང་གཟུགས་ཅན་མ་ཡིན་པའི།
रूपेण चाद्राक्षुः	གཟུགས་སུ་མཐོང་།
लक्षणसम्पदा	མཚན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
लक्षणानुव्यञ्जनैरलङ्कृतः	མཚན་དང་དཔེ་བྱད་བཟང་པོས་བརྒྱན་པ།

[illegible]	ང་ཆ་བའི་གནས་ཡིན་ནོ།
लाभसत्कारादिस्वार्थार्थतया	རྙེད་པ་དང་བཀུར་སྟི་ལ་སོགས་པ་རང་གི་དོན་འདོད་པས།
लोकधातु	འཇིག་རྟེན་གྱི་ཁམས།
लौकिकलोकोत्तरः	འཇིག་རྟེན་དང་འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པ།
लौहशलाकावत्	ལྕགས་ཀྱི་ཐུར་མ་བཞིན།
वज्रवद्दुर्भेद्यानि	རྡོ་རྗེ་ལྟར་གཞིག་དཀའ་བ།
वज्राकारसादृश्येन	རྡོ་རྗེའི་དབྱིབས་དང་འདྲ་བས།
वधबन्धनादिभिः	གསད་པ་དང་བཅིང་བ།
वन्दनीयः	ཕྱག་བྱ་བར་འོས་པ།
वन्ध्यापुत्रः	མོ་གཤམ་གྱི་བུ།
वस्तुप्रतिष्ठितेन	དངོས་པོ་ལ་གནས་པར།
वाक्सम्पद्	གསུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ།
वाचनम्	ཀློག་པ།
विकल्पनिराकरणार्थम्	རྣམ་པར་རྟོག་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར།
विकालभोजनम्	དུས་མ་ཡིན་པའི་ཟས།
विक्षेपनिग्रहः	རྣམ་པར་གཡེང་བ་ཚར་བཅད་པ།
विचिकित्साऽभावात्	ཐེ་ཚོམ་མི་མངའ་བའི་ཕྱིར།
विज्ञानक्षणानाम्	རྣམ་པར་ཤེས་པའི་སྐད་ཅིག་མ་རྣམས་ཀྱི།
वितथमार्गग्राहकः	ལམ་ལོག་པར་འཛིན་པ།
वितथाभिनिवेश	ལོག་པར་མངོན་པར་ཞེན་པ།
विद्युदौपम्येन	གློག་གིས་དཔེས།
विन्ध्य	འབིགས་བྱེད།
विपरीतग्राहकलक्षणम्	ལོག་པར་འཛིན་པའི་མཚན་ཉིད།

विपरिणामदुःखेन दुःखम्	འགྱུར་བའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་སྡུག་བསྔལ།
विपर्यासजालः	ཕྱིན་ཅི་ལོག་གི་དྲྭ་བ།
विप्रस्थितानाम्	ལོག་པར་ཞུགས་པ།
विमुक्त्युपदेशकाले	ཐར་པའི་ལུང་དཔོག་པའི་ཚེ།
विशिष्टगतिम्	འགྲོ་བ་ཁྱད་པར་ཅན།
विशिष्टपुण्यसञ्चयः	བསོད་ནམས་ཁྱད་པར་འཕགས་པ་ཡོངས་སུ་སྡུད་པ།
विशिष्टेष्टफलानि	འབྲས་བུ་ཡིད་དུ་འོང་བ་ཁྱད་པར་འཕགས་པ།
विशुद्धलौकिकज्ञानम्	དག་པ་འཇིག་རྟེན་པའི་ཡེ་ཤེས།
विषयरसास्वादनलक्षणम्	རོ་མྱང་བའི་ཡུལ་གྱི་མཚན་ཉིད།
वीरदत्तः	དཔའ་བོ་བྱིན།
वीर्य–ध्यानप्रज्ञापारमिता	བརྩོན་འགྲུས་དང་བསམ་གཏན་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་རྣམས།
वैभाषिकैः	བྱེ་བྲག་ཏུ་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱིས།
व्याचिख्यासु	འཆད་པར་འདོད་པས།
व्यापादसंज्ञा	གནོད་སེམས་ཀྱི་འདུ་ཤེས།
शततमीमपि कलां नोपैति	བརྒྱའི་ཆར་ཡང་མི་ཕོད།
शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता	ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་པ།
शब्दाभिनिवेशमात्रम्	སྒྲ་ཇི་བཞིན་དུ་མངོན་པར་ཞེན་ནས།
शशविषाणम्	རི་བོང་གི་རྭ།
शाश्वतोच्छेदान्तम्	རྟག་པ་དང་ཆད་པའི་མཐའ།
शिक्षात्रयप्रतिपत्तिसमन्विताः	བསླབ་པ་གསུམ་བསྒྲུབས་པ་དང་ལྡན་པ།

शिलापुत्रकस्य शरीरवत्	མཆི་གུའི་ལུས་ཞེས་བྱ་བ་བཞིན།
शीलक्षान्तिपारमिते	ཚུལ་ཁྲིམས་དང་བཟོད་པའི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པ།
शीलवन्तः	ཚུལ་ཁྲིམས་དང་ལྡན་པ།
शुद्धाध्याशयभूमिम्	ལྷག་པའི་བསམ་པ་དག་པའི་ས།
शुभो वा अशुभो वा	དགེ་བ་དང་མི་དགེ་བ།
शैक्षाशैक्षज्ञानम्	སློབ་པ་དང་མི་སློབ་པའི་ཤེས་པ།
श्रवस्तेस्तन्नामकर्षेः	དྲང་སྲོང་མཉན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བ།
श्रावक–प्रत्येकबुद्धः	ཉན་ཐོས་དང་རང་སངས་རྒྱས།
श्रावस्ती	མཉན་ཡོད།
श्रुतमयी प्रज्ञा	ཐོས་པའི་ཤེས་རབ།
श्रेष्ठयानसम्प्रस्थितानाम्	ཐེག་པ་ཕུལ་དུ་ཕྱིན་པ་ལ་ཡང་དག་པར་ཞུགས་པ།
संक्लेशव्यवदानभावेन	ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་རྣམ་པར་བྱང་བའི་ངོ་བོ།
संक्लेशव्यवदाने	ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་རྣམ་པར་བྱང་བར།
संगीतिकारैः	ཡང་དག་པར་སྡུས་པར་བྱེད་པས།
संयोगलक्षणः	ལྡན་པའི་མཚན་ཉིད།
संवृतिसत्यग्राहकम्	ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་བདེན་པ་འཛིན་པ།
संवृतितः	ཀུན་རྫོབ་ཏུ།
संशयोपच्छेदः	དོགས་པ་བཅད་པ།
संसारदुःखम्	འཁོར་བའི་སྡུག་བསྔལ།
संसारार्णवोत्तरणाय	འཁོར་བའི་རྒྱ་མཚོ་ལས་བསྒྲལ་བའི་ཕྱིར།